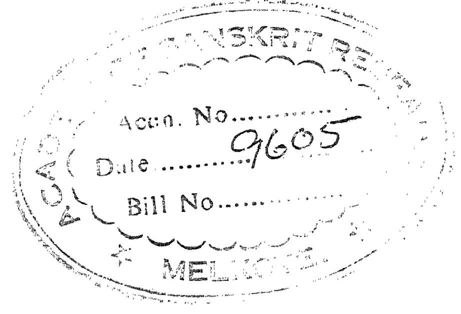
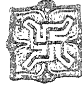
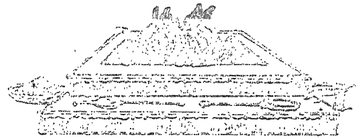
अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोधः





लेखक–सम्पादक :

केशवदेव शास्त्री



प्रकाशक

भारतीय चतुर्धाम वेदभवन न्यास
स्वदेशी हाउस,
कानपुर

Published with the financial assistance from the Ministry of Education and Social Welfare, Government of India.

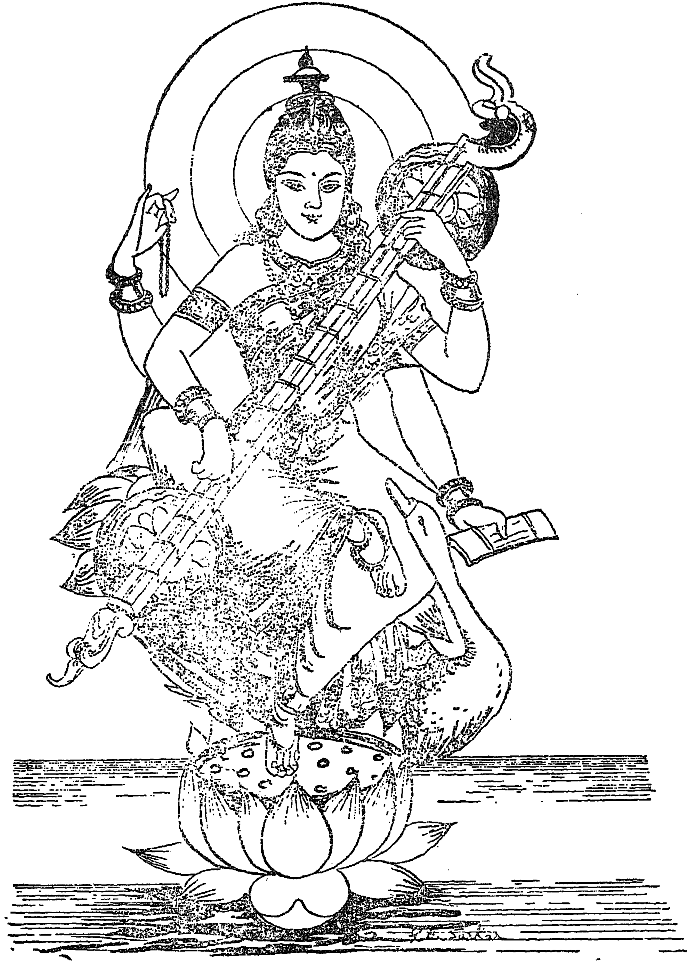


प्रथम बार
१०००

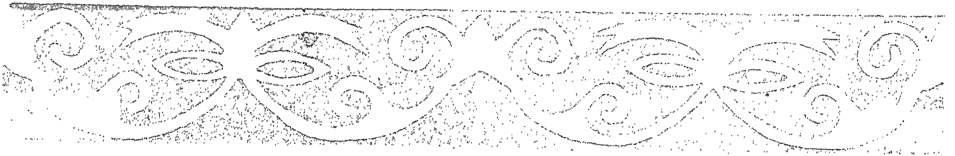
मूल्य
40/-



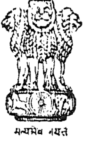
मुद्रक :
राधा प्रेस,
गान्धीनगर, दिल्ली-३१



पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तं ँ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रं ँ सचा सुते ॥







राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली - 4
RASHTRAPATI BHAVAN,
NEW DELHI - 4

फरवरी 15, 1974

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पंडित केशव देव शास्त्री ने अथर्ववेद का गहरा अध्ययन कर, विशेषतया व्याधि और व्याधि निरोध से सम्बन्धित तथ्यों और तत्वों का सूक्ष्म परिशीलन कर "अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोध" नामक ग्रन्थ की रचना की है। शास्त्री जी के प्रयास सफल हों और यह ग्रन्थ अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो—यही मेरी कामना है।

—व० वै० गिरि





उप-राष्ट्रपति, भारत
नई देहली
VICE PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

फरवरी १२, १९७४

वैदिक साहित्य हमारी अमूल्य निधि है। यह जितना व्यापक है, उतना ही व्यावहारिक भी है। प्रयोगात्मक दृष्टि से वैज्ञानिकों तथा विद्वानों की अनुसन्धानिक उत्कंठा की परितृप्ति के लिये इसमें अक्षुण्ण वस्तु-भण्डार उपलब्ध है। मानव-मात्र के कल्याण की इसमें अपरिमित शक्ति है।

"अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोध" नामक शोध-पुस्तक के सम्पादन में पं० केशवदेव शास्त्री ने गहरा अध्ययन और कठिन परिश्रम किया है। मैं उनके कार्य की सराहना करता हूँ और इस ग्रन्थ की सफलता के लिये अपनी शुभकामनायें देता हूँ।

—गोपाल स्वरूप पाठक



डा० कमलादत्त त्रिपाठी
संयुक्त सचिव
भारतीय चतुर्धाम वेदभवन न्यास

प्राक्कथन

यद्यपि भारतीय चतुर्धाम वेद भवन न्यास के सहयोगी न्यासीगण एवं एकेडेमिक कमेटी के सदस्य अपने स्थान पर अनेक विषयों के ज्ञाता हैं और किसी-किसी दृष्टि से देश मे उनका विशेष स्थान है, किन्तु वेद और आयुर्वेद में उन सबकी अटूट श्रद्धा होते हुये भी उनका तद्विषयक विशेष ज्ञान न होने के कारण उन्हें इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती थी कि जिन रोगों के निवारणार्थ अनेक औषधियां लेने पर भी वे ठीक नहीं हो पाते तो क्या उनके उपचार का कोई अन्य उपाय हो सकता है ? मैं एलोपैथी का डाक्टर हूँ तथा मैंने इसी पद्धति से जीवन भर रोगियों की चिकित्सा की है । एलोपैथी में देश-विदेश में होने वाली प्रगति से परिचित रहने का मेरा सतत प्रयास रहा है, किन्तु मुझे यह प्रतीत होता था कि पूर्वजन्मके कर्मो से भी बीमारियाँ होती हैं जिन पर कोई दवाई कारगर नहीं होती । श्री सत्यदेव जी ब्रह्मचारी ने जब श्री केशवदेव शास्त्री द्वारा लिखित कर्मज व्याधि निरोध नामक ग्रन्थ के प्रकाशन की अनुमति न्यास के संरक्षक उपराष्ट्रपति महामहिम श्री गोपाल स्वरूप जी पाठक, न्यास के संस्थापक महामंत्री श्री विश्वनाथ दासजी, भूतपूर्व राज्यपाल उत्तर प्रदेश एवं न्यास के कार्यवाहक अध्यक्ष पं० कन्हैयालाल जी मिश्र, अवकाश प्राप्त महाधिवक्ता उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद से प्राप्त करके दी तो कर्मज व्याधि के सम्बन्ध में मुझे अपनी मानसिक उलझन के समाधान का मार्ग दिखलाई पड़ा ।

मै वेद एवं आयुर्वेद का ज्ञाता नही हूं किन्तु ग्रन्थ के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग अत्यन्त निष्ठा एवं संयम से करने पर ही सफलता प्राप्त हो सकती है । इस ग्रन्थ के प्रकाशन की सिफारिश हमारी एकेडेमिक कमेटी के सचिव डा० के० डी० भारद्वाज, नयी दिल्ली ने की थी एवं पण्डित श्री देवदत्त जी शास्त्री इलाहाबाद ने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़कर इसका जो कुशल सम्पादन किया है उससे मेरा विश्वास है कि इस ग्रन्थ की उपादेयता निश्चिय ही बढ़ गयी है । वर्तमान युग में आयुर्वेद के उपाधि प्राप्त अधिकांश नवयुवक विशेषकर आयुर्वेदिक औषधियों का उपयोग करने मे संकोच करते हैं । उनसे मेरी प्रार्थना है कि उन्हें ''क्लेश मूल: कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीय'' एवं ''सति मूले तद्विपाको जात्या आयुर्भोग:''—इन योगदर्शन सूत्रों के आधार पर इस ग्रन्थ पर विश्वास करते हुये संयम और निष्ठा के साथ निर्दिष्ट मन्त्रों तथा औषधियों का प्रयोग करके अपने देश के प्राचीन ज्ञान को पुनर्जीवित करना चाहिये ।

मुझे विश्वास है कि इस जनोपयोगी ग्रन्थ से पाठकगण लाभान्वित होगे ।

डा० कमलादत्त त्रिपाठी
संयुक्त सचिव
भारतीय चतुर्धाम वेदभवन न्यास

गान्धी नगर,
बस्ती (उत्तर प्रदेश)

Shri Satya Deva Brahmachari, Executive Head of the Bhartiya-Chaturdhama-Veda-Bhawan-Nyasa introduced to me Pandit Keshava Deva Shastri on 6-4-1972 asking me to give my opinion on his book 'कर्मज व्याधि ...निदान और उपचार' This was in pursuance of the resolution No. 5 of the resolution sheet of the 22nd November, 1970 which reads as follows:-

"Resolved that a Committee be appointed for the purpose of chalking out plans to publish Vedic and religious literature with Dr. K. D. Bharadwaj as the Convener who has been authorised to Co-opt as many members as necessary."

Pandit Keshava Deva Shastri has read to me some important passages and I have also read through some Chapters of his book.

The work is a sort of exposition in Hindi of the rituals mentioned in the Atharva-Veda, its Brahamanas and other relevant literature, to eradicate ailments (Both physical and mental) which are not cured by physicians through drugs. The ailments of this category are termed KARMAJA, signifying that they have resulted from one' s deeds done previously. There are some other factors also discussed in the book, which cause such ailments. For instance, a revengeful persoris sorcery can produce a disease which is not curable through ingredients in medical prescriptions. The Atharva-Veda has prescribed some rites and ceremonies by performing which one can get rid of all sicknesses incurable by means of medicines.

Pandit Keshava Deva has made researches in the Vedic literature for seventeen years and collected vast material which bears upon liturgical ceremonies some of which, according to him, have been tested and found effective.

The subject matter of the book under review is ancient no doubt, but I has never been delineated in such a copious volume in Hindi. This work is, therefore, very valuable in that it will help the people at large in forming an opinion about the Vedic seers' concern regarding public health and well-being and also in prompting the ailing and miserable persons to derive benefit from ancient wisdom.

I should recommend this work for publication.

It would, however, be revised with a view to improve spellings. etc. before sending it to a press.

K. D. Bharadwaj

Secretary, Academic Committee

Bhartiya Chaturdham Vedabhawan Nyasa

सम्मतियाँ

श्री पं० केशवदेव शास्त्री द्वारा सङ्कलित "अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोध" वैदिक ढंग की अनोखी कृति है। शौनकीय शाखा की इस पद्धति द्वारा अनेक सफलतायें प्राप्त हुई हैं। सन्तान निरोध के कारण, उनकी निवृत्ति का उपाय पुंसवन आदि की विधि के अतिरिक्त अन्य दूसरे प्रयोग यथा—उन्माद-निवारण, प्रेत-बाधा-निवृत्ति, प्रभृति विविध प्रयोग भी वैदिक-परम्परा के अनुसार दिये गये हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन न केवल कर्म-काण्ड की दृष्टि से उपादेय होगा, अपितु अपनी विस्मृत वैदिक कर्म-परम्परा का स्मारक भी होगा। इसके साथ साथ तन्त्र, यन्त्र और पौराणिक पद्धतियों का भी इसमें समावेश होने से सर्व-सधारण जनसमाज का उपकार भी होगा, ऐसी हमारी धारणा है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन, प्रचार और प्रसार से राष्ट्र का सर्वतोन्मुखी कल्याण एवं उपकार होगा। इसमें अनेक विचित्र-विचित्र प्रयोग दिये गये हैं जो अन्वेषण करने पर भी प्राप्त नहीं होते। अतः इसके लेखक और ग्रन्थ के समादर के लिये हमारा आशीर्वाद है।

—*कृष्ण बोधाश्रम*

जगद्‌गुरु शङ्कराचार्य

ज्योतिर्मठ, बदरिकाश्रम

नाना प्रकार की आधि–व्याधियों के प्रतिकारार्थ अनादि, अपौरुषेय, अथर्ववेद में जो उत्तमोत्तम उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं, उनका प्रामाणिक संकलन करके

पं० केशवदेवजी ने अपूर्व कार्य किया है। हम उनकी कृति का अभिनन्दन करते हुए आशीर्वाद देते हैं कि इससे संसार का अधिकाधिक कल्याण हो।

—करपात्री स्वामी

वेद अपौरुषेय, हमारी संस्कृति के प्राणिवर्ग के कल्याण की अमूल्य अप्रतिहत, समर्थ निधि हैं। यह निधि वेदविद् वैज्ञानिकों के द्वारा ही सुलभता से प्राप्य है। ये वैज्ञानिक ही इस निधि के वास्तविक प्रहरी होते हैं। अथर्ववेद शौनकीय शाखा में निहित अपेक्षित वस्तु भण्डार, जो अभी तक राष्ट्र और वैज्ञानिकों द्वारा उपेक्षित रहा, उसको अपने अनुसन्धान तथा बहु प्रयोगों की कठोर परीक्षा—सन्तप्त, सफल विधियों द्वारा संकलित कर, लेखक केशवदेव शास्त्री ने सभी को इस ओर गहन शोध-प्रचार-प्रसार का आह्वान तथा सक्रिय रूप से परिपालन का अवसर दिया है। यह इन "कर्मज व्याधि निरोध" तथा भवव्याधि भैषज्य नामक कृतियों द्वारा राष्ट्र के सन्मुख प्रस्ततु हो रहा है। इसके अनेकों ही प्रयोग हमारे आश्रम में सफल प्रमाणित हुये जो निश्चय ही हर्ष तथा अनुकरणीय विषय है। हमारा लेखक और उनकी कृतियों को आशीर्वाद तथा शुभकामनायें हैं कि प्राणिवर्ग की कर्मज-कायज-व्याधियों के निराकरण में वे पूर्ण समर्थ हों और वैज्ञानिकों को उत्तमोत्तम अवसर इनके द्वारा प्राप्त हो।

—दुर्गाचरण अनुरागी सन्त नागपाल

दुर्गाश्रम, छतरपुर, नयी दिल्ली - ३०

श्री केशवदेव जी शास्त्री से मैं पूर्णतया परिचित हूँ। यह बड़े मेधावी और परिश्रमी व्यक्ति है। बाल्यकाल से ही देश-प्रेम से ओत-प्रोत होकर इन्होंने अपना जीवन देश-सेवा में ही बिताया। ये स्वयं तथा इनका सम्पूर्ण परिवार (श्री सात्विकी शर्मा, श्री हरिप्रसाद, श्रीमती भगवती देवी, हर देवी तथा श्रीमती रामदेवी आदि) ने स्वतंत्रता आन्दोलनों में जेल-यात्रायें की है, तथा अत्यधिक आर्थिक क्षति उठाई है। श्री शास्त्री ने आजादी मिलने के उपरान्त अपना सम्पूर्ण समय वेदों के अध्ययन तथा शोध-कार्य में लगाया है। लगभग २५ वर्ष की निरन्तर साधना के पश्चात इन्होंने एक ऐसे शोध विषय पर प्रकाश डाला है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हुये भी अब तक उपेक्षित ही रहा। प्राणीवर्ग के शरीरोंके सम्बन्ध में विभिन्न देशों में बड़े-बड़े कार्य हुये हैं। आयुर्वेद, यूनानी, ऐलोपैथिक, होम्योपैथिक, प्राकृतिक चिकित्सा आदि पर बड़े-बड़े प्रयोग हुये हैं और इनके बड़े-बड़े चिकित्सालय भी स्थापित हैं; परन्तु प्राणी का जीवन केवल स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं हैं। इसका सम्बन्ध जन्मजन्मान्तरों से जो संस्कार बनते हैं और सूक्ष्म शरीर जिन-जिन योनियों में होकर गुजरता है, उनका भी प्रभाव उसके जीवन पर पड़ता है। सौर मण्डल और विशेषकर गृह मण्डल भी अपना प्रभाव डालते रहते हैं। कभी-कभी प्राणियों को समय और स्थान से भी प्रभावित होना पड़ता है जिसकी उसे प्रत्यक्ष जानकारी नहीं हो पाती। कभी-कभी स्वयं प्राणी पर उसके पूर्वज अथवा उसके आस-पास के रहने वाले मृतप्राणिओं द्वारा अपने जीवन में किये गये अपने कर्मों का भी प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप दैवी प्रकोप या दैवी कृपा का भी पात्र बनना पड़ जाता है। अथर्ववेद में इस विषय पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। अथर्ववेद की चौथी शौनकीय शाखा अर्थात् कौशिकगृह्यसूत्र, वैतानश्रौतसूत्र, गोपथ ब्राह्मण, सायणभाष्य, अथर्व-परिशिष्ट, आंगिरसकल्प, नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प में इसका विवरण है।

आज का युग विज्ञान का युग है और प्रत्येक सिद्धान्त का वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग करने पर ही उसकी याथार्थता सिद्ध होती है। शास्त्री जी ने स्वयं इस विषय में विभिन्न प्रकार के सैंकड़ों ही प्रयोग किये हैं, और उन में सफलता भी प्राप्त की है। इस "अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि-निरोध" ग्रन्थ के द्वारा विद्वानों को तो विचार करने और प्रयोग करने का अवसर मिलेगा ही, साथ ही सर्वसाधारण को भी इससे अधिक लाभ होगा। मेरी हार्दिक शुभकामनायें श्रीशास्त्री जी के इस शोध ग्रंथ के प्रति हैं।

—जगनप्रसाद रावत

अध्यक्ष उ० प्र० पंचायत राज्य समिति लखनऊ

ऋगवेद, सामर्वेद, यजुवेद-इन तीन वेदों का अध्ययन कर के हमारे पूर्वजोंने उसके ऊपर प्रकाश डाला है लेकिन चौथा अर्थववेद अभी अंधेरे में ही था, जोकि मनुष्यों को अत्यन्त उपयोगी हैं इस अर्थव-वेद का श्री केशव देव शास्त्री जी ने बीस साल गहन अध्ययन करके इस का सरल सुलभ हिन्दी में संकलन किया है।

इस लिखकर श्री केशव शास्त्री जी ने सर्व साधारणजनताका अनंत उपकार किया है। मेरा तथा श्री शास्त्री जी का परिचय भी बड़ा अद्भुत ढंग से हुआ है। श्री शास्त्री जी केवल ग्रथ लिखकर यों ही तृप्त नहीं हुये अपितु उन्होंने वेद में लिखे हुये मंत्र-तंत्रों का प्रयोग प्रत्यक्ष करके अनेकों

जीवों को दुःख मुक्त किया हैं, जैसे एक व्यक्ति के दुःख निवारण के कारण श्री शास्त्री जी जहाँ प्रयोग कर रहे थे मैं भी वहा पहूंची, और उनका मेरा परिचय उन व्यक्ति के द्वारा कराया गया जो उनके अपूर्व शोध पूर्ण प्रयोग से हुआ, और मैं भी ये वेद की मंत्र शक्ति, देखकर चकित हो गयीक्योंकी मैं भी बीस साल से योगाभ्यास कर रही हूं और प्रभु कृपा से मुझे सूक्ष्म दृष्टि, प्राप्त हो गयी है, उस दृष्टि से, मैंने देखा तो श्री शास्त्री जी एक देवता तथा मृत आत्मा या और कोई भयानक बाधा को आह्वाहन करके बुला लेते थे, तो उनके सामने वही, प्रत्यक्ष रूप में प्रगट होती थी, और मंत्रो द्वारा श्री शास्त्री जी उसका अपहरण करते थें, तथा मृतात्मा भटकी हुयी, आत्मा को ऊद्धार करते थे, ये सारा साक्षांत् देखा। ये अर्थववेद जनता का कल्याण का ग्रंथ है, आज हमारा सौभाग्य है कि ये महान दुःख की निवृत्तीं करने की अपार संपदा, हमारे हाथ श्री शास्त्री जी के अतीव परीश्रम से आयी हुई है। श्री शास्त्री जी को प्रभू वीर्घायू दे, तथा मनुष्य के कल्याण के लिये उन्हें बल दे, ये निष्काम कर्म योगी श्री शास्त्री जी को शब्द मैं धन्यवाद देना उचित नहीं होगा तथापि यहाँ शब्द की शक्तिफीकी है। इस ग्रंथ की कृती के लिये हमारा आशीर्वाद है। अस्तु

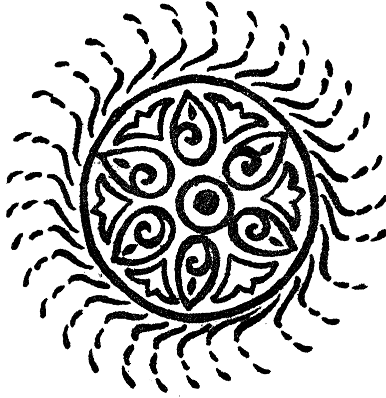
—मालती देवी बाल

बाल वाडा घ० नं० ४७०७

ब्राह्मण भाग

जि० सांगली, पो० मिरज

मुंबई राज्य



अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोध :

विषयानुक्रमणिका

रोग तथा भैषज्य विज्ञान

प्रथम अध्याय

शरीर विज्ञान तथा गर्भाधान समीक्षा

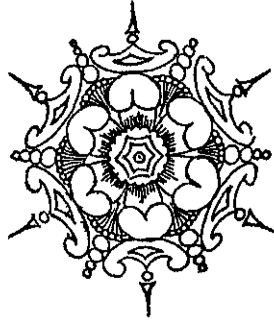
द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

परिशिष्ट



अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोध

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां
मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमोव्योम-
न्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं
राष्ट्रे दधातूत्तमे ।।

—अथर्ववेद १२।१।८

—जो सृष्टि के आरम्भ में समुद्र के भीतर द्रवरूप में थी, मनीषीगण जिसका उपयोग कुशलतापूर्वक करते आए हैं, जिसका हृदयरूप सूर्य आकाश में सदा सत्य नियमों से नियंत्रित उदित है, वह मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्र भारत को तेजोबल से सम्पन्न करे ।

आमुख

"सर्वं वेदे प्रतिष्ठितम्"

इस संसार में ऐहिक, आमुष्मिक, श्रेय और प्रेय जो कुछ भी है, सब वेद में निहित है। श्री अरविन्द ने अपने 'वेदरहस्य' ग्रंथ में लिखा है—'ये रहस्यमय वेद के शब्द हैं, जिन्होंने रहस्यार्थ को अपने अन्दर छिपा रखा है। जो अर्थ, पुरोहित, कर्मकाण्डी, वैयाकरण, पंडित, इतिहासज्ञ तथा गाथा शास्त्री द्वारा उपेक्षित अज्ञात रहा है।'

योगी अरविन्द के इन विचारों को पढ़कर मुझे वेदों के रहस्यार्थ खोजने की प्रेरणा मिली। मैं लोकोपकार को सम्मुख रखकर अथर्ववेद के रहस्यार्थों पर लगातार चिन्तन करता रहा। अन्त में अथर्ववेदीय कर्मज व्याधि निरोध संबंधी रहस्यार्थ का आविर्भाव मेरे हृदय में हुआ। मैंने इस विषय का अध्ययन करने के बाद उस पर प्रयोग किये, जितने प्रयोग मैंने किए हैं, वे सब अव्यर्थ सिद्ध हुए तब मैंने लोकानुग्रहकांक्षा से उन्हें लिपिबद्ध किया।

इसमें सन्देह नहीं कि वेदों के अध्ययन और उनके रहस्यार्थ को समझने में हम लोग लापरवाह रहे हैं। हमारी लापरवाही ने राष्ट्र की दिशा-दृष्टि बदल दी है। हम सही मार्ग छोड़कर इधर उधर भटकने लग गए हैं। हम इतना तो जानते हैं कि साक्षात् कृतधर्मा आद्य ऋषियों ने वेदों का साक्षात्कार किया किन्तु हमने यह नहीं समझने की चेष्टा की कि ऋषियों ने किस प्रकार से वेदमंत्रों का साक्षात्कार किया था। वस्तुतः यह प्रक्रिया वेदाध्ययन से ही प्राप्त होती है। वैदिक ऋषियों के साक्षात्कार के दो साधन 'श्रवण' और 'दर्शन' ऋषियों के पास थे। श्रवण के कारण वैदिक ऋचाएँ 'श्रुति' कहलाती हैं। हमारे परमर्षियों ने आदि गुरु परब्रह्म परमात्मा से वेदमंत्रों का श्रवण किया था। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से कहा जाए तो यह कि—मन्द्रजिह्व परमात्मा से उच्चरित वेद-ध्वनि समस्त ब्रह्माण्ड में प्रतिध्वनित होती रहती है। हमारे ऋषियों ने अपने श्रोतों में दिव्यता भर कर ब्रह्माण्ड में गूंजती हुई वैदिक ऋचाओं को सुना। श्रवण से प्राप्त ये वैदिक ऋचाएँ तभी से श्रुति कही जाने लगीं। ध्यानावस्था में, समाधि अवस्था में बैठे हुए ऋषिगण मन्द्रजिह्व भगवान् को अपने सामने प्रकट कर लेते थे—

तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः

पुरो विप्राः दधिरे मन्द्रजिह्वम्॥— ऋ० ४।५०।१

इस मन्त्र से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि प्राचीन ऋषिगण भगवान् का ध्यान कर उन्हें अपने सामने ले आते थे और भगवान् मन्द्रजिह्वा द्वारा उन्हें वेदमंत्रों का उपदेश देते थे- इसीलिए वेद ईश्वरीय या अपौरुषेय माने जाते हैं—मनुष्यकृत, ऋषिकृत नहीं।

इसी आशय का प्रतिपादन अथर्ववेद 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति (अथर्व० १०।८।३२)

तथा—

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।

वदन्तीर्यत्र गच्छन्ततदाहुर्ब्राह्मणं महत् ।। (अथर्व० १०।८।३३)

आदि ऋचाओं द्वारा करता है। तात्पर्य यह है कि जिसके पूर्व कोई नहीं है, ऐसे अपूर्व परमात्मा के मुख से निःसृत, प्रेरित वैदिक ऋचाएँ यथातथा—जो जैसा है उसे वैसा ही कहती हैं—और इस प्रकार बोलती हुई, गूंजती हुई ये वेद वाणियाँ जहाँ जाकर विलीन हो जाती हैं, उसे महद्ब्रह्म कहते हैं।

इसी को आलंकारिक ढंग से कहते हुए जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (१।४।१।६) कहता है—'ये वैदिक ऋचाएँ द्युलोक तक फैली हुई थीं। 'प्रजापति' ने इन ऋक्पदों को एकत्रित कर; इन की अर्चना की इस लिए ये ऋचाएँ कहलायीं।

अब देखना यह है कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं को सुनने के लिए श्रवण-दिव्यता कैसे प्राप्त की थी। वस्तुतः श्रोत्रों में दिव्यता का आविर्भाव वहिर्वृत्तिजन्य एवं अन्तर्वृत्तिजन्य—इन दो साधनों से होती है। वहिर्वृत्तिजन्य आधार नादब्रह्म की उपासना है। निरन्तर नादब्रह्म की आराधना करते रहने से इन्द्रियों की वासना नष्ट हो जाती है—"सदानादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत् ।" नाद का तात्पर्य अव्यक्त ध्वनि है। वर्णात्मक व्यक्त वाणी से अव्यक्त ध्वनि में महती शक्ति होती है। इस सिद्धान्त का खुलासा हमें अथर्ववेद (१०।७।२१) के उस कथन में मिलता है जो स्तम्भ रूप ब्रह्म की असत् और सत्—इन दो शाखाओं का निरूपण करता है। अथर्ववेद असत् शाखा को परमशाखा मानता है, जिस से 'बृहन्त' नामक देव पैदा होते हैं। (अथर्व० १०।७।२५) और दूसरी सत्शाखा अवरशाखा है। प्रचलित आधुनिक शब्दों में असत् शक्ति (इनर्जी) है और सत् निष्क्रियतत्त्व (मैटर) है। एक गति को सूचित करता है, दूसरा स्थिति को। सारांश यह कि असत् निराकार है, अव्यक्त है, शक्ति है और सत् मैटर है, साकार रूप में व्यक्त है वह रूप वाला है किन्तु निष्क्रिय है।

गोपथ ब्राह्मण कहता है कि यह सर्वश्रेष्ठ वेद तप के प्रभाव से ब्रह्मज्ञानियों के हृदय में प्रकट हुआ—"श्रेष्ठो हि वेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्ञानां हृदये सम्बभूव।" (१।६) इससे यह विरोधाभास नहीं समझना चाहिए कि एक ओर कहा जाता है कि ऋषियों ने ध्यानावस्था में परमात्मा से वेदवाणी का श्रवण किया और दूसरी ओर कहा जाता है कि वेदवाणी तपस्वी ऋषियों के हृदय में प्रकट हुई। वस्तुतः श्रोत्र का संबंध आत्मा से है। प्राण वायु और वाणी का मेल, चक्षु और मन का मेल तथा श्रोत्र और आत्मा का मेल होता है—

प्राणञ्च तद्वाचञ्च विहरति, चक्षुश्च तन्मनश्च विहरति, श्रोत्रञ्च तदात्मानं च विहरति ।

(ऐतरेय ब्राह्मण ६।२४)

इससे स्पष्ट है कि आत्मा का संबंध हृदय से रहता है, इसलिए श्रोत्र का संबंध हृदय से होता है।

श्रोत्रं हृदये श्रितम् (तै० ३।१०।८।६)

श्रोत्रेन्द्रिय में एकाग्रता लाकर ऋषियों ने अनवरत दिव्यता प्राप्त की थी। श्रोत्रेन्द्रिय को एकाग्र करने की विधि यह है कि ध्वनि तरगें ज्यों-ज्यों आकाश में दूर होती जाती है, त्यों-त्यों वह मन्द्र, मन्द्रता रूप धारण करती है। धीमी, मन्द होती हुई ध्वनि को देर तक सुनने से मन एकाग्र और केन्द्रित होता जाता है तथा श्रोत्र की प्रसुप्त शक्ति उत्तेजित और जाग्रत होने लगती है। श्रोत्र में मन जब एकाग्र हो जाता है तो अपादान क्रिया निर्बाध गति से प्रारंभ होती है। अपादान क्रिया जब सुचारुरूप से क्रिया-शील होती है तो श्रोत्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म मल विनष्ट हो जाते हैं, श्रोत्र का आवरण नष्ट हो जाता है, जिससे एकाग्रता और संयम

०००

की सिद्धि होती है। श्रोत्र और आकाश के संबंध में जब एकाग्रता और संयम आ जाता है तब उससे दिव्य श्रोत्र की उत्पत्ति होती है—

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद् दिव्य श्रोत्रम्

—योगदर्शन, विभूतिपाद

ऋषियों द्वारा साक्षात्कार की गई वैदिक ऋचाओं का अध्ययन हमें ज्ञानपूर्वक अर्थपूर्वक करने का निर्देश निरुक्ताचार्य यास्क ने दिया है—केवल कण्ठस्थ कर लेने में ही इतिश्री नहीं समझनी चाहिए—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञः सकलं भद्रमश्नुते।
नाकमेति ज्ञान विधूतपाप्मा॥

बिना अर्थज्ञान के, बिना रहस्य बोध किए केवल कंठस्थ वेद बोझा बने रहते हैं, इसलिए आचार्य यास्क उपदेश देते हैं कि वेद का अध्ययन गुरुमुख से किया जाए और साङ्गोपाङ्ग अर्थ तथा रहस्य-बोध सहित किया जाए—

विद्या ह वै ब्राह्मण माजगाम।
गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि॥
असूयकायानृजवेऽयनाय।
न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम॥

—विद्या ब्राह्मण के पास आकर बोली—हे गुरो, मेरी रक्षा करो?
मेरी रक्षा तभी हो सकती है, मैं पराक्रम वाली, तेजस्विनी तभी हो सकती हूँ,
जब तुम वेदनिधि की रक्षा करने वाले शिष्यों को वेदाध्ययन कराओ।
उन्हीं शिष्यों को वेदाध्ययन कराओ जो ब्रह्मचर्य युक्त हों, सरल स्वभाव हों,
संयमी हों, निन्दक न हों, द्रोही न हों।

इसका तात्पर्य यह निकलता है, कि वेदाध्ययन किया जाए। अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन हो। अध्ययन अर्थबोध, रहस्य बोध के पश्चात् चरण और आचरण सर्वथा अपरिहार्य हो, भावशुद्धि हो, अध्ययन साङ्गोपाङ्ग हो और अधिकारी गुरु शिष्य-परंपरा हो। वस्तुतः वेद, यज्ञ, तप, आराधना नियम, संयम तभी सफल होते हैं जब भावशुद्धि होती है—

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च
नियमाश्च तपांसि च
न विप्रदुष्ट भावस्य
सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्। (मनुस्मृति)

मेरा सौभाग्य है, कि मैंने अपने छात्र जीवन में वेदज्ञ, वेदनिष्णात गुरु से ब्रह्मचर्य, संयम, तपपूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन किया, अर्थबोध प्राप्त किया और फिर निःस्पृह-जीवन बिताते हुए राष्ट्र की स्वाधीनता और वेदों के रहस्यानुसन्धान में जीवन के चालीस बर्ष लगाए। मैं भाव शुद्ध होकर यही चिन्तन कर रहा था कि यह समाज ब्राह्मणों के आधीन है, ब्राह्मण राष्ट्र के पुरोहित हैं। स्वराज, स्वराष्ट्र, स्वधर्म के लिए ब्राह्मण को जगना चाहिए और जगकर जनता को जगाना चाहिए।

राष्ट्रे वयं जागृयामः पुरोहिताः स्वाहा

—अथर्ववेद

◇◇◇

तब मुझे वाणी मिली, स्वराज आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने और 'अथर्ववेदीय कर्मज व्याधि निरोध' पर रहस्य बोध लिखने की स्वराज्य प्राप्ति की साधना अग्रणी राष्ट्रनायकों के सतत प्रयास से पूरी हुई। देश स्वाधीन हुआ। स्वाधीनता मिलने के बाद स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री तथा उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मंत्री माननीय श्री जगनप्रसाद रावत की प्रेरणा और आशीर्वाद से मैने अथर्ववेद के मंत्रों का जो रहस्यानुसन्धान किया था उसे अथर्ववेदीय कर्मज व्याधि निरोध के रूप में लिखना शुरू किया। ग्रंथ का रूप ग्रहण कर लेने के बाद इसके प्रकाशन की समस्या सामने आयी। वर्षों का प्रयास सफल कराने में सार्थक हुई माननीय श्रीउमाशङ्कर दीक्षित, स्वास्थ्य मन्त्री, भारत सरकार, जनगण मन अधिनायक भारत के उपराष्ट्रपति पं० श्री गोपालस्वरूप पाठक की नीर-क्षीर विवेकिनी बुद्धि और उनकी कृपा। और सम्बल, साधन प्राप्त हुआ वर्तमान भारत में वेदाध्ययन के प्रचारक, प्रतिष्ठापक, वेदभवन न्यास के महासचिव तपोमूर्ति, वर्चस्वी ब्रह्मचारी श्री सत्यदेव जी महाराज के अनुग्रह और वैदिक आस्था का, जिन्होंने प्रकाशन का भार स्वीकार किया।

इस स्थल पर मैं श्री राधावल्लभ चरण चञ्चरीक श्री हितशरणजी शर्मा के अहैतुक स्नेह, श्रम, सुझाव का विस्मरण नहीं कर सकता। ग्रंथ को आकार देने, उसके मुद्रण में सर्वात्मक योग देने में उन्होंने अपनी श्रद्धा और आस्थाका जो परिचय दिया है, वह अभिवन्द्य है।

इस ग्रंथ में पूर्वपीठिका के अन्तर्गत ग्रंथ के विषय वस्तु का संक्षिप्त विवेचन किया गया है, उसे पढ़ लेने के बाद जिज्ञासुओं और पाठकों को कर्मज व्याधि निरोध विषय, उसके प्रयोग अनुष्ठान आसानी से समझ में आ सकेंगे।

अन्त में मैं ऋग्वेद की निम्नांकित ऋचा से भारतीय जनगण से प्रार्थना करता हूं—

यो जागार तमृचः कामयन्ते।
यो जागार तमु सामानि यान्ति॥
यो जागार तमयं सोम आह।
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥

—तुम जागोगे तो ऋग्वेद तुम्हें चाहेंगे।
तुम्हारे पास आएँगे, अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट करेंगे।
तुम जागोगे तो यजुर्वेद, सामवेद अथर्ववेद तुम्हारे मित्र होंगे,
तुम्हारा साथ देंगे। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व ने जिसका साथ दिया,
फिर संसार में उसके लिए अप्राप्य, अलभ्य, दुर्लभ कोई वस्तु नहीं है।

लोहई
(मथुरा)

वशंवद
केशवदेव शास्त्री

०००

प्रस्तुति

वैदेह जनक के बहुदक्षिण-यज्ञ के अवसर पर कुरु-पाञ्चाल देश के ब्रह्मविद्, वेदविद् ब्राह्मणों की सभा में विदग्ध शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया—

कति देवा याज्ञवल्क्य इति

ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य ने क्रमशः ३००३,३३,६,२,१½ देवों का निरूपण करते हुए अन्ततोगत्वा सर्वमूलक एक देवस्वरूप का विवरण ब्रह्मसमाज में प्रस्तुत किया।

कतम एकोदेव इति। प्राण इति। स ब्रह्म तदित्याचक्षते।

—बृ० उ०

—वह एक देव कौन है। वह प्राण है। उसे ही ब्रह्म कहा जाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा एक देव (प्राण) का जो सिद्धान्त स्थिर किया गया, उसी को आगे चलकर अनेक ऋषियों, महर्षियों ने विभिन्न स्थलों पर प्रतिपादित किया है। चारों वेदों, समस्त उपनिषदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, संहिग्रन्थों में प्राण की महिमा का स्तवन किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण कहता है, प्राण ही सब देवों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। प्राण के स्थित रहने पर अन्य सब देव इस ब्रह्मपुरी (शरीर) में निवास करते है। प्राण ही इस शरीर रूपी नौका का प्रतिष्ठान है—

प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः—

—शतपथ ब्रा० ४।४।१।१५

अथर्ववेद के प्राण सूक्त (११।५) में विविध प्रकार से प्राण की महिमा का यशोगान किया गया है। अथर्ववेद (७।५३) में प्राण और अपान को देवताओं का वैद्य अश्विनीकुमार कहा गया है और उनसे प्रार्थना की गई है कि अश्विनी कुमारो! मृत्यु से हम को दूर करो। तुम देवों के भिषक् हो।

हे प्राण और अपान, तुम इस शरीर को मत छोड़ो। तुम दोनों सयुज (संयुक्त सखा) बन कर यहीं बसो, जिससे यह मनुष्य शतायु होवे।

अथर्ववेद के इन आधारभूत सिद्धान्तों और मनुष्य के शतायु होने की विधियों का विधिवत् अध्ययन अनुशीलन कर वेदवेदाङ्ग निष्णात आचार्य केशवदेव शास्त्री ने 'अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोध' ग्रन्थ का प्रणयन किया है। अथर्ववेद से ज्ञात है कि प्राचीन ऋषिगण सोम्य, मधु तथा दुग्ध-पान करके ब्रह्मवर्चस् तथा अमृतत्व की प्राप्ति करते थे। वे प्राण-विद्या की सतत उपासना में रत रहते थे। सनातन योगविद्या का ही दूसरा नाम प्राणविद्या है। प्राण के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करना ही योग सम्प्राप्ति है। प्राणायाम के द्वारा आरोग्यता-सम्पादन, दीर्घायुष्य प्राप्त करने की विधि को अथर्ववेद दैवी चिकित्सा कहता है। प्राण और अपान इन दो अश्विनीकुमारों को भली भांति रोक रखने से पुनः सुस्वस्थ, दीर्घ जीवन, पुनर्यौवन प्राप्त किया जा सकता है। प्राणायाम से शरीरस्थ रस पुनः यविष्ठ बनते हैं। प्राणविद्या का रहस्य-बोध करने के पश्चात् ऋषियों ने योगविद्या का आविष्कार किया जो अमृतत्व प्रदान करती है।

मनीषी लेखक श्री केशवदेव जी शास्त्री ने 'अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि निरोध' लिखकर उन सब भ्रान्तियों को निरस्त कर दिया है जो पाश्चात्य पादरियों तथा उनके पिछलग्गू भारतीयों द्वारा अथर्ववेद के संबंध में अप्रामाणिक, अनर्गल विचार द्वारा पैदा हुई थीं। भारतीय विद्या भवन, बंबई से प्रकाशित "वैदिक एज्" नाम की जो पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसमें वेदों के संबंध में बहुत ही भ्रान्ति-धारणाएँ समाविष्ट हैं। अथर्ववेद पर तो उसमें इतना प्रहार किया गया है कि पढ़ते ही जी तिलमिला उठता है। "वैदिक एज्" में अथर्ववेद को जादू, टोना, टोटका का संग्रह बताया गया है। जब कि अथर्ववेद में ब्रह्मविद्या, योगविद्या, भैषज्य विद्या, प्राण विद्या के अनेकानेक सूक्त है। ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करने से अथर्ववेद का दूसरा नाम 'ब्रह्मवेद' भी है। गोपथ ब्राह्मण (२।१६) में लिखा है—

चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः।

यही नहीं अथर्ववेद स्वयं अपने को ब्रह्मवेद घोषित करता है—

तमृचः सामानियजूंषि ब्रह्म चानुचलन्।

—अथर्व० १५।६।८

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक
एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्यदेव
नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्॥

—अथर्व० २।२।१

इसके अतिरिक्त वरुणसूक्त (४।१), अथर्व० (५।११) अथर्व (१०।२), केन सूक्त (१०।७) स्कम्भसूक्त (१०।८), ब्रह्मसूक्त (११।७) और उच्छिष्ट आदि सूक्तों में ब्रह्मविद्या का प्रशस्त प्रतिपादन हुआ है।

अथर्ववेद में ऋग्वेद, यजुर्वेद के समान जो ऋचाएँ हैं, उनके अतिरिक्त इस वेद में अनेकविध ऐसी क्रियाएँ हैं जो लाभकारक भेषज हैं। ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या और योग विद्या से संबंध रखने वाले अधिसंख्यक सूक्त अथर्ववेद में है। अथर्ववेद यह नाम ही चित्तवृत्तियों के निरोध एवं स्थितप्रज्ञता का अर्थ रखता है और इन विषयों का विशद वर्णन इस वेद में मिलता है। 'अथर्वा' शब्द का निर्वचन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि—**थर्वतिश्चरतिकर्मातत्प्रतिषेधः** अर्थात् चंचलता—चित्त-वृत्तियों का निरोध एवं स्थितप्रज्ञता की अवस्था और उसके साधनों का प्रतिपादक वेद—अथर्ववेद है।

इस वेद में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी प्रकार की कर्मज व्याधियों, आधियों के निवारण संबंधी सूक्त हैं। यही कारण है कि अथर्ववेद के लिए अथर्ववेद में **भेषजा** का प्रयोग हुआ है—

ऋचः सामानि भेषजा यजूंषि

—११।६।१४

गोपथपूर्वार्द्ध (३।४) में **योऽथर्वारणस्तद् भेषजं तदमृतं यदमृतं तद्ब्रह्म** उल्लिखित अनुवाक् यह प्रमाणित करता है कि अथर्ववेद में सभी प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक रोगों की निवृत्ति के उपायों का प्रतिपादन है। ताण्ड्यब्राह्मण (१२।६।१०) भी यही कहता है कि अथर्ववेद के सूक्त आधि-व्याधि के निवारण से संबंध रखते हैं—**भेषजं वा आथर्वणानि**। ताण्ड्यब्राह्मण (१६।१०।१०) यह भी कहता है कि अथर्वाऋषि द्वारा दृष्ट अथर्ववेद के मंत्र देवों के लिए भेषज-प्रतिपादक हैं, जिनसे आरोग्य की प्राप्ति होती है—

भेषजं वै देवानामथर्वाणः भैषज्यायै वारिष्ट्यै

○ ○ ○

भैषज प्रधान होने से अथर्ववेद आयुर्वेद का उद्गम स्थल माना जाता है—

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य

(सुश्रुत सूत्रस्थान, अ० १०)

अथर्ववेद में पदार्थविज्ञान, मनोविज्ञान, अक्षरविज्ञान, कर्मजव्याधिविज्ञान, आयुर्विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान के विषय और उनके प्रयोग आधियों, व्याधियों को दूर करने के लिए विशद रूप से लिखित हैं। आयुर्वेद विषयक नौ सूक्त, विविध औषधिभैषज्य आदि विषयक २५ सूक्त, रोगादिनिवारण विषयक ३२ सूक्त, विषनाशन विषयक जिनमें विष, विषदूषण निवारण संबंधी सभी प्रकार के प्रयोग हैं, ७ सूक्त है। जितने प्रकार के कृमि, कीटाणु हैं और शरीर में प्रविष्ट होकर अनेक प्रकार की व्याधियां उत्पन्न करते है, उनको दूर करने के विविध उपाय ३ सूक्तों में हैं। असुर-प्रभाव, कृत्यादूषण, पिशाच-प्रभाव, दस्युपीड़ा, ईर्ष्या, अलक्ष्मी आदि नाना प्रकार के जो अरिष्ट होते हैं, उन सब को दूर करने के प्रयोग और उपाय १२ सूक्तों में बताए गए हैं।

अथर्ववेद में उल्लिखित मंत्र विद्या का यदि वर्गीकरण किया जाए तो वह पाँच प्रकार की होती है—

१. संकल्प, आवेश

२. अभिमर्श और मार्जन

३. आदेश

४. मणिबन्धन

५. कृत्या और अभिचार

१. दुःस्वप्न-दुरित, पाप और दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए सकल्प अथवा आवेश मंत्रों का प्रयोग किया जाता है। इसका मंत्र है—

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः॥

—६।४५।१

यह मंत्र दुःस्वप्न नाशन सूक्त का पहला मंत्र है, इस सूक्त में ३ मंत्र हैं।

कायिक, वाचिक, मानसिक, पापजन्य व्याधियों को दूर करने के लिए रोगी के शिर पर हाथ रखकर उपर्युक्त मंत्र अथवा सूक्त के तीनों मंत्रों को पढ़ते हुए निर्विकार होने का संकल्प करने मात्र से रोगी व्याधि-मुक्त हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति निरन्तर श्रम, साधना करने के बावजूद अपने कार्य व्यापार में सफलता नहीं प्राप्त करता है अथवा धूर्तों, दुष्टों द्वारा बना-बनाया काम बिगाड़ दिया जाता है तो सफलता प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद (६।४५।१) के निम्नांकित मत्र से सकल्प कर कार्य करने से निश्चय ही सफलता प्राप्त होती है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।

सकल्प शक्ति द्वारा, शक्ति संपात् द्वारा विविध प्रकार के रोगों का निवारण अथर्ववेद के एक मंत्र से ही संभव है—

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम पुरश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः॥

—२०।९६।२४

इस मंत्र का संकल्पपूर्वक जप करने मात्र से सब प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं।

जो व्यक्ति कायर, कुटिल, कामी, कमज़ोर हो उसे वर्चस्वी, तेजस्वी बनाने के लिए अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के २२वें सूक्त के छह मंत्रों का जप करना चाहिए।

२. अभिमर्श का तात्पर्य शरीर को स्पर्श करना है। अभिमर्श करने से शरीर के और मन के अनेक रोग दूर हो जाते हैं। अभिमर्श विद्या के मूल मंत्र ये हैं—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥
हस्ताभ्यां दश शाखाभ्यां जिह्वा वाचा पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभिमृशामसि ॥

—४।१३।६-७

दोनों हाथों और दशों अंगुलियों से रोगी के सर्वांश शरीर को स्पर्श करते हुए यह मंत्र जब पढ़ा जाता है तो रोगी के शरीर के अन्दर सनसनाहट होती है, रोमांच होता है। कम्पन होने लगता है और वह फिर ठीक हो जाता है।

हस्ताभिमर्श द्वारा शारीरिक मानसिक रोग दूर करने की और भी विधियाँ हैं। जैसे—पुरश्चरण करना, चँवरी गाय की पूँछ से, मोर पंख से झाड़ना, जल से छींटे देना।

३. मानसिक विकार और मस्तिष्क विकार दूर करने के लिए आदेश-मंत्रों का प्रयोग किया जाता है। आदेश को संवशीकरण भी कहा जाता है। मंत्रों की भावना के द्वारा विकार दूर करने की प्रक्रिया है।

मंत्र—

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् आवर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥

जो चंचल वृत्ति के व्यक्ति होते हैं, एक काम को छोड़कर दूसरा, तीसरा काम करने लगते हैं, अथवा काम करने में मन नहीं लगाते हैं, लापरवाही करते हैं। बिना सोचे-समझे हानिकारक काम कर बैठते हैं, किसी का कहना नहीं मानते हैं, उद्दण्ड, लापरवाह, दुर्विनीत, असमीक्ष्यकारी, उन्मत्त, पागल व्यक्तियों पर इस मंत्र का प्रयोग करने से तुरन्त लाभ होता है। यह संवशीकरण है। आदेश का मंत्र यह है—

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मानि एत ॥

—३।८।६

रोगी को सम्बोधन करते हुए प्रयोक्ता यह मंत्र पढ़ते हुए उसे आदेश दे। मंत्र का भाव है—मैं तुम्हारे मन और चित्त को अपने मन और चित्त के साथ मिलाता हूँ। तुम्हारे हृदय को मैं अपने वश में कर लेता हूँ, जिससे तुम मेरे अनुयायी, आज्ञाकारी बन कर रहो।

इस प्रकार मंत्र द्वारा आदेश देते हुए प्रयोक्ता उन्मादी (पागल) उद्दण्ड, डाकू, चोर, अनाचारी, घातक, चिन्तातुर, आलसी, ईर्ष्यालु को जब अपना अनुगत बना ले तब निम्नांकित मंत्र का प्रयोग उस पर करें—

अग्निष्टे निशमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥

—६।१११।२

◇ ◇ ◇

इसकी प्रयोग विधि यह है—

आम की लकडी में अग्नि प्रज्वलित कर कर्पूर, चन्दन और तुलसी के बीज से उपर्युक्त मंत्र पढ़ते हुए १०८ आहुति दें। रोगी को सामने बैठा लिया जाय और हवन के बाद हवन के धुएं से उसका अभिमर्शन करें तो वह नीरोग हो जाता है।

आदेश विद्या के अनेकानेक मंत्र अथर्ववेद में हैं। जीर्णज्वर, एकान्तरा, तिजारी, चौथिया आदि ज्वर तथा राजयक्ष्मा, स्नोफीलिया, स्नायुदौर्बल्य, लकवा, हृदयरोग आदि दूर करने के लिए अथर्ववेद (५।३०।८-९) मंत्रों का विधिवत् प्रयोग करे और उन्नतशील जीवन, यशस्वी जीवन, पदोन्नति के लिए अथर्ववेद के ८।१।६ मंत्रादेश का प्रयोग करना चाहिए।

४. मणिबन्धन का प्रयोग युद्धादि विषयों मे विजय प्राप्त करने तथा रोगादि के निवारण करने में किया जाता है। मणि का तात्पर्य शिलाजन्य मणियों पुष्परागमणि, सूर्यकान्त मणि, चन्द्रकान्तमणि तथा वनस्पतियों से है। अथर्ववेद (४।९) में अञ्जनमणि, (४।१०) में शंखमणि, (१।२९) में अभीवर्तमणि, (८।५) में प्रतिसरमणि, (१०।३) में वरणमणि, (२।४ तथा १९) में और (३४-३५) में जङ्गिडमणि, (३।५) में पर्णमणि, (१९।३६) में शतवारमणि, (२।११ और ८।५) में स्राक्त्यमणि और (१९।३१) में औदुम्बरमणि का वर्णन मिलता है।

इनमें शंखमणि सीपी से उत्पन्न मोती—मुक्तामणि है और जङ्गिडमणि वनस्पति है—अर्जुनवृक्ष। मुक्तामणि मानसिक रोगों और जलीय तत्त्व विकारों को दूर करता है और जङ्गिडमणि विषदोष, वायु, कफजन्यविकार, स्नायुदौर्बल्य, ज्वर, हृदय रोग नेत्रविकार आदि दूर करता है।

५. कृत्या दूषण और अभिचार कर्म के प्रभाव को दूर करने के लिए अथर्ववेद (१०।१।१-३२) के ३२ मंत्रों द्वारा हवन अनुष्ठान किया जाता है। कृत्या परिहरण के लिए अथर्ववेद के ५।१४ सूक्त के १३ मंत्रों का प्रयोग किया जाता है। कृत्या और अभिचारकर्म का परिगणन अरिष्ट में किया जाता है।

इनके अतिरिक्त अथर्ववेद में राज्यशासन, विजयसाधन, राजराष्ट्रशासन, सग्राम, शत्रुनाशन, सुख-सम्पत्प्राप्ति, पशु-संरक्षण, वैश्य व्यवसाय, अधिदैवत प्रकरण, गृहस्थ प्रकरण, ब्रह्मचर्य प्रकरण, वानप्रस्थ संन्यास प्रकरण और अध्यात्मप्रकरण हैं।

विद्वद्वर श्री केशव शास्त्री ने अपने ग्रंथ अथर्ववेदीय कर्मज व्याधिनिरोध में मनुष्यों की आधियों, व्याधियों के शमन के प्रयोग, राष्ट्र, राज्य के संरक्षण के उपाय, पशु, व्यवसाय के संवर्द्धन के प्रयोग लिखकर बहुत बडा उपकार किया है। उनका यह आर्ष पुरुषार्थ है, उन्होंने जीवन में प्राय:अनेक अथर्ववेदीय प्रयोगों का स्वयं अनुभव किया है।

ऐसे ऋषिकल्प मनीषी द्वारा लिखित ग्रंथ का संपादन-कार्य मेरे लिए पुष्पकीटन्याय की तरह है अथवा कालिदास के शब्दों में

तितीर्षु दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् है

निश्चय ही यह ग्रंथ राष्ट्र की अक्षयनिधि बनकर भारतीय संस्कृति, वैदिक सम्पत्ति और भारतीय वाङ्मय को गौरवान्वित करेगा।

शमिति।

८४, नया बैरहना
प्रयाग

देवदत्त शास्त्री
(संपादक)

० ० ०

विषय-प्रवेश

मानव-शरीर

वेदों और उपनिषदों में मानव-शरीर को **ब्रह्मपुरी** कहा गया है। इस पुरी में निवास करने के कारण ही ब्रह्म को **पुरुष** कहा जाता है—

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा ३:
सर्वाः दिशः पुरुष आ बभूवा ३।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥

—अथर्व० १०।२।२८

अनन्त ब्रह्माण्ड, सारा विश्व ब्रह्म की रचना है। विश्वक्षर ब्रह्म है, पुरुष अक्षर ब्रह्म है। अक्षर-ब्रह्म से क्षर ब्रह्म की उत्पत्ति हुई है। समस्त लोकों की रचना कर ब्रह्म स्वयं उनमें प्रविष्ट हो रहा है। ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यह पुरी (मानव देह) चारों ओर अमृत से ढकी हुई है और इस का आधार अमृत है—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥

—अथर्व० १०।२।२९।३०

चारों ओर अमृत से ढकी हुई इस पुरी को केवल ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। क्षेत्रज्ञ कहे जाने वाले ब्रह्मवेत्ता लोग इस शरीर-रूपी क्षेत्र को और इसके भीतर रहने वाले क्षेत्रज्ञ पुरुष को समाधि द्वारा जान पाते है।

श्रीमद्भगवद्गीता एवं अध्यात्मा विद्या प्रतिपादक ग्रंथों में शरीर को क्षेत्र कहा गया है और जो तत्वज्ञानी इस क्षेत्र को जानते हैं उन्हें क्षेत्रज्ञ कहा गया है।

अथर्ववेद का उपदेश है कि अपने क्षेत्र में नीरोग बन कर रहो। यह क्षेत्र (शरीर) किसी प्रकार की दैहिक या आध्यात्मिक व्याधि से क्लिष्ट न हो। दैहिक, दैविक भौतिक त्रयताप ही **अमीव** (व्याधियां) है, जिनसे क्षेत्रज्ञ (प्राणी) संतप्त रहते हैं—

स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज

—अथर्व ११।१।२२

शरीर को आरोग्य रखने के लिए, जरा, व्यधि से मुक्त रखने के लिए भारतीय वैदिक चिकित्सा पद्धति तीन प्रकार की है—

१. आसुरी चिकित्सा- शल्यक्रिया—चीर-फाड़, आप्रेशन
२. मानुषी चिकित्सा- काष्ठादि औषधियों द्वारा
३. दैवी चिकित्सा- प्राणायाम, योग, हवन, जप, अनुष्ठान द्वारा

आसुरी चिकित्सा विधि के द्वारा यौवन की प्राप्ति (Rejuvenation) अच्छी नहीं मानी गई है। इस आसुरी चिकित्सा को आजकल शल्य-क्रिया (Gland-therapy) कहा जाता है।

काष्ठ औषधियों के सेवन से शरीरस्थ रसों की जीर्णता दूर होती है, उनमें नवशक्ति का संचार होता है और स्थायी प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह पद्धति उत्तम मानी गई है। क्योंकि इस चिकित्सा-पद्धति से शरीर ही नहीं शुद्ध होता है, बल्कि रोगी के मन का भी संस्कार होता है। मन जब सुसंस्कृत और शक्तिशाली बनता है तभी शरीर के स्वास्थ्य और रसों की पवित्रता उत्पन्न होती है।

क्रोध, चिन्ता, भय, शंका आदि मानसिक विकारों से शरीर में चालीस प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं। उन विषों को दूर करके शरीर की नसों-नाड़ियों को विशुद्ध, विषरहित बनाना दैवी चिकित्सा—योग, यज्ञ, जप, अनुष्ठान-विधि का काम है। नाड़ियों को निर्विष और शुद्ध बनाने के लिए आसन और प्राणायाम गुणकारी उपाय बताए गए हैं। इसीलिए इसे प्राणविद्या तथा दैवी चिकित्सा प्रणाली कहा गया है। क्योंकि मरने वाले शरीर को अमर बनाने वाले प्राण ही हैं।

वेदों में अश्विद्वय (अश्विनी कुमार) को दैवभिषक्—देवताओं का वैद्य कहा गया है—

प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्
देवानामग्रे भिषजा शचीभिः

—अथर्व० ७।५३।१

—हे दैवभिषक् अश्विनीकुमारो ! अपनी शक्ति द्वारा हमें मृत्यु से रक्षित रखो ?

ये दो दैवभिषक् कौन है ? इनका परिचय देते हुए अथर्ववेद कहता है—

संक्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वशिष्ठः ॥

—अथर्व० ७।५३।२

—हे प्राण और अपान तुम इस शरीर में बराबर संचरण करते रहो। शरीर को छोड़कर मत जाओ। तुम दोनों सयुजौ (जोड़ीदार) बनकर संयुक्त सखा की तरह रहो। हे मनुष्यो, तुम निरन्तरवर्धिष्णु होते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहो। वसिष्ठ अग्नि तुम्हारा रक्षक है।

उपर्युक्त मंत्र में अथर्ववेद के प्राण और अपान को ही अश्विद्वय माना है। ये दोनों जोड़ीदार सदा साथ रहते हैं।

पुराणों और ब्राह्मण-ग्रंथों में एक कथा है। च्यवन ऋषि की जवानी से संबंधित। कथा लंबी है। उसका सारांश यह है कि वृद्ध च्यवन ऋषि ने अश्विनीकुमारों से प्रार्थना की कि वह अपने उपचार से उन्हें जवान बना दें। अश्विनीकुमारों ने च्यवन ऋषि के सामने यह शर्त रखी कि 'तुम हमें यज्ञ में सोम-पान कराओ तो हम तुम्हें यौवन दे सकते हैं। अश्विनीकुमार प्राण और अपान है—यह बताया जा चुका है। सोम क्या है, जिसे पीने की शर्त अश्विनीकुमारों ने च्यवन के सामने रखी और च्यवन का तात्पर्य क्या है ?

शरीर के अन्दर जो प्राणशक्ति रहती है उसी का प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ता है। प्राणोत्पादिनी जीवनी शक्ति ही सब कुछ है। यह शक्ति बचपन और जवानी में वर्धिष्णु रहती है और बुढ़ापे

मे क्षयिष्णु रहती है। इस शक्ति के क्षीण होने पर मृत्यु घेरती है। वृद्धावस्था की क्षीणता का प्रभाव शरीरगत धातु, रस, स्नायु मज्जा, सभी पर पड़ता है। सब क्षीण होने लगती हैं। इसी क्षयशील स्थिति का नाम च्यवन है। च्यवन स्थिति आने पर शरीर छीजने लगता है। व्याधि, जरा, मृत्यु आदि सब च्यवन के विभिन्न रूप हैं।

और शरीर के अन्दर जो वीर्य, रेत, रस है—उस का नाम सोमरस है। यह सोमरस शरीर के अन्दर सुषुम्णाजाल या मेरुदण्ड रूप वानस्पत्ययूप रहता है उसी में भरा रहता है। यही सोमरस मस्तिष्क में भी भरा रहता है जो अधोभाग स्थित सुषुम्णा नाड़ी की शाखाओं, प्रशाखाओं को सींचता है। इस सोमरस से ही मस्तिष्क चेतनाशील बना रहता है। मस्तिष्क को सींचता हुआ यह सोमरस उसे विशुद्ध, विवेकी और शक्तिशाली बनाता है। यह सोमरस वीर्य के रूप में शरीर में संचित होता है। जब मनुष्य सयम नहीं बरतता तो यह शरीर से बाहर निकल कर नष्ट हो जाता है। जब तक प्राण और अपान रूप अश्विद्वय इस सोम को पीते रहते है तब तक शरीर बूढ़ा नही होता है।

इसी आशय से अथर्ववेद का एक द्रष्टा ऋषि प्रार्थना करता है—

प्राणापान इसके शरीर में प्रविष्ट होते रहें—जैसे गोष्ठ में दो वृषभ रहते हैं। स्तोता की यह आयु-रूप निधि अरिष्ट (अक्षय) रूप में बढ़ती रहे।

प्रविशतं प्राणापानावनमड्वाहाविव व्रजम्।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इहवर्द्धताम्॥

अथर्व० ७।५।३।५

और फिर यह सतत कामना की गई—

मेरे शरीर में प्राण, आत्मा, चक्षु और जीवन की पुनः प्रतिष्ठा हो। शरीररक्षक तनूपा अग्नि अधृष्य रहकर सब दुरितों को हटाता रहे। वर्चस्, प्राण, रस और तनु के साथ हमारा मेल रहे। हमारे शरीर में जो जीर्णता का अंश विरिष्ट हो, उसे त्वष्टा या शरीर के निर्माता प्राण धो डालें।

हमारे शरीर के भीतर और बाहर अपरिमेय दिव्य भूमा का अमृतसागर भरा हुआ है। विराट् शक्तियों का निवास हमारे शरीर में है। यह शरीर देवताओं की नगरी अयोध्या है—देवानां पूरयोध्या इसलिए इसे आधि-व्याधि से सर्वथा मुक्त रखने के लिए, अल्पता, जड़ता और मृत्यु से दूर रहने के लिए यह शिव-संकल्प करना चाहिए—

शिव-संकल्प

अग्निर्मे वाचि श्रितः। वाग्घृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ १॥
वायुर्मे प्राणे श्रितः। प्राणो हृदये। हृदयं मयि। अहममृते अमृतं ब्रह्मणि॥ २॥
सूर्योमे चक्षुसि श्रितः। चक्षुर्हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ ३॥
चन्द्रमा मे मनसि श्रितः। मनोहृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ ४॥
दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः। श्रोत्रँ हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ ५॥
आपो मे रेतसिश्रिताः। रेतः हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ ६॥
पृथिवी मे शरीरे श्रिता। शरीरँ हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ ७॥
ओषधि वनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः। लोमानि हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ ८॥
इन्द्रो मे बले श्रितः। बलँ हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि॥ ९॥
पर्जन्यो मे मूर्ध्नि श्रितः। मूर्धा हृदये। हृदयं मयि। अहममृते अमृतं ब्रह्मणि॥ १०॥

ईशानो मे मन्यौ श्रितः । मन्युर्हृदये । हृदयं मयि । अहममृते । अमृतं ब्रह्मणि ॥ ११ ॥
आत्मा मे आत्मनिश्रितः । आत्मा हृदये । हृदयं मयि । अहममृते । अमृतं ब्रह्मणि ॥ १२ ॥
पुन र्म आत्मा पुनरायुरागात् पुनः प्राणः पुनराकूतमागात् । वैश्वानरो रश्मिभिर्वावृधानः अन्तस्तिष्ठन्नमृतस्य गोपाः ॥ १३ ॥

—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।८

—इस विराट् विश्व मे जो अग्नि, वायु आदि देव है, उन्ही के प्रतिनिधि वाक्, प्राण, आदि हमारे शरीर में है । उन देवों का अधिष्ठान हृदय (बुद्धितत्त्व) में है, विज्ञानात्मक बुद्धितत्त्व मुझ (चैतन्य, में अधिष्ठित है । मैं (चैतन्य)—अविनाशी, अक्षर ब्रह्म में अधिष्ठित है । वह अमृत अक्षर ही ब्रह्म है ।

हृदय, आयु, प्राण, मन—सब मुझे पुनः प्राप्त हो । उनकी खोई हुई शक्ति को अमृत-स्रोत के साथ मिलकर मैं प्राप्त करूं । अमृत—सूर्य की किरणों में विद्यमान मेरा वैश्वानर अन्तरात्मा अमृतत्व का रक्षक बने । मैं मृत्यु से हटकर अमृतत्व चाहता हूँ । और इन शिव-संकल्पों के आशिष्ट, दृढ़ पारायण से निरन्तर प्रतिदिन अमृत को प्राप्त करता हूँ ।

अथर्ववेदीय शरीर स्थान

अथर्ववेद में शरीर की उत्पत्ति, उत्पत्ति में मूल तत्त्व, शरीर को विकसित बनाने वाली धातुएँ, शरीर का आधारस्थान, शरीर का वृद्धि-क्रम, शारीरिक बाह्य अंगों का परिगणन, आन्तरिक सूक्ष्म वृत्तियों का निर्देश, गर्भ, गर्भ की स्थिति और प्रसूति का वर्णन, तथा सुरक्षा संबंधी उपचारों का प्रतिपादक 'शरीर स्थान' का विषय है ।

शरीर की उत्पत्ति बताते हुए अथर्ववेद (१८।४।२८) कहता है कि शरीर का अधिष्ठाता जीव नित्य है । जब आकाशीय ग्रह, नक्षत्रादि उत्पन्न हो चुके तो जीव मोहवशकर्मानुसार मनुष्य, पशु आदि योनियों में उत्पन्न होकर शरीर में आया और रस, रक्त आदि सात धातुएँ शरीर के अवयव है । इन्ही से शरीर बना है ।

अथर्ववेद (१८।४।२९) में बताया गया हैं कि ये जो वात, पित्त, कफ (सप्तमातरंदक्षिणाम्) और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र—सात धातुएँ है जो शरीर का निर्माण करती है । उस भोगरूपफल के आधार शरीर का प्रकृतिस्थ स्वाभाविक अवस्था में होते हुए पालन करते हैं और कुपित हुए शरीर को बीमार करते हैं, मारते हैं । वे वात, पित्त, कफ शरीर को सदा व्याप्त किए रहते हैं ।

शरीर का आधार-स्तम्भ

अथर्ववेद (१८।४।५८ तथा १८।४।६०) में बताया गया है कि जीवात्मा की चेतनाशक्ति से प्रेरित प्राण हृदय मे प्रविष्ट हुआ, रक्तवाहिनी नाड़ियों के रक्ताशयों को पुनः-पुनः कंपाता है । उनमें भ्रमण करता हुआ रक्त जीवात्मा की स्थिरता—जीवन का कारण बनता है। वह प्राण रक्त को पूर्व रक्ताशय से दूसरे रक्ताशय में असंख्य सूक्ष्म तन्तुओं वाले मार्ग द्वारा प्रेरित करता है । इसी प्रकार अनेकानेक मार्गों से रक्त का संचार बराबर बना रहता है । रक्ताशयों द्वारा रक्त के गमनागमन से जीव का शरीर के साथ संबंध बना रहता है । यही शरीर का आधारस्तम्भ है ।

शरीर की नाड़ियाँ

अथर्ववेद (१८।४।३३) में शरीरगत चार प्रकार की नाड़ियां बताई गई हैं । ये चारों नाड़ियां शरीर के अन्दर नदियों की तरह रक्त आदि को अनवरत बहाती रहती हैं और अपने योग्य तत्त्वों से शरीर का पोषण भी करती हैं । कहीं-कहीं इन नाड़ियों में छोटी-छोटी ग्रंथियां भी रहती हैं जो बहते हुए रक्त को चूसा करती हैं ।

शरीर के अंग

अथर्ववेद (काण्ड २ सूक्त ३३ तथा काण्ड २० सूक्त ९६ मंत्र १७-२३) में शरीर के हर अंग का विशद वर्णन मिलता है। अंगों के वर्णन के साथ अंगों से यक्ष्मा आदि रोगों को दूर करने की क्रिया भी है ।

अथर्ववेद में वर्णित अंग-सूची इस प्रकार है—

१. दो आँखें, २. नासिका के दो छिद्र, ३. दो कान, ४. मुख, ५. मस्तिष्क, ६. जिह्वा, ७. ग्रीवा के भाग, ८. कण्ठ, नाड़ियाँ, कण्ठ के भाग, ९. मेरुदण्ड, १०. दो कन्धे ११. दो भुजाएँ १२. हृदय, १३. दक्षिण फुफ्फुस १४. वाम फुफ्फुस, १५. दो पसलियाँ, १६. दो गुर्दे, १७. प्लीहा १८ यकृत, १९. आँतें, २० गुदा और गुदा के वलय, २१. बड़ी आँतें, छोटी आँतें, २२. उदर, २३. दो. कुक्षियाँ, कोखें, २४. मूत्राशय, २५. दो जंघाएँ, २६. दो घुटने, २७. दो एड़ियाँ, २८. पैर के दो पंजे, २९. दो कूल्हे, ३०. दो गुप्तेन्द्रिय, ३१. हड्डियाँ, ३२. मज्जा-चर्बी, ३३. शिराएँ, ३४. धमनियाँ, ३५. दो हाथ, ३६. दस अंगुलियाँ, ३७. नख, ३८. मांसपेशियाँ, ३९. संधियाँ, जोड़, ४०. शिर और ४१. बाल ।

अथर्ववेदीय शरीरविज्ञान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें शरीर की चेष्टाएँ और अन्तःकरण के धर्म भी बताए गए हैं, जिनका संबंध अथर्ववेदीय चिकित्सा से है । जैसे—

शरीर की चेष्टाएँ

१. ऋद्धि (पूर्णता), २. समृद्धि (पुष्टि), ३. अव्यृद्धि (अक्षीणता-समता) ४. बल, ५ जव (स्फूर्ति), ६. नृत (नृत्य—नाचना, अभिनय), ७. जरा (बुढ़ाई) ८. खालत्य (केशक्षीणता) ९. पालित्य (केशों की सफेदी), १०. ओज (शरीर की कान्ति), ११. क्षुध (भूख), १२. तृष्णा (प्यास) १३. हस् (हँसना) १४. नरिष्ठा (उदासीनता), १५. आस्तेयी (शरीरगत द्रव पदार्थों का अस्तित्व), १६. वास्तेयी (मूत्राशय में मूत्र का होना) १७. त्वरणा (शीघ्र गति में रहना) १८. कृपणा (मन्द गति में होना) १९. गुह्या (गुप्त रूप में होना), २०. शुक्रा (शुभ्र रूप में होना), २१. स्थूला (गाढ़ा होना), २२. आलप (ऊँचा बोलना), २३. प्रलाप (बकवास), २४. अभीलापलाप (उचित बोलना) ।

अन्तःकरण के धर्म

१. प्रिय, २. अप्रिय, ३. स्वप्न, ४. संबाध (निद्राक्षय), ५. तन्द्रि (आलस्य), ६. आनन्द (सुषुप्ति-शान्ति), ७. मन् (सुख), ८. आर्ति (पीड़ा वेदना), ९ अवर्ति (अरुचि), १०. निर्ऋति (निराशा) ११. अमति (बुद्धिहीनता), १२. मेधा (धारणाशक्ति), १३. पाप्मा (पाप भावना), १४. हन्त (हाँ में हाँ मिलाना), १५. न (इन्कार करने का स्वभाव), १६. श्रद्धा (विश्वास), १७. अश्रद्धा (अविश्वास), १८. मोद (हर्ष), १९. प्रमुद (विनोद), २०. अभीमोदमुद (पुनः-पुनः अनुराग), २१. आशिषः (आशाएँ), २२. चित्त, २३. संकल्प ।

अथर्ववेद केवल शरीर के रोगों, अन्तःकरणों के धर्म और चिकित्सा ही नहीं बताता बल्कि वह बड़े विश्वास से यह भी कहता है कि

कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ।

—१०।२।१४

शरीर में मृत्यु और अमृत कैसे रखा हुआ है ? मरने का नाम मृत्यु है किन्तु अमृत के दो अर्थ है । एक दीर्घ जीवन और दूसरा अमर आत्मा—जीवात्मा । रस-रसायन के प्रयोग से मनुष्य दीर्घजीवी हो

सकता है और शरीर में स्थित अमृत (जीवात्मा) को जरामरण के भय से बचाने के लिए आत्मज्ञान महौषधि बताई गई है।

गर्भप्रसूति

अथर्ववेद गर्भ के प्रसव को शरीरस्थान मानकर काण्ड १ सूक्त ११ के अन्तर्गत गर्भप्रसव का विस्तृत वर्णन करते हुए बतलाता है कि—

प्रसव-काल में सूर्य, वायु, अग्नि के द्वारा गर्भिणी की प्राण-रक्षा करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि सूर्य की किरणों, वायु के संचार और अग्नि के ताप-होम आदि से प्रसूति गृह में उपचार करना चाहिए।

जब गर्भिणी की योनि से जल—श्लेष्मा—लार बहने लगे तब वह अपने शरीर के सारे जोड़ों को ढीला कर दे और सूतिकागृह में प्रसव कराने वाली दाई गर्भिणी, के गर्भस्थ बालक को योनि के बाहर आने के लिए प्रवाहण (किनछना) करे। ऊपर से योनि की ओर बालक को आन्तरिक गति से वह ढकेले और आकाशसंचारी सूर्य-किरणों से तथा पृथिवी की दिव्य औषधियों से गर्भस्थ शिशु को बाहर आने की प्रेरणा दे।

प्रसव-काल में गर्भिणी स्त्री लाजलिहाज छोड़कर एकदम नंगी हो जाए और योनि को शिथिल कर प्रसव कराने वाली दाई के अधीन अपने को कर दे। गर्भस्थ शिशु को वेग से बाहर आना चाहिए। यही प्रसव की सफलता है अन्यथा तुरंत उपचार करना चाहिए। गर्भ दसवें मास में आना चाहिए। दसवें मास में उत्पन्न शिशु परिपूर्ण परिपुष्ट होता है। कदाचित् दसवें मास के बाद शिशु पैदा हो तो उसकी चिकित्सा की जानी चाहिए।

वेद

वेद परमेश्वर के निश्वसित रूप हैं, जिनको जनकल्याणार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किया। इसी कारण वेद का त्रिकालज्ञत्व सर्वज्ञत्व; नित्यत्व; अनादित्वं है।

ऋषियों ने अपने तपोबल से उनका साक्षात्कार किया, मुनियों ने मनन किया।

वेद की अपौरुषेयता

आचार्य शंङ्करकृत वेदान्त-दर्शन सूत्र ३ की व्याख्या में निर्दिष्ट "महत ऋग्वेदादे, शास्त्रस्य अनेक विद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रतीपवत् सर्वार्थी वद्योतिनः सर्वज्ञ कल्पस्य योनिः कारण ब्रह्म। नहिईदृष्यस्ये" ऋग्वेद आदि लक्षणरय सर्वज्ञ गुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यत सम्भवोऽस्ति। अर्थात् महान ऋग्वेदादि शास्त्र, जो अनेक विद्या, विज्ञानादि से ओत-प्रोत हैं, जो समस्त अर्थों को प्रदीप के तुल्य प्रकाशित करता है। सर्वज्ञ के तुल्य है; उस सबका मूलभूत कारण ब्रह्म ही है। ऐसे ज्ञानभंडार ऋग्वेदादि स्वरूप का प्रकाशन सर्वज्ञ पर ब्रह्म से अतिरिक्त अन्य नहीं हो सकता। अन्यच्च 'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानिजज्ञिरे।

छन्दांसिजज्ञिरे तस्माद्रयजुस्तस्मादजायत। ऋग्वेद (१०।९०।९) यजु (३१।७) अथर्व (१९।६।१३) तै० आ० (३।१२।४) तथा च "सतपोऽतप्यततस्मात्तपस्तेपानात् त्रयोवेदा अजायन्तः।। शत० ब्रा० ११।५।८।३

"अस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः" बृ० आ० २।४।१० पुनः यजु ३१।१८ "वेदाहमेतंपुरुषं महान्तम्"

इस प्रकार वेद का अपौरुषेयत्व निर्विवाद सिद्ध है।

वेद की रचना

ईश्वरीय रचना, नामात्मक तथा रूपात्मक है। "सनामरूपेव्याकरोत्" विश्व की रचना दो वर्गों में वर्णित है। "नाम:"—वेदराशि शब्दात्मक "रूप:" अन्य समस्त विश्ववस्त्वात्मक अर्थ जगत्। एक पद, दूसरा अर्थ; यही अखिल विश्व है। वेद केवल शब्दराशि ही नहीं है, अपितु—उस विशिष्ट आनुपूर्वीययुक्त शब्द समूह से जो अन्तर्हित ज्ञान अभिव्यक्त होता है, वेद का वास्तविक वही स्वरूप है। वही ईश्वरीय नित्य ज्ञान, ईश्वरीय प्रेरणा से अभिव्यञ्जक, नित्य शब्दब्रह्म स्वरूप है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, जो किन्हीं नियत शब्दों द्वारा नियतकाल में भगवान की प्रेरणा से जीवात्माओं के सतत कल्याणार्थ अभिव्यक्त होता है।

वेदराशी अनन्त है "अनन्तो वै वेदा:" ऐसी श्रुति है। यह वेदराशी पूर्व (प्रारम्भ) काल में एक ही थी। भगवान वेदव्यासजी ने प्राणियों की मन्दमति का अनुभव कर, उस पूर्ण वेदराशी को ऋग्वेद, यजुर्वेद; सामवेद तथा अथर्ववेद के रूप में चतुर्धा विभक्त किया। जिसको सर्वप्रथम क्रमश: १ पैल २ वैशम्पायन ३ जैमिनि और ४ सुमन्त ने ग्रहण किया। इसीसे (वेदान्विव्यास) वेद व्यास जी कहलाये। "चत्वारोवा इमेवेदा, ऋग्वेदो, यजुर्वेद, सामवेदो, ब्रह्मवेद।" ये वेद विभाग संहिता शब्द से ख्यात हैं। इस संहिता का प्रचलन त्रेतायुग में हुआ। "ततस्त्रेतायुग नामत्रयी यत्र भविष्यति" महा० शा० प० १३०८ श्लो०, गो० ब्रा० २।१६।, ऋग्वेद पठनकाल में पैल के वाष्कल और शाकल दो शिष्य थे। जिन्होंने यथाक्रम स्ववेद को चार, पांच भागों में विभक्त किया। गृहीत यजुर्वेद को वैशम्पायन जी ने अनेकों शिष्यों को पढ़ाया; जिनमें एक याज्ञवल्क्य भी थे। किसी प्रकार गुरु-शिष्य विवाद के कारण याज्ञवल्क्यजी ने पढे हुए वेद का परित्याग कर दिया। उस समय वैशम्पायन जी के अन्य शिष्यों ने तित्तिरि (पक्षि) रूप धारण कर उसे धारण किया। वह वेदभाग कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता हुई। याज्ञवल्क्य जी ने सूर्योपदेश से वेद का अधिग्रहण किया वह शुक्लयजुर्वेद नाम से ख्यात है। जैमिनि गृहीत सामवेद पाठनान्त सहस्र रूप में विभक्त हुआ। उनमें पौष्य जी प्रभृति सहस्रों शिष्य हुए। वे औदीच्या कहलाए। गृहीत अथर्ववेद को सुमन्तु ने कवन्ध को उपदिष्ट किया। उनके वेददर्श और पथ्य दो शिष्य हुए। उपर्युक्त वेद की चारों शाखाएँ वेदत्रयी पद या त्रयी पद से वर्णित है। इन वेदों का यज्ञार्थ कर्म में साक्षात्संबन्ध है। ये चारों वेदभाग ही मन्त्रसंहिता रूप हैं। वस्तुत: वेदराशि मन्त्र ब्राह्मणात्मक "वेदनामधेय" है। महर्षि पाताञ्जलि के मत से एक शतमध्वर्यु शाखा सहस्रवर्त्मासामवेद: एक विंशतिधा ऋग्वेद; नवधा अथर्वणोवेद:। ऋक् की २१ शाखाओं में से एक शाकल शाखा ही उपलब्ध है। यही ऋग्वेद के रूप में परिगणित है। यह १० मण्डल १०२८ सूक्तों में वर्णित है।

यजुर्वेद की १०१ शाखायें हैं। चरण व्यूह ग्रंथ में केवल ८६ का ही उल्लेख है। इसकी आजकल ६ शाखा ही उपलब्ध हैं। यजुर्वेद के शुक्ल कृष्ण दो भेद हैं। कृष्णयजुर्वेद की काठक संहिता; कापिष्ठल संहिता; मैत्रायणी तथा तैत्तिरीय संहिता ये ४ प्राप्य है। शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनी संहिता, काण्वसंहिता ये दो उपलब्ध हैं। यज्ञ प्रक्रिया प्रतिपादन परक गद्यरूप वेदभाग यजुर्वेद में है। कृष्ण यजुर्वेद में तैत्तिरीय संहिता में अग्न्याधान प्रभृति; अग्निष्टोम; वाजपेयादि विविध यज्ञों की प्रक्रियायें है। ये सभी असाधारण ज्ञान कौशलपूर्ण हैं। जो साङ्गोपाङ्ग विस्तारपूर्ण पठन-पाठन से विस्मय में डाल देने वाली हैं।

शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा के ४० अध्याय हैं। इनके प्रथम २५ अध्यायों में महत्त्वपूर्ण यज्ञ विधियाँ हैं, २६ से ३५ तकअखिल संज्ञक है जिनको पूर्णकाध्याय प्राचीन परम्परा में कहा है। ३६ से ३९ में प्रवर्ग्य भाग है। ४०वां ईशोपनिषद हैं। इन दोनों संहिताओं में कर्म और ज्ञान दोनों ही का विवरण है। यज्ञ-प्रसंग में अध्वर्यु यजुर्वेद का ही उपयुक्त माना गया है। सामवेद की १००० शाखाओं में से एक

ही शाखा है। उसके २ भाग है। १ आर्चिक २ उत्तरार्चिक। दोनो मैं ऋग्वेद की ही ऋचायें हैं। ऋक् संख्या १८०० में से १५४६ ऋग्वेद में से है। सामवेद पठनान्त वेदपाठ नहीं करना चाहिए। यज्ञ कर्म में उद्गाता सामवेद का ही ग्राह्य है। उसे छन्दोग भी कहते है।

अथर्ववेद

अथर्ववेद के नाम अथर्ववेद के अन्तर्गत तथा गोपथ ब्राह्मण श० ब्रा० में निर्दिष्ट है।

१. **"सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसोमुखम्"** (१०।७।२०)—**अथर्वाङ्गिरोवेद**

२. **"तमृचः सामानियजूंषि ब्रह्म चानु व्यचलत्"** (१५।६-८)—**ब्रह्मवेद**

३. **"ऋचः सामानिभेषजाः "** (११।६-१४)—**भैषज्यवेद**

४. **"सामक्षत्रंवेद"** अ० १४।८।१४-२)—**क्षत्रवेद**

५. "एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद्भृग्वङ्गिरस :" "गो० ब्रा० ३।४" **अथर्वा भृग्वाङ्गिरसंब्रह्म**

६. "ता उपदिशति अंगिरोवेंद" श० प० १३।४-८)—**आङ्गिरोवेंद**

इस प्रकार—**१ब्रह्मवेद २ भैषज्य वेद ३ ब्रह्मवेद ४ आङ्गिरस वेद** ५ अथर्वाङ्गिरस ब्रह्म ६ भृग्वाङ्गिरस ब्रह्म – ये स्पष्ट नाम वर्णित हैं।

अथर्ववेद के दशवें; ग्यारहवें त्रयोदशः तथा उन्नीसवें काण्डों में क्रमशः यथा "कालेतपः" (१६।५३-८); "वशामेवामृतमाहु" (१०।१०-२६) तथा (१०।७-१२) एवं "अकामोधीरो" (१०।८।४४) प्रभृति में ब्रह्म के स्वरूप और कार्य के विशद वर्णन के आधार पर इसकी संज्ञा **"ब्रह्मवेद"** है।

महाभारत में इसी को **"क्षत्रवेद"** अथवा **"अथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म"** कहा गया है। मनु-आदि स्मृतियों-धर्मसूत्रों में भी यही "ब्रह्मवेद" वर्णित है अथर्ववेद से-प्राधान्यतया "अथर्वणां" आङ्गिरसा का निर्देश है। जो निश्चय से ऋषिकुल नाम है। यज्ञकर्म में "ब्रह्मा" यज्ञरक्षक होने से ब्रह्मवेद ही अथर्ववेद का पर्यायी है। क्षत्रियोपयोगी समस्त ज्ञाननिधि इसमें होने से **"क्षत्रवेद"** है। वैदिक युग में प्रचलित समस्त-औषधि तथा भैषज्य विज्ञान का मूलभूत होने से **"भैषज्यवेद"** है।

अथर्ववेद के छन्द

अथर्ववेद में गायत्री; अनुष्टुभ. पंक्तिःत्रिष्टुभ्, जगती इत्यादि छन्द है। ५वें काण्ड का बहुभाग तथा पूरा षोडशकाण्ड गद्यात्मक है। इसी कारण बृहत्सर्वानुक्रमणी में निचृत, भूमिगर्भा, आर्ची आदि छन्द मिलते हैं। एक ही सूक्त में विभिन्न छन्द तथा विभिन्न ऋषि इसी वेद में है। अनेकों सूक्त अनुष्टुप से प्रारम्भ और त्रैष्टुप पर समाप्त किए गए हैं। अथर्व वेद के अनुष्टुप-ऋग्वेद से भिन्न है।

ऋषि

बृहत्सर्वानुक्रमणी मे अथर्ववेद के ऋषियों मे प्रधानतया, अथर्वा, आङ्गिरा भृगु-चातन प्रधान हैं। कहीं-कहीं अप्रतिरथ, वभ्रुपिङ्गल, प्रमोचन, प्रशोचन आदि भी उल्लिखित है। अंहोलिङ्ग के भृगार, पुरुष सूक्त के नारायण, विवाह सूक्त के सूर्य, विषनाशन ऋषि गरुत्मान विषयानुसार हैं।

राष्ट्रसंवर्ग अथर्व परिशिष्ट :--

अथर्वासृजतेघोरमअशुभंशमयेत्तथा। अथर्वारक्षतेयज्ञंयज्ञस्यपतिरङ्गिराः।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानामनेकधी। शमयिताब्रह्मवेदज्ञः तस्माद्दक्षिणतोभृगुः।
ब्रह्माशमयेन्नाध्वर्युर्नछन्दोगो न वहवृचः। रक्षांसिरक्षतिब्रह्माब्रह्मातस्मादथर्वविद।

अथर्व वेदीय साहित्य

अथर्व वेद से सम्बद्ध साहित्य विपुल है।

गोपथ ब्राह्मण (१।१-१०) में अथर्व वेद के पांच उपवेद। पञ्चवेदान्निरमिमीतसर्पवेदं, पिशाच-

वेदं, असुरवेदम् इतिहास पुराण वेदञ्चेति । केशवपद्धतिः —"तत्र चतसृषु शाखासु शौनकीयादिषु कौशिको- क्त्यसंहिता विधिरिति" अथर्व हृदतय ज्ञानार्थ कौशिक सूत्र से अन्य कुछ भी नहीं है । यह अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ माला है । इसमें १४ अध्यायों में अथर्वोक्त कर्म विस्तृत रूप से वर्णित है ।

अथर्ववेद के नाम और उनके अर्थ

यदि "थर्व" धातु से "अथर्व" शब्द बनाया जाए तो अर्थ होगा "हिंसा; विनाश आदि विघातक तत्वों से रक्षात्मक ज्ञान ।" यदि अथ+अर्वन् इन दो शब्दों के योग से निष्पन्न माना जाए तो आत्मिक एवं शारीरिक तत्व विज्ञानात्मक विवरण ज्ञान निधि । अथर्ववेद के मन्त्रद्रष्टाऋषि अथर्वण होने के कारण भी इसकी संज्ञा अथर्ववेद है।

निरुक्त (११।२।१७) तथा गोपथ ब्राह्मण (१।४) में निर्दिष्ट व्युत्पत्ति के अनुसार हिंसा तथा कुटिलता वाची 'थर्व' धातु से नञ् समास करने से निष्पन्न 'अथर्व' शब्द का अर्थ अहिंसा एवं अकुटिलता वृत्ति से चित्त की चंचल वृत्तियों का निरोध करने वाला । इस निष्पत्ति के समर्थक अनेक योग सम्बन्धी प्रसंग इस वेद में हैं । यथा "दोषोगांय" (६।१+१—३); 'मूर्द्धानमस्य' (१०।२-२६-२८)

अथर्ववेद का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक आख्यानोक्त 'अथर्वन्' और 'अङ्गिरस्' (तथा बाद में भृगु भी) नामक अग्निहोत्री ऋषियों से रहा है । इसी कारण इस वेद को 'अथर्वाङ्गिरसः' और 'भृग्वङ्गिरस' और अथर्व वेद पड़ा है । 'अथर्वण' और अङ्गिरस् का तात्पर्य उन अग्नि-मंत्रों से है, जिनका उच्चारण अग्नि में सोम के अतिरिक्त अन्य पदार्थों की आहुति डालते समय किया जाता था ।

'अथर्वाङ्गिरसः' यह नाम सर्वप्रथम शौनकीय संहिता की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति के प्रारम्भ में मिलता है । अल्पाधिक रूप तथा व्युत्पत्तियाँ जो 'अथर्वाङ्गिरसि श्रुतम् (महाभारत ३।३०५।२०=१७-०६६), 'कुशल अथर्वाङ्गिरसे' (याज्ञ० १।३१२), 'कृत्याम् अथर्वाङ्गिरसीम' (महाभारत ८।४०।३३=१८-४८), 'अथर्वाङ्गिरसी श्रुतीः' (मनु० ११।३३), 'अथर्वाङ्गिरसं तर्पयामि' (बौधायन धर्मसूत्र (२।५।६।१४) इन रूपों में उपलब्ध होती है ।

'अथर्वन्' और इससे व्युत्पन्न हुए शब्द सम्पूर्ण वाङ्मय में उत्तरोत्तर अधिक प्रयुक्त हुए हैं किन्तु 'अङ्गिरस्' शब्द एक ही वैदिक अनुच्छेद चतुर्थवेद के अभिधान के रूप में प्रयुक्त हुआ है । अथर्वन् शब्द का तात्पर्य वेद के माङ्गलिक विधानों (भेषजानि) से है और आङ्गिरस् शब्द वेद की आभिचारिक क्रियाओं अर्थात् यातु (श० ब्रा० १०।५।२।२०) या अभिचार को सूचित करता है, जो भयंकर और घोर है । अथर्ववेद के इन दो नामरूपों का चित्रण गोपथ ब्राह्मण (१।२।२१ और १।५।१०) में **ऋचि यजूंषि साम्नि शान्तोऽथ घोरे** कह कर किया गया है ।

गोपथ ब्रा० अथर्वन्=शान्त के लिए, ॐ और आङ्गिरस्=घोर के लिए 'जनत्' इस व्याहृति का प्रयोग करता है । अथर्ववेदीय याज्ञिक अनुष्ठानों (वैतान सूत्र ५।१०; गोपथ ब्रा० १।२।१८) में वनस्पतियों के दो वर्गों में भी यही अन्तर बताया गया है जिनमें एक शान्त (आथर्वण) और दूसरी विनाशक अभिचार में प्रयुक्त होने वाली घोर (आङ्गिरस्) कही गई है । 'आङ्गिरस्' शब्द कौशिक सूत्र में आभिचारिक या घोर इस अर्थ में आता है । आश्व० श्रौतसूत्र और शांखायन श्रौतसूत्र में बताया गया है कि 'भेषजम्' (शान्तम्) का पाठ आथर्वण वेद से और 'घोरम्' (आभिचारिक) का पाठ आङ्गिरस वेद से करना चाहिए ।

अथर्ववेद के दो अन्य अभिधान 'भृग्वङ्गिरसः' और 'ब्रह्मवेद' आथर्वण याज्ञिक ग्रंथों में मिलते है । हमारा अभिमत है कि 'अथर्वन्', 'अङ्गिरस्' और 'भृगु' ये तीनों शब्द समानार्थक अथवा परस्पर सम्बद्ध

आख्यानात्मक नाम है जिनका सम्बन्ध अग्नि के उत्पादन और पूजन के साथ है।

'ब्रह्मवेद' यह नाम आथर्वण-अनुष्ठानों के साथ सम्पृक्त है। शांखायन गृ० सू० (१।१६।३) में इस शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त वैतानसूत्र (१।१) गो० ब्रा० (१।१२२,२।१६, ६,५।१५,१६,२।२।६) में मिलते हैं। ऋग्वेद प्रातिशाख्य (१६।५४—५५) में एक वैदिक ग्रंथ 'सुभेषज' का नाम आया है। वस्तुतः यह 'भेषजानि' का ही दूसरा नाम है।

अथर्ववेद के वर्ण्य विषयों का वर्गीकरण

कौशिक सूत्र अथर्ववेद के ७३१ सूक्तों में से प्रत्येक सूक्त का चित्र प्रस्तुत करते हुए अथर्ववेदीय विषयों का उपयुक्त निदेशन प्रस्तुत करता है। अथर्ववेदीय वर्ण्य विषयों का विवेचनात्मक दृष्टि से वर्गीकरण किया जाए तो १४ वर्ग बनते हैं, जिनमें सभी विषयों का समावेश हो जाता है—

१. भैषज्यानि...रोगों एवं दानवों से मुक्ति की प्रार्थना।
२. आयुष्याणि—दीर्घायुष्य एवं स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना।
३. अभिचारिकाणि, कृत्याप्रतिहरणानि—राक्षसों, अभिचारिकों एवं शत्रुओं के प्रतिकूल अभिचार कर्म।
४. स्त्रीकर्माणि—स्त्री विषयक अभिचार कर्म।
५. सांमनस्यानि—सामंजस्य प्राप्त करने एवं सभा में प्रभाव डालने के अभिचार कर्म।
६. राजकर्माणि—राज विषयक अभिचार कर्म।
७. पौष्टिकानि—ब्राह्मणों के हितार्थ प्रार्थनाएँ एवं अभिशाप और
८. संपन्नता-प्राप्ति एवं भय से मुक्ति के अभिचार कर्म।
९. प्रायश्चित्तानि—पाप एवं दुष्कर्म के लिए प्रायश्चित्तविषयक अभिचार कर्म।
१०. सृष्टिविषयक एवं आध्यात्मिक सूक्त
११. याज्ञिक सूक्त
१२. व्यक्तिगत विषय के विवेचक काण्ड (१३-१८)
१३. बीसवाँ काण्ड
१४. कुंताप सूक्त

जो मन्त्र आत्मा में निहित शक्ति के उद्भावन की सर्वोपरि कुञ्जी है। इसी कारण उसका उपयोग, प्रयोग किसी भी श्रौत यज्ञ के बिना स्वतंत्र रूप में किया जा सकता है। यह मौलिक सिद्धान्त ही अथर्ववेद की प्रमुख विशेषता है। यह सम्पन्न वर्ग का वेद न होकर जन-साधारण का वेद है।

"यांश्च ग्रामे यांश्चारण्ये जपन्ति मन्त्रान्नानार्थान् बहुधा जना सः। सर्वे यज्ञा अङ्गिरसोऽपियन्ति" (गो० ब्रा० १।५।२५)। तथा च "सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषुशूद्रेसु च। आथर्वणस्य वेदस्य शेषइत्युप दिशन्ति" आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।२६।११-१२) अथर्व प० (२।५)।

इसका अध्ययन, विशिष्ट मूल्यांकन

१. मानव शास्त्र की दृष्टि से। २. आयुर्वेद की दृष्टि से;
३. भौतिक विज्ञानों की दृष्टि से ४. राजनैतिक दृष्टि से
५. सामाजिक दृष्टि से ६. काव्यशास्त्र की दृष्टि से तथा
७. आध्यात्मिक दृष्टि से किया जा सकता है।

१. मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटनादि, सकाम एवं निष्काम कर्मों से परिपूर्ण सर्वथा सिद्धिप्रद है। अ. प. (२।५) "न तिथिर्नच नक्षत्र"।

२. **आयुर्वेद की दृष्टि से**—अथर्ववेद की प्राचीनता, प्रामाणिकता, व्यापकता, वैज्ञानिकता, उपादेयता का मूल, तथा आयुर्वेद के सैद्धान्तिक नियमों, व्यावहारिक चिकित्सा-पद्धतियों का अत्यन्त उपादेय भण्डार तथा **समस्त कर्मज व्याधियों के निदान एवं उपाकरण** की अकथ, अथक, अप्रमेय मात्र **भैषज स्वरूप** है।

३. **भौतिक विज्ञान की दृष्टि से**——लाक्षा, कुष्ठ, पूतद्रु, चीपद्रु कुष्ठ, पाठा, शिलावरी, औदुम्बर, दर्भ, पैद्व तथा त्रिसन्ध्या आदि यत्र तत्र विकीर्ण तथ्य वैज्ञानिकों की कौतूहलपूर्ण गवेषणा को आमन्त्रित करने में लालायित है।

४. राजा का निर्वाचन, राजधर्म, प्रजाधर्म निष्कासित राजा का पुनः राज-प्रवेश, चोर, दस्यु आततायी, वृक चरकादि तथा कुपथ गामी, संसदीय जनों पर नियंत्रण, निष्कासन अनिष्टों, अरिष्टो कृत्या, अभिचारादि से संरक्षा, दैवी, आसुरी, यातुधानी विविध उत्पातों से रक्षा, संग्राम में जय, पराजय का ज्ञान, संग्राम में मृत्यु या जीवन की विज्ञान विधि, शत्रुजय वज्र, उद्वज्र, त्रिसन्धिवज्रादि की प्रयोग विधियाँ, वाह्यभ्यन्तर शत्रु निवर्हण विधियां-अप्रमेय तथा परिपूर्ण विज्ञान स्रोत मूल है।

अतिवृष्टि

५. वास्तुविधि अतिवृष्टि अनावृष्टि निराकरण, ओला, विद्युत, ईतिभीति शलभटिड्डिभि निवारण, कृमिनाशन, वन्ध्यादोष निवारण क्लीवत्व निवारण, राजयक्ष्मादि निवारण की पूर्ण समर्थ विधि, उससे भी बढ़कर हस्त मात्र, दृष्टि मात्र से १०१ मृत्युओं के निराकरण, दीर्घायुष्य, पवित्रता, स्वस्त्ययन, अभय तथा समस्त अद्भुत दोष एवं जन्मजन्मान्तरीय स्वकीय, क्षेत्रीय आदि पाप, ताप, शाप, संकट निवारण एवं सतत् अभ्युदय अर्थोत्थापन, उद्योग वाणिज्यादि से लाभ-नष्ट धनलाभ अपहृत वस्तुलाभ, मेधावर्द्धन, ब्रह्म विद्या आदि के अनूठे अभीष्टफलप्रद सूक्त एवं विधियों से परिपूर्ण है।

६, अथर्ववेद के ५ वें कान्ड के १० वें सूक्त में साहित्यिक वीररस से पूर्ण काव्य रचना अत्यन्त सरस, रोचक भावपूर्ण है। उपमा तथा भाव-सौष्ठव से युक्त दुन्दुभि सूक्त, भूमिसूक्त तथा यमयमी संवाद अद्वितीय, अप्रमेय श्लाध्य तथा अनुकरणीय है।

७. अथर्ववेद के "कालेतपः" १९।५३-८; वशामेवामृतम्, (१०।१०-२६) तथा अकामोधी (१०।८।४४) में वर्णित विधि मंत्र तथा विविध संस्कारों की शिक्षा, दीक्षा सभाजय, जन्मान्तरीय ज्ञान की प्राप्ति, योग, वेदान्त यज्ञ रूप परब्रह्मकी यज्ञों से प्राप्ति, धर्मार्थ काम मोक्ष का भी परित्याग कर, नित्य ब्रह्म से अपराभक्ति द्वारा अक्षुण्ण, अमृत रसपान विहार, आलिङ्गन, नित्यक्रीडा-प्रदायक सहज सरल, सुर-दुर्लभ विधियों का नित्य अखण्ड परिपूर्ण भन्डार है।

अथर्ववेद का स्वरूप

अथर्ववेद में २० कान्ड है जो ३६ प्रपाठक : ९ अनुवाक् ७३० सूक्त ५९७७ ऋचाएँ और ५ उपवेद हैं। ब्राह्मण गोपथ उपनिपद "मुन्डक" और माण्डूक्य "सूत्र" कौशिक" तथा वैतान श्रौत सूत्र हैं।

नवधा अथर्वणो वेद :॥

अथर्व परिशिष्ट	कात्यायनीय परिशिष्ट दशक	चौखम्भा संस्करण	वाचस्पत्यम्
पिप्पलाद	पिप्पलाद	पैप्पला	पैप्पालाद
शौनक	शौनक	शौनका	शौनकी
चारण वैद्य	चारण विद्या	चारण विद्या	चारण विद्या
ब्रह्म वद	ब्रह्मवल	ब्रह्मपलाश	ब्रह्मदा

स्तौद (तौद)	कुमुदा दी	दात्त	दामोदा
देवदर्श	शौनका यन	कुनखीदेवदर्शी	देवदर्शी
मौद	मोद	प्रदात्त	औप्रा
जाजल	जाजल	जाबाला	पश शौनकी
देवस्पर्श	जलद	ओत	

परन्तु महाभाष्य कार महर्षि पातञ्जलि ने (दे० पाणिनि १;१;१ पर वार्तिक ५ में ११३१ वैदिक शाखाओं का उल्लेख किया है।

पातञ्जलि (पाणिनि ४;३;१०१। पर वार्तिक २ मौदक शाखा का उल्लेख पैप्पलाद के साथ ही किया है। उसकी सम्पुष्टि काशिका (पाणिनि १; ३; ४९ पर की गई है। अथर्ववेदीय गुह्यकाल्युपनिषद (१-५) में" १ वारन्तवी, २ मौञ्जायनी उतार्ण वैन्दवी ४-शौनकी ५ पैप्पलादिका तथा सौमन्तवी का उल्लेख है।

मुक्तिकोपनिषद (१:१३) में ५० का उल्लेख है।

सीतोपनिषद (२५) तथा अहिर्बुर्कध्न्य संहिता १२-२० में ५ का उल्लेख है। अग्नि पुराण (२७१; ८) श्लोकायनि का उल्लेख है। स्कन्दपुराण नागर खंड अध्याय १७४ में १०० शाखाओं का उल्लेख है।

शौनक शाखा लिखित तथा मौखिक रूप से सस्वर है। पिप्पलाद का वाचन प्रायः स्वर-रहित हो रहा है।

अथर्व के उपनिषद २८ का उल्लेख है (अ० पु० ४९; ४,४)

१. मुण्डक २. प्रश्न ३. ब्रह्मविद्या ४. क्षुरिका ५. चूलिका ६. अथर्वाशिर ७. अथर्वशिखा ८. गर्भोपनिषद ९. महोपनिषद १०. ब्रह्मोपनिषद ११. प्राणाग्निहोमम् १२. माण्डूक्यम् १३. नाद विन्दु १४. ब्रह्म विन्दु १५. अमृत विन्दु १५. ध्यान विन्दु १७. तेजो विन्दु १८. योग शिखा १९. योगतत्त्व २०. नीलरुद्र २१. पञ्चतापिनि २२. एक दन्डी २३. संन्यास विधि २४. आरुणि २५. हंस २६. परम हंस २७. नारायणोपनिषद २८. वैतथ्य का उल्लेख है। परन्तु अथर्व परिशिष्ट (१९,४,१०) में १५ का उल्लेख है। इसीके उत्तरावर्ति परिगणन में १३ उपनिषदों के नाम समान ही है तथा अन्य नाम-१ अद्वैत तथा २ अलात शान्ति है। परिशिष्ट ग्रन्थ ७२ का उल्लेख है।

कल्प १. नक्षत्रकल्प २. शान्तिकल्प ३. आङ्गिरसकल्प ४ संहिताकल्प ५ वितान कल्प कहे है।

महाभारत—"पञ्चकल्पमथर्वाणं कृत्याभिपरिबृंहितम्।

कल्पयानी ह्यिा विप्राअथर्वाणार्वदस्तथा ॥

लक्षणग्रन्थों में:–१ चतुरध्यायिका २ प्रतिशाख्य ३ दन्त्योष्ठविधि, ४ पञ्चपटलिका तथा ५ बृहत्सर्वानुक्रमणिका के उल्लेख हैं।

आरण्यकः—अथर्वपरिशिष्ट (४९;४;३) षट्सहस्रग्रामारण्यक के उल्लेख हैं। इनमें से शौनकीय तथा पिप्पलाद ही उपलब्ध हैं। अन्य अप्राप्य हैं। पिप्पलाद शाखा-शारदालिपि में प्रथम काश्मीर में प्राप्त हुई, ऐसा सुना जाता है।

वस्तुतः शौनकीय शाखा ही ब्रह्मवेद है।

कौशिक गृह्यसूत्र-वैतान श्रोतसूत्र; अथर्व परिशिष्ट एवं सायणाचार्य सम्मत

अथर्ववेदीयगण

अनुष्ठान्यऋचः—अथर्ववेद—(१८।१-४१;४२;४३); (७।६८-२); (१८।२-१८-२४) (१८।३-२५;१०-६९; ६१;६७); (१८।४-१८।२६;३२;३३;४३) तथा ऋग्वेद १०।८५-४४।

अभयगणः—(१।१९-१; २१-१); (४।१६-२; २१); (५।२२); (६।३२।१; ४०-१; ५०-१.१३-१) (७।६-२; ७।९१-१); (८।१-५:१०); (११।२-३१); (१३।१); (१९।१४-१: १५-१)

अपराजितगणः—(१।३-१:१९-१:२०-१:२१-१); (६।६-१:६६-१:६७-१:९८-१:९९-१); (३।१९-१); (४।३१-१:३२-१); (५।२१-१२)

आसनीय ब्रह्मजपः—(१२।१-२९); (१।४-१); (२।४-५); (२।२-१); (१।४-७); (१।६-९)।

अप्रजननः—(७।११।११८); ३५ (३६)।

आयुष्यगण (१।३०-१; १०-४) (२।१५-१:१७-१:२८-१:३३-१) (३।११-१) (४।१३-१) (५।३०-१) (७।३२-१) (८।१-१:२-१) (११।४-१) (१७।१-५)

अपनोदनानिः—(१।२६-१) (४।३३-१)। अंहोलिङ्गगणः—(४।२३ से ३० पर्यन्त ४।३३-१) (१।३१) (६।९६-२) (६।३५-२) (७।११२-१) (१४।२-४५) (१०।५) (११।६-१) (३।११-१) (२।११-१) (४।१३) (५।३०-१) (९।८-१) (६।१४-१) (६।१०५)। —अर्थोत्थापनगण (अलक्ष्मीनाशनगणश्च) (१८।३-८:९) (१८।२-४८; ५३ ११:१८) (१८।१-६१) (१८।४-४४) (१८।३-५५) (३।२०) (५।७-१) (७।१) (१।४-१) (६।६२-१) (७।७: ५४-१:५६-१:५७-१) (६।१-६१) (२।२४)

कृषि सम्वर्धनः—(६।१६-४) (१८।४-३७:५७:१६:५३:५४) (१८।३-७२:५२-५।१४; ३१) (८।५) (१०।१) (७।६५)

कल्पजाऋचः—(१९।३३-३) महाव्याहृतय : (२।२९-१) (१०।५-२३:२४)

कामसूक्तः—(१४।१-२३:६४-१:२८-१ से १६ पर्यन्तः २४) (१९।५२) (६।२७:; २-२८:२९)

कुष्ठलिङ्गाः—(५।४-१:३-४) (१।१२-१:२५-१) (२।८-१:९-१:१०-१) (३।७-१:११-१) (४।२८-१) (५।४-१:९-१:२२-१) (६।२०-१:२६-१:४२-१:८५-१:९१-१:१२७-१) (७।११६-१) (५।४-१०) (५।२५-७ से ९ पर्यन्त) (५।४-३४)

गोष्ठकर्मस्वस्त्ययनः—(५।४-३:४:२५:७:८:९) (५।२७) (६।१४१)

गोहरणे अभिचारः—(५।१७:१८:१९) (५।१९; ४७) (६।५४) (७।७०)

ग्राहणीऋचः—(५।१३-१:२:३:४) (७।८८-१) (९।४-२६) (१०।४-१) (४।६-१ (७-१)। चातनगणः—(२।१८-३:५) (२।२५) (१।१६:२८) (४।३६) (५।२९) (८।३) (६। (३२:३४; ३७) (४।२०) (१।७:८) (२।१४:१८-३४:३७-२५)

कृत्यागणः—(२।११) (४।४०:१७:१८:१९) (५।१४।३१); (८।५); (१०।१); (७।६५)

तक्मनाशनगणः—(१।१२-१:२५:१) (२।८:९:१०) (३।७:११) (४।२८) (५।४:९:२२) (६।२०:२६:४२:८५:९१:१२७) (७।११६) (५।४।१०)

गणकर्मगणो-भैषज्यश्चः—(२।७:२५) (६।३५:१०९:१२७) (८।७)

ग्रामादि स्वास्त्ययनगण-ग्राम-नगर-गृह राष्ट्र स्थानादिस्वस्त्ययन (६।१६-४)

दुस्वप्ननाशनगणः—(१०।३-६) (१६।५-१:३) (३।३) (४।१७-५) (६।४५-४६) (७। १००:१०१:१०८) (९।२-३)। पवित्रगणः—(६।१९-१:६२-१:५१-१)

पत्नीवन्तगणः—(६।३३) (७।२:६:७:१:१६) (७:६) (७।४६)

पाप्मगणः—(३।३१) (४।३३); (६।२६)। पाप दर्शने शान्तिगण (१।२६-१) (४।३३-१) (२।४-१)। पापलक्षणा स्त्री तस्याः शान्तिः—(१।२८-१)

पिप्पलादिगण (१।६) (१६।६:१०।११) (७।६९) । पापिष्ठी (१।१८)

वर्चसगण:—(२।१६-१) (६।६९।१) (९।१-१) (३।२२-१) (६।३८-१; ३९-१) (१२।१-२३) (१।१:९-१) (२।१) (९।१-११) (१४।१-३५:३६) (२।१३) (१।१६-१। ११३) (१३।१) (२।१९)

व्याघ्र. चौर. वृक्: चरक: सिंहादिवन्यपशुभये स्वस्त्ययनगण:—(४।३-१) (४।१-१७; २८-१) (५।६-१) (११।२-१; १६:९) (३।२६) (५।६-३)

१. मातृनामा (मातृगण):—(२।२-१) (६।११-१) (८।६-१) (१४।२०)

पौष्टिक ऋच: (सलिलगण) (१।४-१.५-१:६-१) (१।१-१७.१४-१:१५-१:१९-१) (२।२४-१) (३।५-१:१०-१:१७-१) (३।२४-१) (४।१-१:२१-१:७-१:३८-३) (५।१-३:२-१:३-१) (५।२६-१:२७-१:६-१) (५।१५-१:१९-१) (६।१५:७८-७९) (४-१:३३-१) (६।१४१-१; १४२-१:१०२-१) (७।३८-१:३९-१:१४-१:६०-१:१११-१) (८।५-१) (९।४-१) (१०।६-१) (१२।१-३७:३८-१:२१-१:१३-१)

अथर्व परिशिष्टोक्त

अथपुष्टिकामन्त्रा (सलिलगण) द्वितीय

(१।४-१ ५-१ ६-१) (४।१-१ २२-१) (५।१५-१; १९-१) पुष्टिका ऋचा (कौ०७।१४) कौ० (२४।२२) व १८।२५)

(१।१; ४-१ ५-१; ६-१; १५-१; १९-१); ३३-१)। (२।२४-१) (३।५-१; १०-१; १७-१ २४१) (४।१-१; २१-१, व ७ ३८-५) (५।१-३; २ १; ३-१।२६-१; २७-१) (६।४-१; १५-१ ३३-१; ७८-१; ७९-१; १०२-१; १४१-१; १४२-१); (७।१४१--३८-५ १६०-१-१११-१) (८।५-१)(९।४-१) (१०।६-१) ; (१२।१-ब २१-३८); (१३।१-२५); (५।६-१); (९।९-१); १३।२-१) (१६।३-१ १७।१-१ व ५)

कौशिक सूत्रोक्त

वस्तुतस्तुपुष्टिका ऋचा:—(१।४-५:६) (१।१) (४।१) (४।३३-१) (५।१५:१९)

ये ७ ही हैं। वास्तुगण (सम्प्रोक्षण) (६।१०१) (१२-१) (२।२) (६।३:७३:९३) (५।९:१०:१७) (७।४१:६२) (१।३१) (३।१२) (५।९-१ से ५) (८।६-१)

यक्ष्मनाशनगण:—(१।१२:७:२३:२:३३) (३।७-३१) (६।१०:२०:८५:९१:१२७) (९।८) (१२।२) (१९।३८) (२०।९६)। रक्षोहण अनुवाक्:—(१।७-१:८-१:१६-१:२६-१।२८-१) (२।१४-१:१८-१:२५-१) (३।१:२) (४।२०-२:३६:३७) (५।२९) (६।३२:३४) (८।३)। रौद्रगण:—(६।१३) (४।३१:३२) (४।१-१) (५।६-१) (४।२८-१) (११।२-१) (११।६-९)। विश्व कर्मवगण:—(१।१)

वन्ध्यात्वशमनगण:—(२।४:५:३:१४:१:१०:१७:७:३६-१:३६-७)

लघुशान्तिगण:—(१।१:४:५:६) साविती, शन्नोदेवी आद्यन्त (७।६६-६७:६८-६९) (१।१६) (६।१०)। वृहच्छान्तिगण:—(४।२३:२४।२५:२६:२७:२८:२९; ३३) (७।५२:६६:६७:६८:६९) (६।१९:२३:२४:५१।५७:३:५९:१:६१:६२:९३:१०७)। कापिञ्जल स्वस्त्ययनानि:—(कौ० सू० के० ४६ सूक्त ५३, ५४)

संरम्भाणि सूक्तानि:—(४।३१:३२। शर्मवर्मगण:—(२।३६-७:३६-१) सम्प्रोक्षण-आचमनीय

ऋचा:—(६।१०) तीन ऋचायें। शान्तिजल:—(१।१:४:५।६।३३) (६।२२:२३:२४:५१)। स्वस्त्ययन-गण:—(१।२७) (६।३:४:७:१३:२४-५:३७:४०:६३) (७।३१:८५:८६:६१:६२) (६।११७:११८) (७।५:१५) (१६।२०-४) (८।५-१६) (१२।१-११:१२:३१:३२) (७।८५:८६:११७:११८) (१६।६८) स्वस्तिवाचनानि।

अथर्वमन्त्रों का श्रौत कर्म में विनियोग

अथर्ववेद में प्राय: श्रौतकर्मोपयोगि विषय अल्प रूप में है। कहीं-कहीं यज्ञ वर्णन है। (७।६७;; १६०१;५८;५६) कहीं-कही वेदीवर्णन है। (७।१६) हविवर्णन (७।१८) अथर्व मे है किन्तु उसका परोक्षरूपी है न कि साक्षात्श्रौत कर्म सम्बद्ध। वैतान सूत्रानुसार (६।४७;४८) सूक्त यज्ञ अग्निष्टोमादि के हैं। इनका तीनों ही सवनों मे विनियोग है। (५।१२;२७) आप्रीसूक्त में पशुबन्ध में विनियोग किया है। इस प्रकार संस्त्रावहवि; यशोहवि; नैर्हस्तहवि:; भूतहवि:; समानहवि: आदि श्रौत कर्मानुबन्धित्वरूप में वर्णन है।

अथर्ववेदीय कर्मज व्याधि निवारण-विधान

अथर्ववेद ऐहिक आमुष्मिक, समस्त पुरुपार्थ चतुष्ट्य परिज्ञान के उपायों का अभूत कारण है।

शान्तिक पौष्टिकादि कर्मो में संहिता के मंत्रों से होम, जप, उपस्थान, अवसेचन, अवमार्जनादि का विनियोग होने से संहिताविधान का नाम कौशिक सूत्र है। कौशिक सूत्र में क्रमश: स्थालीपाक विधान से दर्शपूर्ण मास विधि आदि का सविस्तार विधान है। ये ३ प्रकार के कहे गए हैं। १. नित्य, २. नैमित्तिक ३. काम्य। उनमें जातकर्मादि नित्य है। दुर्दिन, अशनि निवारण, गौ अश्वादि शान्ति तथा अद्भुतादि ये नैमित्तिक मेधाजननादि, ग्राम सम्पदादिक काम्य कर्म है। उनमें नित्य एवं नैमित्तिक आवश्यक अनुष्ठित होने से, न करने में पाप भी है। काम्य का इच्छानुसार करना कहा है। इनके करने के अमावस्या, पौर्णमासी, पुष्य नक्षत्र, तिथि वार चन्द्रादिका उल्लेख है। परन्तु अद्भुतादि नैमित्तिक तथा जातकर्मादि नित्य कर्मों मे काल की प्रतीक्षा नहीं करे।

आभिचारिक कर्म ग्रामसे दक्षिण दिशा, एकान्त, कृष्णपक्ष कृत्तिका नक्षत्र में करने से विशेप फलप्रद कहे है। इनमे कर्मोपयोगी वस्तु दक्षिण दिशा की ही लें, दक्षिणाग्नि (आङ्गिरसाग्नि) का प्रयोग करें। पाक कर्म से समस्त आथर्व कर्म समझें। ये २ प्रकार के कहे हैं।

१ आज्यतंत्र, २ पाकतन्त्र। जिसमें प्रधानहवि आज्य हो; वह आज्यतंत्र कहा है। जिसमें चरु पुरोडाशादि हों, वह पाक तन्त्र कहलाता है।

आज्य तंत्र विधि

प्रथम गुरु इष्ट का ध्यान करे "येत्रिषप्ता" (१।१) "अव्यसश्च" (१६।६५) वेद भगवान को "स्तुतायस्मात्" (१६।७२) से परमब्रह्म तथा "मयावरदा" (१६।७१) से वेदमाता गायत्री का जप करें: वर्हिलवनं वेदि, उत्तरवेदि; अग्नि प्रणयन, अग्निस्थापन, व्रतग्रहणं, पवित्रकरणं, पवित्री से इध्मप्रोक्षण, इध्मोपसमाधान. वर्हिप्रोक्षण, ब्रह्मासन, ब्रह्मस्थापन स्तरण, स्तीर्ण प्रोक्षण, आत्मासन, उदपात्र स्थापन, आज्य संस्कार, स्रुवग्रहण, ग्रह ग्रहण, पुरस्ताद्धोम:, आज्य होम यहाँ तक आज्य तंत्र है। तदनन्तर प्रधान होम (यथा संकल्प) तदनन्तर उत्तर तंत्र है।

उत्तर तन्त्र में अभ्यातान, पार्वण होम, समृद्धि होम, संनति होम, स्विष्टकृत होम; सर्वप्रायश्चित्ति होम, स्कन्न होम "पुनर्मैत्वियम्" (७।६६) इससे होम, स्कन्न होम, संस्थिति होम, चतुर्गृहीत होम, वर्हिहोम, संस्राव होम, विष्णुक्रम, व्रत विसर्जन, दक्षिणादान ब्रह्मोत्थापन अवभृथ स्नान आदि।

पाकतन्त्र में अभ्यातान का अभाव ही शेष है। अन्य सब समान है।

विधि वर्णन

सहिताध्ययनान्तर ही विधि का अधिकार है। संहिता विधि में शान्तिक, पौष्टिक, अभिचारिक, अद्भुतादि कर्मों का उल्लेख है। ये तीन प्रकार के कहे हैं। १. विधि कर्म २. अविधि कर्म ३. उच्छ्य कर्म। इनकी तीन ही प्रामाणिक विधियाँ हैं। १. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. शब्द। कौशिक, अथर्व परिशिष्ट तथा दारिल, यही आम्नाय, सविधि वेद प्रत्ययः; तथा गोपथ ब्राह्मण, प्रमाणकः। आम्नाय प्रत्यय ये ही विशेषतः अभ्यास में है। ऐसा शिष्ट वचन है। शिष्टों द्वारा सर्वदा, संयोग से होने वाले आम्नाय कहे है। आम्नाय में ब्राह्मण (मन्त्रों) में निर्दिष्ट है। कर्मकर्त्ता मन्त्र का विनियोग करे। जो संहिता विधि में हो कर्म करें। वैतान सूत्र में मन्त्रों के अनादेश में लिङ्ग अर्थात् मन्त्र और विधि हो उसी प्रकार करें। उसके अभाव में सम्प्रदायोक्त विधि करें। विधि कर्म, अविधि कर्म, उच्छय कर्मो की सर्वथा परिभाषा में विशेष मेधाजननादि से पिंड पितृ यज्ञान्त विधि कर्म कहे हैं। मधुपर्कादि से परब्रह्म (अध्यात्म) पर्यन्त अविधि कर्म हैं। पाक यज्ञादि विधि कर्म सूक्त से विनियोग कर पश्चात् ऋचाओं के विनियोगान्त उच्छ्य कर्म कहे हैं। इन त्रिविधि कर्मों में १ आज्य, २ समिधा, ३ पुरोडाश[1], ४ पय, ५ जलओदन[2], ६ पायस, ७ पभ्रु[3], ८ व्रीहि, ६ यव, १० तिल, ११ धान, १२ करम्भ[4], १३ शष्कुलि ये १३ हव्य पदार्थ कहे हैं।

यज्ञ दो प्रकार के हैं—देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, देव याग प्राङ्मुख हो दक्षिण यज्ञोपवीत के साथ करें। पितृयाग अपसव्य हो। देवयाग, पूर्वोत्तर, पितृयाग, दक्षिणाभिमुख हो करें। देवयाग में प्राक्, उदग तथा पितृयाग में दक्षिणपश्चिम विहित है। स्वाहाकार; वषट्कार से देवताओं को स्वधाकार से नमस्कार, प्रदान पितृगणों के लिए विहित है।

मीमांसा में स्मृतिपाद में कल्प सूत्राधिकरण में १. नक्षत्रकल्प, २. वितानकल्प, ३. संहिताकल्प ४, आङ्गिरस कल्प तथा पञ्चम शांतिकल्प, ये वेद तुल्य तथा अन्य कल्प स्मृति तुल्य कहे है। जैसे ब्राह्मण अन्यार्थपरक कहे हैं वैसे ही मन्त्र भी अन्यार्थपरक है अर्थात् मन्त्र भी अन्यार्थपरक होते हैं। जैसे "अग्नि ब्रूमो" (अ० वे० ११।६-१)

ब्राह्मण (गोपथादि) में उल्लिखित मन्त्र ब्राह्मण लिङ्ग मन्त्र है। जहाँ देवतोक्त मन्त्र न हो ऋषि, या आचार्योक्त - यथा कौशिक सूत्र, वैतान सूत्र, छान्दोग्य, परिशिष्ट, कर्मप्रदीप के मन्त्र तथा "ॐ भूर्भुवः स्वर्जन दोऽम्" ये समस्त व्याहृतियाँ श्रुतिः कहलाती है। प्रणवादि में "ॐ" मन्त्र मूल स्मृतियों में वर्णित है। आम्नाय के अभाव में "मनु" आदि स्मृतियों में वर्णित विधि का प्राविधान है। अ० प० संहिता विधि मे है। जहाँ आम्नाय का अभाव हो वहाँ स्वशाखोक्त विधि सम्प्रदायानुकूल करें। अर्थात् संहिता विधि, आम्नाय, आचार, सम्प्रदाय के विस्मरण होने पर ब्राह्मण शिक्षानुकूल सम्प्रदाय की रक्षा करें। उपर्युक्त देवयज्ञों में शान्तिक, पौष्टिकादि है।

---

१. **पुरोडाश**—चावल के आटे के बने लड्डू या वडे ऋग्वेद (३।२८-१); (४।३२-१६)। मै० सं० (३।१०।२) ऐ० ब्रा० १।१।२।६ अथर्व १०।६।५।

२. **ओदन**—चावल पानी (दूध चावल। अ० वे ४।१४-७) श० ब्रा० (२।५।३।४)

३. **पभ्रु**—सोमरस में दही, दूध, घी में मिले पदार्थ अर्थात् पञ्चामृत का नाम है। ऋग्वेद (६।२३।३); ६।८२।२, ६।६१।१३ (८।२।३)

४. **करम्भ**—यव के सत्तू में दही, घी, सोमरस या मधु या शर्करा, पानी दूध में मिले पदार्थ का नाम है। ऋग्वेद (१।१८७-१०, ३।५२-१, वाज० स० १६-२१; तै०स (३।१।१०।२; श० ब्रा० २।५-।२।१४)

पितृयाग में पितृमेध, पिंड, पितृयज्ञादि हैं। देवकर्मों को आसमाप्ति प्राक्उदक (ईशान); पितृकर्मों को दक्षिण पश्चिमाभिमुख हो कर करें। देवताओं का आवाहनादि तथा वेदि परिग्रहणादि में पितृश्वरों को दक्षिणहस्त अभिमुख होकर करें।

देवताओं को पर्वयुक्त वर्हि पितृगणों को समूल वर्हिहोम करें। (सांख्यायनीय कौशीतकी ब्राह्मण प० ६) के ब्राह्मण में पूर्णमासी दो, अमावस्या दो कही है। जो पूर्णमासी पूर्वकाल में हो वह अनुमति; पूर्णिमा अन्त में हो वह राका। तथा जो अमावस्या पूर्वकाल तिथि के हो वह सिनी वाली, जो तिथि के अंत में हो वह कुहू कहलाती है। इसी प्रकार व्रत, दान, जप, होम करें।

समस्त कर्मों में मधु (गुड़), लवण, माँस तथा माष उड़द वर्जित है। (कौ० १।१।३२) "ममाग्ने-वर्च" इस मन्त्र से समिधा लेकर व्रत ग्रहण करें। "व्रतेन त्वं व्रतयत" ब्रह्मचर्यादि का पालन कर भूशयन दीक्षा-काल में करना अनिवार्य है।

उपर्युक्त त्रयोदश हव्य पदार्थों के अतिरिक्त या इनमें भी सर्वत्र हव्य का विकल्प "पैठीनसी परि-भाषा" के अनुसार है। ऐसे ही गणों मे सूक्तों का विकल्प भी है। जहाँ औषधिगण कहे हैं वहाँ औषधियों का विकल्प कहा है। "हविषां त्वा जुष्ट प्रोक्षामि" से समस्तद्रव्यों जो कर्म में सापेक्ष्य हैं, अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण अनिवार्य है। सर्वत्र हविः का उत्पवन भी युवा कौशिक आचार्य मानते हैं। आज्यतन्त्रादि समस्त वैदिक कार्यों में वृद्धिश्राद्धसापेक्ष्य है। जहाँ उदक का प्रयोजन है वहाँ शान्तिउदक समझें। शान्तिउदक "एक या चारों ही" अपांगण—अर्थात् अम्बादिगण सूक्तों से अभिमन्त्रित करें। गणों का विवरण पृथक् दिया है देखें और समझें और उसी भांति प्रयोग करें। सूक्तादि से सूक्त का ग्रहण करें। स्रुवहोम में सर्वत्र तन्त्रविधि -वेदी-कुशकण्डिकादि अनिवार्य है; हस्त होम में विकल्प है। आज्यतन्त्र में धेनु-वस्त्रादि दक्षिणा, ब्राह्मणभोज-नादि आवश्यक है। यज्ञ में दक्षिणा अनिवार्य है। आज्यतन्त्र विधि में पूर्वतन्त्र, उत्तरतन्त्र पूर्वोल्लिखित है।

दक्षिणा (कौ० १।६।२२) "ना दक्षिणं हविः कुर्वीत यः कुरुतेकृत्यामात्मनः कुरुत इति ब्राह्मणम्"।

अथर्व संहिता विधि में जहां जहाँ "अश्नाति; या आशयति" वचन आयें वहाँ "स्थालीपाक शेष' समझें।

"चित्राकर्म" से चैत्री पूर्णमासी में "चित्रा" पुष्टि कर्म गुण विधि करे।

"भैषज्यानि" से—पूर्वोल्लिखित "ओषधि" तथा "भैषज्य" के सन्दर्भ में" व्याधियाँ दो प्रकार की कही गई हैं। १. आहारनिमित्ता २. अशुभनिमित्ता। उनमें आहारादि वैषम्य से उत्पन्न व्याधि के निवा-रणार्थ अथर्ववेद की ९वीं शाखा "आयुर्वेद" में ओषधियों के गुणादि का विज्ञान है। दूसरी—अधर्म समुत्थित

---

१. कल्पजा ऋचा —"पार्थिवस्यरसे देवा" (अ० वे० कां० २।२९।१-७) तथा "मा प्र गाम पथो" (१३।१।५९) हैं। इनकी अग्नि को प्रज्वलित करते समय उपस्थान (जप) करे। यदि हवन करते हुए अग्निप्रमाद से शान्त हो जाय तो पुनः अग्नि सन्मुखीकरण आदि न करें।

अपितु उपरोक्त (२।२९।१); (१३।१।५९) ऋचाओं का जप करें। अभ्युध्द्गृतोहुतोऽग्निःप्रमादादुप-शाम्यति।

मथिते व्याहृतीर्जुहुयात्पूर्णहोमौ यथ ऋत्विजो ॥ (कौ०७३।४) कैय्यव अग्नि उपस्थान में कल्पजा ऋचायें।

युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्ये नहव्यायास्मै वोढवे जातवेदः।
इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम वलिहृतो वयंते॥

दक्षिण जंघा को नीचे कर (अवनम्) उदपात्र (प्रोक्षणी) अभिमन्त्रित कर छींटें दें।

व्याधियों के लिए यह कौशिक विधि कही है जिसमें "भैषज्य" मंत्र ऋषि. देव. बल की सामर्थ्य से व्याधि की स्थायी निवारण विधि है।

"तृपप्तीय" से "ये त्रिपप्ता" (अ० वे० १।१) समझें।

"उदपात्रम्" से उदक संस्कार समझें।

"सम्भारमाहरति" से निवासस्थान से घट. कांस्यपात्र आदि लें। परन्तु "वानस्पति" आदि गौओं के चरने के स्थान दूर जंगल से लें-ऐसा समझें। ये सूर्योदय काल में निवास-स्थान से पूर्व या उत्तर दिशा से लें।

"अरण्य देश" जहाँ ग्राम शब्द सुनाई न दे ऐसा स्थान समझें (एकान्त) नित्य. नैमित्तिक. काम्य प्रयोग उपरोक्त स्थान में ही करें। रुद्रभाष्य मत है कि सर्व होम समापनान्त "अवभृथ" स्नान अनिवार्य है।

व्याधित स्त्री को पुरुष; व्याधित पुरुष को स्त्री—व्याधित को आगे कर शिर से पैर पर्यन्त अभिमन्त्रित जल से छीटे दें।

निशा कर्म से:—अहतवसन अर्थात् स्नानान्त नित्य कर्म कर एक ही वस्त्र पहिने और उसी से शरीर आच्छादित करे। तब संहिता विधि करे। समझे।

स्वस्त्ययन परिभाषा:—होमकर प्रतिदिशा में उपस्थान कर बलिदान करना है। प्रोक्षण, आचमन, पर्युक्षण:—तीन बार करें।

शांति कर्म में शांति सम्भार लें। अभिचार कर्मों में-आङ्गिरसकल्पोक्त रौद्र अर्थात् दक्षिण दिशा में मण्डप, दक्षिणाग्नि, दक्षिण से जल, वानस्पति आदि लें।

शान्ति वृक्षों:—पलाश, उदुम्बर, जामुन, कत्था, तिलक, अर्जुन, शिरस, वेतस वन्ना, कुटक, बिल्व, शाल्मलि, धायटी, मदन, (अपटा) तिनिश पूतद्रु (देवदारु) चीपद्रु (एक बालिश्त का तीन पत्तों का श्वेत पलाश)

शान्त औषधियां:—चीता, (बला. अतिबला. महाबला) शमी (छौकर) शाम्यवाक (अपामार्ग सदृश स्निग्धफल की छोटी पुष्प गिरने पर वासकृति जैसी)। शृंगालवंशक. तलाश—(मालिका) ताड़

पलाश. वास (पियावासा) अड़ूसा- सदंपुष्या (सितीवार अपामार्गसदृशमहान्) त्रिसन्ध्या भी कहते हैं। दर्भ, अपामार्ग, पाठा, आम्रादि पत्र, अन्नादि। बामी की मिट्टी, तीर्थों की रजें, यज्ञियभस्मै.

इनमें-आथर्वणी, तथा आङ्गिरसी दो प्रकार की गोपथ ब्राह्मण (१।२।१८) में कही हैं। आथर्वणी का उल्लेख शौनक (१।८) आङ्गिरसी का वैतान सूत्र (५।१०) में वर्णन है। साम्य वाक् (काकजघा सदृश होती है)।

शकधूम:—यज्ञकर्म में दक्ष, वृद्ध, अनुभवी, ब्राह्मण

शीश से नदी फेन। रस—से दधि, मधु, घृत, उदक-समझें।

मिश्रधान्य से—कृष्ठाधान (साठी चावल) जौ, गैहूं, उपवाक (इन्द्रजौ) तिल, (प्रियङ्गु) कागनी, समझें।

ये निर्दिष्ट वस्तुएँ उपलब्ध न होने पर इनके प्रतीक के प्रयोग का उल्लेख है। मात्रा कर्म, कार्य, पात्र, स्थान-भेद से न्यूनाधिक हो सकती है ऋषियों का संहिता कर्म में विनियोग करें; मंत्र के देवता तथा छन्दों का यथोक्त कर्म में विनियोग करें यथा. जप. उपस्थान. मार्जन. स्नान होम बलि भैषज्य कर्म, स्वस्त्ययनादि शान्ति कर्म या अभिचारादि कर्म में अनिवार्य समझें—

अथर्ववेद का मूल्यांकन

अथर्ववेद अन्यवेदों की भांति पवित्र ईश्वरीय वाणी है। इसके अधिकांश सूक्त उदात्त, उदार, धार्मिक एवं आध्यात्मिक है। अथर्ववेदीय अभिचार कर्मों के दो पक्ष है—वे एक व्यक्ति के लिए यदि लाभदायक हैं तो दूसरे व्यक्ति के लिए हानिकारक है। अथर्ववेद का समग्र वर्ण्य विषय द्वन्द्वात्मक भावों से भरा हुआ है। अथर्ववेद हर दृष्टि से पावन, पुनीत और जनकल्याणात्मक है।

कल्पजा ऋचा (व्याहृति होम में ग्राह्य)

वृष्णे वृहते स्वर्विदे अग्नये शुल्क हरामि त्विषी मते।

स न स्थिरा न्बलवतः कृणोतु ज्यो क्वचनो जीवातवेद धात्वग्नये स्वाहा। उत्तर पूर्वार्द्ध से आग्नेय में घृत होम करे।

दक्षिणपूर्वार्द्ध में-सोमाय—त्वं सोम दिव्योनृचक्षाः सुगाँ अलमभ्यं पथो अनुख्यः।

अभिनोगोत्रं विदुषा इव नेषोऽछानो वाचमुशती जिगामि-सोमाय स्वाहा।

स्वाहा प्रत्येक ऋचा के अन्त में उच्चारण करना अनिवार्य है।

अथर्ववेद (कां. ११।५९-१) से चार आहुतियाँ दें। आज्यमात्र की आहुतियां ये हैं।

उत्तर पूर्व के अर्द्ध-"ईशान" तथा "आग्नेय" में ये आहुतियां दें। यदि उत्तर में आज्याहुति दी तो उसे राक्षस ग्रहण करेंगे, सोम के दक्षिण में पितृ देवता। इनके मध्य में देवलोक है इसीसे ईशान और आग्नेय में ही आहुति दें।

(१) शरीर आत्मा का भोगायतन, पञ्च महाभूत विकारात्मक है। (२) इन्द्रियां भोग का साधन है (३) मन अन्तःकरण हैं। (४) आत्मा मोक्ष या ज्ञान प्राप्त करने वाला है। इन चारों का अदृष्ट कर्मवश जो संयोग होता है वही आयु है। नित्य प्रति चलने से कभी एक क्षण भर भी न रुके इसे आयु कहते हैं।

ओपं "रुज" धयति औषधिः वेदना दूर करने वाली वस्तु अथवा ओषोनामरसः; सोऽस्याधीयते "ओषधिः"। अर्थात् जिसमें रस रहता है।

औषधि :—दीपन-पाचनादिगुणों वाली वस्तुयें "औषधि" नाम से काश्यप संहिता में वर्णित हैं। काश्यप संहिता औषध-भेषजान्द्रियाध्याय।

हवन, व्रत, तप, दान रूपी शांति कर्म का नाम भेपज कहा है। ये औषधि तथा भेपज दोनों ही उपरोक्त आयुष्यकर्म की मूल है। जो वेदों में वर्णित है इनका अथर्व वेद में विशद वर्णन है। "ऋग्यजुः सामथर्व वेदाभिहितैः परैश्चाशीर्विधानैरुपाध्यायाभिषजश्च सन्ध्योरक्षां कुर्युः (सुश्रुत सू० २०।२७)

अथर्ववेदीय चिकित्सा

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।

ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राणजिन्वसि।

१ आथर्वणी २ आङ्गिरसी ३ दैवी ४ मानुषी ये चार प्रकार की चिकित्सायें वेदों में वर्णित हैं। जिनमें १-आथर्वणी-जप; यज्ञ; दान स्वस्ति वाचन, अवसेचन; अवमार्जन, स्नान आदि से सम्बद्ध हैं।

२-आङ्गिरसी=मानसिक शक्ति से सम्बन्धित है।

३-दैवी:=वायु, जल, पृथ्वी सूर्य किरण आदि प्राकृतिक है।

४-मानुषी=औषधियों से सम्बन्धित है। औषधियाँ आयुर्बल बढ़ाती है।

(चरक सू० अ० ३०।३१); मनु (११।३३); रसयोगसागर उपोद्घात् पृष्ठ ५९

फलवाली औषधियों का नाम वनस्पति है। जिनमें फूल दृश्य नहीं होता। गूलरादि है।

जिनमें फूल के उपरांत फल आयें वे बानस्पत्य हैं। (आम, नारङ्गी)

फल के उपरांत जो नष्ट हो जावें वे औषधियां है (मूंग, तिलादि)

प्रतानवाली-लताएँ वीरुध कहलाती है (मालती, चमेली आदि)

अपामार्ग :—समस्त विषादि तथा दन्त आन्त्रिक रोगों में सर्वश्रेष्ठ है (च० सू०२५)। पुत्रोत्पत्ति में भी इसकी बालको दुग्ध के साथ पीस कर ऋतुमती को देने से गर्भधारण में समर्थ है यही नहीं प्रसव में भी (शोढल ६१३)

पृश्निपर्णी (पिठवन) रक्तचाप, रक्तस्राव, रक्तहीनता; रक्तास्तम्भन तथा निर्बलता, अपस्मार; उन्माद आदि में सर्वोपरि है। च० सू० ३२।२१

व्याधियों की शांति भेषज करने से पूर्व; हमें अथर्ववेद, प्रश्नज्योतिष, हस्तविज्ञान, स्वरोदय, वास्तु-विज्ञान, धर्मशास्त्रीय तथा चरक-वाग्भट्ट, वाराही संहिता, नारद संहिता आदि से व्याधियों का पूर्ण निदान करना आवश्यक है। निदान करने से पूर्व रोगी को बिना कुछ खाये-पिये, पत्र पुष्पादि के साथ योग्य उप. युंक्त विषय के ज्ञानी की सेवा में विनम्रता से प्रश्न करना चाहिए। धीर, शांत, विधिवेत्ता के द्वारा बताए व्याधि के मूल कारणों के लक्षणों पर गम्भीरता से मनन करें कि प्रतिशत अधिकतम चिह्न (लक्षण) व्याधि के यथावत हैं या नहीं ? यदि व्याधि का ठीक निदान हो, तब उपचार जो सम्भव हो, शास्त्र निर्दिष्ट हो, करें दोनों ही कर्त्ता और कराने वाले (आचार्य व यजमान) लोभी न हों, ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करें उपर्युक्त विधि में प्रमाद न करें, निष्ठा, विश्वास तथा लग्न से विधि को पूर्ण करें, निश्चय लाभ होता है।

उपचार विधि :—अथर्व संहिता के मन्त्रों को ऋचा कहा गया है। ऋचाओं का समुदाय सूक्त हैं। विविध कार्यों के लिए विविध सूक्तों का समुदाय "गण" के नाम से कहा गया है। कार्यकाल के अनुसार उपचार सामिग्री का और क्रिया का भेद हो जाता है; परन्तु वे ही ऋचायें या गण अनेकों कार्यों में अलग२ विनियोग के अनुसार प्रयुक्त किये जाते हैं। समस्त कार्यों में शान्तीय वृक्षों की हरीशाखायें, शांति औष-धियाँ, अनेक नदी, नद, सरोवर, स्रोतों के पावन जल, पावनमृत्तिकायें, यज्ञीय भस्में, पुष्प आदि उपयोग में आते हैं।

समस्त वैदिक कार्यों में शांति जल घट में पूर्णकर अभिमन्त्रित कर उसी से यज्ञीय कर्म किए जाते है। स्थान आसन शुद्धि के उपरान्त कार्य प्रारम्भ होते हैं। समस्त शांति कार्यों में सव्य होकर, उत्तरपूर्वा भिमुख बैठा जाता है इन्हीं दिशाओं की टहनियाँ व इन्हीं दिशाओं के लाए जल तथा जातवेदा अग्नि का प्रयोग होता है। परन्तु अभिचार कर्म, कृत्यापरिहरणादि आसुरी कर्म इससे विपरीत अर्थात् अपसव्य होकर दक्षिणाभिमुख हो, दक्षिण पश्चिम के लाये जल टहनियों से तथा दक्षिणाग्नि (आङ्गिरसाग्नि) का प्रयोग होता है। यातुधान, असुर, नैऋति कृत्यादि दोष में निशाकर्म श्रेष्ठ होता है। निशाकर्म में एक ही वस्त्र को पहिन कर उसी को ओढ़कर या ढककर कार्य करना चाहिए।

समस्त कर्मज व्याधि आधिदैविक, भौतिक, आध्यात्मिक व्याधि की शांति लघु शांति या बृहच्छा-न्तिगण से स्वक्षमतानुसार की जाती है। समस्त उन्माद (भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा, यातुधान, राक्षस, ब्रह्मग्रह गृहीत का उपचार चातनगण, अम्बादिगण, अभयगण, अपराजितगणों से किया जाता है। कृत्यादि दोषों की शांति कृत्यागण से तथा उपरोक्तगणों से की जाती है। समस्त ग्राम, गृह, नगर, पत्तन, राष्ट्रादि की सुरक्षा, रक्षोहणअनुवाक् से की जाती है। शत्रु, परराष्ट्र आदि के लिए कुचक्रों का निराकरण समस्त भय निवारण इन्हीं गणों से होता है। संग्राम या वादविवाद, मल्लयुद्ध आदि अपराजित गणसे होते

हैं। अपमृत्यु, अकालमृत्युभय-आयुष्यगण से शांत किए जाते है। स्थावर जङ्गमविष व विषैले जन्तुकाशमन-गृहिणी ऋचाओं से होता है। गण्डमाला (कैंसर) विषबेल, आन्त्रिक यक्ष्म, राजयक्ष्मा समस्त उल्टे, अधोमुखी फोड़ों, आन्त्रिक शोथ (प्लूरसि) जलोदर आदि की शांति 'यक्ष्मनाशनगण' से की जाती है। श्वेत, पलित कुष्ठ रक्तदोष कण्डू, छाजन, दद्रु आदि कुष्ठनाशनगण तथा समस्त विषैले कीटाणु की शांति तक्मनाशनगण से होती है। भवन निर्माणादि में भूगर्भ में हड्डी आदि भूगर्भदोष, निर्माणजन्यदोष, अन्यवास्तु दोषों की शांति वास्तुगण से होती है। समस्त अतीत, आगंत, अनागत, दृष्ट, अदृष्ट, श्रुत, अश्रुत असाध्य दोषों की शांति रौद्रगण से होती है। समस्त पाप, शाप, पितृ, मातृकुलजनित दोषों, नपुंसकता, बन्ध्यापन, गर्भस्राव, गर्भदोष निवारण, मृतवत्सा, कन्यापत्य; आर्तव अनार्तवादि की शांति की अहोलिङ्गगण से होती है। वर्चसगण, शर्मवर्मगण से श्रेय प्राप्ति तथा स्वस्त्ययनगण-कल्याणकारी है इस प्रकार की ये निम्न शान्ति पृथक् पृथक् विधियां हैं।

(१) वैष्णवी, (२) ऐन्द्री, (३) ब्राह्मी, (४) रौद्री; (५) वायव्यी; (६) वारुणी; (७) कौबेरी; (८) भार्गवी, (९) प्राजापत्ती; (१०) त्वाष्ट्री; (११) कौमारी; (१२) बह्नि-दैवत्यै; (१३) मरुद्‌गणी; (१४) गान्धारी; (१५) नैऋतिकी; (१६) आङ्गिरसी (१७) याम्यी तथा (१८) पार्थिवी ये सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली शांति विधियाँ है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि से उत्पन्न भय, भूस्खलन, भूकम्प पूजनीय देवमूर्तियों का कम्प, नाचना, रोना, प्रज्वलित हो, पसीना आये हसें; बिना अग्नि - ही प्रकाश हो, राष्ट्र में अत्यन्तस्तब्धता हो! इन्धन बिना अग्नि प्रकाशित हो; तो ये ३ वर्षों में राजाओं द्वारा राष्ट्र को पीड़ित करने वाले हैं असमय पर वृक्ष पर फल लगें, दुग्ध या रक्त की वर्षा करें, या उनसे रक्तस्राव हो या रोयें। अतिवृष्टि, अनावृष्टि कुऋतु में लगातार ३ दिन से अधिक वर्षा हो, ये भयकारक हैं। नदी या सरोवर एक ग्राम से बहकर, दूसरे ग्राम से मिलें या जावें, विरस हों जलाशयों में विकृति हो जल के जीव सहसा अगणित संख्या में मरें। स्त्रियाँ असमय में (क्वारी) प्रसव करें, या समय में प्रजनन ही न हो, प्रसव प्रकारान्तर का हो, या एक से अधिक को एक साथ जन्मै, उल्टा प्रसव हो, हीनाङ्गी या अधिकाङ्गी, या विकृत (न पशु ही न मानव ही) प्रसव हो ये कुल ग्राम व राष्ट्र को हानिप्रद है। घोड़ी गौ, हस्तिनी, महिषी एक साथ २ बच्चे जन्में विजाति के जनमें, (घोड़ों; बछडा, गौ, ऊट) आदि ये विकृत को जन्मै तो अन्य शत्रु आदि कृत कुचक्रभय हो। उल्कापात हो पुच्छलतारा धूम्रकेतु दिखाई दें आकाश में भेरी बजे; बनैले जीव ग्राम में घुसें और ग्रामीण विलाव आदि ग्राम छोड़कर बन को भागें, नदियाँ ध्वनि करें, स्थल में जल, दिखाई पड़े, स्थल के जीव जल मे जल के स्थल में जायें ग्राम या राजद्वार में दिन में शिवारुदन करें प्रदोष काल में कुक्कुट बोलें दिन में गीदड़ रोयें घर में कपोत उलूक आदि का प्रवेश हो उलूक रोयें, काक कपोत उलूक आदि शिर पर बैठें या स्पर्श करें। या मधुमक्खियाँ शिर पर बैठें काक-मैथुन दृष्टिगोचर हो सहसा राजमहल की ध्वजा गिरें बाग या कूप सूख जावें या दुस्वप्न हो धूल धुआ या कुहरा सा दिशाओं को आच्छादित करे केतु-धूम्रकेतु उदय हो चन्द्र सूर्य में छिद्र दिखाई पड़ें पानी के घड़ों से पानी चुये ये सभी तथा अन्य ज्योतिष या धर्मशास्त्रों में महर्षियों द्वारा वर्णित अद्‌भुत घटनायें महाभय राजा व राष्ट्र तथा जीव मात्र को कम्पायमान करने वाले हैं इनकी शान्ति पिप्पलादि गण से होती है—गोष्ठग्राम, पशु व कृषि के समस्त विघ्न कृषि, पशु वृद्धि, अन्नवृद्धि चोर-वधिक जरक सिंह व्याघ्र आदि के भय ओलावृष्टि विद्युतपात टिड्डिभि, शरभ, चैंपा, रतुआ, आदि का भय—अग्निदाह आदि विघ्नों की शांति; सहसाधन, पुत्रादि का नाश, कृषि हानि पशु हानि, राजद्रोह राजभय, राजयोग, युवाजनों की मृत्यु, वैधव्यता उद्यम हानि, उद्योग हानि, स्त्रियों, गौ, घोड़ी, महिषी या बाग में बन्ध्यापन, अर्थात् पुत्र न

होना, हो तो नष्ट हो जाना आदि विघ्नों की शांति होती है । यात्रा के विघ्न नष्ट होकर—लाभप्रद होती है शत्रु मैदान छोड़कर भाग जावें, आधिपत्य स्वीकार करे, भौतिक समस्त आयुध व्यर्थ होते हैं, और अपने प्रयोगों से शत्रु नतमस्तक हो अनेक-अकल्पित व्याधियों में अपने को पाते हैं। इन प्रयोगों से मेधा वृद्धि, दिव्यज्ञान, यमादि बन्धनों से मुक्ति, ब्रह्मवर्च, स्वास्थ्य लाभ-पदलाभ, नष्ट राज्य, भूमि-धनलाभ, भगे स्त्री पुरुषों का पुनः आगमन, क्रोधी का क्रोध, ईर्ष्यालु की ईर्ष्या पति पत्नी द्रोह, उत्तम पति प्राप्ति, वर सुलभता से प्राप्ति, सौभाग्यवृद्धि दौर्भाग्यनाशन, होता है । ये प्रयोग परिवार-नियोजन तथा आठ प्रकार की वन्ध्याओं को पुत्र सुख लाभ कराने में समर्थ हैं । ये मन्त्र, सती, साध्वी का अपमान करने वाले, ऋषि, गौ, द्विज, गुरु पिता, माता, राजद्रोही, निरीह को अकारण सताने वाले, चोर-वधिक-आततायियों को घोर सङ्कट में डाल देने में समर्थ हैं। यही नहीं अपमृत्यु, अकाल मृत्यु प्राप्त, निकृष्ट नारकीय दुःखों से घोर कष्ट भोगने वाली आत्मायें प्रायः रुग्ण की वाणी पर आती है, यज्ञीय दीप ज्योति में दृष्टिगोचर होती है, अपने पुराकृत निकृष्ट कर्मों को प्रकाश में लाती हैं, उनकी उन दुःखों से मुक्ति होकर सुकृत लोकों की प्राप्ति एक रहस्य-मयी बात है । यह एक विशेष चमत्कारी, ऋषियों के तपोबल, मन्त्रबल व देवबल की ही अमोघ शक्ति है कि हस्ताभिमर्शन मात्र से जीव का कल्याण होता है ।

वेदों में ज्योतिष

ऋग्वेद, सायणभाष्य पूना; ऋग्वेदिक इण्डिया; ऋग्वेद ज्योतिष-सोमसुधाकरभाष्य; के अनुसार युगारम्भ माघशुक्ला प्रतिपदा को, और युग-समाप्ति पौष कृष्णा अमावस्या को बताई गई है । जब धनिष्ठा नक्षत्र के साथ सूर्य और चन्द्रमा का योग होता है तब युगारम्भ कहा गया है । धनिष्ठा में उत्तरायण और आश्लेषा में दक्षिणायन माना है । इसी क्रम में नक्षत्रों का नामकरण इस प्रकार है—

(१) जो (अश्विनी) (२) द्रा (आर्द्रा) (३) गः (पूर्वाफाल्गुनी) (४) खे (विशाखा) (५) श्वे (उत्तराषाढ़ा (६) हिः (पूर्वाभाद्रपद) (७) रो (रोहिणी (८) षा (आश्लेषा (९) चित् (चित्रा) (१०) मू (मूल) (११) शक् (शतभिषा) (१२) ण्ये (भरणी) (१३) सू (पुनर्वसु) (१४) मा (उत्तराफाल्गुनी) (१५) धा (अनुराधा) (१६) न (श्रवण) (१७) रे (रेवती) (१८) मृ (मृगशिर) (१९) घा (मघा) (२०) स्व (स्वाति) (२१) पा (पूर्वाषाढ़ा) (२२) अज (पूर्वाभाद्रपद) (२३) कृ (कृत्तिका) (२४) ष्य (पुष्य) (२५) हा (हस्त) (२६) जे (ज्येष्ठा) (२७) ष्ठा (धनिष्ठा) इन नक्षत्रों में ही इनके देवता कह दिए गए हैं ।

वेदांग ज्योतिष में ऋग्वेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद ज्योतिष प्राधान्य हैं । ऋग्वेद ज्योतिष के संग्रहकर्त्ता लगध ऋषि हैं । इसमें ३६ कारिकायें हैं । यजुर्वेद ज्योतिष में ४९ कारिकायें हैं जिनमें ३६ ऋग्वेद ज्योतिष की ही है । १३ नई है । अथर्व ज्योतिष में कुल १६२ मंत्र है । इनमें फलित की दृष्टि से अथर्व ज्योतिष महत्वपूर्ण है ।

१ अथर्व ज्योतिष (सुधाकर सोमकार भाष्य-काशी) अथर्व वेद (सायण भाष्य) ३ अथर्ववेद संहिता (हिन्दी भाष्य) के अनुसार प्रथम अथर्व ज्योतिष में फलित ज्योतिष की अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं । इसके मन्त्र ९०; ९१, ९३; १०३ १०४; १०५; १०६; १०७; १०८ में तिथि, नक्षत्र, वार, करण; योग, तारा और चन्द्रमा के क्रम से १; ४; ८; १६; ३२; ६०; और १०० उत्तरोत्तर गुण कहे हैं । और वार स्वामी भी कहे हैं । जातक जन्म नक्षत्र को लेकर सुन्दर ढङ्ग से फल कहा गया है । नक्षत्रों में ३।३ का एक वर्ग स्थापित कर फल कहा गया है । वर्ग क्रम :—

जन्म नक्षत्र	कर्म नक्षत्र	आधान नक्षत्र
१ सम्पत्कर	१ संपत्कर	१ सम्पत्कर
२ विपत्कर	२ विपत्कर	२ विपत्कर
३ क्षेमकर	३ क्षेमकर	३ क्षेमकर
४ प्रत्वर	४ प्रत्वर	४ प्रत्वर
५ साधक	५ साधक	५ साधक
६ निधन	६ निधन	६ निधन
७ मित्र	७ मित्र	७ मित्र
८ परम मित्र	८ परममित्र	८ परममित्र

वेदों में राशियाँ

बौधायन सूत्र :—"मीन मेषयामेंषवृषभयोर्वसन्तः" वर्णित है।

कौटिल्य के "अर्थशास्त्र में" वृहत्पाराशरहोराशास्त्र के ९७ अध्याय हैं, उसके उपसंहार क्रम की सूची में ग्रह, गुण, स्वरूप, राशि स्वरूप, विशेष लग्न, षोडशवर्ग राशि दृष्टि कथन, अरिष्टाध्याय, अरिष्ट-भङ्गादि में तथा आकाश में स्थित "भचक्र" के ३६० अंश अर्थात् १०८ भाग होते हैं। समस्त "भचक्र" १२ राशियों में विभक्त है। अतः ३० अंश अथवा ९ भाग की एक राशि होती है। यह ९ भाग अश्विनी आदि नक्षत्रों के ९ चरण होते हैं इन्हीं की जाति, रूप गुणादि वर्णित हैं।

इसी में ग्रह उल्का विद्युत, भूकम्प, दिग्दाह आदि का उल्लेख है, कृष्णपक्ष में चन्द्रमा, बलहीन मान, कर, अन्य ग्रहों के बलाबल से, कार्यों का निर्देश है महाभारत शांतिपर्व, अध्याय १८३; अनुशासनपर्व-अध्याय ६४; उद्योगपर्व, अध्याय १४३ के अन्त का भाग, वराहमिहिर आचार्य के "पंचसिद्धान्तिका" नामक ग्रंथ में "पितामहसिद्धान्त" के अनुसार निम्न विषयों का ज्ञान कर लेना अनिवार्य है। कर्मज व्याधि में कौन व्याधि है; यह ज्ञान दृढ़ता से होने पर "अथर्ववेदशौनकीयशाखोक्त" शांति विधियां शांति, फलप्रद होती हैं इनका ज्ञान इस प्रकार करें :—पाप; शाप; कृत्या, अभिचार, क्षेत्रीय व्याधि; नैर्ऋतिदोष, उन्माद; वास्तु-दोष; अद्युतदोष; देवयजनदोष देवहेडन (देवादितिरस्कारजन्य) अनज्ञात; अज्ञात अपराधजनित दोष ग्रह, नक्षत्रादि जनित व्याधियों में से क्या है।

अथर्ववेदीय शौनकीय शाखोक्त—"चमत्कारी" विशेषविज्ञान अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त ४ "अम्बयो-यन्ति"; सू० ५ "आपोहिष्ठा" सूक्त ६ "शंनोदेवी"; इन तीनों ही सूक्तों से यह ज्ञान करे कि

(१) अभीष्ट कर्म से लाभ होगा या नहीं ?
(२) युद्ध, विवाद, शास्त्रार्थ, द्यूत आदि में जय होगी या नहीं ?
(३) अनुष्ठित मन्त्र आदि कर्म से सिद्धि या अनुकूल फल होगा या नहीं ?
(४) रोगी ठीक होगा या नहीं ?
(५) नौकरी या व्यवसाय मिलेगा या नहीं ?
(६) नष्ट धन; चोरी गया पदार्थ; या भागा प्राणी प्राप्त होगा या नहीं ?
(७) परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे या नहीं ?

(८) वर-को वधू, कन्या को योग्य वर शीघ्र मिलेगा या नहीं ?

(९) पुत्र सुख होगा या नहीं ?

(१०) उत्तम वृष्टि होगी या नहीं ?

आदि २ प्रश्नों को फल के ज्ञानार्थ—दूध, ईंधन चावल, समिधा; कुशा की मुष्ठी तथा पाठा को विना गिने ही अभिमन्त्रित तीनों सूक्तों से करें, और चावल, खीर पकाकर फैलायें, और उन्हें क्रमशः गिनें, यदि संख्या सम (२,४,६) आदि गिनकर बैठे तो स्वकार्य; सिद्धि, विषम हो तो असिद्धि। इसी प्रकार युद्ध वेदी के परीक्षण काल में समिधा, कुशा आदि को अभिमन्त्रित कर-पश्चात गिनें—सम २; ४; ६ आदि हों तो जय; १:३:५ आदि हों तो पराजय समझे।

अथर्व कां. २. सू. १ "वेनस्तत्" से भी पृथक्—ज्ञान करें

१. पांच ग्रन्थियों से युक्त "वांस" की दण्डी; काम्पील वृक्ष की शाखा पृथक् २ या दोनों ही एक साथ अभिमन्त्रित करें, अपने अभीष्ट कार्य के चिन्तवन के साथ समतल भूमि में ऊपर की ओर खड़ी करें। यदि खडा हुआ वह दण्डादि अपनी निश्चित (जो पृथक् अपने संकल्प से निश्चय करे) दिशा की ओर गिरें तो कार्य सफल हो, विपरीत दिशा में गिरें तो असफल हो।

२. इसी प्रकार वाण को अभिमन्त्रित कर धनुष पर चढा, निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर फेंकें। यदि निर्दिष्ट लक्ष्य पर गिरे तो सिद्धि, अन्यत्रगिरे तो असिद्धि।

३. उत्पादक के पूर्णघट के जल को अभिमन्त्रित करें। उसमें से लोटा या कमण्डल में जल भरें; उसे अलग पात्र में पलट दे। पुनः उत्पादक के पूर्ण दूध को अभिमन्त्रित कर, उसी लोटा या कमण्डल में भरें, यह जल से न्यून या अधिक जैसा भी रहे, और पृच्छक ने न्यून या अधिक का जैसा पूर्व निश्चय किया हो—उसी अनुसार अर्थसिद्धि, कार्यसिद्धि समझें।

४. विना पूर्व गिने दाभों की मुट्ठी भरलें, अभिमन्त्रित करें। कार्य का चिन्तवन कर गिनें, यदि सम २/४/६ आदि हों तो अभीष्ट सिद्धि, १:३:५ आदि विषम हों तो असिद्धि।

कां. २ सू. १ "वेनस्तत्"

५. समिधायें अभिमन्त्रित अग्नि में छोड़ दें। यदि वे परिक्रमाक्रम से स्वतः ही जलें तो अभीष्ट सिद्धि अन्यथा जलें तो असिद्धि

६. खेलने के पाशा या गोठ विना गिने अभिमन्त्रित कर फेंकें। अपनी (पृच्छक) की अभीष्ट संख्या के निश्चित स्थान में गिरें तो सिद्धि।

७. हाथ की दो (ही) अङ्गुलियों को अभिमन्त्रित करे, चिन्तनकर बोधशून्य बालक से स्पर्श करायें। यदि अपनी निश्चित अङ्गुलि का स्पर्श करे तो सिद्धि।

८. २१ वार शर्करा अभिमन्त्रित कर विना गिने लें। कार्य का चिन्तवन करें, दो भागों में बाँटें। अपने उद्देश्यानुसार एक भाग को गिनें। यदि सम हों तो कार्य सिद्धि, अर्थसिद्धि। इन दो भागों में से एक ही को निश्चय करें।

९. नष्टधन-चोरी गये धन, वस्तु, पशु, मानव आदि के ज्ञानार्थ जलपूर्णघट या हल या गोटें (पाशे) कोई भी या सभी नवीन वस्त्र से ढाँककर अभिमन्त्रित करें और विना रजोधर्म (प्रारम्भ) की कन्या से कहें "उठाकर ले जाओ" वे जिस दिशा में लेकर चलें उधर ही नष्टधन, चोरी, अपहृतपशु, भागा व्यक्ति जो भी हो–समझें।

१०. विवाह से पूर्व क्वारी कन्या के सौभाग्यादि के लक्षण के लिये या पुत्र सुख के लिये या धन-धान्य समृद्धि या स्वास्थ्य के ज्ञानार्थ, उसीके पैरों की मिट्टी वामी की मिट्टी; चौरास्ता की मिट्टी और

श्मशान की मिट्टी चारों को इसीसे अभिमन्त्रित करें। कन्या से कहें इनमें से "किसी एक को उठाओ"। यदि पैर या वामी में से किसी को छुये या उठाये तो कल्याण। चौरास्ता की मिट्टी स्पर्श करे तो मरण श्मशान की स्पर्श करे, तो वैधव्य, मरणान्त कष्ट समझें।

११. कुमारी की अञ्जलि में जलपूर्णतया भर दें-इसीसे अभिमन्त्रित करें: और उससे कहें "इससे जिस ओर चाहो फेंक दो" यदि पूर्व को फेंके तो कल्याण (कौशिक सूत्र ५।१)

युद्ध विज्ञान

१ काण्ड ४ सूक्त ३० "त्वया मन्यो" सूक्त ३१ "यस्ते मन्यो" इन दोनों ही से सेनापति या राजा कोई एक अपनी और शत्रु सेना के बीच या शत्रु सेना का दूसरी ओर लक्ष्यकर बीच में बैठे और अपनी सेना को देखकर जपे इन्हीं दोनों से भङ्गपाश; मुंजपाश; कच्चे मिट्टी के पात्र अभिमन्त्रित कर शत्रु सेना की ओर फेंके। इन्हीं दोनों से जय पराजय के ज्ञान के लिये शर (मुंजशर वा वाण की लकड़ी के तिनके) सेना के बीच गाड़कर अभिमन्त्रित करें और अङ्गिरस, (चाण्डाल) अग्नि से जलायें जिस सेना में धुआँ छाजावे वह हारेगी।

२. युद्धयोग्य परीक्षा कर्म में "काण्ड ५ सूक्ता २ ऋचा ६" नितद्दधिषे" से जलपात्र को अभिमन्त्रितकर, योद्धाओं में से दो, दो को एक साथ राजा या सेनापति देखे। उस जल में जो दिखाई न दे उसे युद्ध में न भेजे।

का. ५ सू. ६ "ब्रह्मजज्ञानम्" से अभिमन्त्रित करें

१. रोगी ठीक होगा या नहीं? रोगी के शिर से पैर पर्यन्त ३ वार रस्सी नापकर अभिमन्त्रितकर अङ्गारों पर रख दें। यदि वे अङ्गारों पर रखखी ऊपर को उठें तो रोगी जीवित रहेगा ऐसा समझें। कौशिक सूत्र २।६

२. संग्राम में जय होगी या नहीं? अपने सेनापति या राजा के ३ ज्यों, पृथक् २ लें-उसमें १-अपने दल की; दूसरी मध्य में मृत्यु की तीसरी रज्जु पर सेना की सङ्कल्पित कर-अभिमन्त्रित करें और उन्हें पृथक् २ एक ही पास अङ्गारों पर रख दें। उन अङ्गारों पर रखखी मृत्यु वाली रज्जु जिस पर आवे, उसकी पराजय। जो मृत्यु के ऊपर चली जाय उसकी विजय; जो सामने जाकर पड़े उसकी भी जय समझे।

३. इसी कर्म में इसी सूक्त से अभिमन्त्रित कर एक रस्सी को अङ्गार पर रखदे तो पूर्ववत सैनिकों की जय, पराजय समझे। कौ. २।६ काण्ड १ सूक्त ५ के साथ बताये सभी कार्यों का ज्ञान करे। कौ. सू. ३। १ वहाँ कां. १ सू. ४.५.६ में कुछ कार्य ही उदाहरणार्थ दिये है इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रश्नों पर इसी प्रकार-कां. २ सू. १ "वेनस्तत्" तथा कां. ५ सू. ६ "ब्रह्मजज्ञानम्" से करे

स्वानुभूत :—यन्त्रलिखित अखण्ड ज्योति स्थापित करें, इन उपरोक्त सभी सूक्तों या किसी एक से भी अभिमन्त्रित करें, ज्योति की पूजा कर—प्रश्न करें तो दीप ज्योति में भी प्रश्नों के उत्तर अकारादि क्रम से आते है उन्ही से पूरा वाक्य होने पर, उत्तर पूर्ण हो जाता है।

ज्योति में उनके स्वरूप, स्थानादिभी, अवोधवालक और विना रजोधर्म प्रारम्भ हुई कन्याओं को दृष्टिगोचर होते हैं। ये कृत्या, अभिचार, नैऋति आदि समस्त कर्मज व्याधियों के ज्ञान की पुष्टि के सूचक हो जाते है।

अथर्व ज्योतिष के पूर्वोक्त क्रमानुसार, कन्यारजोदोष, का वर्णन अध्याय ८ (३) में है। इसका वन्ध्यापन, वैधव्य, पतिवियोग मे ध्यान रखना हितकर होगा—दोष और दोषों के ज्ञान की विधि वहीं है। ये गर्भाधान में हैं। अद्भुतदोषों का ज्ञान अध्याय ६ (१) पिप्पलादिशान्ति में दिये हैं। उन्माद के विषय का ज्ञान अध्याय ३ (१) राक्षघ्नेष्ठि में है। इसी में कृत्या—को इस प्रकार समझें। (१) आङ्गिरस

महार्षी प्रयुक्त कृत्या "आङ्गिरस कल्पाख्य सूत्र निर्माण) ; आसुरीकृत्या, स्वयंकृता, ईर्ष्यालु द्वारा कृत, आक्रोश (कोसा) क्रूर दृष्टि, परिविति, परिवेत्तृ, स्त्री, शूद्र, राजा, ब्राह्मण, कापालिक, अन्त्यज, शाकिनी, डाकिनी आदि द्वारा किये घातक प्रयोग—अथर्ववेद नां १० सू, १ के अनुसार उपयुक्त कृत्या क्षेत्र में पशुओ में पुरुषों में, धनादि के विनाश के हेतु प्रयोग की जाती है। कुशाओं में, श्मशान में या क्षेत्र की सीमा में गाड़ी जाती है, गार्हपत्य अग्नि मे की जाती है। अथर्व कां० ४ सू० शापरूप में, रस शोषणार्थ गर्भस्थ शिशु, मांस भक्षणार्थ, रक्त, मास, पेय, खाद्य, वाद्यासाधनों में, मिट्टी के पात्र में, नील, लोहित रूप में ; दुःस्वप्न, दौर्जीवन, दुर्वाचारूप, क्षुधामार, तृष्णामार, वहुभुक्रूप में ; मिश्रितधान्य में ; एकशफ, द्विशफ पशुओं में; शाला में सभा में; जुआ के स्थान में; सेना में; आयुधों में दुन्दुभि आदि में; कूप में, अग्नि में चौरास्ता, यज्ञिय वृक्ष या जल के निकट, वस्त्र काट कर, बाल काट कर, चुरा कर, ऋतु धर्म में ऋतु वस्त्र डाल कर चुरा कर, आदि २ विविध रूप से प्रयुक्त की गई "कृत्यागण" की भांति समझें।

वास्तु दोष भी जो "वास्तु शान्ति" में निर्दिष्ट है कल्याण में बाधक होते है जिन पर इनमें से, कोई बाधा होती है, उस पर औषधि, काम नही करती, रस नहीं बनता; नपुसकता, वन्ध्यात्वदोष, गर्भ-स्त्राव, रक्तस्त्राव, रजोधर्म की अनियमितता, योनिदोष, पीड़ा, वायु (गैस) हृदय व्यथा, शिरोरोग कटि (कमर) रोग आलस्यादि का होना, पागल की भांति हो जाना आदि लक्षण है। घर बार, छोड़ना, भयभीत रहना, विवेक शून्य होना, क्रोध का होना, डराना आदि लक्षण पाये जाते हैं।

क्षेत्रिय रोग—आनुवंशिक व्याधियां भी ऐसी ही होती हैं।

गर्भदोष :—(अ० कां. ८ सू. ६) स्त्री के बच्चे मरना, गर्भपतन होना, जन्मे हुए बच्चों को मारना, स्त्रियों के योनि आदि भागों में पहुंच पीड़ा करना, "हृदयताप रजोधर्म न होना, सन्तान न होना; पैदा होकर मरना, पापाचरण में प्रवृत्ति होना सोते, जागते पीड़ा देना, पतिवत सम्भोग करना, भ्राता की भाँति प्रेम करना, गर्भ को नष्ट करना, कच्चे ही मांस को खाजाना, बालक के जन्मते ही झपटा करना, इनके दो मुख, चार आँखें, पांच पैर परन्तु अंगुलिरहित होते हैं। इनके पैर पीछे को एडी और मुख आगे को होते हैं। ये हाथों में सींग धारण कर स्त्री के पास पहुचते हैं चमकते हैं, ये पाक रसादि में वास करते है। गधे का सा शब्द करते हैं। सुई जैसे चुभाने वाले हथियार होते हैं, पेट बड़ा होता है, प्रायः सन्ध्या, निशा में ये प्रकृष्ट होते हैं। एकान्त में घसीटते है। इनके कारण चर्म में दुर्गन्धि आती है मुख लाल होते है इनके नाम-पलाल, अनुपलाली, शर्कु, कोक' मलिम्लुच पलीजक, आश्रेष, प्रमीलिन, कृष्ण, केशी, असुर, तुण्डिक, अराय अनुजिघ्र, प्रमृशन, क्रव्याद, रेरिह, श्वकिष्की, पिग, वज आदि कहे है। ये वन्ध्यापन, बच्चे का तुरन्त मंरजाना, रोने की ओर प्रवृत्ति या कारण बनाना पाप प्रवृत्ति आदि के मूल कारण कहे हैं। ये पुरुष को स्वकीया में प्रीति, न होकर परकीया में प्रीति करने वाला, या शिखण्डी बनाते है।

ग्रहग्रस्त शापग्रस्त दोष विज्ञान

जन्मलग्न-या प्रश्नलग्न से या चन्द्रमा से उपर्युक्त पद्धति के भावगत विषय 'बोधक चक्र' तथा इसी के 'ग्रहों के स्वरूप का विचार' 'शीर्षक प्रकरणों को दृष्टि में रखते हुए' ८ वें या १२ वें भौम हो तो कृत्या-दोष होता है। इसी में नाक, कान, नेत्र तथा शरीर के तिलादि चिह्नों को भी समझें और फलादेश कहें। उपर्युक्त प्रश्न लग्न से ६ वें केतु, राहु में से कोई हों और मंगल ८ वें हों तो ब्रह्मराक्षस आदि का दोष समझें। ८ वें शनि या भौम हों तो पीपल के वृक्ष का काटना या क्षति पहुँचाना समझें वहां ब्राह्मण या ऋषि की समाधि या पूज्य देवता का स्थान समझें उससे वरुणशाप होता है। यदि जलराशि ८ वें या ६ वे पाप ग्रह के साथ हो तो प्रश्न कर्त्ता को सर्प (वरुणपाश) तथा जल स्वप्नादि में दिखाई देंगे। शनि हो तो बड़े

दांतों की चिपके गालों की बड़ी लाल डरावनी आंखें, सूअर जैसे खड़े विखरे वाल काली मूर्ति लम्बा चेहरा दिखाई पड़ेगा। यदि कापालिक कृत्या हुई तो नीला स्वरूप होगा (या) लोहितवर्ण। केतु हो तो शूद्र अन्त्यज-चाण्डाल कृत कृत्या होती है। बुध हो तो आसुरी कृत्या, यदि १२ वें गुरु हों तो दैवी, मंत्रकृत कृत्या समझें।

प्रश्न लग्न या चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में जैसी राशी और ग्रह हों वैसा ही ग्रह का स्वरूप समझें। उसके वाम (तृतीय को) दायें (५ वें ६ वें स्थान के सन्मुख १० वे स्थान को समझें। इनमें शुष्क राशी हो शुष्क स्थान जल राशि हो तो जल स्थान उसमें राहु, केतु हों तो गन्दा जल, सौम्य हों तो उत्तम जल स्थान कहें। राहु से शमी या कांटेदार वृक्ष, भौम से अश्वत्थ बुध से लतादि शनि से नीमादि कटु वृक्ष, केतु से बबूलादि कांटेदार पेड़ समझें। भौम से लाल ईंट आदि चिह्न, शनि से, कालागोमय, कूड़ा कोयला, पत्थर, राहु से पुल आदि समझें। यह कृत्या प्रयोग स्थान है। विद्वान, भविष्यवक्ता, अपने स्थान को त्याग कर बिना सम्मान पूर्वक आमन्त्रित किये, प्रश्नकर्त्ता के यहाँ न पधारें, अपनी पर्णकुटी पर, स्वआसन से ही निष्काम भविष्यवाणी करें। प्रश्न कर्त्ता-निष्ठा भाव तथा पत्र पुष्पादिउपायनपूर्वक प्रश्न करें या आमन्त्रित करें तभी दोनों सफल होंगे।

गर्भादिदोष के ज्ञान के लिये

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त "भावगत विषय बोध चक्र" के लग्न से द्वादश भाव के अङ्कों में जैसी राशी या ग्रह हों वैसे ही उन २ स्थानों में चिह्न होंगे। राशी से दिशा तथा ग्रहों से वर्ण, अवस्था वेश-भूषा समझें। लग्न, प्रश्न, और चन्द्रमा से ५ वे या ८ वें शत्रु, निर्बली, या पापःक्रूर ग्रह हो तो पुत्र रहित, मृतवत्सा द्वारा वस्त्र या बाल काटे या रजोधर्म का वस्त्र चुराया है (यह) स्त्रीकृत कृत्या दोष, रजोधर्म के आगे पीछे होने या कमर आदि की पूर्वोक्त व्यथा, पेड़ू पर गैस, हृदय व मस्तिष्क में विकार करने वाला वन्ध्यापन (पुत्र सुख में बाधक) समझें।

यदि मनुष्य के कल्याण, शरीर, स्वास्थ्य, मन, मस्तिष्क, धन, पद सम्पदा के लिये बाधक, आपत्तियों की विविध प्रकार की वर्षा करने वाला, मिथ्यालाञ्च्छन, अपमानादि का प्रतीक होता है। यह भैषज्य वेद की उत्तम चिकित्सा से परे परन्तु "शौनकीय शाखा" की विधि से साध्य हो जाते हैं।

समय :—जन्मनक्षत्र से भुक्त महादशा, अन्तर्दशा, मासदशा, सूक्ष्म दशा प्राण दशा के माध्यम से निश्चित करें।

नैर्ऋति दोष के लक्षण :—सहसा कलह, व्याधि पर व्याधि, अपव्यय, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक विविध कष्ट, पशु, कृषि की क्षति, रोग, भौतिक भूमि सम्बन्धी विवाद। बाल, कुमार, युवाओं की दयनीय मृत्यु, बाल, तरुण युवतियों का वैधव्य, स्त्री पुरुष, माता पुत्री पिता पुत्र, स्वामी सेवक में विवाद, अकस्मात धन हानि, मान हानि गौ, घोडी, स्त्री तथा फलदार उद्यान में पुष्प (ऋतु धर्म) पुत्र सन्तति को बाधा आदि विघ्न होते हैं। यह यम की पत्नी नैऋति है।

शाप :—प्रायः अन्याय, अधर्म से संतप्त प्राणी शाप देते है परन्तु देव द्विज, गुरु, ऋषि, गौ, सती का यदि किसी प्रकार अपमान हो और वे स्वयं शान्ति से सहन करे, मन, वाणी से किसी का अहित न सोचें तो वहां वरुण शाप हो जाता है। शाप कर्त्ता के शाप की वाणी के शब्द ब्रह्माण्ड में शब्द ब्रह्म होने से अमिट होते है। शाप उनकी दया या वे स्वयं न हों तो परम्परा गत महामानव की दया अथवा अथर्व विधि से विना शाप विमोचन किये, उन दोषी जनों या कुलों का कल्याण नहीं होता है। दैवी वाणी भी ऐसी हुई है। इस प्रसङ्ग में एक ज्वलन्त उदाहरण स्मरण हो आया है, मेरे स्वयं के परिचित तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ वैद्य जी को

उन के कुल की देवी को लगभग १२ वां मास गर्भावस्थामें व्यतीत हो रहा था। उन्होंने विलोम पाठ किया, पुत्र रत्न का जन्म भी हुआ परन्तु नान्दीश्राद्ध अनुष्ठान से पूर्व न करने पर जनन शौचावस्था में ही अनुष्ठान पूर्ण किया—इसीमें दैवी अपराध मे शाप हो गया। उन्हें भयङ्कर विषैले रोग ने दबा लिया और उसीमें लीला समाप्त हुई। वे ब्रह्म ग्रह हो गये कुल को विविध प्रकार से पीड़ित किया, उनके कल्याणार्थ चारों धामों में पुण्य कर्म, गया श्राद्ध, दोबार सप्ताह की गई, परन्तु उनकी स्वय की व उस कुल की व्यथा ज्यों की त्यों रही, जब इस परीक्षण का उनके कुल के प्रतिष्ठित जनों ने वर्तमान तपोनिष्ठ धर्म गुरु जी के आदेश से आयोजन किया तो "पितृमेध" की वर्णित ऋचाओं से जब उनका आवाहन किया तो वे एक देवी की वाणी पर स्वयं प्रथम विघ्नरूप में बोले, संघर्ष किया, बाद में सारी गाथा बतलाई, उनके शाप से मुक्त होने पर उनको सुकृत लोक की प्राप्ति हुई और वह कुल सुखी है। यही ऐसी दूसरी गाथा मामूभानजा जिला अलीगढ़ के एक कुलीन परिवार "अग्रवाल वैश्य" का ज्वलन्त उदाहरण है। और भी अनेको अनुभव में आई हैं।

इनको प्रश्न, जन्म, हस्तविज्ञान, स्वरोदय, चिह्नविज्ञान आदि के साथ, लक्षणों (ऊहापोह) से विचार ले। हरन्तु ज्योतिष व वेद के वैदिक प्रामाण्य सिद्धान्तो की गहन शोध अनवरत अनिवार्य समझें।

१. ब्राह्मण के शाप के संबंध में विशेष—

म०भा० आदि पर्व; सम्भव पर्व अ० ८१/२३-२५-२६

क्रुद्धादाशीविषात् सर्वाज्ज्वलनात् सर्वतो न्मुखात्

दुराधर्षतरो विप्रो सेयः पुंसा विजानता ।। २३

ब्राह्मण को क्रोध पूर्ण विषधर सर्प तथा चहुँ ओर से प्रज्वलित अग्नि से भी अधिक दुर्धर्ष एवं भयङ्कर समझें।

एकमाशीविषोहन्ति शस्त्रेणैकश्चवध्यते। हन्तिविप्रः सराष्ट्राणिपुराण्यपिहि कोपितः ।। २५

दुराधर्षतरोविप्रस्तस्माद भीरु मतो मम ।। २६ ।

सर्प और बाण एक, एक ही को मार सकते हैं। परन्तु क्रोध आने पर ब्राह्मण समस्त राष्ट्र और नगर को नष्ट करने में समर्थ है, इसीसे ब्राह्मण दुर्धर्ष होता है।

नाधर्मश्चरितोराजन् सद्यः फलतिगौरिव। शनैरावर्त्यमानोहिकर्तुर्मूलानि कृन्तति ।।८०/२

किये गये अधर्म का फल धीरे २ कर्त्ता की जड़ काटता है।

पुत्रेषुवा नप्तृषु वा नचेदात्मनिपश्यति। फलत्येवध्रुवंपापं गुरु भुक्तमिवोदरे ।८०।३

यदि वह अधर्म (पापोर्जित द्रव्य) का दुष्परिणाम अपने ऊपर दिखाई नहीं देता तो उस अन्यायोर्जित द्रव्य के उपभोक्ताओं-पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रादि पर अवश्य प्रगट होता है।

आचतुर्दशकाद्वर्षान्न भविष्यति पातकम्। परतः कुर्वतामेवं दोष एवं भविष्यति/१०७/१७ चौदह वर्ष की आयु पर्यन्त किसी को पाप नही लगेगा। उससे अधिक की आयु में पाप कर्त्ता को ही पाप लगेगा। (माण्डव्य का धर्म को शाप)

सन्तति-विज्ञान

गुरु सन्तान कारक ग्रह हैं। सन्तान का विचार जन्मलग्न, प्रश्नलग्न से पंचम स्थान और चन्द्रमा उन लग्नों में जहां भी हो उससे पंचम स्थान से करें।

१. गुरु, पञ्चमभाव, पञ्चमेशशुभ ग्रह युक्त या दृष्ट हों तो सन्तति हो।

२. लग्नेश पंचम भाव में हो, और गुरु बलवान हों, तो सन्तति होती है।

३. बलीगुरु, लग्नेश से दृष्ट हो, तो प्रबल सन्तति योग होता है

४. सन्तान (५ वें) भाव पर मंगल, और शुक्र की एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद दृष्टि हो

५. १;४;७;१०;५; और ६ वें भावों, के स्वामी शुभ ग्रह हों, और उनमें से कोई पंचम भाव में बैठा हो। तथा पंचमेश. ६।८।१२ भाव में न हो, पापयुक्त; अस्त; या शत्रुराशीगत न हो, तो सन्तान सुख हो।

६. पंचम में २;७;४ वृष, तुल, कर्क में से कोई राशी हो, ५ वें शुक्र या चन्द्र हो अथवा इनकी दृष्टि हो, तो बहुपुत्र योग होता है।

७. लग्न या चन्द्रमा से ५ वें भाव में शुभ ग्रह हो, या ५ वां भाव शुभ ग्रहों से दृष्ट हो, या पंचमेश से दृष्ट हो, तो सन्तान योग होता है।

८. लग्नेश, पञ्चमेश एक साथ हों, या परस्पर दृष्ट हों, अथवा दोनों स्वगृही मित्रगृही, या उच्च के हों, तो प्रबल सन्ततियोग समझें।

९. लग्नेश, पंचमेश शुभ ग्रह, के साथ होकर, केन्द्र १;४;७;१० वें स्थानों में हों और द्वितीयेश बली हो, तो सन्तान योग होता है।

१०. लग्नेश और पंचमेश दोनों सप्तम भाव में हों, अथवा द्वितीयेशलग्न में हो, तो सन्तान योग होता है।

११. पंचमेश के नवांश का स्वामी, शुभ ग्रह से युत और दृष्ट हो तो सन्तान योग होता है। लग्नेश और पंचमेश १।४।७।१० स्थानों में, शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो सन्तान योग होता है।

१२. पंचमेश और गुरु बलवान हो तथा लग्नेश पंचम भाव में हो, सप्तमेश के नवांश का स्वामी, लग्नेश तथा धनेश, और नवमेश, इन तीनों से दृष्ट हो, तो सन्तति योग होता है।

१३. पंचम भाव में २।४।८।१०।१२ राशियां, और इन्ही राशियों के नवांश शनि, बुध, शुक्र या चन्द्रमा से युत हों तो कन्यायें अधिक तथा पंचम भाव में १।३।५।७।९।११ राशियां, तथा इन राशियों के नवांशाधिपति मंगल, शनि और शुक्र से दृष्ट हों, तो पुत्र सन्तति अधिक हों।

१४. पंचमेश २।८ भाव में हो तो कन्यायें अधिक हों

१५. १२ वें बुध; शुक्र; या चन्द्रमा में से कोई हो तो कन्यायें अधिक हों

१६. बुध, चंन्द्र और शुक्र में से एक भी ५ वें गया हो तो कन्यायें अधिक हों।

१७. पंचम में मेष, वृष और कर्क में से किसी पर केतु हो तो सन्तान लाभ हो।

प्रश्न लग्न में विशेष

१. प्रश्न कर्त्ता की तिथि संख्या को ४ से गुणा कर १ जोड़ें; योग में दिन संख्या विष्कम्भादि योग संख्या जोड़ें, और योग में २ का भाग दें। लब्धि को ३ से गुणाकर ४ से भाग दें। १ शेष हो तो विलम्ब से, दो शेष हो, तो अभाव; ० शेष से शीघ्र सन्तति लाभ समझें।

२. दिन संख्या को ३ से गुणा करें-उस में तिथि जोड़ लें, योग में दो का भाग दें १ शेष हो, सन्तति लाभ ० शेष हो, अभाव समझें।

३. प्रश्न, जन्म और चन्द्रमा से पंचम में सिंह वृष, वृश्चिक या कन्या राशियाँ हों तो विलम्ब से सन्तान हो।

४. यदि प्रश्न से ५ वें पाप युति या दृष्टि हो, तो विलम्ब से सन्तति लाभ हो

५. प्रश्न से ८ वें सिंह, मकर या कुम्भ में रवि, और शनि हों, तो सन्तति अभाव

६. प्रश्न से ८ वें चन्द्र और बुध हों, तो विलम्ब से १ सन्तति लाभ, चन्द्र बली हो, तो कन्या

७. प्रश्न से ८ वें केवल बुध हो, तो सन्तान अभाव।

८. प्रश्न से ८ वें शुक्र और बुध हों, तो सन्तति होकर मर जाय।

९. प्रश्न से ८ वें मंगल हो, तो गर्भ पात हों।

१०. प्रश्न लग्न से अष्टमेश अष्टम में हो, तो सन्तति नहीं होती है।

११. प्रश्न से ८ वें शुक्र और सूर्य हों, तथा दूसरे, बारहवें, और आठवें, पाप ग्रह हों, तो सन्तान अभाव तथा प्रश्नकर्त्ता को कष्ट समझें।

१२. प्रश्न से बारहवें, का स्वामी १।४।७।१० में हो, और शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो, तो दीर्घ जीवी १ पुत्र हो।

१३. पञ्चमेश, लग्नेश मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुम्भ में से किसी में हों, तो १ पुत्र लाभ हो। यदि उक्त ग्रह वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक मकर और मीन में से किसी में हों तो कन्या हो।

१४. लग्न से विषम स्थान १।३।५।७।९।११ वें स्थान में, शनि हो तो पुत्र और यदि सम २।४।६।८। १०।१२ वें स्थान में हो तो कन्या हो।

१५. प्रश्न से ५ वें का स्वामी; लग्नेश या चन्द्रमा से, इत्थशाल करता हो, और शुभ से युत या दृष्ट हो, तो सन्तान लाभ हो।

गर्भस्थ सन्तान का लिंगज्ञान

१. प्रश्न से लग्न में रवि, गुरु, याभौम हो-या-ये ग्रह ३।५।७।९ वें स्थान में हों तो पुत्र, अन्य कोई ग्रह हो तो कन्या

२. प्रश्न लग्न विषम राशियाँ विषम नवांश में हो, और लग्न में रवि, गुरु चन्द्रवली हों तो पुत्र। समराशि या सम नवांश में ये ग्रह हों तो कन्या। परन्तु विषम में गुरु या रवि हों तो पुत्र। चन्द्र, शुक्र और मंगल, सम राशि, में हों तो कन्या हो, ये तीन योग हैं

३. प्रश्न लग्न को छोड़ अन्य विषम स्थान में शनि हो तो पुत्र। द्विस्वभाव लग्न पर बुध की दृष्टि हो, तो यमल (जुड़वां) सन्तति हो।

४. प्रश्न लग्न पुरुष राशि हो और बली पुरुष ग्रह से युत या दृष्ट हो तो पुत्र। समराशि हो और स्त्री ग्रह से युत या दृष्ट हो तो कन्या हो।

५. प्रश्न से पञ्चमेश और लग्नेश सम राशि में हो तो कन्या, विषम राशि में हो तो पुत्र हो

६. पुरुष ग्रह-र,मं, गु, बली हों तो पुत्र जन्म; स्त्री ग्रह-चं शु, बली हों तो कन्या जन्म हो।

७. प्रश्न कुण्डली में ३।९।५।११ वें स्थान में र. मं. गु हो तो पुत्र अथवा ५।९ भाव में बली गुरु हो तो पुत्र जन्म हो।

८. प्रश्न दिन संख्या, शुक्ल प्रतिपदा से उस दिन तक, की तिथि सख्या; प्रहर संख्या; नक्षत्र संख्या को जोड़ें, १ घटायें, ७ का भाग दें, शेष विषम १।३।५।७ रहें तो पुत्र, २:४:६ रहें तो पुत्री।

९. गर्भिणी नामाक्षर-प्रश्नतिथि तथा योग में १५ जोड़ें। योग में ९ का भाग दें, १:३:५:७:९ शेष रहें, तो पुत्र सम २:४: ६: ८ रहें तो कन्या हो।

१०. प्रश्न तिथि-बार-नक्षत्र तथा गर्भिणी के नाम के अक्षर जोड़ ७ का भाग दें : शेष १ से रवि २ से सोम के क्रम से यदि र. भौ. गु. आयें तो पुत्र शुक्र, चन्द्र, बुध आयें तो कन्या, शनि आये तो क्षीण सन्तति समझें।

११. प्रश्नकाल में प्रश्न कर्त्ता अपने दायें अंग को स्पर्श करे तो पुत्र, बायें को स्पर्श कर पूछे, तो कन्या जन्म समझें।

सन्तान योग-विचार

१. **अनपत्ययोग :**—जन्म लग्न, प्रश्न लग्न में सर्व ग्रह निर्बली (नीच, शत्रु राशि में या अस्तंगत तथा ६।८।१२ स्थान में गये हों अथवा षड्बलहीन-बली) हों तो पुत्र, या पुत्री कोई भी सन्तान नहीं होवे।

२. **गर्भानुत्पाद योग :**—लग्न मे सूर्य, सातवें शनि गये हों, अथवा सातवें भाव में रवि, शनि गये हों और दशवें भाव को गुरु देखें तो गर्भ उत्पन्न नहीं होता। १ ॥

छठे अथवा चौथे भाव में शनि, मंगल का योग हो तो गर्भोत्पत्ति न हो ॥२ ॥

छठे भाव का स्वामी और शनि, ये दोनों छटे भाव में हों, सातवें चन्द्र हो तो गर्भोत्पत्ति नहीं होती ॥ ३ ॥

३. **गर्भच्युति योग :**—पञ्चम भाव (र० मं० श० रा० के० ह० ने० प्लूटो और इनसे युक्त, दृष्ट बुध) और शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो गर्भपात हो जावे ॥ १ ॥

पञ्चम भाव में जिस राशि का नवांश हो, उस राशी को कोई शुभ ग्रह न देखे, और जितने पाप ग्रह देखें, उतने ही गर्भपात हों ॥ २ ॥

४. **सर्प के शाप से विपुत्र योग :**—

पञ्चम भाव में गया हुआ राहु, मंगल से दृष्ट हो, अथवा-पञ्चम भाव में मंगल की राशि १।८ में राहु गया हो, सर्प के शाप से पुत्र नहीं होता ॥ १ ॥

पञ्चम भाव में गया हुआ शनि चन्द्र से दृष्ट हो, और पञ्चमेश राहु से युत हो तो सर्प के शाप से पुत्र नहीं होता॥ २ ॥

पञ्चम भाव का स्वामी बुध-मगल से युत होकर-मंगल के ही नवांश में गया हो, और राहु गुलिक= लग्न में गये हों, तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ॥ ३ ॥

पुत्र कारक ग्रह (गुरु) राहु से युत या दृष्ट हो, पञचमेश निर्बली हो, और लग्नेश मंगल से युत हो तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ॥ ४ ॥

पुत्रकारक ग्रह (गुरु) मंगल से युत हो, लग्न में राहु और पञ्चमेश ६।८।१२ भाव में गया हो, तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ॥ ५ ॥

पञचमेश भाव का स्वामी, मंगल हो और पञ्चम भाव में गया हुआ राहु, बुध, से युत, या दृष्ट हो तो सर्प के शाप से—पुत्र न हो ॥ ६ ॥

पञचमेश और लग्नेश ये दोनों निर्बली हों, पञचम भाव सब पाप ग्रह और बुध, गुरु से युत होकर पञचम में हों (पांचवें-र. मं. श. रा. बु. गु.) हों तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ॥ ७ ॥

लग्नेश राहु से, पञचमेश मंगल से युत या दृष्ट हो और पुत्रकारक ग्रह (गुरु) राहु से दृष्ट हो तो सर्प शाप से सन्तति नहीं होती ॥ ८ ॥

पितृशाप से विपुत्र योग

१. पञ्चम भाव का स्वामी सूर्य ९ वें तथा ५ वें भाव में पापग्रहों के बीच में गया हो और पाप ग्रहों से युत; दृष्ट हो तो पितृ के शाप से पुत्र न हो।

२. पञ्चम भाव में नीच राशी का सूर्य, शनि के नवांश (तुल राशि ४, पाँचवें नवांश-१।११) में गया हो, और पाप ग्रहों के मध्यम में स्थिति हो तो पितृ के शाप पुत्र न हो ॥

३. सिंह राशि में गुरु गया हो, पञ्चमेश सूर्य से युत, या दृष्ट हो, और पंचम भाव, व, लग्न में पाप ग्रह गये हों, तो पितृ के शाप से पुत्र न हो।

४. आठवें भाव में रवि; व: पञ्चम भाव में शनि गया हो, और पञ्चमेश राहु से युत, या-दृष्ट हो तो पितृ के शापसे (पुत्र नहीं होवे)।।

५. बारहवें भाव का स्वामी लग्न में, अष्टम भाव पञ्चम भाव में और दशम भाव का स्वामी आठवें भाव में गया हो तो, पितृ शाप से पुत्र न होवे।

६ मातृ शाप से विपुत्र योग

१. पञ्चम भाव का स्वामी चन्द्रमा नीच राशि का हो, अथवा पाप ग्रहों के मध्य में (पाप कर्तरी में) हो, और चतुर्थ-व. पञ्चम भाव में पाप ग्रह गये हों तो माता के शाप से पुत्रहीन हो।

२. लाभ भाव में शनि-व-चतुर्थ भाव में २-३-पाप ग्रह गये हों, और पञ्चम भाव में नीच राशि (८) का चन्द्रमा गया हो तो माता के शाप से पुत्र न हो।

३. पञ्चमेश ४।८।१२ भाव में गया हो, लग्नेश नीच राशि का हो, और चन्द्रमा पाप ग्रह से युत, या दृष्ट हो तो माता के शाप से पुत्र न हो

४. पञ्चमेश चन्द्रमा हो और वह शनि राहु व मंगल से युत या दृष्ट हो तो माता के शाप से पुत्र न हो।

५. सुखेश (४ का स्वामी) मंगल हो, और वह राहु व शनि से युत हो, और लग्न में सूर्य, चन्द्रमा ये दोनों गये हों, तो माता के शाप से पुत्र न हो।

६. सुखेश आठवें भाव में-पञ्चमेश व लग्नेश ये दोनों छठे भाव में तथा दशमेश और षष्ठेश ये दोनों लग्न में गये हों तो माता के शाप से पुत्र न हो।

७. राहु-सूर्य, मंगल और ५।१।८।६ इन भावों में यथा क्रम, **अथवा** व्यतिक्रम से गये हों; और लग्नेश ६।८।१२ भाव में गया हो तो माता के शाप से पुत्र नहीं होवे।

८. राहु-मंगल और गुरु ये तीनों ही ६।८-१२ भावों में गये हों और पंचम भाव में शनि चन्द्रमा का योग हो, तो माता के शाप से पुत्र न हो।।

७ कुलदेव दोष से विपुत्र योग

१. छटे भाव में गया हुआ शनि; वुध-चन्द्र, और सूर्य से युत या दृष्ट हो लग्न को पाप ग्रह देखें, तो कुलदेव के दोष से पुत्र न हो।

२, शनि की राशि (१०-११) में गया हुआ सूर्य पाप ग्रह से दृष्ट हो; **अथवा** लग्न में पापग्रहों का वर्ग-अधिक हो तो कुलदेव के दोष से पुत्र न हो।

८ सुतहीन योग

१. लग्न में सूर्य और पांचवें मंगल गया हो तो सुतहीन होवे

२. जिस राशि में गुरु स्थित हो, उस राशि से पंचम भाव का स्वामी जो ग्रह हो, वह ६।८।१२ भाव में गया हो और जन्म लग्न से भी, पंचम नवम व लग्न के स्वामी ६।८।१२ भाव में गये हों या दृष्टि हो तो पुत्र न हो

३. पंचम में गुरु गया हो और गुरु से पांचवें भाव में पापग्रह गये हों तो पुत्र न हो

४. पञ्चमेश लग्न या सप्तम भाव में गया हो और वह बलवान षष्ठेश से युत या दृष्ट हो तो पुत्र-हीन हो।

५. नवम, पंचम और सप्तम भाव के स्वामी निर्बल होकर ६।८।१२ भाव में गये हों और पाप-ग्रहों से युत या दृष्ट हों तो बहुत स्त्रियों का स्वामी भी हो तो भी पुत्र न हो।

६. शनि और मंगल ये दोनों ६ वें, १० वें भावों में गये हों तो पुत्र हीन हो।

७. शनि, मंगल व शुक्र ये तीनों सातवें भाव में गये हों या दृष्टि हो तो पुत्रहीन हो।

८. लग्नेश, छटवें भाव में शुभ ग्रह की राशि में गया हो, और वह बुध, चन्द्र से युत-या-दृष्ट हो, (१) छटे अथवा (२) दूसरे भाव में सूर्य गया हो तो विपुत्र हो।

९. पञ्चमेश (गुरु) पाप-ग्रहों से युत-दृष्ट हो और निर्बल हो तो पुत्रहीन हो। परन्तु पञ्चम भाव में ९, धन मीन १२ राशि हो तो ये योग होगा।

१०. लग्नेश पापग्रह से युत या दृष्ट हो, और पञ्चमेश ६।८।१२ भाव में से किसी में भी गया हो तो पुत्रहीन हो।

११. पञ्चमेश के नवांश का स्वामी: अस्तंगत का हो और पाप ग्रहों से युत, या दृष्ट हो तो विपुत्र हो।

१२. पापग्रह से युत होकर गुरु ९ वें या पांचवे भाग में गया हो तो पुत्रहीन हो।

१३. लग्नेश मंगल की राशि (१।८) में गया हो, और पञ्चमेश छटे भाव में गया हो तो पुत्र हीन हो।

१४. बारहवें भाव का स्वामी दशवें, अथवा लग्न में गया हो तो पुत्रहीन हो।

१५. बारहवें भाव का स्वामी दशवें: किम्बा: लग्न में गया हो तो पुत्रहीन हो।

१६. शुक्र या मंगल इन दोनों में से यदि एक भी पञ्चम भाव को न देखता हो तो कई विवाह कर लेने पर भी सन्तान नहीं होती।

(सारांश यह है कि पंचम भाव में शुक्र या मंगल या शुक्र-मंगल दोनों ही देखते हों, तो सन्तति-पुत्र होवेगा क्यों कि वीर्य का स्वामी शुक्र और रज का स्वामी मंगल है, जब (ऋतु रेत) के स्वामी की दृष्टि या युतिगर्भ भाव ५ पर होगी तभी गर्भ रहेगा और इन तीन की दृष्टि न होगी तो कई स्त्रियों के हो जाने पर भी सन्तति नहीं होगी)।

१७. लाभ ११ वें भाव में चन्द्र शनि का योग, या दृष्टि हो तो पुत्र न हो।

९. "पुत्रनाशन योग"

१. पञ्चम भाव, अथवा-पञ्चम भाव कारक ग्रह (गुरु) पाप ग्रहों के मध्य में (पापकर्तरि में) और पापग्रह से युत-या-दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति तो होगी-जियेगा नहीं।

२. पञ्चमेश-सप्तमेश-और नवमेश ये तीनों ग्रह, जिस-जिस ग्रह के नवांश में हों, वे ग्रह पाप ग्रहों के नवांश में गए हों, और पाप ग्रह से युत, या दृष्ट हों तो पुत्र नाश हो।

३. पञ्चमेश, क्रूर ग्रह के नवांश में हों और वह नीच राशि का अथवा अस्तंगत होकर-पाप ग्रह से युत-या दृष्ट हो तो पुत्र-नाश हो।

४. व्ययेश (१२) के नवांश का स्वामी जिस राशि के द्रेष्काण में हो; उस राशि के स्वामी से पञ्चमेश युत-अथवा-दृष्ट हो तो पुत्र नाश हो।

५. प्रकाशावस्था में गया हुआ सूर्य पंचम भाव में गया हो तो जितनी सन्तान जन्मती जावें, उतने ही मरते जांय-जीवित न रहेंगे।

६. तीन-चार पाप ग्रह पञ्चम भाव में गए हों तो जितनी ही सन्तान जन्मती जावें, उतनी ही मरते जावें।

७. पञ्चम भाव में सूर्य गया हो तो (मृताऽपत्य) सन्तान मर जावें।

८. नवमे, पांचमे भाव में पाप ग्रह लग्न में क्षीण चन्द्रमा, और शनि की राशि (१०-११) में गया हुआ गुरु अस्त का हो तो पुत्र का सुख होकर-नाश हो जावे।

९. पञ्चम भाव में बुध गया हो, और लग्न तथा सुख इन दोनों भावों में पाप ग्रह गये हों, तो पुत्र का सुख होवेगा पर नाश हो जाएगा।

ये सभी छोटी आयु की सतान होंने के योग हैं।

१०. "पुत्र सुखहीन योग।"

१. पञ्चमेश-क्रूर ग्रहों के षष्ठांश में हो, और पाप ग्रह से युत किंवा दृष्ट हो तो पुत्र का सुख नहीं होगा।

२. तृतीयेश और चन्द्रमा ये दोनों १।४।७।१०।९।५ में भाव में से किसी में भी गये हों तो पुत्र सुख नहीं होगा।

३. सिंह राशि में गये हुए शनि या मंगल, पंचम भाव में होवें, और पंचमेश छटे भाव में गया हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

४. पंचम भाव में मंगल की राशि (१-८) में गया हुआ राहु, मंगल से दृष्ट हो तो पुत्र सुख नहीं होगा।

५. गुरु और शुक्र अपनी नीच राशि (१०-६) में गये हों, अथवा बुध सम राशि (२,४,६,८-१०-१२) में, सूर्य विषम राशि (१।३,५,७,९,११) में गया हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

६. पंचम भाव में गुरु की राशि (९।१२) हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

७. तृतीय भाव का स्वामी ३,१२,१,२,५, भाव में गया हो तो पुत्र सुख नहीं होवे।

८. पंचम भाव में गुरु की राशि (९-१२) में हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

९. बुध शनि लग्न में गये हों और वृश्चिक राशि में गुरु का योग हो तो पुत्र सुख न हो।

१०. गुरु से पांचवें भाग में पाप ग्रह गये हों तो सन्तान सुख नहीं होवे—परन्तु शुभ ग्रह गया हो तो सन्तान का सुख होगा।

(१) पुत्र सुखहीन योग में पुत्र न ही हो (२) होकर मर जावे, (३) पुत्र होते हुए भी पुत्र का सुख न हो, (४) पुत्र हुआ, और न हुआ, तुल्य हो, ये तीन भेद पुत्र सुख न होने के हैं।

इनमें से जिनके पुत्रहीन, अथवा पुत्र-नाश, अथवा वंशविच्छेद योगप्रबल हुआ हो, उनके तो पुत्र होगा ही नहीं, अथवा होकर मर जाते हैं।

जिनके केवल पुत्र-सुख हीन योग ही होवे, और अन्य उपर्युक्त योग नहीं हों तो पुत्र होते हुए भी पुत्र का सुख नहीं नहीं होता। यथा

वियोगान्मरणाद्-क्लैब्यात्तथा चाप्रसवादपि।
देशान्तरे च गमनात्पुत्रदुःख हि पंचधा:॥

(१) परस्पर-स्त्री-पुरुष के वियोग (२) मृत्यु (३) नपुंसकता या वन्ध्यापन, (४) अप्रजनन और दूर देशगमनादि पांच प्रकार से पुत्र दुख होगा।

११. वंश विच्छेद

१. बुध और लग्नेश ये दोनों लग्न के अतिरिक्त दूसरे केन्द्र स्थान (४।७।१०) में गये हों वंश विच्छेद हो।

२. बारहवें, पांचवें या आठवें भाव में पाप ग्रह गये हों तो वंश-विच्छेद हो।

३. लग्न मे चन्द्र गुरु का योग हो, और सातवें भाव में शनि अथवा मंगल गया हो तो वंश विच्छेद होगा।

४. पाप ग्रह (श० भौ० के०) चतुर्त भाव में गये हों, तो वंश विच्छेद हो।

५. जन्म लग्न, किंवा प्रश्न लग्न, बारहवें, पाँचवें और आठवें भाव में सम्पूर्ण पाप ग्रह गये हों तो वंश विच्छेद हो।

६. पंचम भाव में चन्द्रमा गया हो, और आठवें, लग्न में, बारहवें भाव में गुरु गया हो तो वंश विच्छेद हो।

७. सातवें भाव में बुध-शुक्र; चतुर्थ भाव में श० भौ० के० पाप ग्रह और पंचम भाव में गुरु गया हो तो वंश-विच्छेद हो।

८. चन्द्रमा से आठवें स्थान में पाप ग्रह गये हों, तो वंश विच्छेद हो।

९. सब पाप ग्रह पंचम भाव में गये हों, तो वंश विच्छेद हो।

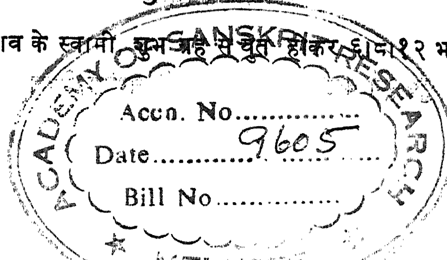
१०. सप्तभाव में शुक्र, दशमभाव में चन्द्रमा और सुख भाव में पाप ग्रह ३।४ गये हों तो वंश-नाश हो।

११. लग्न में मंगल-आठवें शनि, पांचवे सूर्य गया हो तो वंश विच्छेद हो।

१२. वंश विच्छेद योग में पुत्र या पुत्री कोई जीवित नहीं रहते-वंश का नाश हो जाता है।

१२. "विलम्ब से पुत्रोत्पत्ति योग"

१. लग्न, नवमे और पंचम भाव के स्वामी शुभ ग्रह से युत होकर ६।८।१२ भाव में गये हों तो विलम्ब से सन्तान होगी।



२. दशवें भाव में सर्व शुभ ग्रह गये हों तो पुत्र सुख विलम्ब से हो।

३. भौ० श० के० अथवा गुरु चतुर्थ अथवा पंचम भाव में गये हों और ८ वें भाव में चन्द्रमा हो तो ३० वर्ष की आयु के उपरान्त सन्तान हो।

४. पाप ग्रह की राशि (१।८।५।१०।११) के लग्न में पाप ग्रह युत, या दृष्ट हों और सूर्य निर्बली क्षीणांश का हो, और मंगल समराशि (२।४।६।८।१०।१२) में स्थिति हों तो ३० वर्ष की आयु के उपरांत सन्तान हो।

५. कर्क राशि में गया हुआ चन्द्रमा पाप ग्रहों से युत (दृष्ट) हो, और सूर्य को शनि देखता हो, तो ६० वें वर्ष में पुत्र की प्राप्ति हो।

६. लाभ भाव में (११) वें में राहु गया हो तो वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्त हो और वृहत्पाराशरी के अनुसार कुछ योग इस प्रकार हैं—

१. पांचवें गुरु जावे और पंचमेश शुक्र से युत हो तो ३२ व ३३ वें वर्ष में पुत्र हो।

२. पंचमेश व पंचमभाव का कारक (गुरु) ये दोनों (१।४।७।१०) वें स्थान से युक्त या दृष्ट हों तो ३० व ३६ वें वर्ष में पुत्र-प्राप्ति होती है।

३. जन्म लग्न से नवमें गुरु गया हो और गुरु से नवमें स्थान में गया हुआ शुक्र, लग्नेश से युक्त हो तो ४० वें वर्ष में पुत्र प्राप्ति हो।

१३. "शान्ति कर्म से पुत्र प्राप्ति योग"

१. राहु-रवि और मंगल ये तीनों पाँचवें भाग में आ गये हों तो अथर्ववेद से पुत्रेष्टि यज्ञ करने से पुत्र सुख हो जाता है।

२. पंचमेश अपनी नीच राशि में गया हो, नवमेश लग्न में और बुध केतु पंचम भाव में गये हों तो कष्ट से (शान्तियज्ञ; आदि अनेक प्रयत्नों से) पुत्र सुख हो।

१४. "शीघ्र सन्तानोदय योग"

१. पंचम भाव में १।२ अथवा ४ राशि में, राहु या केतु गया हो तो सन्तान की प्राप्ति में विलम्ब नहीं होता।

१५. "पुत्र प्राप्ति योग"

१. सप्तमेश के नवांश का स्वामी; लग्नेश, धनेश, और नवमेश, इन तीनों ग्रहों से युत अथवा दृष्ट हो, तो पुत्र प्राप्ति हो।

२. पंचमेश, किम्बा-पंचम भाव अथवा पंचम का कारक ग्रह (गुरु) शुभ ग्रह से युत हो, या दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

३. लग्नेश पंचम भाव में गया हो, पंचमेश और गुरु ये दोनों परिपूर्ण (बली) हों तो पुत्र प्राप्ति हो।

४. पंचमेश गुरु पूर्ण वलवान हो, और उसे लग्नेश देखता हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

५. गुरु अथवा पंचम का स्वामी वैशेषिकांश में गया हो, और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

६. धन भाव का स्वामी बली होकर पंचम भाव में हो, और राहु से दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

७. पंचमेश और लग्नेश ये दोनों परस्पर एक दूसरे को देखते हों तो पुत्र प्राप्ति हो।

८. पंचमेश और लग्नेश ये दोनों अन्योन्य राशि में (पंचमेश की राशि में लग्नेश और लग्नेश की राशि में पंचमेश) गया हो अथवा पंचमेश व लग्नेश ये दोनों एक राशि में युत हों तो पुत्र प्राप्ति हो।

९. लग्नेश और पंचमेश ये दोनों शुभाऽऽशुभ ग्रह से युत होकर-केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान में गये हों, और धनेश बलवान हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

१०. पञ्चमेश के नवांश का स्वामी शुभऽऽशुभ ग्रह से युत हों और दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्त हो।

११. नवमेश व लग्नेश ये दोनों सप्तम भाव में गये हों, और धनेश लग्न में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१२. पञ्चमेश मुद्दंशाशादि शुभांश में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१३. पञ्चमेश गोपुरीशादि अंश में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१४. पञ्चम भाव का नवांश का स्वामी लग्न में, और लग्नेश के नवांश का स्वामी पञ्चम भाव में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१५. गुरु के नवांश का स्वामी (१।४।७।१०) में गया हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

१६. नवम-लग्न-और पञ्चमेश ये तीनों ग्रह पारावतादि अंश में गये हों और शुभाशुभ ग्रह से दृष्ट हों तो पुत्र प्राप्त हो।

१७. लग्न से अथवा चन्द्रमा से पांचवें भाव में शुभाऽशुभ ग्रह की राशी शुभ ग्रह से युत, दृष्ट हो तो पुत्र पैदा हो, इससे विपरीत नहीं।

१६. "कन्या प्राप्ति योग"

१. पञ्चम भाव में सम राशि (२-४-६-८-१०-१२) और सम राशि का नवांश, बुद्ध या शनि से युत दृष्ट हो, और शुक्र अथवा चन्द्रमा अथवा इन दोनों से दृष्ट हो तो कन्या-सन्तति होवे

२. नेत्र, पाणि अवस्था में गया हुआ, बुध, पञ्चम भाव में गया हो तो पुत्र की हानि और कन्या की प्राप्ति होगी।

३. समावस्था में गया हुआ बुध पांचवे अथवा ७ वें भाव में गया हो तो कन्या होगी

४. पंचम भाव सम राशि (२-४-६-८-१०-१२) का हो और वह शुक्र चन्द्र के दश वर्ग में होकर, शुक्र-चन्द्र से ही दृष्ट हो तो बहुत कन्या वाला हो।

५. पञ्चमेश धन में अथवा आठवें भाव में गया हुआ हो तो बहुत कन्या हों।

६. लाभ भाव में बुद्ध-शुक्र किंवा चन्द्रमा इन तीनों में से एक भी ग्रह गया हो तो कन्या प्रजा हो (जितने अधिक ग्रह का योग हो उतना ही योग बलवान होता है)

७. बुद्ध, चन्द्र, शुक्र इन तीनों में से एक भी पांचवें भाव में गया हो तो कन्या प्रजा होती है।

१७. "अल्पपुत्र, अनपत्य व मृतापत्य योग"

१. वृषभ-कन्या, वृश्चिक अथवा सिंह राशि में चन्द्रमा गया हो तो जातक अल्पपुत्र वाला हो।

२. सप्तम भाव में पाप ग्रह की राशि पाप ग्रह से युत-दृष्ट हो तो सन्तान रहित हो।

३. अष्टम भाव में गुरु अथवा शुक्र गया हो तो नष्टगर्भा (जिसके गर्भ ही स्थापित नहो सके ऐसी) अथवा सन्तान मर जाने वाली हो।

१८. "वैधव्य योग"

१. सप्तम भाव में गया हुआ मंगल पाप ग्रहों से युत-दृष्ट हो तो बाल विधवा योग होता है।

२. लग्न या चन्द्रमा से सातवें या आठवें भाव में पाप ग्रह (तीन चार पाप ग्रह) गए हों तो विधवा योग होता है।

३. मंगल की राशि १।८ में गया हुआ राहु, पाप ग्रह से युत होकर ८ वें भाव में, अथवा १२ वें भाव में गया हो तो विधवा हो।

४. सप्तम, और लग्न में पाप ग्रह गए हों (दोनों में ही पाप ग्रह गए हों) तो विवाह होने के उपरान्त ७ वें वर्ष में विधवा हो।

५. छठे किम्वा आठवें भाव में चन्द्रमा गया हो तो आठवें वर्ष विधवा हो।

(परन्तु यदि चन्द्रमा क्षीण, अथवा नीच, शत्रुराशिगत हो और पाप ग्रह से युत, दृष्ट हो तो उक्त फल मिलना सम्भव है। केवल चन्द्र के छठे, आठवें जाने से आठवें वर्ष रण्डा होने का योग यद्यपि सूत्र कार ने कहा है तथाऽपि असंगत प्रतीत हुआ है।

६. अष्टमेश, सातवें भाव में, और सप्तमेश आठवें भाव में गया हो, पाप ग्रह से दृष्ट हो तो युवावस्था में ही विधवा हो यह अनुभूत है।

७. छठे और आठवें स्थान के स्वामी छठे, या बारहवें भाव में गए हों और पाप ग्रह से युत हो तो युवावस्था में ही विधवा हो।

८. पाप ग्रह, अष्टम भाव में गया हो, और अष्टमेश के नवांश का स्वामी जो ग्रह हो उसकी दशा, अन्तर्दशा में विधवा हो।

९. आठवें भाव में बुद्ध गया हो, तो काकवन्ध्या होती है। अर्थात् एक बार सन्तान होकर, फिर नहीं होवे। ये सभ६ योग पं० गंगाराम आत्मज श्री लाल कृष्ण-गाम-सेई (बसवन) (वृज) जिला मथुरा के अनेकों बार अनुभूत हैं।

०. शनि और रवि ये दोनों आठवे भाव में गये हों तो वन्ध्या (बाँझ) होती है।

"विवाह में गुरु विचार"

पारस्कर गृह्य सूत्र के भाष्य में देवल ऋषि ने विवाह प्रकरण में निर्दिष्ट किया है कि विवाह काल में गुरु का निम्न प्रकार विचार अनिवार्य, आवश्यक है।

नष्टात्मजा, धनवती; विधवा, कुशीला।

पुत्रान्विता, हृतधवा, सुभगा विपुत्रा ।।
स्वामिप्रिया, विगतपुत्र, धवाधनाढ्या ।
वन्ध्याभवेत्सुरगुरौ; क्रमशोऽभि जन्मः ।।

विवाह काल में १ गुरु हो तो जन्मते ही सन्तान नष्ट हो; दूसरे धनवती ३ तीसरे गुरु हो तो बाल वैधव्य, चौथे कुशील, पांचवें पुत्रवती, छठें स्वामी वियोग, सातवें सौभाग्यवती, आठवें विपुत्र, नवमें दम्पति को परस्पर अटूट प्रेम- दशवें मृतपुत्र, ग्यारहवें स्वामीधनी, यशस्वी, बारहवें वन्ध्याकारक कहे हैं जिनमें १, ३, ४, ६, ८, १०, १२ के योग अनेकों पर सिद्ध हुये हैं।

"विषकन्या योग"

१. शनिवार-आश्लेषा नक्षत्र, और द्वितीया तिथि जब मिलें, उसमें उत्पन्न कन्या विषकन्या होती है।

२. रविवार-शतभिषा नक्षत्र और द्वादशी तिथि ये तीनों जिस दिन मिलें, उस दिन कन्या जन्म ले तो वह विषकन्या होती है।

३. मंगलवार-विशाखा नक्षत्र और सप्तमी तिथि जब मिलें, उस दिन की जन्मी कन्या विषकन्या होती है।

४. शुभ ग्रह से युत या दृष्ट; पाप ग्रह लग्न में गया हो, और पाप ग्रह छठें भाव में गये हों, ऐसे योग, इष्ट घटी में जन्मी हुई कन्या विषकन्या होती है।

५. पांचवें रवि, लग्न में शनि, नवमें, मंगल गया हो, ऐसे योग में जन्मी हुई कन्या विषकन्या होती है।

६. जिसके विषकन्या योग हो, वह भाग्यहीना, दरिद्रा, मृतप्रजा और दुर्वचनी-शोक सन्तापयुता होती है।

"विषकन्या भंग योग"

१, सप्तमेश अथवा कोई शुभ ग्रह सप्तम भाव में गया हो तो विषकन्या योग नहीं होता है। अर्थात्-जिसके विषकन्या योग हुआ, उसके जन्म लग्न से सप्तम भाव में सप्तमेश, या कोई शुभ ग्रह गया हो तो विष-कन्या योग का भंग (नाश) हो जाता है।

"वैधव्ययोग"

१. **जातक तत्त्व के अनुसार**—जन्म लग्न या प्रश्न लग्न या चन्द्रमा से सातवें, आठवें पाप ग्रह गये हों तो विधवा हो।

२. मंगल, राहु-सातवें, आठवें या बारहवें गये हों या दृष्ठ हो तो विधवा हो

३. लग्न और चन्द्रमा पाप ग्रहों के बीच शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो दोनों कुलों को नष्ट करने वाली हो।

४. लग्न-या चन्द्र से सप्तमस्थ राहु दुखी, कुल दूषित करने वाली हो

५. लग्न, और सप्तम में पाप ग्रह हों तो विवाह के ७ वें वर्ष विधवा हो

६. छठें, आठवें क्षीण चन्द्र हो तो ८ वें वर्ष रण्डा हो

७. सातवें, आठवें भाव के स्वामी पाप ग्रह हों, या दृष्ट हों तो तरुणावस्था में रण्डा हो

८. छठें, आठवें के स्वामी छठवें गये हों, बारहवें पाप ग्रह हों तो विधवा हो

९. आठवें गुरु या शुक्र हो तो गर्भपात हो या सन्तान मर जावे

१०. आठवें, मंगल हो तो कुलटा, और शनि हो तो पति रोगी हो

११. आठवें राहु हो तो दोनों कुलों का संहार करे

१२. लग्न, चौथे, अष्टम और बारहवें पाप ग्रह युत या दृष्ट हों तो पति को त्याग दूसरों में आसक्त हो

१३. सूर्य अष्टम में हों और पाप युत, दृष्ट हों तो पापिनी।

१४. सप्तमेश, अष्टम में, अष्टमेश सप्तम भाव में, पापों से युत दृष्ट हो तो बाल विधवा हो

१५. सातवें, आठवें के स्वामी, छठवें, बारहवें, पाप ग्रहों से पीड़ित हों तो निश्चय विधवा हो ये योग भी पं० गंगाराम-ग्राम, पोस्ट सेई (बृज) जिला मथुरा के अनुभूत हैं।

"पुत्रप्राप्ति-प्रश्न विचार"

प्रश्नकालीन तिथि की संख्या को ४ से गुणा करें, १ जोड़ दें, तदनन्तर वार तथा योग जो उस दिन उस समय हों, उनकी संख्या को जोड़े, २ से भाग दें जो लब्धि आए, उसको ३ से गुणा करें, ४ से भाग दें, जो शेष रहे उसे फल कहें—

एक संख्या शेष रहे तो विलम्ब से पुत्र हो, परन्तु चिरायु के लिए पार्थिव शिव-पूजन या अथर्व आयुष्यगण पाठ करें।

दो संख्या शेष रहें तो पूर्व जन्मकृत पाप की बाधा से पुत्र नहीं होगा, पापमोचन शापमोचन (बृहच्छान्ति) पुत्रेष्टि यज्ञ, अथर्ववेद या ऋग्वेद करें या हरिवंश, सन्तानगोपाल के सवालक्ष जप करें। महारुद्रयाग करें।

तीन संख्या शेष रहें तो पुत्र तो प्राप्त होगा, सुख नहीं रहेगा। पुत्र सुख चाहें तो किसी दीन कन्या के विवाह में गुप्त दान दें या उसका विवाह कर दें।

और चार या शून्य शेष रहे तो सन्तान शीघ्र होगी।

"रोगों के उत्पन्न या सन्तान न होने में, देवदोष ज्ञान"

१. तीसरे, नवमें, बारहवें, छटे स्थान में प्रश्न लग्न से कोई पाप ग्रह हो यो क्रमशः विष-जल शस्त्र से मरे हुए किसी स्वकुलोत्पन्न आत्मा का दोष कहें परन्तु यह योग, पाप ग्रहों के साथ शुभ ग्रहों का योग होने पर नहीं होता है। यदि बारहवें, आठवें स्थान में राहु हो तो प्रेत दोष, गुरु हो तो पितरदोष 'चन्द्र हो तो जलदेवी का दोष, सूर्य हो तो देवी दोष अथवा लग्न, अष्टम द्वादश में सूर्य हो तो क्षेत्रपाल दोष शनि हो तो स्वगोत्र की सती का दोष, और बुद्ध बारहवें या अष्टम, हो तो पिशाच दोष, व्यय १२ तथा आठवें भौम हो तो, साकिनी (कृत्या) का दोष, शुक्र हो तो जलदेवी दोष परन्तु दोष सूचक ग्रह, स्व, स्व-राशि उच्च राशि में हों और बलवान हों तो उक्त दोष साध्य, और यदि चन्द्र नीच या निर्बल हो

और दोष सूचक ग्रह, अपनी नीच, शत्रु क्षेत्रराशि में हों तो असाध्य कहें है। बलवान पाप ग्रह केन्द्र १,४,७, १० में हो तो असाध्य, यदि शुभ ग्रह १, ४, ७, १० में हों तो पूर्वोक्त देवगण साध्य अर्थात् अनुष्ठानादि से प्रसन्न हो जावे।

असाध्यता में अथर्ववेदोक्त या ऋग्विधानोक्त विधि ही सफल सिद्ध होती है।

"प्रकारान्तर से दोष ज्ञान"

२ तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, प्रहर की संख्याओं को जोड़, ८ से भाग दें। ३।७ शेष हों तो देव बाधा, २।८ से पितृ बाधा, ६।४ से भूतप्रेत, पिशाच, यक्ष राक्षस कृत्यादि दोष।

१।५ शेष हों तो शस्त्रादि अपमृत्यु प्राप्त कुल की आत्मा का दोष कहें।

"जन्माङ्ग से उपासना और ग्रहयोग"

(१) जिस जातक के जन्माङ्ग में गुरु, बुद्ध मंगल साथ हों वह उपासक होता है साकार ब्रह्म का उपासक होता है।

(२) गुरु के साथ बुध दशम में हो तो सात्त्विक उपासक बनकर (साकार ब्रह्म) उपासना करता है।

(३) दशमेश कोई शुभ ग्रह हो वह चन्द्रमा के साथ हो राहु केतु से युक्त या दृष्ट न हो तो साकार उपासक हो।

(४) बुध उच्चस्थान या कर्म (९) में हों, दशमेश नवम में हों राहु केतु का योग न हो तो साकार उपासक हो।

(५) दशमेश उच्चस्थान में हो बुध साथ हो; या लग्नेश दशमस्थ हो; दशमेश नवमस्थ हो, दोनों दशाओं में किसी पापग्रह का योग न हो तो साकार उपासक हो।

(६) दशनेश १० वें हों या वह चार शुभ वर्ग का हो या १।४।७।१०।५।९ में हो तो साकार उपासक हो।

(७) दशमेश बुध हो गुरु बलवान हो, या चन्द्र तृतीयस्थ हो तो साकार ब्रह्म उपासक हो।

(८) दशमेश और लग्नेश साथ हों और दशम और लग्नेश के एक ही स्वामी हों तो सफल सगुणोपासक हो।

(९) दशमेश शनि के साथ हो या राहु के साथ हो तो तामसी प्रकृति का उपासक हो।

(१०) दशमेश रवि, शुक्र या चन्द्रमा हो तो दूसरों के सहयोग से उपासना कर्म द्वारा अनेक धार्मिक कृत्य सम्पादित करें।

यह ध्यान में रखलेना अनिवार्य होगा कि केवल नवम या दशम भाव में स्थित ग्रह ही प्रवृत्ति के परिचायक ही होंगे; प्रत्युत ग्रह-मैत्री दृष्टिबल या पंचम में बैठे ग्रह भी, प्रभावित करते हैं।

१. जिस जातक के पंचम और नवम दोनों भाव शुभ लक्षणों से युक्त हों, वह जातक सफल सगुणोपासक होकर विश्व में ख्यात होता है।

२. पंचम स्थान में पुरुष ग्रह हो या दृष्टि बलवती हो तो पुरुष देवता का उपासक हो।

३. यदि पंचम स्थानों में सम राशि हो, चन्द्रमा और शुक्र भी हों तो शक्ति का सिद्ध उपासक बनता है।

४. ५ वें सूर्य हो तो जातक शक्ति का सिद्ध उपासक होता है ।

५. नवें मंगल हो या दृष्टि हो तो पशुपति नाथ का उपासक होता है । यदि ६ वें गुरु हो, या गुरु की दृष्टि हो तो शंकर-भक्त होता है ।

६. शनि ५ वें या ६ वें हो (विशेष प्रभाव ६ वें में) तो तामसी उपासना में सिद्धि प्राप्त करे । यथा—

"नवमस्थाने सौरोयदि स्थित सर्व दर्शन विमुक्तः ।
नरनाथ योगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितोभवति ।।"

शनि ६ वें हो, अन्य ग्रहों का बलाबल होने पर समस्त दर्शनों को त्याग दे; राजयोग हों तो राज को त्याग दे; या दीक्षा के उपरान्त उपासक बने ।

७. यदि जन्मकाल में किसी भी स्थान में ४ से लेकर ७ तक ग्रह हों तो उपासक होता है । इन ४ से सात ग्रहों में एक बली तो हो; पर अस्त न हो और बली ग्रह युद्ध में पराजित भी न हो; हारे बली ग्रहों की दृष्टि न हो उनमें कोई दशमेश हो तो उपासक उभय लोकों का मार्ग प्रशस्त करता है । ऐसी स्थिति में बली सूर्य साकार उपासक, चन्द्रमा तामसी उपासक; भौम से सन्यास; बुध का प्रभाव तामसी, गुरु का साकार ब्रह्मोपासक, यही शुक्र का प्रभाव है ।

८. लग्नेश पर किसी की दृष्टि न हो, लग्नेश शनि को देखता हो तो सिद्ध प्रख्यात होता है ।

९. शनि पर अन्य ग्रह की दृष्टि न हो और शनि लग्नेश को पूर्ण दृष्टि से देखे तो सिद्ध उपासक या सिद्ध सन्त होता है ।

१०. शनि की दृष्टि निर्बल लग्न पर हो तो निर्गुण ब्रह्म उपासक हो ।

११. जन्म के चन्द्र की राशि के स्वामी पर किसी की दृष्टि न हो; परन्तु उस जन्मराश्याधिपति की दृष्टि शनि पर पड़े तो प्रभावित ग्रह की अन्तर्दशा में उपासना की ओर अग्रसारित होता है ।

चन्द्रमा किसी राशि पर होकर मंगल या शनि के द्रेष्काण में हों; चन्द्रमा पर किसी की दृष्टि न होकर शनि की दृष्टि हो तो निर्गुण उपासक हो ।

१२. चन्द्र शनि के द्रेष्काण में हो और उस पर दृष्टि हो तो निर्गुण ब्रह्मोपासक हो ।

१३. चन्द्र शनि के द्रेष्काण में हो; मंगल या शनि का नवांश भी हो उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि हो तो निर्गुण उपासक हो ।

१४. यदि जन्म राशि निर्बल हो; उस पर शनि की दृष्टि हो तो उपासना में ही अन्तिम जीवन लगाये ।

१५. ९ वें भाव में शनि पर किसी बलीग्रह की दृष्टि न हो, राजा होकर भी अन्त समय ब्रह्म उपासक होता है । इस योग के प्रभाव से जातक राजसी जीवन व्यतीत करने लगता है ।

१६. यदि चन्द्रमा पर शनि या लग्नेश की दृष्टि हो तो उपासक बने ।

१७. धर्म ९ में चन्द्र हो, अन्य की दृष्टि न हो तो राजयोग होने पर भी सन्यासी, सिद्ध उपासक होता है ।

१८. मंगल जिस राशि में हो उसी में चन्द्र हो; चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में हो और चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि हो तो उपासक हो।

१९. लग्नेश गुरु मंगल या शनि हो, उस पर शनि की दृष्टि हो, धर्म में गुरु हो तो निर्गुणो पासक हो।

२०. कर्म १० वें तीन बलवान ग्रह हों; सभी उच्च के हों; स्वगृही हों या शुभ वर्गस्थ हों और कर्मेश बली हो तो सिद्ध उपासक हो तथा संसार में ख्यात हो।

२१. कर्मेश निर्बल हो, सप्तम में हो तो तामसी उपासक हो।

२२. द्वितीयेश और सप्तमेश उपासना की ओर अग्रसर करने वाले तीन ग्रहों से घिरे हों तो तामसी उपासक बन कुख्यात भी हो जाता है।

२३. उपासना की ओर अग्रसर करने वाले ग्रहों के साथ रवि, शनि, मंगल हो तो तामसी उपासक हो।

२४. लग्नेश बली न हो उस पर शुक्र एवं चन्द्रमा की दृष्टि हो और कोई उच्च अथवा उच्च नवांशस्थ ग्रह चन्द्रमा को देखता हो तो धनहीन उपासक हो।

२५. हीनबल चन्द्र राशि का स्वामी केन्द्रस्थ बलवान शनि को देखता हो तो तासमी उपासक हो या धनहीन उपासक हो।

२६. यदि कर्म (१०) में मीन का बुध हो-या-उसमें मंगल बैठा हो तो सिद्ध उपासक हो। और जीवन्मुक्त हो।

२७. १० वें कर्मेश धर्म (९) में हो; और बली नवमेश, गुरु-शुक्र से दृष्ट हो या संयुक्त हो तो उपासक सिद्ध और संसार में ख्यात हो।

२८. कर्मेश (१०) शुभ ग्रह हो या कर्मेश, दो शुभ ग्रहों के बीच में हो या कर्मेश शुभ ग्रह के नवांश में हो तो सिद्ध उपासक हो।

३०. केन्द्रस्थ (१।४।७।१०) चन्द्र पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो तो उपासना से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है।

३१. कर्मेश शुभ ग्रह हो और उच्च, स्वगृही या मित्रगृही हो तो सिद्ध उपासक हो।

३२. दशमेश पांच शुभ ग्रहों के वर्ग का हो; या-सात उत्तमवर्गों का हो तो उपासना पद्धति से महान सिद्धि प्राप्त करता है।

३३. लग्नेश १० वें; ९ वें हो, दशमेश पर किसी भी पापग्रह की दृष्टि न हो तो महान उपासक वन उभय लोकत्रायक सिद्धि प्राप्त करता है।

३४. जन्माङ्ग में सभी ग्रह चन्द्र और गुरु के भीतर हों तो निर्गुण उपासक सिद्ध होता है।

३५. जन्माङ्गस्थ समस्त ग्रह शनि और मंगल के अंतर्गत हों तो निर्गुणोपासना में सिद्धि प्राप्त करता है।

३६. जातक का जन्म मकर राशि में हो और समस्त ग्रह सूर्य और मंगल के अंतर्गत हों तो निर्गुणोपासक सिद्ध हो।

३३;३४;३५ वें निर्गुणोपासना के योगों में दो ग्रहों के बीच में अन्य सभी ग्रहों के रहने से (अभिप्राय है) कि यदि इस योग में मकर राशि में जन्म हो और सूर्य की राशि अंशों से आगे अन्य सभी ग्रह स्थित हों तथा अन्त में मंगल हो ; ।

३७. धर्मस्थ शनि और गुरु हों या कर्मस्थ हों और एक ही नवांश में हों तो उपासना से सिद्धि प्राप्त करता है ।

३८. कर्क जन्मलग्न हो; धन के नवांश का लग्न हो; गुरु लग्नस्थ हो १।४।७।१० वें तीन या चार ग्रह हों तो उपासना से जीवन्मुक्त हो जाता है ।

३९. यदि जन्म धन राशि में हो, गुरु लग्न में हो, लग्नमेष के नवांश का हो, मिथुन में शुक्र हो, चन्द्र कन्या में हो तो उपासना से परमपद प्राप्त करते हैं ।

"जन्माङ्ग से उपासना और सहयोग में विशेष ज्ञातव्य"

४०. यदि मेष के अन्तिम नवांश का जन्म हो; लग्न में गुरु या शुक्र हो-द्वितीय स्थान में चन्द्र हो, सिंह के नवांश का मंगल हो या धन के पंचम नवांश का हो तो सिद्ध उपासक होता है ।

४१. लग्न कर्क हो, लग्न में गुरु हो, सिंह का शनि, वृष का चन्द्र, मिथुन में शुक्र, रवि, बुध स्थिर राशि में हो तो उपासना से सिद्धि प्राप्त करता है ।

४२. कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धन में ही सातों ग्रह, बैठे हों, इनमें से बिना ग्रह की राशि कोई न हो तो लब्धप्रतिष्ठ उपासक होता है ।

अथर्वकाण्ड ४ सूक्त १ के सन्दर्भ में

"कार्य सिद्धि असिद्धि प्रश्न"

१. प्रश्नकर्त्ता का मुंह जिस ओर हो, उस दिशा की अंक संख्या (१ पूर्व २ पश्चिम ३ उत्तर ४ दक्षिण); प्रहर संख्या (सूर्योदय से ३ घन्टे १ प्रहर समझें); वार संख्या; और नक्षत्र संख्या (अश्विनी से प्रारम्भकर) सबको जोड़ें, योग में ८ का भाग दें—शेष १।५ से शीघ्र सिद्धि; ६।४ से ३ दिन में सिद्धि; ३ : ७ से विलम्ब : २।० से असिद्धि ।

२. प्रश्नकर्त्ता से १ से १०८ पर्यन्त संख्या में से कोई अंक लिखाये या जो वह समझे, बुलवायें उसमें १२ का भाग दें १।७।९ से विलम्ब, ८।४।५।१० शेष से कार्यनाश २।३।६।०।११ से कार्य-सिद्धि समझें ।

३. प्रश्नकर्त्ता की तिथि संख्या जो प्रश्नकाल में हो—वार संख्या—नक्षत्र संख्या के योग को ३ से गुणा करें उसमें ६ जोड़ें उस योग में ९ का भाग दें—शेष १ से पक्ष में, २ से मास में, ३ से ऋतु, ४ से अयन (उत्तरायण—दक्षिणायन ६।६ मास) ५ शेष में दिन, ६ में रात्रि, ७ में प्रहर ८ में घटी, ९ शेष में १ मिनट की अवधि कार्य होने की समझें ।

"लाभालाभ प्रश्न"

१. प्रश्न कुण्डली से १।८ के स्वामी ८ वें स्थान में हों और दोनों एक ही द्रेष्कण में हों तो अवश्य लाभ हो ।

२. प्रश्न लग्न में सौम्यग्रहों का वर्ग हो तो ग्रह भावानुसार शुभ फल हो।

३. प्रश्न लग्न में चन्द्रमा और लाभ ११ वें गुरु या शुक्र हो तथा लाभ भाव के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो प्रश्नकर्त्ता को विशेष रूप से लाभ हो।

४. लग्नेश और ११ लाभेश एक साथ हों तो भी लाभ हो।

५. लग्नेश लाभेश का इत्थशाल+योग होने पर भी लाभ हो।

६. लग्नेश चन्द्रमा से युत या दृष्ट होकर ११ वें स्थित हो तो दूसरों की सहायता से लाभ हो।

७. लग्न से १० में शनि और चन्द्रमा का इत्थसाल होने पर लाभ हो।

८. कर्म १० का स्वामी लग्नेश के साथ हो, या उनका इत्थसाल योग हो एवं कर्मेश और लाभेश योग हो तो लाभ हो।

९. प्रश्न से **११** और ८ वें के स्वामी का योग और इत्थसाल हो तो लाभ हो।

१०. जिस-जिस स्थान पर चन्दमा की दृष्टि हो उस-उस स्थान से पुण्यवृद्धि तथा कर्म-सिद्धि हो।

११. ८ वें पर चन्द्र की दृष्टि हो तो कार्य, धर्म, कर्म का ह्रास हो।

१२. लग्नेश ६।८ में हो तो कार्य हानि-नाना कष्ट हों।

१३. लग्नेश १२ भाव में हो तो व्यय अधिक हो, लाभ कुछ नहीं हो।

१४. प्रश्न लग्न में बुध को चन्द्र देखे, अथवा पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो शीघ्र लाभ हो।

१५. प्रश्न लग्न की राशि की कला बनाकर उसको छाया के अंगुलों से गुणा कर ७ से भाग दे शेष को एक स्थान में रख दे। यदि शुभ का उदयांक हो तो कार्य सिद्धि, अन्य ग्रह के उदयांक से असिद्धि समझे।

"प्रवासी प्रश्न ज्ञान" :—अथर्व कां० ७ सू० ९।। प्रपथेपथाम् के सन्दर्भ से

१. प्रश्न लग्न में गुरु, शुक्र २।३ स्थानों में हों तो प्रवासी विलम्ब से आवे। यदि ये १।४ में हों तो शीघ्र वापिस आये। (२) ६।७ वें कोई ग्रह हो ५।९ वें बुध या शुक्र हो तो शीघ्र आये।

२. लग्न में चरराशि हो या चन्द्रमा चर पर हो या द्विस्वभाव में, चर का नवांश हो तो वापिस आये। यदि स्थिर हो तो न आये।

३. लग्नेश २।३।८।९ में हो तो लौटकर मार्ग में ठहरा समझे। २।३।५।६।७ में वक्री ग्रह हो १।४।७।१० वें गुरु या बुध हो ५।९ शुक्र हो तो शीघ्र वापिस आवे।

४. प्रश्नाक्षरों की संख्या या प्रश्नकर्त्ता से किसी फल का नाम लिवाये, उसकी संख्या को ६ से गुणा कर १ जोड़े=योग में ७ का भाग दे १ शेष से प्रवासी मार्ग में, २ से घर के समीप, ३ से घर पर, ४ से लाभ युक्त, ५ से रोगी, ६ से पीड़ित, ० से आने पर तत्पर समझे।

"वैवाहिक"

१. प्रश्न लग्न से १।७ के स्वामी अथवा चन्द्रमा से इत्थशाल योग हो तो शीघ्र विवाह।

२. लग्नेश या चन्द्रमा ७ वें भाव में हो तो शीघ्र विवाह होता है।

३. सप्तमेश का जिस ग्रह से इत्थशाल योग हो वह ग्रह निर्बल हो, पापयुक्त या पाप दृष्ट हो तो विवाह न हो या भारी परेशानी से होता है।

४. ७ वें भाव में पाप या अष्टमेश हो तो विवाहान्त दम्पति में से १ की मृत्यु हो। विवाह में अशुभ घटनायें घटित होती हैं।

५. ७ वें या उसके स्वामी पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति हो तो ३ मास में विवाह हो।

६. लग्नेश, सप्तमेश तथा चन्द्रमा इन तीनों के स्वभाव, गुण, स्थान, दृष्टि के माध्यम से विवाह फल समझें।

अथर्व कां० ४ सू० १ के संदर्भ में

"शुभाशुभ ज्ञान"

प्रश्न का समय का इष्ट बनायें, प्रश्न कुण्डली, ग्रहस्पष्ट, भावस्पष्ट, नवमांश तथा चलित चक्र बनाकर विचार करें :—

१. प्रश्नकाल में चर राशि, बलवान लग्नेश: कार्येश शुभ ग्रहों से युत या दृष्ठ हो और १।४।५।७।६।१० स्थानों में से कहीं हो तो प्रश्नकर्त्ता का कार्य शीघ्र हो।

२. यदि लग्न में द्विस्वभाव राशि हो १।४।५।७।६।१० में पापग्रह हों लग्नेश, कार्येश हीनबल हो, नीच, अस्तंगत या शत्रु क्षेत्री हो तो कार्य नाश हो।

३. यदि स्थिर लग्न हो, लग्नेश, कर्मेश बलवान हों तो विलम्ब से कार्य हो। धनप्राप्ति हेतु, लग्नेश, धन, धनेश और चन्द्रमा से। सुख, शान्ति, गृह, भूमि आदि की प्राप्ति के प्रश्न में लग्न, चतुर्थ, दशम और इनके स्वामी और चन्द्रमा से। परीक्षा में यश प्राप्ति के लिए १।५।६।१० और इन के स्वामी और चन्द्रमा से। विवाहार्थ लग्न, चन्द्र, २।७ और इनके स्वामी। व्यवसाय, केश, नौकरी में—चन्द्र, लग्न, दशम, एकादश और इनके स्वामी। बड़े व्यापार में—चन्द्रमा—१।२।७।१०।११ और इनके स्वामी। सन्तति में— चन्द्रमा। १-२-५ और इनके स्वामी तथा गुरु से विचार करें।

रोग, आरोग्य मृत्यु-ज्ञान

१. नामाक्षर संख्या को २ से गुणा करें और मात्रा को ४ से गुणा कर योग करें उसमें ७ का भाग दें। शून्य से मृत्यु: शेष से जीवन समझें।

२. चन्द्रमा से या प्रश्न लग्न से—लग्न में पाप ग्रह की राशि हो, और पाप से युक्त या दृष्ट हो या चन्द्रमा ८ में हों अथवा पाप ग्रह हों तो रोगी की मृत्यु हो।

३. प्रश्न कुण्डली में पाप ग्रह ८ या १२ वें हों या चन्द्रमा १।६।७।८ में हो तो शीघ्र मृत्यु।

४. लग्न में चन्द्र, ७ वें सूर्य, मेष का भौम वृश्चिक के नवांश में चन्द्र से युक्त या दृष्ट हो तो शीघ्र मरण।

५. प्रश्न लग्न से ७ वें पाप ग्रह हों तो महाकष्ट हो, शुभ ग्रह हों तो शीघ्र स्वस्थ हो। यदि ७ वें पाप और शुभ दोनों ही हों तो मिश्रित फल परन्तु मृत्यु नहीं होती।

६. लग्नेश निर्बल हो अष्टमेष वली हो चन्द्र ६।८ हो या शनि ८ वें भौम से युत या दृष्ट, हो तो मरण।

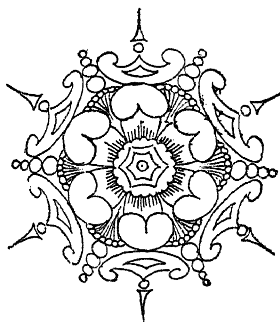
७. ८ वें रवि हो तो रक्त पित्त, बुध हो तो सन्निपात, राहू से युक्त सूर्य ८ वें हो तो कुष्ट राहू से युक्त या दृष्ट शनि ८ वें हो तो वायु विकार और ८ वें शुक्र हो तो सन्निपात हो या पक्षाघात, लकवाहो।

८. लग्नेश बली, अष्टमेश निर्बल हो तो रोगी शीघ्र स्वस्थ हो।

९. स्वाती, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, आद्रा और आश्लेषा में प्रारम्भ रोग मृत्युप्रद होता है। रेवती, अनुराधा का प्रारम्भ अधिक दिन तक बीमार भरणी, शताभिषा और चित्रा का ११ दिन तक। विशाखा, हस्त और धनिष्ठा का १५ दिन, मूल, कृत्तिका और अश्विमीका ९ दिन मघा का ७ दिन, मृगशिर और उत्तराषाढा का १ मास। भरणी, अश्लेषा, मूल, कृत्तिका, विशाखा, आर्द्रा और मघा में सर्प के डसे की मृत्यु समझें।

शीघ्र मृत्यु :—आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनों पूर्वा: बिशाखा धनिष्ठा और कृत्तिका, रवि, मंगल, शनि, ४,९,१४,११ और ६ तिथि में उत्पन्न रोगी का मरण होता है।

स्त्री पुरुष में से किस का निधन पहिले होगा। १ नामाक्षर संख्या को ३ से गुणा करें मात्रा संख्या को ४ से गुणा करें—दोनों को जोड़ें ३ से भाग दें। शेष १ से पुरुष, २ शेष रहे तो स्त्री की मृत्यु कहें २. पुरुष स्त्री की जन्मराशि संख्या जोड़ें ३ से भाग दें ० या १ शेष से पुरुष २ से स्त्री की प्रथम मृत्यु होती है।



रोग तथा भैषज्य विधान

प्रथम अध्याय

रोग

पूर्वोक्त व्याधियाँ दो प्रकार की हैं। उनमें प्रथम मिथ्या आहार-व्यवहार जन्य है। इस विषय में अथर्व वेद काण्ड ८ सूक्त ७ ऋचा २० का भाव।

"व्रीहिर्यवश्च भेषजा अमर्त्यौ" ।। (२०) **"सोमोराजा अमृतं हविः।**

दीर्घायु, नीरोगता और सुख-प्राप्ति हेतु सात्विक पौष्टिक भोजन करे यथा चावल, जौ, का भोजन। सोमरस पान करे।

"मधोः संभक्ता अमृतस्यभक्ष्यः। घृतं अन्नं गोपुरोगवं दुह्वताम् ।। १२

मधुरता से संमिश्रित, अमृतान्न; घी से मिश्रित अन्न और गोरस श्रेष्ठ है।

चित्तवृत्तियों का सुधार

कां० २ सू० ६ ऋ० ४ "निहः सृधः अचित्तीः अविवर"

झगड़ालूवृत्ति, हिंसा का भाव, पाप वासना; द्वेष और ईर्ष्या को दूर करें ऋचा ५— **"विश्वा दुरिता तर"**। सब पापभावों को त्यागो उनसे बचो। विशेष वैद्यकग्रन्थों में उल्लेख है।

पापजनित कर्मज व्याधि

कां० ८ सू० ७ की ऋचा ७; १६; ६ और १३ में वर्णित **"दुरित अंहस् मृत्यु"** कायिक वाचिक, मानसिक; बौद्धिक मनुष्य की पापप्रवृत्तियां ही रोग, दुख, मृत्यु और नाश का मूल कारण है। इनके लिये औषधि सेवन लाभप्रद है। औषधियां पाप से रक्षा करती हैं, पाप न होने से रोग से बचते हैं। समूल पाप दूर होने से मृत्यु से रक्षा होती है।

वेद में प्रायः एक ही औषधि सेवन पर बल दिया है, मिश्रित औषधि सेवन का उल्लेख है परन्तु न के तुल्य ही है।

रोग के रक्षा के उपरोक्त कारण वर्णित हैं।

पापी की अधोगति

पापी, दुष्ट की अधोगति, अपकीर्ति होती है "कां० सू० ४ ऋ० ११"

"अस्य यशः प्रति शुष्यतु। यः दिवानक्तं दिप्सति स अधः अस्तु" ।।
स्तेन कृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु। सतन्वा च निहीयताम् ।। १० ।।
स दशभिः वीरैः वि यूया ।।१५।। **विश्वस्य जन्तोः अधमः पस्पदीष्ट** ।। १६ ।।

दुष्ट का यश नष्ट हो जाता है। दिनरात दुष्टता करने वाले का अधः पतन हो जाता है चोर-वधिक-आततताई, लुटेरे, दुष्ट-द्वेष करने वाले के तन, धन, वंश, कीर्ति नष्ट हो जाते हैं। दसों प्राण परित्याग कर देते हैं। दुर्गति को सदलबल प्राप्त होते हैं।

दुष्ट लक्षण

"यः अयातुं यातुधान इत्याह। यः रक्षः शुचिः अस्मिइत्याह" १६

भले को बुरा कहना, अपवित्र को पवित्र समझकर विपरीत व्यवहारकर्त्ता ही दुष्ट है।

आत्मदण्ड

"यदियातुधानोऽस्मि, यदि वापुरुषस्यआयु; ततप, अद्या मुरीय।। १५।।

यदि अपराध अज्ञानवश हो जाय तो जैसा लघु-भीषण पाप हो वैसे ही प्रायश्चित्त के द्वारा पाप की निवृत्ति करे।

यदि मैं किसी को अकारण यातना दूं, तो आज ही मर जाऊं। यह सर्वज्ञ सर्वेश्वर जो समष्टि और व्यष्टि में विद्यमान है—उनके समक्ष प्रणयन करे।

उन्माद

उन्माद के दो मुख्य कारण हैं, (१) मिथ्या आहार-बिहार (२) कर्मज-पापज। प्रथम की चिकित्सा योग्य और अनुभवी तपस्वी वैद्य द्वारा ही सम्भव है। यदि उनके उत्तम निदान तथा उपचार से उन्माद शान्त न हो तो निश्चय दूसरा कर्मज-पापज है। जिसके कुछ लक्षण निदान में हैं—कुछ प्रथम प्रकरण में भी है। इस व्याधि के शान्त करने वाले मन्त्रद्रष्टा ऋषी "चातन" और अग्नि "रक्षोहा" के नाम से यहां वर्णित हैं। चातन—रोगों को दूर करना, हटाना, हटा देना, निकाल देना, नाश करना। इनके नाम से कई सूक्त हैं। ये सब "चातनगण" के नाम से प्रयुक्त किये गये हैं।

"रक्षोहा" अग्नि-रक्षः; राक्षसः; भंगुरावत-क्रव्याद; किमीदिन यातुधान, मूरदेव; तमोवृध; अचित्; दुर्हार्द, अत्रिन्; अघः अघशंस ब्रह्मद्विष; तमोवृध; दुष्टकृत; द्रुह; अनृतवक्ता; असतःवक्ता स्तेनः; स्तेनकृत; रिपु, मिथ्याधारन; अनृतदेव; देवान्मोघंऊहे द्रोहवाक्; रक्षः शुचि; अयातुं यातुधान इत्याह; तन्वं गूहमाना; दिप्सुः पिशुनः; हविर्मथिन्; शुशुलूकयातुः; गृध्रयातुः; उलूकयातुः श्वयातुः; माययाशासदानः; शपनेनशशाप; अधंमूरं आदधे; रसस्य हरणाय जातं तोकं आरेभेः यातुधानींपुत्रं स्वसारं नप्त्यं अत्ति; विकेश्या; मिथ, विघ्नतां; वितृह्यन्तां।

दुष्टों के लक्षण

अथर्व वेद काण्ड ८ सू० ३—

(१) दुर्हार्द्र (मन में घातपात की धारणा करने वाला) (२) रक्षः राक्षसः (बाहर से रक्षा अन्दर से विनाश करने वाला) (३) असुतृप (दूसरों की बलि चाहने वाला) (४) धूर्वन (दूसरों का घात, नाश चाहने वाले) (५) भंगुरावत (दूसरों का सत्यानाश करने वाले) (६) अभिदासन (दूसरों का वध, बन्धनकर्त्ता) (७) हिंस्रः—(दूसरों का नाशकर्त्ता (८) शफाहज् (पैरों से प्रहारकर्त्ता (९) रिषः (विध्वंसक) (१०) क्रव्यात् (कच्चा मांस, रक्त भक्षक) (११) मनुष्य-अश्व (पशुओं के मांस खाने वाले वधिक) (१२) अहिंसनीय गौ के वधकर्त्ता या

कराने वाले (१३) गौओं को विष देने वाले (१४) दूसरों के घात या वध के प्रेमी (१५) यातुधान (पर पीड़क) (१६) दुरेव: (कुमार्गी आतताई) (१७) अदेवी, मायाः (धोखे से अपना ऐश्वर्य बढ़ाने वाले((१८) वृजिनः (पाप कर्म रत) (१६) वाचास्तेनः (वाणी का चोर) (२०) मूरदेवः सहमूरः (महाघातकी महामूर्ख, महाहिंसक, डाकू, आतताई, वधिकों का समर्थक साथी) (२१) मिथुनाशपातः (अपशब्द, निष्ठुरभाषी)।

कां० ८ सू० ४

(२२) तमोवृध (अज्ञान बढ़ाने वाला) (२३) अचित (चित्त में दुष्ट विचार) (२४) अत्रिन् (स्वार्थरत परपीड़क) (२५) अघः अघशंसः (पापकर्मी कुख्यात) (२६) ज्ञान, ब्रह्मद्रोही (२७) दुष्कर्मी (२८) द्रुह (कपटी, विश्वासघाती) (२६) असत्य गवाही देने वाला (३०) मिथ्यावादी (३१) विविध छल छद्म से अन्य धनापहर्त्ता (३२) दूषित, विषाक्त भोजनादि से प्राण हन्ता (३३) चोर, चोरों का प्रसार कर्त्ता (३४) मिथ्या व्यवहार करने वाला (:५) असत्य-आचार-अनाचारी (३६) देवमूर्ति चुराने वाले, झूठे देवोत्सवादि के बहाने ठगने वाले (३७) दुर्वक्ताः; कठोरवक्ता (३८) स्वयं पतित होते हुए पवित्रात्मा का दावा भरे (३६) सज्जनों को दुर्जन कहे (४०) छिपकर हमला करने वाले (४१) हिंसक-घातकी (४२) चुगल (४३) हवि को दूषित करने वाले (४४) पशु पक्षि घातकी (४५) भेड़ियों की भांति महाक्रूर (४६) गीध तुल्य परिविनाशकर्त्ता, लोभी, (४७) अहंकारी (४८) उल्लू के तुल्य दिनसेभीत (४६) कुत्तों के तुल्य लड़ने वाला (५०) कपटी छली-मायावी।

ये किसी भी लोक-भू-द्यौ आदि के हों उन सभी से रक्षार्थ "रक्षोहरणगण" उपयुक्त कहा गया है।

आदि-आदि ये सभी दैवी, आसुरी, यातुधानी विघ्न तथा आगे दिये गये कृत्यागण के समस्त विघ्नों को नष्ट करके शान्त, स्वस्थ नीरोग बनाने वाली अग्नि का नाम है, इसे दक्षिणाग्नि चाण्डालाग्नि, आङ्गिरस्याग्नि भी कहा गया है। आगे प्रमाण सहित विवरण आयेगा।

इनमें ऋषींबल, मन्त्रबल, देवबल ही प्रधान भेषज है। मात्र-छींटे देने, धूनी देने होम करने के यत्र-तत्र दीर्घकालीन रोग, कीटाणुओं व कारणों को दूर कर स्थायी स्वस्थता, नैरुज्यता तथा तपोबल की अभिवृद्धि-जप-उपस्थान-भेषज सेवन, मणिबन्धन रूप भैषज्या विधि है।

कृत्यागण में अपामार्ग का महत्त्व

कृत्या का विस्तृत निदान दिया जा चुका है। इसके निवारण में विशेष भेषज अपामार्ग के कई सूक्त हैं जो "कृत्यागण" के नाम से वर्णित है। यद्यपि इसका विशद विवरण आगे है तथापि निम्न रोगों में इसके प्रयोग का सूक्तों में उल्लेख है, इसे उसके साथ ही विचार कर प्रयोग करें, यह एकाकी ही प्रयोग करें।

इसे ओंगा-लटजीरा चिरचिरा भी भाषान्तरों में कहते हैं। यह श्वेत कृष्ण और लाल तीन प्रकार का होता है। इसके गुण जो भाव प्रकाश निघण्टु से भी सम्मत हैं, १ भस्मक रोग अधिक खाने, अधिक प्यास के रोगों को समता में लाता है। बीज प्रयोग करें।

बीज पचने में कठोर, स्वादु शीतल है, इसके बीज की खीर १ तोला की ही महीनों तक भूख-प्यास को पास नहीं आने देती न बल क्षय ही होता है। शरतपूर्णिमा में अग्नि पर रख चिलम में रखकर धुवां पीने से दमा श्वांस चला जाता है। बवासीर, खुजली, आँव, रक्तस्राव, रजस्राव, रक्तचाप सभी रक्त विकारों को दूर करता है। वमनकारक भी, सन्निपात ज्वर में पृश्निपर्णी के साथ उपयोग में आता है।

यह भूख बढ़ाने वाला भी है। कफ, मेद, वात, हृद्रोग; आध्मान, भगन्दर को नष्ट करने वाला है। शरीर की कान्ति-बल-वीर्यवर्धक है नस्य में भी प्रशस्त है उदर, जिगर, प्लीहा को नष्ट करता है। व्रण, उल्टे, बिना मुख के, विषैले सभी फोड़ों, व्रणों, विषों, वात, पित्त, कफ जन्य दोषों का शमन करता है। क्रोध या दुर्वचनों को शान्त करता है। दुष्टस्वप्न नाशक, गाढ़स्वस्थ निद्राप्रद; मन की ग्लानि, विविधकृमि शरीर की कृशता; क्षीणता; को नष्ट कर; तेज, शोभा, कान्ति, स्वरूपता प्रद है मस्तिष्क के सभी दोष-वधिरपन, मोतियाविन्द आदि नेत्र रोग-रात्रि अन्ध नासिका रोग, बुद्धि की जड़ता, तोतलापन, विस्मरण होना, थकान, दांतों की हिलने से रक्षा, गले या मसूड़ों से रक्त या दुर्गन्धि आना, गले, कण्ठ के विविध विकार; उदर विकार-शौच शुद्धि करने वाला चिडचिडापन; वकवास; क्षेत्र में गौओं आदि पशुओं, मनुष्यों, व स्त्रियों बालों-वयस्कों में विनाश हेतु किये कृत्या प्रयोगों को नष्ट करने वाला है पाप, शापनाशक है। समस्तविषों; विषैले जन्तुओं के विषों को शान्त करने वाला प्रदर, प्रमेह, मधुमेह शान्त करने वाला, माता, चेचक, मोतीझरा को दूर करने वाला है।

क्षेत्रीय रोग—माता पिता, मातामह, पितामह से चले आये आनुवंशिक कुष्ठ-यक्ष्मा, अपस्मार, वन्ध्यापन, नपुंसकता, श्वांस, कामला, पाण्डु रोग दूर करता है। सहन शक्ति बढ़ाता है। धूप, शीत सहन करने में सहायक होता है मूर्च्छापन; रक्तक्षीणता; सूखापन, नवजात शिशुरोग को शान्त करता है। इन्द्रियों के दोष, दुर्बलता दूर कर स्वस्थ बनाता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा मस्तिष्क विकारों उन्माद आदि को शान्त करता है।

कलंक (अपवाद) अपकीर्ति, भद्देनाखूनों से उत्पन्न रोगों को नष्ट करता है। अपामार्ग खोटी भूमि-श्मशान-ऊसर या रास्ता के सहारे का न लें।

जुतासुभूमि को श्रेष्ठ कहा है, पुष्य नक्षत्र का प्रार्थना पूजा के साथ लाया और अपामार्ग सूक्तों से अभिमन्त्रित करने पर तो यह सभी आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक विकारों को शमन कर स्वस्थ बनाने में समर्थ माना है।

इसके अनेकों प्रयोग सफल सिद्ध हुए हैं।

प्रमुख अथर्ववेदीय औषधि-परिचय

अथर्ववेद में औषधियों के विविध प्रकार, उनके जातिभेद, वर्गभेद, स्वरूप और गुण, धर्मों का प्रतिपादन किया गया है। अथर्ववेद के काण्ड ८ सूक्त ७ में औषधियों का जातिभेद इस प्रकार है—

रंग भेद से—भूरेरंग वाली, शुभ्रश्वेतरंग वाली, लालरंग वाली, चितकबरी, नीलेरंग वाली, काले रंगवाली औषधियाँ होती हैं। ८।७।१

स्वरूप भेद से—मूल से ही अलग-अलग शाखाओं में फैलने वाली जैसे अनार, मेंहदी आदि औषधियाँ। एक मूल वाली जैसे आक—मदार आदि औषधियाँ। फैले हुए मूलवाली जैसे—ब्राह्मी औषधि, काँटों वाली जैसे जवासा, कटेली, नागफनी आदि औषधियाँ। सूक्ष्म अवयवों वाली जैसे-थूहर, झाऊ औषधियाँ। काण्डों (पोरों) वाली जैसे-सरपत, नरकट, सरकण्डा, ईख, बेत आदि औषधियाँ। शाखारहित, जैसे-नारियल, सुपाड़ी, खजूर, ताड़ आदि औषधि वृक्ष (।।८।७।४।)

गुण भेद से—जीवन देने वाली औषधि। किसी हालत में हानि न पहुँचाने वाली औषधि। स्वयं जीवनी-शक्ति रखने वाली औषधि। आन्तरिक मर्मस्थानों को शक्ति देने वाली औषधि। बाहरी घावों को भरने वाली औषधि। उन्नत करने वाली औषधि। फूलों वाली औषधि। मधुर रस वाली औषधि ।।८।७।६।।

संशोधन तथा स्नेहन वर्ग की औषधियाँ—प्रचेतसाः (चेतना प्रदान करने वाली) और मेदनीः (दोषों को हटाकर शुद्धता, स्निग्धता लाने वाली औषधियाँ) ।।८।७।७।।

उपयोग भेद से—जो पुनर्भवा हों अर्थात् बार बार नये रूप में उगने वाली हों। अग्नेर्घासः—अग्नि के भोजन रूप हों। अपां गर्भः—जलों का सार रूप हों। ध्रुवाः—स्थिर प्रभाव वाली हों। सहस्रनाम्नीः—हज़ारों नामों वाली औषधियाँ रोग भेद से उपयोग में लाई जानी चाहिए ।।८।७ ८।।

जलीय औषधियों की उत्पत्ति भेद से जाति—अवकोल्वा—जिन औषधियों में काई (सेवार) लिपटी रहती है। उदकात्मनः—जलमय जल से उत्पन्न औषधियाँ। तीक्ष्णश्रृङ्ग्यः जिनके पत्तों के अग्रभाग सूक्ष्म होते हैं ।।८।७।९।।

विषनाशक औषधियों का वर्ग—विषरुणाः—ग्राह्य। उग्राः—तीव्र गन्ध रस वाली। **विषदूषणीः**—विषनाशक। बलासनाशनी—कफ—बलगम नाश करने वाली। **कृत्यादूषणी**—कृत्या अभिचार दोषों को दूर करने वाली औषधियाँ।८।७।१०।।

अन्नदेने वाली, दूधदेने वाली, घास, घृत देने वाली, स्निग्ध औषधियों के तीन वर्ग—इन औषधियों का मूल गुणकारी होता है। इनकी फुनगी (ऊपरी भाग) गुणकारी होता है। इनका मध्यभाग गुणकारी होता है। इनके पत्ते गुणकारी होते हैं। इनके फूल गुणकारी होते हैं। मधुर गुण वाले जल से सींची हुई ये औषधियाँ अमृत का भागप्रद भंडार है। इनसे घी, अन्न और दूध का दोहन करना चाहिए। ८।७।१२

पत्तों वाली औषधियों का वर्ग—पृथ्वी पर जितनी औषधियाँ हैं वे सहस्रपर्णों वाली हैं। मृत्युरूप रोग से मुक्त कराती है ।।८।७।१३।।

औषधियों की मणियों के गुण—औषधियों की मणि (बटी, गोली) सिंह जैसे प्रभावकारी रोगों से बचाती है। देहक्षति से रक्षित रखती है। रोगों को और समस्त विषकृमियों को दूर करती है ।।८।७।१४।।

औषधि—मणि का तात्पर्य औषधि की वटी या गोली से है। कौटलीय अर्थशास्त्र (अधि० १४।प्र० १७९) का यह सूत्र भी प्रमाणित करता है—

जीवन्तीश्वेतामुष्कपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।

महौषधि वर्ग की औषधियाँ—वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल), तृणों में दर्भ (दाभ, कुश), लताओं में ओषधिराज सोमलता, प्राकृतिक द्रव पदार्थों में जल (अमृत), जङ्गमज वस्तुओं में घृत-सेवन तथा घृत हवन, अन्नों में जौ और चावल, आकाशीय भेषज रूपों में सूर्य और चन्द्र—महौषधि हैं ।८।७।२०

यहाँ पर अथर्ववेद दो प्रकार की चिकित्सा का संकेत करता है—१. प्राकृतिक चिकित्सा २. औषधि चिकित्सा ।

पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों द्वारा उपयोज्य भेद से औषधियों का वर्गीकरण—अथर्ववेद के अध्याय ८ सूत्र ७ के वराहो वेद वीरुधं इस २३ वें मंत्र से लेकर यावतीषु मनुष्याभेषजंभिषज्जो विदुः—इस २६ वें मंत्र तक पशु-पक्षियों, मनुष्यों द्वारा उपयोज्य औषधियों का वर्ग बनाया गया है ।

आकारभेद से औषधियों का वर्ग—पुष्पवतीः—फूलों वाली । प्रसूमतीः फूलों से रहित किन्तु पल्लवाङ्कुरों वाली । फलिनीः—फलवाली । अफलाः—फलरहित ।।८।७।२७

अथर्ववेद में पृथिवी (मिट्टी), पर्वत, जल, नदी, स्रोत, मेघवृष्टि, अग्नि, बिजली, वायु, सूर्य, चन्द्र—इन प्राकृतिक पदार्थों से प्राकृतिक चिकित्सा का विधान बताया गया है । जैसे—

१. **पृथिवी** (मिट्टी)	सर्प विष को चूसने का गुण मिट्टी में रहता है ।
२. **पृथिवी-संषत्** (ऊसर, पड़ती ज़मीन)	रेह मिट्टी में कफ, खाँसी दूर करने का गुण है ।
३. **देवी** (सौराष्ट्रमृत्तिका)	सौराष्ट्र मृत्तिका केशों को काला और लंबा बनाती है और स्थावर विषों को दूर करती है ।
४. **उपजीकोद्भृत** (बाँबी की मिट्टी)	बाँबी की मिट्टी में नासूर का घाव भरने तथा नशा करने वाले स्थावर विषों को दूर करने, मूर्च्छा, भय और सर्प विष नष्ट करने का गुण है ।
५. **गिरि** (ऊँचे टीले) **पर्वत** (पहाड़)	ऊँचे टीले तथा पहाड़ पर दौड़ते हुए चढ़ जाने से सर्प का विष तुरन्त उतर जाता है ।
६. **जल** आपः, महत् (कुएँ का जल) नदी-स्रोत (बहता हुआ जल) अवत्क (ऊँचे से गिरता हुआ जल) शतवृष्ण्य (मेघ-जल)	जल में सद्योव्रण (तुरन्त घाव) भरने । स्वप्नदोष, निद्राक्षय, वंशानुगत रोगों को दूर करने का अनुपम गुण है । नदी के बहते हुए पानी में डुबकी लगाने से सर्पविष दूर होता है, नेत्र दृष्टि बढ़ती है । झरने के पानी से हृदयशूल, हृदय दाह, नेत्रदाह दूर होता है । नये खोदे हुए कुएं का जल, ऊँचाई से गिरता हुआ जल व्रणस्राव नाशक है । मेघ-वृष्टि का जल मूत्रावरोध, पथरी तथा मूत्राशय, पित्ताशय के समस्त रोग दूर करता है । अथर्ववेद ने जल को रसायन कहकर समस्त रोगों को दूर करने वाला बताया है ।

७. अग्नि अग्नि (सामान्य अग्नि) भूरिधायस पर्जन्य (पार्थिव अग्नि) होता (हवन की अग्नि)	अग्नि शीत रोग को दूर करती है, सर्प विष को जला (दाग) कर नष्ट करती है। कृमियों से दूषित आहार को शुद्ध करती है। मूत्रावरोध को दूर करती है। गर्भवती को सुख-प्रसव कराती है। इसमें रासायनिक गुण रहते हैं।
८. विद्युत् इन्द्र विद्युत् (वज्राग्नि) वरुण विद्युत् (विद्युतधारा)	विद्युत् से समस्त रोग दूर होते हैं। खासकर भोजन में कृमि-दोष को दूर करती है। रुके हुए पेशाब को खोलती है।
९. वायु मरुत् (साधारण वायु) वेधा (मौसमी हवा) बृहस्पति (ऊर्ध्व वायु) मित्र (यंत्र प्रेरित वायु)	वायु रसायन है। स्वास्थ्यप्रद है। शरीर के अन्दर भेषज्य प्रभाव डालता है। सुख से प्रसव कराता है। सभी प्रकार के रोगों को दूर करता है। रुके हुए पेशाब को निकालता है।
१०. मेघ वृषा (बादल)	गरज के साथ बरसता हुआ पानी और मेघ-गर्जन सर्प विष को दूर करता है।
११. चन्द्र (चन्द्रमा)	चन्द्रमा की चाँदनी रुके हुए मूत्र को बाहर निकालती है और क्षेत्रिय (वंश परम्परागत) रोगों को दूर करती है।
१२. सूर्य अर्यमा सविता आदित्य	हृदय रोग, हलीमक, कामला, अपची (गण्डमाला) और शिरोरोग को सूर्यकिरणें नष्ट करती हैं। सभी विषैले जन्तुओं का विष दूर करता है। कृमिनाशक हैं। क्षेत्रिय रोग तथा सभी प्रकार के रोग, सूर्योपासना, सूर्यस्नान, सूर्यव्यायाम से दूर होते हैं।

औषधि निघण्टु

अथर्ववेद में जिन औषधियों के नाम दिए गए हैं उनके मूल नाम, गुण धर्म इस प्रकार हैं :—

अथर्ववेदीय नाम	प्रसिद्ध नाम	गुण और धर्म
१. अग्नि	चित्रक या चीता	योनि दोष, गर्भसंस्राव, जातघातक रोग तथा गर्भाशय के कृमियों का नाशक है।
२. अङ्ग	सुगंधकोल, अगर	ज्वर नाशक
३. अजश्रृंगी	मेढ़ा सिंगी	विषाक्त कृमि नाशक, भूतोन्माद नाशक

अथर्व वेदीयनाम	प्रसिद्ध नाम	गुण और धर्म
७५. वचस्	वच	स्थावर विष और मूर्च्छा दूर करती है।
७६. वरणमणि वरणावती वरुणा वरुण	विल्व वरना	सर्प विष और शिरोरोग नाशक (मणिधारण प्रकरण देखें)
७७. वाक	अगस्त्य वृक्ष का पञ्चांग	मन्या, ग्रीवा, स्कन्ध की अपची ग्रन्थियों को नष्ट करता है।
७८. वात	मूर्वाकन्द	सर्प विष नाशक
७९. विक्षर	समुद्रफेन	कफमय खाँसी को नष्ट करता है।
८०. विश्वरूपा	काला अगर	पशु रोगों को दूर करता है।
८१. विषाणा	हिरन का सींग	हृदय रोग, पैतृक रोग नाशक
८२. विषाणा अजशृङ्गी	मेढ़ासिंगी	रक्तस्राव, वात रोग दूर करती है।
८३. वृषा	केंवाच	वाजीकरण औषधि है।
८४. शंखमणि शंखमुक्ता	शंखवटी (भस्मादि) मोती	मानसिक रोगों, भ्रम, मूर्च्छा रोगों को दूर करती है।
८५. शतवारमणि	ऋषभकवटी	नपुंसकता दूर करती है, गर्भपात दूर करती है। विष नाशक, वात-रोग नाशक है।
८६. शूद्रा	प्रियंगुलता	ज्वर नाशक
८७. श्वेत	सफेद फूल का आक	सर्पविष नाशक-नपुंसकतानिवारक, हैजानाशक।
८८. समिध	सुगन्ध काष्ठ	कृमि नाशक
८९. सहदेवी	सहदेई, सुसकौनी, महाबला	मनुष्यों, पशुओं के अनेक रोगों को दूर करता है। रसायन है। भूतघ्नी है।
९०. सिन्धुतः पर्याभृत	सिन्धु फल (कोङ्कण प्रदेश में उत्पन्न यह इलायची की तरह तीन धार का होता है)	ईर्ष्या, मानसिक दाह नाशक
९१. सुभा	शालपर्णी	पशु रोगों को नष्ट करती है।
९२. सोम	सोमलता	दिव्य महौषधि है। सर्व रोग नाशक रसायन है।

अथर्व वेदीय नाम	प्रसिद्ध नाम	गुण और धर्म
९३. हवि	घृत आदि से किया गया हवन	स्वास्थ्य वर्द्धक, आयु वर्द्धक, मेधा शक्ति वर्द्धक है।
९४. हारिद्रव	दारु हल्दी का वृक्ष	वृक्ष के नीचे सोने से, इसे देखने से, इसकी वायु सेवन करने से, इस वृक्ष का स्वरस तथा कषाय पीने से अन्य योगों के साथ सेवन करने से, इसकी छाल पीस कर लेप करने से हलीमक (पाण्डुरोग) कामला नष्ट होते हैं।

जहरवाद की भेषज

त्रिकुटा (सोंट, मिर्चकालो, पीपली), १ तोला आमले, २ तोला हल्दी, २ तोला लहसुन, २ तोला शहद में मिलाकर खाये।

थनेला (कुचरोग)

नीला थोथा, नौसादर, मुरदासन, खेतचीनी, पारा, मेहदी, कवेला, छोटी इलायची, सुपाडी की भस्म, पान, सफेद जोरा, खोआ, घी में खरल कर, ताँबे के पात्र में लोहे के मूसल से खरल करे, उसे थनेला पर मले।

या

नीला थोथा, कत्था, सिन्दूर, नागरमोथा, समभाग लेकर पीसकर कटु तैल में जला उसे लगाये (चाय-थनेला) ठीक हो।

या

पुरानी ईट की लौनी (मूसरी) काली मिर्च दोनों महीन पीस कर गौ की लौनी में के मिलाय मले तो थनेला अच्छा होता है।

या

कौंच के बीज, मीठे (तिल) तेल में जलाकर पीस कर मले।

वायुरोग निवारक

१. समालू के पत्ते आधा सेर, गेहूँ १ सेर, डेढ सेर पानी में रात्रि को भिगो दे। प्रातः सबको कढाही में गर्म कर पानी सुखा ले, पत्त निचोड़ कर पानी गेहूँ में डाले, सुखा ले पत्ते फेंक दे, गेहूँ सूख जावें तो पीस ले, उसे १ सेर घी में भूने, यथेच्छ खाँड मिला लें। प्रातः व सोते समय १/२ छटाँक दूध के साथ सेवन करें, घी भोजन में लें, वायुरोग शान्त हो।

२. कटेरी के हरे फल१०० ग्राम, २५० ग्राम घी में ढक्कनदार पात्र में ढक कर भूनले, पीस लें।

प्रथम ३ दिन सायं प्रातः ३।३ माशा, फिर ४ दिन ६।६ माशा फिर १ सप्ताह बन्द करके, अगले सप्ताह उपरोक्त विधि से ले फिर १ सप्ताह बन्द कर दे, फिर अगले सप्ताह वैसे ही ले, ऊपर से गौ या बकरी का दूध ले, भोजन में घी यथाशक्ति ले।

अजीर्णनाशक अग्निवर्द्धक चूर्ण

सौंठ, अजवायन, छोटी हरड समभाग लेकर कूट लें, उसे हरे इन्द्रायण (फरफेंदुआ) में ठूँसकर भरदे, सूख जाने पर चूर्ण कर ले काला नमक मिला लें, खाना सोडा अनुपात से मिला लें। मात्रा ६ माशा जल के साथ सेवन करें।

इन्द्रायण को पक जाने पर लावें दवा भर कर कपड़े आदि से ढक कर गेहूँ या उड़द के भूसे में बरसात में दबा दें। वर्षाकाल के उपरान्त शरद ऋतु में चूर्ण बनायें।

अनुभूत बल वीर्यवर्द्धक भेषज

सफेद मूसली २५ ग्राम, छोटे गोखरू २५ ग्राम वडे गोखरू २५ ग्राम शंखाहूली (शंख-पुष्पी) २५ ग्राम, सालिम मिश्री २५, पुरानी सुपाड़ी २५, नागौड़ी असगंध २५ ग्राम, ढाक का गौंद २५ ग्राम सैंमर का गौंद, २५ ग्राम कौंच के बीज २५ ग्रा० अलसी २५ ग्राम चने का वेसन २५० ग्राम, सिघाड़े का आटा २५० ग्राम कीकर का गौंद २५० ग्राम वादाम की गिरी २५० ग्राम बुरादागोला २५० ग्राम, चिरौंजी २५० ग्राम, सैंमर का फूल २५०, शमी (छौंकर जाटी) की फली २५० ग्राम, पीपल, गूलर, प्लक्ष (पिलखन व गूलर) के पृथक फल व कौंपलें उत्तर की टहनियों की २५०।२५० ग्राम घी १।। किलो, सूजी (रवा) २५० ग्राम खोया ५०० ग्राम, चीनी २।। किलो छोटी इलायची बीज १० ग्राम, बड़ी इलायची बीज २० ग्राम, केसर ५ ग्राम केवड़ा २० ग्राम, पिस्ता १०० ग्राम, सफेद दूव २५० ग्राम, वाराही कन्द ५० ग्राम बीज शिवलिङ्गी नैपाली १० ग्राम।

अलसी को बारीक पीसे और २०० ग्राम घी में भूने, दोनों गोंद पीसकर धीमी आँच से घी में भूने, वेसन २५० ग्राम घी में खोये को ७५ ग्राम घी में भूने, सुगन्ध आने तक भूने, पर जलने न दे। सिघाड़े के आटे को २५० ग्राम घी में हल्की आंच पर भूने। सूजी को ५०० ग्राम घी में भून कर स्वच्छ बर्तन में रख ले। भूनने में कोई चीज कच्ची न रहे। न जले।

लौहे की साफ कढाई में चीनी के अन्दाज से पानी डाल कर दूध से सफाई करके २ तार की चाशनी ले। चाशनी से पूर्व सूजी को चाशनी में डालदे, जब सूजी फूल जाय तो भुनी व अन्य कुटी हुई चीजों को उसमें डालकर अच्छी तरह घोटे, तदनन्तर बारीक कटे हुए मेवाओं को कढाई में डालकर मिला ले। केसर को केवड़े भली भाँति घोट कर इस रसायन में मिला अच्छी तरह घोटा दे कि उसमें कोई गांठ न रहने पावे। इस रसायन को घी से चुपड़ी कांसे की थाली में फैलाये, ठंडी होने पर ५०/५० ग्राम की कतरी काट कर रखलें। प्रातः सायं १/१ गौ के धारोष्ण दूध में १ हिस्सा शहद २ हिस्सा घी व यथेच्छ खांड डाल कर ऊपर से लें। औटा दूध हो तो ठंडा करके शहद मिलायें तब लें। उसमें ५० ग्राम शिला जीत और मिला लें, रसायन में ही मिला लें। कब्ज होतो त्रिफला १ तोला सोते समय जल के साथ ले लें।

पथ्य—२ मास पूर्ण ब्रह्मचर्य्य गुड़, तेल, खटाई, लाल मिर्च तेल गर्म मसाले।

पुरुष गर्भाधान पर्यन्त लें। स्त्रियाँ सन्तान होने के अर्थात् जब तक बच्चा दूध पिये लें।

साथ ही जल स्वर्ण व चांदी वाला लें। रसायन के परिपाकपर्यन्त अथर्व का० २ सूक्त ३६ का जप अनिवार्य है।

सन्तति सुन्दर सुशील, सुनहरे बाल स्वस्थ मेधावी दीर्घायु होती है स्त्रियों का बल क्षीण नहीं होता बाल काले होकर मुलायम हो बढ़ने लगते हैं शरीर की झुरियां नहीं रहती हैं।

स्त्री-प्रीति सन्तति, धर्म अर्थ लक्ष्मी, यज्ञादि, का मूल होने से प्रतिष्ठा की पात्र हैं, जहाँ उनका आदर है, वही देव निवास करते हैं, वाजीकरण योग्य वृष्य स्त्री जो इस सन्तान विज्ञान में भली-भाँति निपुण हो, पीछे दी गई विधि से सन्तति सृजन उभयलोक के कल्याण का साधन है। ऐसी सन्तति से देश धर्म राष्ट्र व कुल को गौरव मिलता है। स्त्री-पुरुष को सन्तानोत्पादन में वृष्यता तथा वृहणता परम वाञ्च्छनीय है। कर्मज, कालज रोगों के निराकरणार्थ पीछे विविध विधियों का संग्रह किया गया है, अब आहार-व्यवहार जन्य, व्याधि से उत्पन्न नपुंसकता व बन्ध्यापन को दूर कर शुद्ध, पुष्ट, रज वीर्यलाभ कर, गर्भाधान का श्रीगणेश किया जाता है। इसमें अनेक उपाय हैं, परन्तु यहां उन्हीं औषधियों का उल्लेख किया जायगा, जिसे सर्व साधारण सुलभता से कर सकें। (अकर्मण्य, आलसी, अनाचारियों के लिये परमहंसवत् संसार शून्य है)।

१—वेदोक्त औषधि सूक्तों के विधिवत अनुष्ठान के पश्चात, पुष्य नक्षत्र सिद्धि सर्वार्थ सिद्धि अमृतासिद्धि योगों में विधिवत पूजा व प्रार्थना कर अपने अभीष्ट सिद्धि के लिये औषधियों का चयन करें घर पर धूप पूजा, गन्धादि के साथ छाया में रक्खें, समय पर उपयोग में लें निश्चय आश्चर्यजनक लाभ होता है।

२—औषधि सेवन से पूर्व शमी (छौंकर) या छोटी हरड़ प्रातः सायं १/१ तोला लें। ऊपर दूध या जल निम्न प्रकार का लें। सप्ताह उपरान्त औषधियां लें यह गर्भाधान से पूर्व ही कर लें।

३—जल-सोना, चांदी कोई भी नग, वंग (धातु) जल या दूध में डाल ले अग्नि पर गर्म करै जब जल ३/४ रह जावें, उतार ले, उसी में से १ छ० १ बार में लें।

४—गंगाजल-पीलेरंग की बोतल में करलें, पीली ऊन से ढँक कर डाट को हटा सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त धूप में नित्य रखदें उठायें, तो डाट से मुँह बन्द कर लें। गैस न निकलने दें। नं० ३ के जल की भी गैस न निकले इस जल में से थोड़ा-२ जल उसमें मिला लिया करे।

इन जलों में महाभूत (पञ्चतत्वों) की पञ्चतन्मात्रायें आजाती हैं। पञ्चमहाभूतों से ही पार्थिव शरीर है, जिस प्राणी के शरीर में कोई व्यधि हो या रज वीर्य में दोष या दुर्बलता हो, इससे निश्चय लाभ होता है।

(अ० का० ३ सू० १३) (अपः) सूक्त (अ० का० ३ सू० १८) वनस्पति सूक्त

५—इन दोनों जलों को अथर्व तथा ऋग्वेद के सूक्तों से अभिमन्त्रित करके लिया जाय तो ब्रह्म इत्यादि पाप, शाप, कुष्ट, यक्ष्म, नेत्र, कर्ण, मन, मस्तिष्क बुद्धि (पिशाच यक्ष, कृत्या, यातुधान, रक्षोगणादि जन्य) उन्माद नपुंसकता, गर्भस्राव, रक्तस्राव, प्लीहा सन्त-तज्वर, पाण्डुरोग, क्षेत्रीय रोग, कृमिरोग, बवासीर रोग, श्लेष्मा, खाँसी, प्रसूतिरोग, निश्चय दूर हुए हैं। अनुभूत हैं, परीक्षण निरन्तर चल भी रहे हैं।

६—भावी सन्तान को सुन्दरता, सुडौल, पुष्टता, दीर्घायु, शुद्ध स्वस्थ मन, मस्तिष्क, हृदय, बुद्धिलाभ होता है, बलवृद्धि तो होती ही हैं।

७—यह मणि बन्धन, स्वर्णधारण सूक्तों से अभिमन्त्रित जल या दूध का उपयोग अवर्णनीय, अचिन्त्यगुणों का स्रोत सिद्ध हुआ है। नक्षत्र तथा शान्ति सूक्त, पापमोचन सूक्त पापनाशन, सूक्त, शापविमोचन सूक्तों से अभिमन्त्रित यह जल व क्षीर (चरु) कर्मज कालज उपरोक्त व्याधियों से निश्चय मुक्त करता है, निष्ठा विश्वास संयम परमोपयोगी है। इनमें किसी भी विदेशी औषधि का सेवन न करें।

यही भूमि परम पुनीत दिव्य जलों वनस्पतियों तथा औषधियों का स्रोत है, यहां की पावन रज में उत्पन्न प्राणी यही की औषधि और जलों से यहाँ के पूर्वजों की प्रदत्त अमूल्य थाती और अतीत के विज्ञान के गौरव को समझें, धारण करें तो मिथ्या आहार विहार जन्य, कर्मज-कालज, आचार, प्रज्ञादि जन्य सभी व्याधियों से मुक्त होकर, लोक और परलोक को प्रशस्त बनाते हुए उत्तम पुत्र उत्पन्न कर, देव, पितृ, गुरु, राष्ट्रीय जन्मत्रय ऋणों से मुक्त होकर, मय अपने पितृश्वरों के सुकृत लोकों की प्राप्ति में सफल होंगे, हुए हैं। कृपया बाहरी बुद्धि आचार तथा संस्कृति का आयात कर देश की मान प्रतिष्ठा और गौरव पर प्रहार न करें।

गंगाजल के अभाव में पावन नदियों श्रोतों का जल ग्राह्य है। परन्तु वर्षा ऋतु की नदियों का न लें, शरद्ऋतु से ग्रीष्मपर्यन्तका लें।

दूध

१—लाल या काले रंग की बछड़े की, माँ बछड़ा भी उसी के रङ्ग का हो और जीवित हो, सींग ऊँचे उठे हों, कठोर न हों, नम्र हो मारती न हो, चारों थन की प्रथमबार की ब्याई हो, ईख या उड़द के भूसा आदि के खाने वाली या अर्जुन वृक्ष के पत्तों से पली गौ को रखें, अथर्व वेदोक्त "कां ४ सू २१ गावः" से नित्य पूजा करें, उसी के दूध धारोष्ण में दोहन कालान्त उपरोक्त दोनों जलों को, गौघृत, बसन्त की छोटी मधु मक्खी का मधु शुद्ध खाँड मिलाकर सायं प्रात; लें, तो वृष्यता, वृहणता के साथ अध्यात्मिक आधिदैविक बल बढ़ता है, पुत्र प्रद है।

२—अष्टधातु का पुरुष बनाकर उपरोक्त गौ के दूध में डालें और औटा दें, जल जल जाय, दूध रह जाय, ठण्डा होने पर उपरोक्त मधु घी खांड डाल कर, उपरोक्त जल मिश्रित कर पिये। ७० वर्ष की आयु में भी पुत्र प्रदान करता है।

३—३० पिप्पलियों को तिल-तेल और गोघृत मिलाकर (१ पल में) भूनें पीस कर खाँड और मधु डालकर उपरीक्त दूध के साथ लें।

चमत्कार:—अ० वे० का० ६/सू० १०९ पिप्पली भेषजम् सूक्त से अभिमन्त्रित करें तब लें, अचिन्त्य अप्रमेयवल, वीर्य प्राप्त हो।

४—चरक (गंगाधर) के मत से पर्वती गोखुरू तथा विदारीकन्द समान लें और उसका क्वाथ बनालें, उड़द काले और साठी चावल को पानी में भिगोयें बाद में गौघृत में भूनें, इन सब को दूध में डाल खीर बनायें और अ० वे० का० १० सू ९ शतोदना गौ तथा का० ४/४/६/७२ वाजीकरण, तथा कां० ६ सू० १३८ क्लीवत्वम् के पाठ से अभिमन्त्रित कर मधु खाँड मिला सेवन करें, निश्चय पुत्र लाभ हो।

५—गुरुवार को जब पुष्य आये, शतावरी को अ० वे० का० १९ सू० ३६ से पूजा करके लायें, स्नान धूप दे घर छाया में रखलें, सूख जाने पर चूर्ण बना लें। ८ पल चूर्ण, उपरोक्त गौ का दूध ३२० पल गौ का घी ३२ पल, सबको मन्द अग्नि से पकावें, पकाते समय उपरोक्त सूक्त का तथा का० ६ सू १०१ वाजीकरण तथा कां० ५ सू० १३८ क्लीवत्व का पाठ करें। इसमें सिद्ध पिप्पली (पीपल, जवा छोटीं) का चूर्ण मधु खांड मिला लें। नित्य सेवन करें, यह घृत सुन्दर, धीमान धैर्य, धर्मवान, दीर्घजीवी पुत्र प्रद है।

६—उपरोक्त गौ के उपरोक्त मणि, धातुओं और सूक्तों दूध में शंखपुष्पी जो पुष्य नक्षत्र में लाई हो नित्य सेवन करें ऋतु स्नानान्त शिवलिङ्गा (नैपाली) तथा वाराहीकन्द को चूर्ण कर दोनों १/१ तोला शिवलिङ्गी के ५ बीज लें, गर्भाधान गर्भाधान विधि वृहदारण्यक में लिखे अनुसार करें, निश्चय मृतवत्सा अनपत्या या कन्या ही कन्या वाली स्त्रियाँ दीर्घजीवी धार्मिक-बलिष्ठ सुन्दर पुत्र को जन्म देती है।

७ अथर्व वेदोक्त—काँ० १९ सू० ३१ औदुम्बर मणि सूक्त, कां० ६ सू० ११ पुंसवनसूक्त से गुरुपुष्य में पूजा कर, उत्तर और पूर्व की दिशा वाली शाखाओं के औदुम्बर (गूलर) पीपल, बट तथा पिलखुन के लाल ऊपर वाले कौंपल, तथा फल जौर जटायें लाकर छाया में सुखा लें चूर्ण कर लें, सभी समान भाग लें। और उपरोक्त गौ के उपरोक्त रीति से सिद्ध किये दूध में गौघृत, खांड तथा शहद मिला कर सेवन स्त्री-पुरुष दोनों ही करें तो शूरवीर, सभाजीत, वाग्मी कवि, धर्मात्मा, सुन्दर नरसिंह को जन्म दें, राष्ट्र की सेवा का महान सुख प्राप्त करते हैं।

पीपल यदि शमी वृक्ष में पैदा हुआ हो या वट वृक्ष में उत्पन्न मिल सके जौर यदि उसके नीचे गायें निवास करती हों मिल सके तो अहोभाग्य ही समझें।

धनिको के लिये तो और भी साधन सुलभ हैं, ये ७ प्रयोग सर्व साधारण साधन हीन जनों के लिये परीक्षणान्त संग्रह किये है एक भी परिवार को लाभ सम्भव हुआ तो लेखक अहोभाग्य समझेगा। धैर्य निष्ठा तथा विश्वास से शरीरस्थ शत्रु (आलस्य) का दमन कर अनुभव करने की परम आवश्यकता है।

रसायनें

हरीतकी रसायन

१—हरड़, आँवला, बहेड़ा, (२ बेल के वृक्ष की जड़ की छाल, अरणी को जड़ की छाल, अरलू की जड़ की छाल, गाम्भारी को जड़की छाल, पाटला के जड़ (पढ़ल) की छाल, खरैटी की छाल), ३ चारों पर्णी (शालपर्णि पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी) पिप्पली, गोखरू, छोटी बड़ी कटेहरी वाराहीकन्द शिवलिङ्गी के बीज इन सबका क्वाथ, घी से चौगुना, चौगुना ही विदारीकन्द का क्वाथ मुलहटी, महुए के फूल, काकोली, क्षीर काकोली, कौच बीज, जीवक ऋषभक, क्षीर विदारी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, इन सब कों नं० ३ को समभाग ले कल्क बनाये यह घी की मात्रा का चौथाई लें, घी का ८ आठगुना दूध लें उपलों की मध्यम अग्निमें पकाये जब सब जल जावे घी रह जावे उतार कर छान लें, घी गौ का ही प्रयोग करें।

इसी सिद्धरसायनघृत में से १/२ तोले से एक तोले की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करें, इसके जीर्ण होने पर दूध में, घी, मधु, खांड डालकर साठी चावल का भात खाये। अनुपात गर्म जल जो स्वर्णादिका पूर्व बताया जा चुका है, लें।

सिद्ध करते समय, अथर्व वेद तथा ऋग्वेद के सूक्तों का पाठ करें यह निश्चय ही देह, इन्द्रिय, बुद्धि, मन, रज, वीर्य, मेधास्मृति, कान्ति, नीरोगता, देहाग्नि की दीप्ति, वर्ण की निर्मलता, वायु की अनुलोमता, वृद्धता से मुक्त करा, नव जीवन ज्योति जगाने वाली है, शक्ति अनुसार, गर्भाधानान्त, भी स्त्री सेवन करे तो भावी पुत्र की विलक्षणता के आश्चर्य-जनक प्रभावों को प्राप्त करायें।

मेध्यरसायन

१—स्वर्णादि से सिद्ध उपरोक्त दूध के साथ

अ (मण्डूकपर्णी का स्वरस, अथवा मुलहटी का चूर्ण अथवा नीमगिलोय का चूर्ण, अथवा शंखपुष्पी का जड़ सहित चूर्ण अथवा वाराहीकन्द, अथवा शिवलिङ्गी नैपाली के बीज ५ से १० तक सेवन करें।

ऐन्द्री रसायन

१ मछेछी, ब्राह्मी, बच, ब्रह्म सुवर्चला, पिप्पली, सैधानमक स्वर्ण का उपरोक्त विधि से सिद्ध घो) शंखपुष्पी (वत्सनाभ) विष इनमें से घी व विष को छोड़ अन्य औषधियाँ ३/३ तीन-तीन तो० स्वर्ण भस्म २ जौ,वत्सनाभ १ तिल और उपरोक्त स्वर्णघृत १ पल परिमाण में लें, जीर्ण होने पर पर्याप्तघृत, शहद, मिला सेवन करें।

लाभ—सभी प्रकार के बुढ़ापे को दूर करेगा, स्मृति मेधा आयु पुष्टिकर, बलकारक, स्वर, वर्ण को शुद्ध, कृत्या (पाप का अभिचार कर्म) अलक्ष्मी (दरिद्रता) सभी प्रकार के विष, श्वेतकुष्ट, उदररोग प्लीहा, गुल्म, पुराना विषमज्वर, मेधा स्मृति तथा ज्ञान के अपहरण करने वाले सभी उन्माद मृगी, हिस्टीरिया, आंत्रीणियों के पानी का रोग, सभी शोथ रोग, सिंहकी गर्जना से सभी जीवों की भाँति पूंछ दबाकर भाग जाते हैं।

सूक्तों के साथ सिद्ध करना चमत्कारों का जनक है।

'हरीतकी रसायन नं०१ में निर्दिष्ट पञ्चमूल निम्न का प्रयोग करें।

१—विदारीकन्द, (शालपर्णी) वृहती, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, गोखरू

२—बेल वृक्ष, अरणी, अरलू, का पूमर्य (गाम्भरी), पाटला (पाटल)

३—पुनर्नवा, (साँठ) मुग्द्पर्णी. माषपर्णी, वला. एरण्ड, (अण्डी)

४—जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावरी,

५—शर (शरकण्डा, सरपत्) ईख, दाभ, काश (काही जिस की कलम वनती है।)

ये सब मिला कर पञ्चमूल कहलाती है, इनमें जो बड़े तनेदार बृक्ष हैं उनकी जड़ों की छालें, जो छोटी जड़ों की हैं वे जड़ें. नं० १ दस पल नं० २ दसपल, नं० ३ दसपल नं० ४ दसपल, नं० ५ की भी सभी मिला कर १० सारांश सभी समभाग लें।

औषधि सूक्त सब मंत्र परिशिष्ट में देखें। औषधियाँ अथवा रसायन सिद्ध करने से पूर्व भगवान अश्विनी कुमार का पूजन करें और ऋषिन्यास से न्यास तथा मुद्रायें करके सिद्ध करें तो शीघ्र अचिन्त्य मनवाञ्छित लाभ होता है।

भिलाये का दूध

आसाढ़ के महीने में विधिवत पूजा तथा प्रार्थना कर कीड़ाओं से रहित, बिना चोट के बिना गले विना रोग के पके जामुनीरंग वाले ज्येष्ठ या आसाढ़ में स्वयं चुनकर लायें, जौ या उर्द के भूसे में शुद्ध कपड़े में बाँधकर ४ मास पड़ा रहने दें। अगहन, पौष में शीतल,, स्निग्ध, मधुर आहार से शरीर शुद्ध कर नित्य निम्न प्रकार सेवन करें।

प्रथम दिन १०, दूसरे दिन ११ इसी प्रकार २१ वें दिन १/१ बढ़ाने से ३० मिलाये, पुनः २२ वें दिन से ३०/३० सत्ताईसवें दिन तक लें, २८ वें दिन २९ उन्तीसवें दिन २८ तीसवे २७ ऐसे ही १-१ कम करके ४८ वें दिन १० अर्थात् कुल १००० भिलावे ही लें अधिक न लें, न ३० से ऊपर एक दिन में लें।

इनको कुचल कर आठ गुना जल में डालकर पकायें, जब जल १/८ भाग शेष रहे स्वच्छ वस्त्र से छान लें, इसमें दूध, खाँड, मधु, घृत मिला कर पियें। परन्तु गर्मस्वभाव वाले को उष्ण काल या पित्तकाल में नहीं पीना चाहिए। जीर्ण हो जाय तो घी मिश्रित दूध से साठी चावल खायें। प्रयोग ४८ दिन के उपरान्त २ मास २-२ वार दूध अवश्य लें। तो आयु १०० वर्ष स्वस्थ, सुन्दर, बल, वीर्य, की वृद्धि तथा उपरोक्त सभी गुणों से सम्पन्न शरीर हो जाता है।

यह कुछ उदाहरणार्थ, विश्वास के लिये निर्दिष्ट है। भारतीय आयुर्वेद अथर्व वेद का अङ्ग औषधियों का स्रोत है, वहाँ की पद्धति अल्प व्यय से स्थायी लाभ करने में सदैव अनुकरणीय रहेगी।

ये सभी प्रयोग वन्ध्यापन, नपुंसकता तथा सभी प्रकार की सभी शरीर के अङ्गों की शिथिलता को दूर करने वाले हैं। स्वस्थ रज, वीर्य से ही उत्तम दीर्घजीवी पुत्र का सुख प्राप्त होता है।

बल तथा वीर्यवर्द्धक गुटिका

१—उत्तम ताजा घी, उससे दूनी मिश्री, घी से आधे जल में डालकर चाशनी बनायें, उसी में घी व घी में भुना गेहूँ का आटा डालें, ठन्डा होने पर घी का आधा शहद डालें, और सबको मिला मर्दन करें, जब सब एक ही जावें तो १-१ तोला के लड्डू बना लें। नित्य प्रातः सायं ४१ दिन स्त्री पुरुष सेवन करें स्वर्णदि का जल व स्वर्णादि का सिद्ध दूध साध लेते रहें तो हाथी के सदृश व बल वीर्य प्राप्त कर गर्भाधान करने वाले निश्चय बली, सुन्दर, सुशील, दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त करते हैं।

औषधि तोल परिमाण

१ यव	=	१/४ रत्ती
२ स्वेधान्यक	=	१ माशा
१ काण	=	४ रत्ती
१ कर्ष	=	४ तोला
१ पल	=	४ तोला

१ कुड़व	=	१ पाव
१ प्रस्थ	=	१ सेर
१ द्रोण	=	१६ सेर
१ सूर्य	=	३२ सेर
२ सूर्य द्रोणी	=	६४ सेर

भिलावा योग

भिलावे को औषधि में प्रयोग करने से पूर्व पक्व भिलावों की टोपी उतार कर उनको तप्त रेत में दबा दें। ३-४ दिन उपरान्त उनको निकाल कर किसी कपड़े में लपेट कर जौ या उड़द के भूसे में दबा दें। ४ मास उपरान्त निकाल कर दूध में उबाल लें फिर पानी से धोकर किसी मृत पात्र में या शीशे के पात्र में रक्खें। भिलावे का प्रयोग द्विगुणघृत तथा चौगुने दूध मिश्री मिश्रित कर लें।

मात्रा—१ भिलावे से प्रारम्भ करें। अर्थात् प्रथम दिन १।। तीसरे दिन २इस प्रकार ११ वें दिन ६ भिलावों का प्रयोग करें, फिर उसी प्रकार कम करते चले आवें। २२ वें दिन १ भिलावा ही लें।

यह आधुनिक मानव के बल पौरुष जल-वायु को दृष्टिपथ में रखकर अनुकूल मात्रा है।

अनार्तव या आर्त्तवादर्शन

रजोदर्शन काल से रजक्षय काल तक प्रतिमास रजस्त्राव होता है। इसमें व्यतिक्रम होना अनार्तव कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है—१ शरीर क्रिया सम्बन्धी २. वैकृतिक नं० १ शरीर क्रिया सम्बन्धी यथा गर्भावस्था तथा स्तन्य काल। नं० २ वैकृतिक—स्थानीय रोग अथवा सामान्य रोगों के कारण यहाँ नं० २ वैकृतिक का ही उपचार है। यह भी दो प्रकार का है प्रत्यक्ष अनार्तव, विकृति की वह अवस्था जिसमें उत्पादन चक्र एवं रजस्स्रावचक्र की गति क्रियायें गर्भाशय तथा डिम्ब ग्रन्थियों में यथा क्रम सम्पादित होती है किन्तु मासिक धर्म के समय रक्त का योनि मार्ग से वहिरागमन नहीं होता है। यह स्थिति किसी भी प्रकार के अवरोध से ही उत्पन्न होती है। ये भी दो प्रकार के होते हैं। जन्मजात-२ अन्यकारण यथा-"दोषेरावृतमार्ग त्वाद्रार्त्तव नश्यति स्त्रिया" (सुश्रुत) "पित्तं पंगु कफंपंगु पंगवो मलधातव:। बायुनायत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति वेगवत्" तथा चरक" योनि गर्भाशयस्यं चेत्पित्तसद्षयेदसृक।

सासरजस्का मता कार्श्यं वैवर्ण्यं जननीभृश्म्।।

सुश्रुत ने अनार्त्तव चक्र ने अरजस्कायोनि इसे माना है। इसका कारण अविच्छिन्न योनिच्छद है जो योनिमार्ग तथा गर्भाशय ग्रीवा के जन्मजात अवरोध के कारण भी हो सकती है। किन्हीं को अन्य कारणों से हुए अवरोध से भी मासिक धर्म का रक्त रुक सकता है। यह अकाट्य सुविदित तथ्य है कि मासिक रक्त स्राव का आना न आना शरीर के विभिन्न संस्थानों की कार्यकुशलता पर निर्भर करता है। इन संस्थानों के कार्य में किसी भी प्रकार का व्यवधान होने से अनार्त्तव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

संस्थान

१ उत्पादन संस्थान, रक्त वाहक संस्थान ३ नाड़ी संस्थान ४ निस्रतोस ग्रन्थि।
२ उत्पादन संस्थान के विकार से उत्पन्न अनार्त्तव ३ प्रकार के होते हैं।
(१) गर्भाशय अथवा डिम्ब ग्रन्थि की जन्मजात अनुपस्थिति
(२) गर्भाशय तथा डिम्ब ग्रन्थियों को शल्य कर्म द्वारा निर्हरण
(३) डिम्ब ग्रन्थियों की क्रिया हीनता, गर्भाशय दीवार में किसी प्रकार का शोथ किन्हीं नवीन अर्बुद आदि की उत्पत्ति रेडियम किरण आदि के डालने से।
रक्त-वाहक संस्थान विकार से उत्पन्न अनार्त्तव निम्न कारणों से सम्भव है।

(अ) रक्ताल्पता। (ब) हलीयक वार-वार रक्तस्राव होना तथा शारीरिक दुर्बलता के अन्य सभी कारण जैसे राजयक्ष्मा, हृदयरोग, मूत्राशय सम्बन्धी रोगों की अन्तिम स्थितियाँ, विविध प्रकार के ज्वर, विविध प्रकार के विष, विविध प्रकार के जीर्ण विष पारद बिष, अहिफेन, मद्य, नाड़ीसंस्थान, पक्षाघात तथा विभिन्न स्नायुविक विकार सभी उन्माद, गम्भीर मानसिक संघात, अथवा स्त्रियों को गृहीत गर्भा या रजः क्षय होने का विकल्प जो मानसिक प्रभाव से होती है।

"विधि मुत्तर वस्त्यन्तं कुर्यादार्त्तव शुद्धये। स्त्रीणां स्नेहादि मुत्रानाँ चतस्टष्वार्त्तवमदी कुर्यात्कल्कन्पिच्टश्यापि पश्यान्याचमनानि च।

आर्तव शुद्धि के लिये पंच कर्म करें। कल्क और पिचु रख तथा योनि का आचमना (पिचकारी) करावें अथवा अपामार्ग से विषादि विकारों का शोधन करें।

चिकित्सा

आर्त्तवादर्शन नारी मत्स्यान सेवेत नित्यशः काजिकचतिलान् भाषानुदश्विय तथा दधितामत्स्य कुलथ्याम्लतिल पाषसुराहिता पाने मूत्र मुत्रारिवच्चदधि शुक्त च भोजनम्।

आर्तव नष्ट होने पर मछली का माँस, कुलथी, अम्लपदार्थ, तिल, उड़द, सुरा, गोमूत्र-विना ब्यानीगौ का मट्ठा, सिरका खाना हितावह है।—दशमूलारिष्ट कस्तूरी से युक्त रज प्रवर्द्धिनी वटी के साथ

पीत ज्योतिष्मतीपत्रं स्वर्जिकोग्रासनग्यहम्।
शीतेनपयसा पिष्टं कुसुमं जनमेदध्रुवम्॥ (भा० प्र०)
इश्वाकुलीज दन्ती चपला गुड़ मदन किरवयव शूर्कः।
सासृक क्षीर वर्तिता योनिगता कुसुम संजननी॥ (यो० दो० भा० प्र०)

कडवी तोरई के बीज, जमालगोटा, पीपल, गुड़ मेनफल, सुराबीज, तथा ववारवार इन को थूहर के दूध में पीस कर योनि में रक्खें।

लोहमण्डूर, स्वर्णमाक्षिकभस्म आदि को देश, काल, आयु, बलाबल की दृष्टि से प्रयोग करें। भोजनान्तर कुमारी आसव दें। चिकनी सुपाड़ियों का सुपाड़ी पाग दें। चन्द्र प्रभावटी दें।

आयुर्वेदीय योग—देवदार्वामेष्ट, कुमारी आसव, दार्व्यादिक्वाथ चन्द्रप्रभा । इसमें वंगभस्म, लोहभस्म का मिश्रण, एलुआ के साथ लाभप्रद है। कन्या लोहादि गुटिका और वंगभस्म का मिश्रण कर देना भी लाभप्रद है। काली समटिवटी भी लाभप्रद हैं। स्वर्ण भस्म को मकोय के साथ देना लाभदायक है। त्रिवंगभस्म भी लाभकारी है।

न्यग्रोधादिगण

न्यग्रोधोदुम्बाराश्वत्य प्लक्ष यष्टी कपी तनाः। ककुभाम्रप्रियातश्चवेतसोरोहिणीशिवा तिन्दुकी वदरी लोध्र् जम्बु भल्लातकस्तुणीः। कदम्बकस्तथा दार्वीपलाशमधुकावापि। न्यग्रोधादिगणोह्येष योनि दोषहरः परः। एभिक्वाथं तैल्लंञ्च साधयित्वा प्रयोजयेत्। बट, गूलर, पीपल, पाकर, मुलेठी, पारिस पीपल, अर्जुन, आम, चिरौजी, वेदसादर रोहणी, हरड़, तन्दु, वेर, लोध, जामुन, भिलावा, तथा कदम्ब, दारूहल्दी, ढाक और महुआ के वृक्षों की छालें, मुलहटी के फूल, हरें का फल इन सब की छाल समभाग को जौकुट करले। इसमें से २ तोला ले। उसे १२८ तोला जलमें पकायें आधा शेष जल रहने पर कपड़े से छान लें, उसमें ५ रत्ती फिटकरी ५ रत्ती सुहागा मिलाकर एनिमा देने के यन्त्र से योनि को प्रक्षालन करे। इन्द्रायण की धूप दें। सैमर की जड़ दूध में औटाकर छानलें, उसमें विजौड़े के बीज पीसकर मिलावें, सबको छान कर "रजो धर्म" के उपरान्त ४ दिन पिये तो लाभप्रद होता है। अथवा नागौरी असगन्ध ३ तोला, संगजराहत ३ तोला इलायची के बीज ३ तोला वंशलोचन ३ तोला शतावर ३ तोला बबूल का गौंद ५ तोला चूर्ण करलें मात्रा ३-३ माशा प्रातः सायं अनुपान बछड़े की गौ का दुग्ध अवधि १ सप्ताह।

यह पूर्व जन्म कृतपापों के परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय रोग हो और कन्या ही होती हों, या गर्भस्राव हो जावे, या सन्तति होकर मर जावे, या रजोनाश (अनार्तव) हो तो (अ० कां० २ सू० २८) तथा अहोलिङ्गगण, स्वत्ययनगण, वास्तुगण पवित्रगण, वर्चसगण, अम्बादिगणों से महाशान्ति जल अभिमन्त्रित कर शान्ति औषधियों को शिर पर रख, छींटे दें। उपरोक्त औषधियों को अभिमन्त्रित कर योनि में लेप करे, उन्हीं की धूप योनि में दें। औषधियों को अभिमन्त्रित कर सेवन करायें यज्ञावशेषपुरोडाश को खिलाये। कां० २ सू० ४१ तथा सू. ४३ कां. ३ सू. ११ "मुञ्चामित्वा"—से अवसिञ्चन क्षेत्रीयरोग में करें शिर पर तिल, शण, गोमय, का.२ सू. २६ अर्जुन की छाल, यवबुस, तिल एकत्रित कर बाँधे, बल्मीक की मिट्टी तथा जीवित पशु के चर्म, के साथ पोटली बनाकर अभिमन्त्रित कर बाँधे।

आज्यतन्त्र

आज्यतन्त्रमुच्यते—अव्यसश्चव्यचसश्च, (अ० कां० १६ स० ६८) वर्हि लवन वेदिः उत्तरवेदिः अग्निप्रणयनं अग्निप्रतिष्ठापनं व्रतग्रहणं पवित्रकरणं पवित्रेणेध्म- प्रोक्षणं इध्मोपसमाधानं वर्हिः प्रोक्षणं ब्रह्मासनं ब्रह्मस्थापनं स्तरणंस्तीर्ण प्रोक्षणं आत्मासनं उदपात्र स्थापनं आज्य संस्कार, स्रुवग्रहणं पुरस्ताद्धोमा आज्यभागौ अभ्यातानान्तं पूर्व तन्त्र।

अथ उत्तर तन्त्रमुच्यते अभ्यातानादि पार्वण होम समृद्धि होमाः स्विष्टकृद्धोमाः सर्व प्रायश्चित्तीय होमाः स्कन्नहोमाः पुनर्मैत्विन्द्रियहोमः स्कन्ना स्मृतिहोमौ संस्थित होमा

चतुर्गृहीतहोमः वर्हिहोमः संस्त्रावहोमः विष्णुक्रमाः व्रतविसर्जनं दक्षिणादानं ब्रह्मोत्थापनं यस्मात्कोशादित्येतत् (कां० १६ सू ७२ ऋचा १) उत्तर तन्त्र।

अग्ने चरुरिति (कां ८ सू ६७ (पुनर्मैत्विन्द्रियं) ब्रह्मस्थापनं। कां०, सू० ६८ प्रधानदेवता की स्थापना

अक्षिरोग भैषज्यम

अ० कां० ६ सू० १६ आवयो इति सार्षपं तेलसंपातं वध्नाति ॥१

इससे अभिमन्त्रित तेल को डालें, मर्दन करे। गौ मूत्र से धोयें काण्डं प्रलिप्य ॥२॥— (कां० २ सू ३) (अदो) ऋचा से सरसों के तेल में शाक सरसों को मिलाकर अभिमन्त्रित कर रोगी को दें।

चत्वारि शाकलानि प्रयच्छति ॥४॥ (अ० कां२ सू ५) मूलक्षीरं मुखेनप्राश्य ततो अभिमन्त्रय अङ्गे अक्षिणी व्याधितस्य। (मूलक्षीरं क्षीर पाटिका लंग्नं) कां २ सू ६ से अभिमन्त्रित कर (मूल क्षीरं भक्षयति)

केशवृद्धिकरणे, केशपतने भैषज्यम्

(अ० कां० २ सू० ८) तथा (कां ६ सू० २१) वृक्षों (हल्दी, दारुहल्दी, अपामार्ग पुनर्नवा आंवला,) की मूल व छाल व फल को पानी में डालें औटाये और सर धोये यह रेबती नक्षत्र या पुष्य में लाये हुए वृक्षों की सामिग्री होनी चाहिये, उपरोक्त मंत्रों से अभिमन्त्रित कर ले।

(कां ६ सू० २२) (कां० ६ सू० २३) (कां० ७।२) (का० ७ सू० ३) इन सूक्तों से जल को अभिमन्त्रित कर छीटे दें (कां० ६ सू० १३६) (कां० ६ सू० १३७) से औषधियों को खोदकर लायें। इनसे सबसे ही वरुण का हवन तथा दूध भात की वलि पाक यज्ञविधान से करे।

जलोदर में

कां० ६ सू २२ व २३ चित्त्यादि शान्ति औषधियों से जलोदर के रोगी को छीटे दें, और इन्हीं से वरुण देवका उपरोक्त हवन व बलिदान करें। का० २/१३ से भी आहुतियाँ दें। का० २ सू० १३ से तथा का० ६ सू० २४ से हृदयरोग जलोदर तथा कामलरोग (पीलिया) में ढाक की लकड़ी को (पर्णरस) गिलोय के रसमें भिगोकर हवन करें।

कुशाओं के मुट्ठों को जलाकर गिलोय का रस छोड़कर शिर पर होकर नीचे को झाड़ा दें और रोगी को जल प्रवाह के विमुख खड़ा कर उन्हें तृणों को वहा दे और अन्य कुशाओं से शिर पर शान्त्यौषियों की पोटली रख छींटे दें।

केश कल्प विधि

१ चम्पा के फूल, धत्तूरे के बीज, जल में पीस कर केशों पर लेप करें।

२ आँवले नीबू के रस में पीसें, २१ दिन केशों पर लगाये।

इनको अ० वे० कां० ६ सू १३६ तथा १३७ से अभिमन्त्रित कर लें।

मृत्वत्साके हेतु

रतन ज्योति पीले पुष्प की जड़ पञ्चाङ्ग सहित, जलमें पीसकर पिलाये, माल कांगनी, जटामांसी के फूल निगल कर ऊ पर से गौ घृत पिये।

नहरुआ का उपचार

सांप की कैंचुली गुड़ में मिला गोला बनाकर सेवन करें

अपस्मार (मृगी या हिस्ट्रिया)

१ काली मिर्च घोड़े के मूत्र में पीस नास दें।
२ कबूतर की वीट २ रत्ती, पानी में घिसकर नेत्रों में लगावे।
वन के पत्ते १ पाव पानी में पीस, छानकर पिलाये सर्पविष दूर हो।

भंग धतूरे की गर्मी में

घी व खांड मिलाकर पियें।

बिच्छू का विष

नौसादर, चूना, समभाग लें जल में पीस कर हाथों में मले और सूंघे, कान का मैल थूक में घिस कर उस कांटे पर लगावे।

अफीम

फिटकरी का चूर्ण पान के रस में ले, अफीम उतरे।

नरे चले जानेपर

देशी पुराना गुड़ १ पाव, ६ माशे सुहागे का फूला, मिलाकर सेवन करे।

गूंगेपन में

सफेद जीरा १ माशा, हींग ४ रत्ती, मिश्री १ तोला, ३ दिन प्रातः सायं दूध में मिला पिये।

बधिरता में शुद्ध

एक पुतीका लहसुन का अर्क और शुद्ध शराब कान में डालें।

सुजाक

रेवत चीनी, शीतल चीनी, दारुहल्दी, गेरू, सोड़ा, समभाग लेकर लस्सी के साथ सेवन करें, दूध भात खावें।

कटेहरी की जड़ २ तोला, पानी १ सेर में पकाये, १/४ भाग रह जाये तब पियें, १४ दिन सेवन कर, गेहूँ, चना की रोटी खाये बिना नमक, मिर्च, मिठाई घी लेना चाहिये। बिषखपरा की जड़ ६ माशे, पान का रस ६ माशे, पारा ३ माशे, मिला हाथ में मोड़े, पीक डालता जावे, हाथ मलता जाय, १।। प्रहर बाद ६ माशे रूमामस्तङ्गी लेपकर हाथों को मले, गर्म जल से धोयें।

शरीर में चट उखड़ने पर

सुपाड़ी की भस्म. मुरदासन पीस, लौनी घी में मिलाकर लेप करे।

चिनग

रात्रिमें केसू भिगो दे, सवेरे मथकर छानलें और उस जल को पीजायें।

कमलवात

आक के ७ फूलों का जीरा, एक बार में खायें, ३ दिन में रोग चला जाय।

बवासीर में

दही आधा सेर, राई ६ माशे भुनी पिसी, सीपी की कलई ३ माशा, मिश्री ३ तोला मिला ३ दिन प्रातः सायं सेवन करें।

अथ पुनः केश वृद्धिकरणेभैषज्यम् (कां २ सू २८)

धातुओं की क्षीणता, नपुंसकता, श्लेष्मा, नजला, यक्ष्मादि से शरीर में दुर्बलता से केशों की सफेदी और केशों का उखड़ना और केशों की वृद्धि में रुकावट आ जाने के उपद्रवों के निराकरण के निमित्त, अथर्व कां० ६ सू० १३६ "केशदृंहणम्" तथा सूक्त १३, (केशवर्द्धनम) काची माची फल ओर जीवन्ती फलों को जल में डालें, अभिमन्त्रित कर केशों को छींटे दें। भृङ्गराज (काला भांगरा) से धोयें ये उपरोक्त औषधियाँ रात्रि को जल में भिगोये, मथ जल अभिमन्त्रित कर ब्रह्ममुहूर्त, सूर्योदय से पूर्व धोयें। इससे श्वेतता दूर होकर श्यामता भी आयेगी, उपरोक्त रोगदूर होगे। इनमें आंवला और डालें।

केशवर्द्धन, केश जनन, छोटे से बड़ा काला करने के लिये, काले उड़द, काले तिल अन्य कृष्णवर्ण अन्न की खिचड़ी में घी डाल अभिमन्त्रित कर खायें। त्रिफला का सेवन तथा अपामार्ग का चूर्ण बनाकर स्वर्ण व चांदी डालकर तप्त जल के ३/४ भाग को ठण्डा कर उसके साथ सेवन करें।

"काशभैषज्य"

प्रसूतिका या यक्ष्मादि की काश या श्लेष्मा के निराकरणार्थ का. २ सू २७ तथा शत्रु पराजय,—तथा कां. ६ सू १०५ "कास शमनम" तथा कां. ७ सू. १०७ से हल्दी को अभिमन्त्रित करलें, या पीपली को शहद के साथ लें या पूर्वोक्त काली मिर्च १ पाव, ४ सेर जल में डाल, १/४ शेष जल में २ सेर चीनी की चाशनी लें इलायची दानों की भाँति लें। या १ से ४१ दिन तक वृद्धि व ह्रास अर्थात् प्रथम दिन १ और ४१ वे दिन ४१ पुनः ४० वें दिन ४० ग्रास के साथ ८२ वे दिन १ के क्रम से हरडें अभिमन्त्रित कर उपरोक्त जल के साथ प्रातः सूर्योदय के पूर्व लें। निगलें। जौ के सत्तू अभिमन्त्रित कर खायें। सूर्य का उपस्थान करें। तीर्थजलों को शान्ति औषधियाँ डाल स्वर्ण चाँदी के साथ उबालकर अभिमन्त्रित कर आचमन करे। अपामार्ग की दांतुन करें। गौ मूत्र नित्य पान करें, गौ बछड़े की हो, जिसके बच्चे न मरते हों, स्वस्थ, पुष्ट हों।

कर्णशूल

कान में दर्द हो या फुन्सी हो, उससे पीड़ा या अन्य कान की पीड़ा हो तो कानमें खाना सोडा डालें और १० बूंद नीबू के रस, ३ या ४ बार प्रयोग करें।

उत्फुल्लिका

वाल निमोनिया, डब्बा, पसली चलने के रोग में भुना तूतिया १ रत्ती करञ्ज की मींग १ नग लें, पानी या गौमूत्र में घोटें, मूंग के बराबर गोली बनालें, माता के दूध में घोल कर बच्चे को दें।

वाल यकृत वृद्धि

शरपुंख मूलचूर्ण, पुनर्नवादि मण्डूर, आरोग्य वर्द्धिनीवटी शंख वटी चारों को मात्रा व अवस्थानुसार, मिला कर दें।

उदरशूल

छोटी पीपल, कुटकी, चिरायता, हरड़ का छिल का और एलुआ पीस कर गर्म कर लेप करें।

लवण भास्कर चूर्ण, हिंगुष्टक चूर्ण, शंखवटी, लशुनादि वटी, विषमुष्टिका वटी, संजीवनी वटी सव मिला गुन-गुने पानी से लें। ३ बार दें।

नपुंसकता हरणः बल वीर्यकरण विधि

१ मनसिल, २ कूठ, ३ सुहागा, ४ वीरवहोटी, ५ सफेद कन्नेर की जड़ें १/१ तोला ६ माठा तेल आधा सेर, ७ चमेली का रस आधा सेर, सबको कढ़ाई में पकायें रस जल जावे, तेल को उतार कर छान लें, जननेन्द्रिय पर लगावे ऊपर पान बाँध दें, रग फूलें नपुंसकता दूर होती है।

इसे अथर्व वेद काण्ड ६ सूक्त १३८ "क्लीवत्वम" (त्वंवीरुधांश्रेष्ठतमा) इत्यादि से अभिमन्त्रित करलें।

अन्य

१ ढाक का गोंद १ छ० २ सैमर का गौंद १ छ०, ३ दूध १० सेर, गोंद पीसकर दूध में डालें, खोआ करें, उसे छाया में सुखायें, पीसकर उसीके बराबर मिश्री मिलालें, प्रातः सायं १५ दिन मात्रा एक तोला अनुपान गौ का धारोष्ण दूध, शहद व गौघृत डाल कर सेवन करें।

अभिमन्त्रण उपरोक्त सूक्त से सभी में अनिवार्य है

अन्य

शिववीरज, लोहा, स्वर्ण, ताँबा की भस्में ये सब मिला उपरोक्त दूध के साथ मलाई के साथ सेवन करें।

अथवा

दूध, घी, मोचरस, काली मिर्च, स्याह मूसली, शहद, गोरखमुण्डी, असगन्ध, छोटी दुद्धी, शंखाहूली (शंखपुष्पी) गुडूची, पीपरि, खांड, कैथ के बीज, केवड़ा, कूठ, मुलहठी, गेहूं कूट पीस कर (समभाग) परबल, पान, गिलोय, तिल तेल में मिला शरीर पर मर्दन करना। और असगन्ध नागौडी को दूध में पीना।

यदि संभोग के उपरान्त पियें तो संभोग से अरुचि नहीं हो वल और काम-वृद्धि हो।

वीर्य स्तम्भन

गोरखमु डी, असगन्ध, जायफल, (दक्षिणी) जावित्री, अहिफेन, भंग अजवायन, इन को चूर्ण कर गौ के धारोष्ण दूध, शहद, गौघृत मिला एक तोला २१ दिन सेवन करें।

लोहभस्म एक रत्ती, सौंठ २ तोला, मिश्री एक तोला, २१ दिन प्रातः सायं उपरोक्त दूध के साथ सेवन करना।

पके केला, खांड, मधु, मिला ७ दिन प्रातः सायं, रजोदर्शन के उपरान्त स्त्री, पुरुष, संभोगानन्तर सेवन करें।

पिण्डखजूर, केला पके, इनसे दूने ताल मखाने, पीसकर उपरोक्त दूध से स्त्री पिये तो समस्त रोग दूर हों रजस्तम्भन हो।

उड़द का चूर्ण, महुआ का शहद (रस) सौंठ, विदारीकन्द मिला उपरोक्त दूध के साथ स्त्री, ऋतुस्नानान्त सेवन करे ७ दिन प्रातः सायं।

यदि शुक्राणु नष्ट हो गये हों तो

असगन्ध, शितावर, सफेदमूसली, विदारीकन्द, पर्वतीगोखुरी, तालमखाना हल्दी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, गोरखमुण्डी, सैमर के फूल व गोंद, सफेद दूव, बबूल का पञ्चाङ्ग ढाक के फूल, गोद जल-जमनी, बीज लजवन्ती, बीज बन तुलसा, सभी समभाग लें चूर्ण कर उसमें त्र्यवंगभस्म ६ माशा मिलाकर उपरोक्त दूध के साथ ४१ दिन सायं प्रातः एक-एक तोला सेवन करें।

इति श्री कर्मज व्याधि निरोध ग्रन्थस्य रोग तथा भैषज्यविधाननाम प्रथमोऽध्यायः

अथ शरीर-विज्ञान तथा गर्भाधान-समीक्षा

द्वितीय अध्याय

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोवेन आवः ।
स बुध्न्याऽउपमा अस्यविष्ठाःसतश्चयोनिमसतश्चवि वः ।४।१।

इयं पित्र्या राष्ट्रयेत्वग्रे प्रथमाय जनुष भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वार मह्यं धर्म श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ।।४।२।

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं वृहस्पतिं नमसाव च गच्छोत् ।
त्वं विश्वेषां जजिता यथासः कविर्देवो न दभायत्स्वधावान् ।।४।७।

अथर्ववेदीय शरीर विज्ञान

अथर्ववेद काण्ड ११ सूक्त, ८, ऋचा १ "यन्मन्युर्जायाम्" महाप्रलयकाल के उपरान्त इस मानवदेह (अथवा) पञ्चभौतिक पार्थिव शरीर की रचना और उसमें आत्मा का निवास तथा समस्त देवताओं का स्थान व सम्बन्ध वर्णित है।

सर्वप्रथम एक संकल्प; जिसकी ,'संकल्पशक्ति" रूप कन्या थी, दूसरा आत्मा था, उसका "उत्साहरूप" अर्थात् मन्यु सामर्थ्य था। प्रथमकन्या का द्वितीय सामर्थ्य से विवाह हुआ। इन कन्या तथा वरपक्ष के मध्यस्थों में से वरपक्ष का प्रमुख "ज्येष्ठवर" था जिसे मन्यु कहते थे।

ऋचा २—इनमें तप और कर्म दो पक्ष थे। कर्म के सकाम तथा निष्काम दो दल थे। इन वर-वधूपक्षों में प्रमुख ब्रह्म ही वर था। इनका विवाह होगा।

ऋचा ३-४ :—(१) प्राण (२) अपान (३) व्यान (४) उदान (५) नेत्र (६) कर्ण (७) नाक (८)वाणी (९) मन और (१०) बुद्धितत्व ये दस देवता थे, जो मानव देह में निवास करते हैं। इनमें प्रथम चार जन्म से मृत्युपर्यन्त निराहार निरन्तर तप करने वाले प्राण हैं। दूसरों में ५; ६; ७; ८; ९ ये विश्राम तथा भोगों के साथ निरन्तर कर्म करते हैं, इनकी संकल्प शक्ति नामक देवशक्ति का विवाह ब्रह्म से होना है। शरीर-रचना से पूर्व सूर्य, चन्द्र ; वायु ; ऋतु धाता वृहस्पति; इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनी ज्येष्ठ ब्रह्म के साथ ही रहते थे और विश्व के कार्य में रत थे। शरीर-रचना के साथ अंशरूप में इस "पिण्ड देह" में आकर तप तथा कर्म करने लगे। बिना कर्म तप असम्भव है। इस पिण्डदेह से पूर्व प्रकृतिरूप भूमि थी। इसी भूमि पर शरीर की रचना होती है। इस रचना के हेतु अंश रूप में उपर्युक्त दस देव आते हैं। इसके ज्ञाता को ही "पुराणवित्" कहा है अर्थात् जो पूर्व था वही नया बनता है। इसी से "आत्मा वै जायते पुत्र" की पुष्टि होती है।

ऋचा ८—इन्द्र, सोम, अग्नि, त्वष्ठा, धाता आदि बड़े दस देवों का वास (विश्वरूपी देह) में है, इनके अंश रूप पुत्र, इस ("पिण्ड देह) में आते हैं, इसी कारण यह स्पष्ट है कि

"यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे"। जो पिण्डदेह में है; वही ब्रह्माण्ड में है। इसी कारण पिता के गुण, धर्म पाप, पुण्य सभी पुत्र (अंश) में आते हैं। इस विश्वदेह में व्याप्त दस देवों ने पिण्डदेह में निर्माण कर उन्हें यथास्थान नियुक्त किया।

ऋचा १०—इस विश्वदेह के देव पिण्डदेह में देवतांश के रूप में किस प्रकार किस स्थान पर वास करते है, इसका उल्लेख आगे किया गया है।

इस अंशरूप देह में से जब ये दस देव चले जाते हैं; तब यह निष्क्रिय हो जाता है। इन दस देवों ने "पिण्डदेह" में आकर केश, हड्डी, स्नायु, मांस, मज्जा, रक्त रस वीर्य आदि नेत्र शिर पाद आदि को भरा। ये मृत्युपर्यन्त यहीं वास करते है।

इन्ही का उल्लेख ऐतरेय उपनिषद में अधिक विवृत किया हैं।

विश्वदेह	**पिण्डदेह में देवतांश**	**विश्वदेह**	**पिण्डदेह में देवतांश**
१ परब्रह्म	जीव, आत्मा	९ लोहिनी; आपः	रक्त; रुधिर,
२ सूर्य	नेत्र	१० द्यौ	मस्तिष्क
३ भूमि	नासिका	११ अन्तरिक्ष	नाभि, उदर, पेट, छाती
४ जल	रसना	१२ पृथ्वी	पैर
५ अग्नि	वाणी	१३ पर्वत	जोड़, सन्धि
६ (आकाश)	कर्ण	१४ मृत्यु; आपः	वीर्य (रज)
७ वायु (रुद्र)	प्राण, त्वचा	१५ अश्विनौ	श्वांस; उच्छ्वास
८ औषधि; वनस्पति	केश		

ऋचा १३—ये देव "संसिच्" अर्थात् अपना स्थान, जीवनमय करने वाले कहे है।

मंत्र १४-१६ः—इस पिण्डदेह के ऊरु; पैर; जानु; शिर; हस्त; मुख; पीठ; पसलियाँ जिह्वा, गर्दन; गर्दन की हड्डियां; त्वचा आदि के निर्माता और उनको एक दूसरे से जोड़ने वाले ऋषि (देव) "संधा" नाम के हैं। जिन्होंने रङ्ग; रूप; शोभा-कान्ति एक दूसरे देव ने भरी है। जब ये सब देव इसमें सम्मिलित हुए, इसका रहस्य जानने वाली; और इन अवयवों पर नियन्त्रण करने वाली, आत्मदेव की भार्या; सती देवी हैं, जो इसमें कान्ति, शोभा; और रमणीयता का संचार करती हैं। इन्हीं वर-वधू के विवाह तथा शरीररचना का सूक्त में उल्लेख है। इसके शिल्पियों में प्रमुख "त्वष्टा" देवता हैं, इन्हीं को परम-पिता, देवाधिदेव ; सर्वशक्तिमान कहा है। इन बड़े त्वष्टा की शक्ति के बल से पृथक-२ ये देव शरीर के पृथक-पृथक स्थान में छिद्रकर उन छिद्रों से शरीर में प्रविष्ट होते हैं। इन देवताओं का इस मरणधर्मा देह में वास होने से यह अमर-सा बना रहता है।

इस "पिन्डदेह" में निद्रा; जाग्रति, तन्द्रा; उद्योगिता, निर्ऋति, (पापवासना) पुण्य-भावना; पाप; पुण्य; जरा; तारुण्य; खालित्य (गंजापन); बहुकेश पालित्य, केशों का (श्वेतपना कृष्णपना); स्तेय (चोरी) अस्तेय; दुष्कृत सुकृत कुटिलता; सरलता; सत्य–असत्य; यज्ञ-अयज्ञ

यश-अयश; बल बलक्षीणता; क्षात्र-निर्बलता; ओज (शरीरशक्ति) अशक्ति; भूति (ऐश्वर्य) अभूति (निर्धनता); राति (दान) अराति (कृपणता); क्षुध; (भूख)-भूख न लगना; तृष्णा-प्यास न लगना; निन्दा स्तुति; हां और ना श्रद्धा-अश्रद्धा; दक्षता-अदाक्षिण्य; विद्या-अविद्या; ज्ञान-अज्ञान आनन्द-दुःख; मोद-कष्ट, हास्य-रोदन; नरिष्ट (अनाश)-नाश नृत्य-अनृत्य; आलाप-प्रलाप; मौन; प्रयोग-वियोग ये सब भाव उन छिद्रों से शरीर में प्रविष्ट हुए जो प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होते हैं। ऋचा १६-२५ ऋचा २६ इस शरीर में प्राण; अपान; व्यान उदान, चक्षु, श्रोत्र क्षिति अक्षिति; वाणी; मन ये दस शक्तियाँ रहकर उपर्युक्त कार्य करती है।

ऋचा २७-२६ :—आशीर्वाद; क्रोध; अनुकूल-प्रतिकूलशब्द, संकल्प; विकल्प, स्थिरता-चंचलता; त्वरा-शक्ति; कृपणता; उदारता; गुह्य; प्रकट; शुक्र; निर्वीर्य स्थूल; कृश; वीभत्स; सभ्य ये सभी भाव भी प्रविष्ट हुए।

इस यज्ञ के लिये रेत रूपी घी की आहुति स्त्री के गर्भाशय में दी जाती है, इसी रेत में प्रत्येक उपर्युक्त देवका अंश अणुरूप से प्रत्येक इन्द्रिय का अंशभी गर्भाशय में जाता है।

उस सत्त्वांश के साथ पिता के रेत में देवतांश शरीरांश होने के कारण ही पिता के अङ्ग प्रत्यङ्ग सभी अवयवों के तुल्य पुत्र के अंग होते है। इसी कारण परम्परागत दोष-आधि-व्याधियां भी पाप-पुण्य सभी पुत्र में आना स्वाभाविक ही है।

ऋचा ३०—सभी देवता; और जो पानी है; जो ब्रह्म के साथ विराट पुरुष है; ये सभी देव; रेत के साथ शरीर में अणुरूप से प्रविष्ट होते हैं। गर्भाशय में प्रवाही पदार्थ रूपमें जल रहता है, उसीमें रेत के साथ सभी देवतांश पहुँचते हैं। स्वयं ब्रह्म का अंश विराट से शरीर में जीव रूप में आता है। (विशेष गर्भाधान-प्रकरण में देखें।) वही इस शरीर में प्रजा-पति है। ३०-३१ ऋचा शरीर में उष्णता अग्नि करता है। अग्निदेव के कार्य स्थगनपर शरीर ठन्डा होते ही अन्य देव रहने में असमर्थ हो जाते हैं।

इन सब देवतारूपी इन्द्रियों का ग्वाला आतमा है जो ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म के ही इन्द्र; वरुण; सूर्य, वायु, अग्नि आदि देव हैं, अंश है। इसी से "इदं ब्रह्म" कहलाता है; क्योंकि सब देवता इसके अधीन और अंश हैं। ऋचा ३२

ऋचा ३३—इस शरीर के तीन भाग हैं। (१) पार्थिवभोग (२) दिव्यसुख (३) दोनों का समन्वय। ये तीनों स्थूल; सूक्ष्म और कारण तथा महाकारण नाम से ख्यात है।

जीवात्मा—देवतांश मन; आँख; प्राण; वाणी आदि देव अंश है। गर्भाशय में गया वीर्य बिंदु रज में स्थिर हो; वही बुदबुदावस्था में जल में मृत शव की भाँति तैरता हुआ बढ़ता है। इस आस-पास के जल से ही इस की रक्षा होती है। इस जल में शव के तुल्य रहने से ही इसे "केशव" कहा है।

ऋचा ३४—इस उपर्युक्त विधि से देवों द्वारा इस शरीर की रचना और जोड़ना प्रविष्ट हो, वास तथा वृद्धि आदि करना एक अद्भुत, आश्चर्यजनक बात है—इसी से यह देव मन्दिर भी है, यही ऋषि आश्रम है। यह तपोभूमि कर्मभूमि-ज्ञान-यज्ञ तथा मोक्ष का साधन है।

गर्भाधान प्रकरण में अन्य वेद-श्रुति-स्मृति-धर्मशास्त्र सम्मत जो शरीररचना का उल्लेख है—यह उसी का विस्तृत विवरण ब्रह्मवेद में वर्णित है। इसमें स्थित-प्राण, आयुष्य विपत आधिव्याधियों का विवेचन तथा उनका निराकरण पृथक्-२ विभागों में पुस्तक में उल्लिखित है।

प्रत्येक इन्द्रिय भिन्न-२ देवता के अंश से बनी है। इन देवों में भूस्थानीय अन्तरिक्ष-स्थानीय तथा द्युस्थानीय हैं। ये त्रिलोकी के भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक के देवों का अंश शरीर में स्थित होने से ही यह भी त्रिलोकी है।

त्रिलोकी का शरीर से सम्बन्ध

बाह्य स्थानीय त्रिलोकी (समष्टि)

लोक	देवता		मनुष्य की इन्द्रियाँ
स्वर्गलोक [द्युलोक स्व:]	द्यौ, सूर्य दिशा, अग्नि	शिर	शिर आँख, कान, मुख वागिन्द्रिय
भुवर्लोक [अन्तरिक्षलोक भुव:]	इन्द्र, चन्द्र वायु और मरुद्गण	कण्ठ फेंफड़े हृदय	आत्मा, मन, मुख्य और गौण; प्राण,
भूलोक [पृथिवीलोक भू:]	मृत्यु; आप जल; भूमि	नाभि शिश्न पैर	अपान, रेत, वीर्य पाँव

शरीर में त्रिलोकी (व्यष्टि)

सृष्टि के अग्नि; आदि देवों का निरीक्षण कर अपने अनुकूल बनाना; उनके अनुकूल ही स्वयं व्यवहार करना और उनको अपने मन के अनुकूल चलाना ही तप है। शरीर के अन्दर ज्ञानग्रहण; ज्ञानसंचयकर्त्ता ही देव या ब्राह्मणवर्ण है। देह के विरोधी दोषों के हटानेवाले संरक्षक देव क्षत्रिय हैं। पोषक देव वैश्य और स्थूल भारवाहक अंश शूद्र हैं, शरीर में मज्जा-ब्राह्मण, वीर्य-क्षत्रिय रस-वैश्य और अस्थि-शूद्र हैं।

शरीरस्थ देवताओं की संख्या

शिर में मस्तिष्क है-उसके देवता सूर्य हैं। हृदय में मन और उसका देवता चन्द्र या इन्द्र है। जठर में अग्नि ये ३ प्रमुख है। प्रत्येक के १० गौण देवता हैं। मुख्य ३ गौण, तथा ३० मिलकर ३३ होते हैं। इन ३३ के अधीन ३३ अंग है।

अथर्वकाण्ड १० सूक्त ७ ऋचा १३ "यस्य त्रयास्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहितौः। (२) यस्य त्रयास्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे। तान्वै त्रयास्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः।

ऋचा २३ (३) यस्य त्रयास्त्रिंशद्देवा निधिरक्षन्ति सर्वदा। निधितमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षय ।। (१) जिसके अंग में तैंतीस देवों का वास है (२) जिसके अंगों के गात्र में ३३ देव विशेष सेवा करते हैं। जिन्हें ब्रह्मज्ञानी ही केवल जानते हैं। (३) जिसके कोश का ३३ देव संरक्षण करते हैं, उन्हें कौन जानता है। यह परमात्मा में पूर्ण रूप से और जीवात्मा में अंशरूप से है। ये ३३ देव मेरु पर्वत पर वास करते हैं, वह मेरु, पृष्ठ वंश ही है। पृष्ठ वंश की छोटी-२ हड्डियों के बीच की सन्धि पर्व की ग्रन्थि में ही इनके स्थान है। इन्हीं ग्रन्थियों का यागोजन भेदन कर, प्राण को मेरुदण्ड के ऊपर, मस्तिष्क के मध्य, आत्मा के साथ होता है, तभी "ब्रह्मलोक की प्राप्ति" होना कहा है।

इन तैंतीस के भिन्न-२ तीन सौ देव हैं। मस्तिष्क के सौ, हृदयके सौ, और नाभिस्थान के सौ इस प्रकार ये शिवजी के त्रि-शत गण होते हैं। जो पृथक-२ छः हजार भी हैं। पृष्ठवंश के साथ ६ चक्र है। (१) गुदा के स्थान में मूलाधार चक्र, (२) नाभि स्थान के पास स्वाधिष्ठान चक्र (३) मणिपूरक चक्र; (४) हृदय स्थान के पास अनाहत चक्र (५) कण्ठ स्थान में विशुद्धि चक्र और (६) दोनों भौहों के बीच आज्ञाचक्र है। प्रत्येक चक्र में सहस्रों शक्तियों के अंश केन्द्रित हैं, इस प्रकार छः स्थानों में छै सहस्त्रशक्तियाँ विभक्त है। इस प्रकार (१) तीन (२) तीस (३) तीन सौ (४) और छः हजार देवताओं का स्वरूप और माहात्म्य समष्टि तथा पञ्चभौतिक शरीर में है।

दो कोश

समष्टि तथा व्यष्टि में दो कोश हैं (१) भूलोक का (२) द्यौलोक का। ये ब्राह्मण की बुद्धिगम्य ही है। ब्राह्मण (गुरु ; शिष्य) की बुद्धि में ही पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक हैं तथा अन्य विश्व है। बुद्धि में ही पूर्ण जगत का निवास है। इन कोशों की रक्षा तप-साध्य होती हैं।

दो अग्नि

अग्नि दो हैं (१) एक पृथिवी पर और दूसरी द्युलोक में सूर्यरूप है। ये दोनों, किरणों के बीच अन्तरिक्ष में मिल जाती हैं।

श्रम का तत्वज्ञान

"न ऋते श्रांतस्य सख्याय देवाः"। ऋ० वे० ४।३३।११

विना श्रम देवता सहायता नहीं करते हैं। ऐतरेयब्राह्मण (७।१५) में कहा है कि:—
"नाऽ नाश्रांताय श्रीरस्ति। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति चरैवेति ।।१।। पुष्पिण्यो चरतो जंघे भूष्णुरात्माफलग्रहिः। शेरे अस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेणप्रपथेहता, चरैवेति चरैवेति। २ बिना श्रम श्री सम्भव नहीं, आलसी ही पापी है; पुरुषार्थी का मित्र ईश्वर है, अतः श्रम करो पुरुषार्थ करो। (१) चलने वाले की जंघायें पुष्ट होती है, फलपर्यन्त प्रयत्न करने वाला आत्मा ही प्रभावशाली होता है; प्रयत्नकर्त्ता के पापभाव मार्ग में ही नष्ट हो जाते हैं। अतः श्रम करो, पुरुषार्थ करो (२) यहीं नहीं आगे मन्त्र ४ कहता है कि :—

(बैठने वाले का दैव बैठता है, खड़े हुए का दैव खड़ा रहता है, सोने वाले का दैव भी सो जाता है तथा चलने वाले के पास स्वयं दैव आ जाता है। इस कारण श्रम करो पुरुषार्थ करो।

चारों युग

इसी के मन्त्र ४ में निर्दिष्ट है कि "कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् । चरैवेति चरैवेति ।।

सो जाना कलि; आलस्यत्याग द्वापर, उठना त्रेता और पुरुषार्थ करना कृत युग हैं।

"अमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः । ऋ० वे १।७२।२

परिश्रमी, सुमार्गगामी, धारणावती बुद्धि के धारणकर्त्ता, पुरुषार्थी ही आत्माग्नि के सुन्दर परम श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

"श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति ।" ऋ० वे० ८।६७।६

परिश्रमी, यज्ञ कर्त्ता को ही; ईश्वर-संरक्षण सुलभ होता है । परिश्रमी ही स्वयं तथा जनता (समष्टि) के अभ्युदय में; सफल हो सकता है । वही मृत्यु से परे निर्भय होता है ।

इस प्रकार अथर्ववेदीय शरीर को समझें। यही शरीर धर्मसाधन का मूल है। बिना तप; बिना यज्ञ, बिना श्रम, बिना पुरुषार्थ यही शरीर "शरीरं खलु व्याधि मन्दिरम्;" श्रुतिसम्मत व्याधियों का केन्द्र है। इन आधिव्याधियों ने जब शरीर को आकर घेरा तो परमतत्व ज्ञानि निष्काम, जनकल्याणपरायण ऋषियों ने विचारविमर्श किया और निर्णय किया कि कौशिक सूत्र अ० ४ कं० २५ सूत्र १—।। अथ भैषज्यानि ।। अर्थात् व्याधि के लिङ्ग, के उपताप (विनाश) को भैषज्य कहा जाय । मन्त्रयुक्त आधिव्याधि विनाशक क्रिया (उपचार) का नाम भैषज्य है । मात्र जड़ी-बूटी साध्यक्रिया (उपचार) औषधि है ।

ऋषियों का निर्णय

दारिलः—द्विविधा व्याधयः आहार निमित्ता अन्य जनन पाप निमित्ताश्च तत्र आहार निमित्तेषु चरक वाहड सुश्रुतेषु-व्याध्युपशमने भवति। अशुभ निमित्तेषु अथर्ववेद विहितेषु शान्ति केषु व्याध्युपशमनं भवति। अनूक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानामंहो लिङ्गाभिः (कं० ३२।२६ व २७) सर्वाणि कर्त्तव्यानि । उक्तान्यनूक्तानि च कर्त्तव्यानि वन्धना पायनादीनि कर्त्तव्यानि ।

सारांश

ये लिङ्ग उपतापी शरीर की आधि-व्याधियाँ मूलतः दो प्रकार की है। प्रथम मिथ्या आहार व्यवहार जन्य है-उसके लिये अथर्ववेद की नवी शाखा भैषज्यवेद है, जिसे आयुर्वेद कहते हैं। इसका निदान तथा उपचार अत्यन्त गम्भीरतायुक्त पूर्णतया चरक-सुश्रुत और वाग्भट्टादि में वर्णित है। यह औषधि का विषय होने से इस विषय में शौनकीय शाखा उसका सहयोग लेने-देने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कहने में विवश है। दूसरी व्याधि—पाप,शाप, जनन अशुभ निमित्त हैं। अर्थात् जो उपर्युक्त आयुर्वेद की चिकित्सा से शान्त न हों, वे सभी व्याधियां तथा अन्य वे सभी शास्त्र वर्णित या अवर्णित, प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध पाप, शाप, कृत्या, नैर्ऋति अभिचार, भूस्खलन, उल्कापात आदि-२ अन्य सभी पापसूचक पापजनित व्याधियों की चिकित्सा विधि जो पृथक्-२ इस "कर्मजव्याधि-निरोध" ग्रन्थ में वर्णित है। जो मन्त्रसाध्य है, जो शौनकीय शाखा अर्थात् "कौशिक सूत्र-वैतान सूत्र, गोपथ ब्राह्मण, शान्ति कल्प, आङ्गिरसकल्प, नक्षत्रकल्प, अथर्व परिशिष्ट-आथर्वणी उपनिषद आदि के रूप में वर्णित है, यह द्वितीय लिङ्ग्युपताय-अर्थात् व्याधिशमन विधि है ।

उपर्युक्त–अंहोलिङ्गगण का सूक्ष्म विवरण निम्न प्रकार है। कां ११ सूक्त ६

पृथ्वीस्थानीय देवता

१. अग्निः १
२. वनस्पतिः १
३. औषधिः १
४. वीरुधः १
५. अहोरात्रं ५, ७
६. शपथ्यम् ७
७. उषाः ७
८. पार्थिवाः पशवः ८
९. आरण्याः मृगाः ८
१०. भूमिः १०
११. यक्षः ११
१२. पर्वतः १०
१३. समुद्रः १०
१४. नदी १०
१५. वेशन्ताः १०
१६ पृथिव्यांशक्राः श्रिताः १२
१७. वसवौ (अष्टौ) १३
१८. अथर्वाणः १३
१९. अंगिरसः १३
२०. यक्षः १४
२१. यजमानः १४
२२. ऋचः १४
२३. सामानिः १४
२४. भेषजानि १४
२५. यजुः १४
२६. होत्राः १४
२७. वीरुधांपञ्च राज्यानि १५
२८. सोमः (वनस्पतिः) १५
२९. दर्भः १५
३०. भंगः १५
३१. यवः १५
३२. सहः १५
३३. अरायः १६
३४. रक्षांसि
३५. सर्पः १६
३६. पुण्यजनः १६
३७. मृत्युः (एकशतंमृत्युः) १४
३८. ऋतुः (द्वादश) १७-२२
३९. ऋतुपतिः १७
४०. आर्तवः १७
४१. हायनम् १७
४२. समाः १७
४३. सवत्सरः १७
४४. मासाः १७
४५. विश्वेदेवाः १८, १९
४६. देवपत्न्यः १९
४७. भूतं २१
४८. भूतानां भूतपतिः २१
४९. भेषजः २३

अन्तरिक्षस्थानीय देवता

१. गन्धर्वः ४
२. अप्सराः ४
३. चन्द्रमाः ५
४. वायुः ६
५. पर्जन्यः ६
६. अन्तरिक्षं ६
७. दिशः ६
८. सर्वाः आशाः ७
९. सोमः ७
१०. पक्षिणः ८
११. शकुन्तः ८
१२. भवः ९
१३. शर्वः ९
१४. रुद्रः ९
१५. पशुपति ९
१६. इषुः ९
१७. यमः ९
१८. पितरः ११, १६
१९. अन्तरिक्ष सदः देवता १२
२०. रुद्राः (एकादश) १३

द्यु स्थानीय देवता

१. इन्द्रः १	१६. अर्यमा ४		
२. बृहस्पतिः १	१७. विश्वे आदित्याः (द्वादश) ५; १३		
३. सूर्यः १; ५	१८. दिव्या (पशवः) (पक्षिणः) ८		
४. राजावरुणः २	१९. द्यु: १०		
५. मित्रः २	२०. नक्षत्राणि १०		
६. विष्णुः २	२१. सप्तर्षयः ११		
७. भगः २	२२. देवी आपः ११		
८. अंशः २	२३. प्रजापतिः ११		
९. विबस्वान्ः २	२४. दिविषदः देवाः १२, १३		
१०. सविता देवः ३		पृथ्वीस्थान में	४९
११. धाता ३		अन्तरिक्ष में	२०
१२. पूषा ३		द्यु स्थान में	२४
१३. त्वष्टा ३			
१४. अश्विनौ ४		योग—	९३
१५. ब्रह्मणस्पति ४			

इनमें ८ वसु; ११ रुद्र; १२ आदित्य; ७ ऋषिगण; १०० मृत्यु, १२ मास, १२ ऋतु ६ ऋतु; २ अयन; ६ ऋतुपति; ४ दिशा; ४ उपदिशा ये १८४ देवता और अधिक हैं। ये १८४ तथा पूर्वोक्त ९३ का योग—२७७ देवता हैं।

इन देवताओं का इस शरीर के साथ जो सम्बन्ध पाप या पुण्यमय होता है, वही दुःख-सुख का कारण होता है। इसी से कां० ११ सू० ६ मन्त्र (२२/९)

"ते नः सन्तु सदा शिवाः"। ये सब देव हमें सदा शुभ मार्ग दर्शन करें। मणि बन्धन इस प्रकार जप, तप, यज्ञ, स्वाध्याय, स्नान, दान, तर्पण, मार्जन अभिमर्शन द्वारा पाप की निवृत्ति होती है, उसी से व्याधियों का शमन होता है।

यह अथर्ववेद (ब्रह्मवेद) की शौनकीय शाखा की शान्तिविधि सभी जीवधारी की त्रैलोकी पर्यन्त के विघ्नों की समर्थ शान्तिविधि है। जो आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक सभी प्रकार के विघ्नों से उत्पन्न आधि-व्याधियों के विनाश कर स्वस्थता दीर्घायुष्य समर्थता, समृद्धि, तेज वर्च, बल और वीर्य-वृद्धि के साथ इस व्यष्टि तथा समष्टि के देवताओं के प्रसाद, मंत्रबल, ऋषियों के तपोबल रूपी अथक-अकथ भैषज्य तथा आत्म-साक्षात्कार ब्रह्मलोकप्राप्ति; चिर कल्याण की जननी है।

पृथक्-२प्रकरणों में तत्तद् व्याधियों का विविध प्रकार से निदान तथा उपचार की अनुभूत विधियाँ हैं। परन्तु मनीषिगण, मात्र इसी को अन्तिम विधि न समझ इसके अन्वेषण के लिये अग्रसर हो प्राणियों के कल्याण की मूलभूत वेदामृतमयीधारायें प्रवाहित करने का दृढ़व्रत लें। शरीर के सन्दर्भ में गर्भाधान प्रकरण में भी उल्लेख है।

विशेष ज्ञातव्य

प्राणी के गर्भों में (देह में) ४ तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु जो मातृज, पितृज आहारज तथा आत्मकर्मज रहते हैं, ये सब क्रमशः चारों के ४/४ होने से १६ हो जाते हैं, इन्हीं से गर्भ शरीर बनता है। इनमें से मातृज विशेष बलवान होने पर माँके तुल्य पितृज बलवान होने पर पिता के तुल्य यदि भिन्न हो तो कर्मज के तुल्य समझे प्रायः आहारज से आहार तुल्य वर्ण हो जाता है परन्तु रूप में सादृश्य अनिवार्य नहीं।

इसी प्रकार मन भी माता-पिता व (पूर्व) कर्मों के तुल्य होता है। बोज ग्रहण के समय गर्भारम्भ में माता-पिता में जिस की प्रबलता होगी मन उसी के तुल्य होगा। यदि भिन्न है तो पूर्व कर्मानुरूप समझे। अथवा पूर्व देह जाति के सदृश। यदि पूर्व जन्म में देव था तो देव तुल्य, पशु था तो पशु तुल्य मन स्वभाव होगा। पूर्व जन्म के अभ्यास के संस्कारों से गर्भ में मन का प्रवेश होता है। हम जैसा रूप स्वर चरित आदि देखें वैसा ही मन समझें। यदि पवित्रता, आस्तिकता आदि हो तो ब्राह्म सत्व, ऐश्वर्य भीषणता, शूरता आदि हो तो आसुरसत्व, निर्बुद्धि, मूर्ख से पशु सत्व, आदि ये ८ प्रकार के सुश्रुत शरोरस्थान अध्याय ४ में विशेष रूपसे वर्णित हैं। शुक्र शोणित बीज ही आत्मकर्म (पूर्व कर्म) गर्भाशय काल इनके दोषों से तथा माता के आहार-विहार के दोषों से दुष्ट हो। आकृति, वर्ण तथा इन्द्रियों की विविध विकृतियों से उत्पन्न करते है।

अत्यन्त सूक्ष्म चारों भूतों (गन्ध, स्पर्शरूप, रस, तन्मात्राओं) के साथ मन से प्रेरित आत्मा स्वकर्मवश एक देह से दूसरे देहों में प्रविष्ट होता है। सूक्ष्म भूतों का साथ रहना लिङ्ग, शरीर का उपलक्षण है। यही महाप्रलय या मुक्ति पर्यन्त प्रत्येक प्राणी के साथ रहता है, मुक्त होने पर लिङ्गशरीर नहीं रहता, आत्मा आत्मरूप हो जाता है। सांख्य कारिका में कहा भी है।

पूर्वोत्पन्नमशक्तं, नियतंमहदादि सूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरूपभोगं भावेरभिवासितं लिङ्गम्।।१।।

स सर्वगः सर्व शरीर भूच्च, सविश्वकर्मा स च विश्वरूपः।
स चेतनावातु रतीन्द्रियश्च, सनित्ययुक्, सानुशयः स एवः।।२।।

उपर्युक्त १६ भूतों में ४ आत्मा में आश्रित होने से आत्मा उनमें आश्रित है। सारांश मातृज व पितृज भूत ही शुक्र शोणित हैं, मातृज रज, पितृज शुक्र को रसज पुष्ट करते हैं। जो कर्मज (आत्म कर्मज, पूर्व जन्म कृत) भूत हैं वे आत्मा से नित्य युक्त हो गर्भ में प्रविष्ट होते है: इसी से आत्मा लिङ्गशरीर के साथ स्थूल देह धारण करता रहता है। कर्मज भतों के रूप से रूप, मन से मन है। रज. तम, तथा कर्म से आकृति व बुद्धि में विभिन्नता आती है। लिङ्ग शरीर स्थूल का जनक है, अहङ्कारिक इन्द्रियां, इन्द्रियों की स्रष्टा हैं। एक रूप से विभिन्न रूपता में प्राक्तन कर्म कारण है, इसी से कहा है "अन्तमता, सो गता, अर्थात् पूर्व जन्मान्त मनके तुल्य मन समझें। मन की विभिन्नता में रज, तम. कारण है। आत्मा, इन्द्रिय गोचर भूत, कर्म मन, बुद्धि अहङ्कार रूप दोषों से अनुबद्ध है। मनके रज, तम, से आवृत तथा देवकर्म के बलसे आवागमन है, सत्व के उद्रेक से रज तम के अभिभूत होने पर तत्वज्ञान, तत्वज्ञान से मोक्ष,

लिङ्ग, शरीर, मन, बुद्धि, अहङ्कार के सूक्ष्म भूतों की परमात्मा में विलीनता होती है। यही अन्तरात्मा कहाता है, यही जोव है। इसी को गीता में कहा है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।

श्रुति में भो वर्णन है।

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीब शरदः शतम् ।।

मनुष्य बीज प्रत्येक अङ्ग उत्पादक भाग से युक्त, और स्वानुरूप जीव को उत्पन्न करते हैं। इन्द्रियां आत्मज भोग की साधन, प्राक्तन के अधीन होती है। यदि पिता कुष्ठी हो, बीज शुद्ध हो तो पिता के अनुरूप होते हुए भी कुष्टी नहीं होगी। अन्धेपन आदि में दुर्दैव कारण होता है। वाह्यविषयज्ञान के ज्ञान को साधन इन्द्रियांहैं। आत्म ज्ञान का बल महान है, आत्मा ज्ञानवान है। उत्पत्तिधर्मा पदार्थ की उत्पत्ति में कर्त्ता और कारण का होना अनिवार्य है। नित्यपदार्थ के कर्त्ता और कारण नहीं होते। आत्म ज्ञान नित्य है। वाह्यविषयक ज्ञान कर्त्ता और कारण से ही होता है। ज्ञान के कर्त्ता और कारण आत्मा और करण इन्द्रियादि हैं। अतः आत्मा ज्ञानवान्, प्रकृति-निर्विकार, दृष्टा और कारण हैं।

सारांश यह है मातृज आदिभाव पाञ्चभौतिक है।

यह पुरुष लोकतुल्य है, इस लोक में मूर्तिमान जो भाव हैं, वे ही पुरुष में हैं। जो पुरुष में है वे ही जगत में। अतः "यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे" श्रुति हैं। १ पृथ्वी २ जल ३ तेज ४ वायु ५ आकाश ६ अव्यक्तब्रह्म लोक या पुरुष है। पुरुष की मूर्ति, पृथ्वी, गीलापन, जल, शारीरिक उष्णता, तेज या अग्नि, प्राण, वायु, छिद्रसमूह, आकाश अन्तरात्म-ब्रह्म।

जैसे लोक में ब्रह्म की विभूति (नाना प्रकार की सृष्टि-सृजन-शक्ति) वैसे ही पुरुष में अन्तरात्मा की है। जैसे लोकमें ब्रह्म की विभूति प्रजापति हैं उसी भाँति पुरुष में अन्तरात्मा की विभूति मन है। जो लोक में इन्द्र है वह पुरुष में अहङ्कार, लोक में सूर्य, पुरुष में आदान, लोक में रुद्र, पुरुष में रोष लोक में सोम, पुरुष में प्रसन्नता, लोक में वसु, पुरुष में सुख, लोक में अश्विनी कुमार, पुरुष में कान्ति। लोक में मरुद्गण, पुरुष में उत्साह। लोक में विश्वेदेव पुरुष में इन्द्रिय विषय। लोकमें अन्धकार, पुरुष में मोह। लोक में ज्योति पुरुष में ज्ञान, लोक की सृष्टि का प्रारम्भ, पुरुष में गर्भाधान, जैसे सतयुग वैसे बालापन, त्रेता, वैसे यौवन, जैसे द्वापर वैसे वृद्धावस्था, जैसे कलि वैसे रोगी होना। जैसे युग का अन्त वैसे ही मृत्यु। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक को अपने में देखने वाले पुरुष का आत्मा सुख-दुख, (निवृत्ति-प्रवृत्ति) का कर्त्ता होता है। दोनों (लोक, पुरुष) की उत्पत्ति कर्माधीन है, इसी भाँति वृद्धिक्षय भी।

सर्वात्मगत व्यापार की शान्ति प्रलय की भांति कर्म फल भोगानन्तर अदृष्ट का व्यापार रुकना मृत्यु है। इस लोक का हेतु उत्पत्ति, वृद्धि, उपप्लव और वियोग है। हेतु उत्पत्तिकरण उत्पत्ति जन्म, वृद्धि-बढ़ना उपप्लव दुख आना वियोग छः धातुओं के विभाग को कहते हैं, उसी को जीव का निकल जाना, वह ही प्राण निरोध (मृत्यु) अङ्ग या लोक स्वभाव है। सब दुखों

की निवृत्ति शान्ति, प्रवृत्ति लोक का कारण है शान्ति-पुनर्जन्म न होना प्रवृत्ति-जन्म होना (संसार) दुख है। यही ज्ञान सत्य ज्ञान है, लोक में समता का ज्ञान सत्य ज्ञान-कारण है। लोकपुरुष समता सत्यज्ञान की उत्पत्ति का प्रयोजन है। प्रवृत्ति का कारण मोह इच्छा (राग) द्वेष से किया कर्म है। इसी से पुरुष संसार के जन्म मरण के बन्धन में पड़ता है। इस प्रकार अहंकार आदि के दोषों से घुमाया जाता प्रवृत्ति में लीन संसार में बार-बार आकर ठुकराया जाता है।

निवृत्ति-अपवर्ग, सर्वोत्कृष्ट-अत्यन्त शान्त, अविनाशी ब्रह्म है, उसी को मोक्ष कहते हैं।

इसी परम सुख की प्राप्ति के लिये, कल्याणकामी, विवेकीजन इच्छानुकूल उत्तम सन्तति के रूप में प्रवृत्त हों, और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत भी भङ्ग न हो, उन वेद, श्रुति, स्मृति सम्मत विविध विधियों का दिग्दर्शन है। इसी से "आत्मा वै जायते पुत्रः" और नरक (प्रवृत्ति) से रक्षा करने वाले पुत्र की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी। अन्यथा मरणधर्मा कूकर शूकर योनियों में पड़ने वाली पिता-माता की आत्मा के दुःख की हेतु सन्तति होगी।

इसी को माता-पिता सम्यक्तया समझलें। उन्हें सुख चाहिये या दुख।

यहाँ निवृत्ति की महत्ता को भली-भाँति मानते हुए प्रवृत्ति-मार्ग में प्रवृत्त होने का मूल राष्ट्र एवं विश्व में निरन्तर प्रवृत्त प्रवृद्ध आसुरी एवं तामसी, प्रभु, राष्ट्र, गुरु, पितुद्रोही सन्तति निरोध एवं सद्धर्माचरण द्वारा ऐसी सन्तति की उत्पत्ति करना जिससे "स जातो येन जातेन याति राष्ट्र समुद्भवम्" जिसके उत्पन्न होने से राष्ट्र उन्नति की ओर अग्रसर हो, विविध प्रकार से भारवाही न हो। अथवा "गुणि-गण-गणनारम्भे न पतति कठिनी ससम्भ्रमायस्य" गुणि-जनों की गणना में जो अग्रगण्य हों, जिनसे "एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति- न च तारा शतान्यपि" एक ही शान्तिदाता चन्द्र रात्रि के अन्धकारध्वंस में समर्थ होता है, सहस्रों तारागण नहीं, जो "स्ववीर्य गुप्ताऽहि मनो, प्रसूति" जो नर-सिंह, स्वभुजबलोपार्जन से स्वयं व अनेकों के भाव-पोषण संरक्षण में समर्थ हों, निर्दिष्ट वेदविधि से ऐसी सन्तति के स्रष्टा सद्गृहस्थ बनें और अपने अतीत के गौरव की गरिमा की ओर पूर्ववत् आकृष्ट हों, यदि हितकर हो तो अपनी अबोध शिशु बालिकाओं को पाश्चात्य, हेय संस्कृति से अवरुद्ध कर, भारतीय संस्कृति की शिक्षा-दीक्षा में अग्रसर हो, यहाँ वे ही विधियां हैं। अस्तु, माता-पिता के मन, व्यवहार की स्वस्थता सन्तति-उत्पादन में अनिवार्य है।

आधानकालीन सहवास-विधि

गर्भाधानकाल में स्त्री औंधी (मुंह छाती नीचे करके) लेटकर अथवा वाम दाहिने कर-बट लेट कर सहवास न करे। क्योंकि औंधी लेटनेसे बलवान वायु योनि को पीड़ित करता है, दाहिने कफ गर्भाशय को घेर लेता है, बायें से कुपित हूआ पित्त रज और शुक्र को दूषित करता है, सीधी चित्त रहने से सब दोष शान्त रहते हैं। गर्भधारण के १ प्रहर बाद शीतल जल से अपने नेत्रों, मुख तथा योनि को धोये। गर्भाधान से पूर्व अधिक भोजन न करे। भूखी, प्यासी, भयभीत, शोकातुर, जिसका चित्त सहवास में न हो या अन्य प्रकार से चित्त दूषित हो, क्रोध हो, परपुरुष की कामना हो, जो मैथुन से तृप्त न होती हो, ऐसी स्त्रियों को गर्भ नहीं रहता, रहेगा भी तो कुरूप, निर्गुण, क्षीणइन्द्रिय, क्षीण आयु, या गर्भपात हो जाता है।

गर्भिणी के त्याज्यधर्म

गर्भाधानान्त अग्नि के पास न बैठे, हड्डी, खोपड़ी, चूल्हा, सूप पर न बैठे ओखली, पत्थर, औजार, भूसादि, बुहारी, कण्डे पर न बैठे, न सोये, न टट्टी पेशाब ही करे, खुले बालों से जूठे मुंह से सन्ध्या के समय न सोये, कठोर भयानक, अहितकारी वाक्य न कहे, निर्जन घर में या वृक्ष के नीचे न सोये, ऐसा 'कारिका" में वर्णित हैं। हाथी घोड़ा पर्वत, गाड़ी सीढ़ी आदि पर न चढ़े जल्दी-२ न चले, व्यायाम न करे मयूर कुक्कुट या शीर्षासन या सर्वाङ्गासन या बद्ध-पद्मासन न करे, शोक न करे खून न निकालें (सींगी न लगाये) हानिप्रद परिश्रम न करे, दिन में न सोये, रात्रि में अकारण न जगे, मांस, मदिरा, आसवारिष्ट यत्न से परित्याग करे। टेढ़ीमेढ़ी न बैठे, ऊँचे, नीचे, विषम स्थान में न फिरे, कठोर आसन पर या उकड़ू, (जंघा जानुनी मिला कर नितम्ब अधरकर) न बैठे, जँभाई, पेशाब, शौच को न रोकें, जुलाब न लें, भयङ्कर कुएँ, गड्ढे या पहाड़ों के किनारों, शिखरों, मीनारों को न देखें, ये गर्भाधान में बाधक होते हैं, सन्तति-निरोधक हैं।

सहवास की विषमता के विपरीत कुछ परिणाम

यदि गर्भवती नंगी होकर सोये, अथवा इधर उधर अधिक घूमे तो उस की पगली सन्तति होगी। यदि लड़ाई करेगी तो मृगीरोग की सन्तति होगी, गर्भाधारणान्त अधिक मैथुन करते रहने से, विकल, निर्लज्ज, स्त्री के से लक्षणों की सन्तति होगी। निरन्तर शोक करने से भयातुर दुर्बल, क्षीण आयु वाली सन्तति होगी। यदि गर्भिणी परधनाकांक्षा करे तो सन्तति ईर्षालु पर उन्नति न देख सकने वाली स्त्री जैसी सन्तति होगी। अथवा चोर, बधिक, दस्यु, आलसी, अतिद्रोही, कुकर्मी सन्तति होगी, गर्भाधानान्त अधिक क्रोध करने से सन्तति अतिक्रूर, दम्भी, चुगल हो, दिन में या सन्ध्याकाल में सोने से तो सन्तति निद्रालु, आलसी, प्रमादी, मूर्ख मदाग्निवाली हो। शरावादि पीने से, प्यास अधिक लगे, विकल चित्त की हो। गौ मांस खाये तो पथरी, मधुमेह, मूत्र कृच्छ वाली हो। सूअर का मांस खाये तो लाल नेत्र-बधिक, कठोर हृदय, कठोर रोमावली वाला पुत्र हो। मछली खाने से सन्तति देर-देर में या बहुत शीघ्रपलक मारने वाली, तिरछे नेत्रों वाली सन्तति हो।

अधिक मीठा खाने से प्रमेह रोग वाली गूंगी, स्थूलशरीर सन्तति हो। अधिक खट्टा खाने से रक्तपित्त रोग वाली, त्वचारोग वाली तथा नेत्र रोग वाली सन्तति हो, अत्यन्त खारी वस्तु सेवन से असमय में बालश्वेत हों। सिकुड़न वाली, गञ्जी सन्तति हो, अत्यन्त चरपरा, तिक्त खाने से मूकपन, वाणी दोष, अल्पवीर्य वाली सन्तान उत्पादन असमर्थ प्रायः क्लीब सन्तति होती है। अत्यन्त कटु खाने से सूखा रोग वाली, शोथ रोग वाली, निर्बल सन्तति हो। अति कषाय सेवन से काले रङ्ग की, अफरा रोग वाली तथा गैस रोग वाली सन्तान हो। ये आहारजन्य सामान्य स्त्री पुरुषों के ज्ञानार्थं निर्दिष्ट हैं जो स्त्री को निर्देश हैं वे पुरुष पर भी घटित होते हैं।

गर्भाधानकर्त्ता पुरुष के कर्म

बीजवपन, मैथुन, तीर्थसेवन, श्राद्ध (सातवें मास से ऊपर) नाखून कटाना, पर्वतारोहण, नाव की यात्रा, मुर्दों को ढोना, समुद्रयात्रा युद्धयात्रा, क्षौरकर्म, लम्बीयात्रा का, पति भी परित्याग करे।

उत्तम पुत्र उत्पन्न करने की विधि (शतपथ ब्राह्मण) यदि वह स्त्री चाहे कि मेरा पुत्र अच्छे बड़े शरीर वाला, गौर वर्ण, सिंह सदृश पराक्रमी, ओजस्वी, यशस्वी, पावन, उत्तम स्वभाव का हो तो अविकृत रज तथा गर्भाशय युक्त स्त्री, व अविकृत शुक्रयुक्त पुरुष योग्य वैद्य से स्नेहन, स्वेदन के उपरान्त वमन, विरेचनान्त पेयादि क्रमसे भोजन योग्य (पथ्याहार) करके आस्थापन एवं अनुवासन कराये, साथ ही पुरुष को मधुर (वृष्य एवं बृहणघृत और दूध का, स्त्री को तैल के उड़दों का निरन्तर सेवन कर रज वीर्य की पूर्णता करलें, रजोधर्म के स्नानान्त पूर्वोक्त विधि से दोनों स्नान, गन्ध, माला श्वेत वस्त्र, चन्दनादिधारण करें।उसी दिन से स्त्री जौ के सत्तू जल मिलाकर वसन्त का छोटी मक्खी का शहद, गौ घृत, समान वर्ण के बछड़े की श्वेत गौ के दूध के साथ मिश्रित करे, चांदी या काँसे के पात्र में लगातार ७ दिन पिये। और प्रातः काल वह स्त्री साठी चावल (शाली) या जौ भोज्य पदार्थ दही, शहद, और घी से अथवा दूध के साथ मिलाकर खाये, प्रातः साय दोनों ही समय।

श्वेतवर्ण के घरमें रहे, विछौना, सवारी, वस्त्र, माला, भूषण सभी श्वेतवर्ण के हों। सीना चांदी को लाल अग्नि में कर जल में बुझा कर अथवा दोनों को जल में उबालकर पीने को ठन्डा करके दे। प्रातः सायं पुष्टगात्र श्वेत बैल, घोड़ा, श्वेतचन्दन, या चाँदनी श्वेतवर्ण के गहनों को देखें, सहेली सौम्य हो उसके मनोनुकूल बातें व्यवहार करें। जिन पुरुषों की आकृति चित्र-बचन व्यवहार और चेष्टायें सौम्य हों उन्हीं को देखे, पति भी प्रिय एवं हितकर व्यवहार करें, किन्तु मैथुन न करें। तदनन्तर, शुभ दिन, तिथि स्वर मुहूर्त्तादि को युक्त युग्म (८, १०, १२, १४, १६) वें दिनों मेंसे ही पूर्ववत स्नान-वस्त्र धारण कर पुत्रेष्ठिविधि से यज्ञ कर गर्भाधान करे।

गर्भाधानकाल में पुरुपवाचक भगवत विभूति महापुरुषों, तेजस्वी, वीर पुरुषों के चित्रों का दर्शन, उनके अनुकरणीय चरित्रों व पराक्रमों का वर्णन, वेद शास्त्रों के पाठ, चिन्तन-श्रवण करायें। यहाँ उदाहरणार्थ ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, दधीचि, शिव, रन्तिदेव पवनपुत्र, बिदुर, तथा अभिमन्यु एवं वालखिल्य, महर्षि शुकदेव। वर्तमान काल में लाल बहादुर के गभकालीन संस्कारों का प्रभाव प्रत्यक्ष, साक्षी है। इस प्रकार इच्छानुकूल पुत्र प्राप्त होता है।

(यदि योग्य अनुभवी, निर्लोभी वैद्य सुलभ न हो तो स्नेहन, स्वेदन वमन, विरेचन न करे, हल्के स्वल्प पथ्यकर भोजन के साथ पुष्यनक्षत्र में अपामार्ग लाये और ६।६ माशे उसके पञ्चाङ्ग, चूर्ण को सायं प्रातः दूधके साथ ले और रज-वीर्य की शुद्धि करें)।

यदि स्त्री श्याम वर्ण, लाल नेत्र, विस्तृत एवं उन्नत छाती, महाबाहु पुत्र को, अथवा कृष्ण वर्ण, काले, मृदु, लम्बे वालों वाला श्वेत नेत्र, श्वेत दन्त; तेजस्वी, आत्मवान को चाहे तो अभिलषित पुत्र के अनुरूप, परिवर्ह (आसन, बिछौना, फूल, भोजन, वस्त्र गृह आदि की सुव्यवस्था करे अर्थात् श्याम के लिये श्याम, कृष्ण के लिये कृष्ण, सामिग्री की व्यवस्था करे और जो अन्य भांति के पुत्र की कामनायें करें वे उसी-उसी प्रदेश के पुरुषों के रङ्ग, रूप, स्वभाव, गुण, वस्त्र, भोजनादि का मन में चिन्तवन तथा व्यवहार-व्यवस्था करें। पुत्र की उत्पत्ति में मन का विशेष प्रभाव पड़ता है। इन विभिन्न वर्ण आदि के पुत्रों के पृथक्-२ विधि

के साथ यज्ञ विधि सब की समान समझें, हां ऋत्विजों, विप्रों के यज्ञान्त आशीर्वचन, उसी कामना के पुत्रों के अनुरूप आशीर्वाद श्रवण करना अनिवार्य हैं। स्वयं भी वैसे, वैसे मनमें दृढ़ता से चिन्तबन करे। इस प्रकार मनोनुकूल पुत्र निश्चय ही प्राप्त होता है।

शूद्रा स्त्री अन्य सब व्यवहार तो करें, यज्ञ न करें। केवल मात्र, देवता, अग्नि, सूर्य, जल, अश्वत्थ, वट उदुम्बर, प्लक्ष, शमी, अश्व, बैल (साँड़) ब्राह्मण, गुरु, तपस्वी एवं सिद्धजनों के दर्शन तथा नमस्कार से वही फल निश्चय से प्राप्त कर लेते हैं।

यदि मनीषि पाठकगण धृष्टता के प्रति क्षमा करें तो पूर्व इसके कि गर्भाधान-संस्कार की विधि का उल्लेख किया जाय, यह लिखना उचित, अनिवार्य आवश्यक होगा कि गर्भाधान काल, गर्भाधान के पात्र, गर्भाधान की विधि, गर्भाधान के नियम गर्भाधान में बाधक तत्त्व और उनका निराकरण, गर्भाधान की आवश्यकता, गर्भाधान में असमर्थता, गर्भाधान न कराने में दोष, आदि पर अनुभूत, वेद, शास्त्र विहित विधि सर्वश्रेष्ठ है।

गर्भाधान काल निरूपण (आधान-ज्ञान)

प्रतिमास मंगल व चन्द्रमा के हेतु से स्त्री को ऋतुधर्म होता है। जब स्त्री की राशि से चन्द्र ३, ६, १०, ११ (उपचय) को छोड़ अन्यत्र अनुपचय में जाये, और गुरु की दृष्टि हो तथा पुरुष की राशि से ३, ६, १०, ११ वें दृष्ट हो तो उस स्त्री को पुरुष संयोग से निश्चय सत्पुत्र होता है। आधानलग्न से ७ वें पापग्रह (भौ० श० के०) की दृष्टि हो तो रोषपूर्वक सौम्यग्रह (बु० गु० शु०) से दृष्ट हो तो सहर्ष संयोग हो। आधान काल में शुक्र, रवि चन्द्र और भौम अपने-अपने नवांशों में हों, गुरु लग्न से १, ४, ७, १०,५, ९ वें हों तो निश्चय पुत्र सन्तान हो। रवि से ७ वें भौम या शनि हों तो पुरुष या चन्द्र से ७ वें हों तो स्त्री के लिये रोगप्रद हों। रवि से १२, २ शनि, मंगल हों या दृष्टि हो तो पुरुष चन्द्र से १२, २ शनि, मंगल हों या दृष्टि हो तो स्त्री को घातक हों। अथवा श० मं० में से एक युत, अन्य से दृष्ट, रवि पुरुष को चन्द्र स्त्री को घातक हो। दिनमें गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह, व रवि पितृग्रह, रात्रि में हो तो चन्द्र मातृग्रह, व शनि पितृग्रह होते हैं। पितृग्रह विषम, मातृग्रह सम हों तो क्रमशः, पिता, माता को शुभ, यदि पाप १२ वे हों और पाप दृष्ट हों शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों, अथवा लग्न में शनि हो, क्षीण चन्द्र व भौम की दृष्टि हो तो आधान होने पर स्त्री-मरण हो लग्न व चन्द्र, दोनों या एक-एक भी दो पापग्रहों के मध्य हो तो स्त्री गर्भाधानान्त, दोनों (स्त्री व गर्भ) एक साथ या आगे पीछे मृत्यु को प्राप्त हों। लग्न व चन्द्र से से ४ चौथे पाप हों, भौम ८ वें, अथवा लग्न (१) में ४।१२ वें भौम शनि हों, चन्द्र क्षीण हो तो गर्भवती का मरण होता है। यदि लग्न (१) में भौम और ७ वें रवि हों तो गर्भ वती का शस्त्र से मरण होता है। गर्भाधान काल में जिस मास का स्वामी, अस्त हो उस मास में गर्भस्राव हो।

आधानकालिक लग्न

आधानकालीन लग्न, या चन्द्र के साथ, अथवा इन दोनों से ५, ९, ७, ४, १० वें शुभ (बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र) हों, और ३, ६, ११, वें पाप ग्रह (भौम, शनि, केतु) हों, तथा लग्न, व, चन्द्र पर २ की दृष्टि हो, तो गर्भ सुखी हो। रवि, गुरु, चन्द्र, व, लग्न ये विषम राशि व नवें

हों, अथवा रवि, गुरु, विषम के हों तो पुत्र जन्म उक्त सब सम राशि में या नवम स्थान में हों अथवा भौम, चन्द्र, व शुक्र शुभ राशि में व नवमें स्थान में हों तो कन्या, द्विस्वभाव के साथ हों, बुध, दृष्ट हों तो यमल (जुड़वां) जन्म हो। यदि दोनों प्रकार के ग्रह हों ती एक पुत्र एक कन्या हो, लग्न से ३।५ शनि भौम, केतु, हों तो भी पुत्र जन्म हो।

क्रमशः विषम एवं सम राशि में रवि, चन्द्र या बुध शनि एक दूसरे को देखते हों, या सम राशि में रवि की विषम राशि का भौम देखें।

अथवा

विषम तथा सम राशि में गये हुए लग्न व चन्द्र पर भौम की दृष्टि हो तो सब योगों में नपुंसक हो।

शुक्र चन्द्र सम राशि के हों, बुध, मंगल, लग्न व गुरु विषम राशि के हों, पुरुष ग्रह से दृष्ट हों, या लग्न, चन्द्र सम हों, या पूर्वोक्त बुध, मंगल, लग्न गुरु सम राशि के हों, तो यमल जन्म होता है।

यदि बुध ३।६ की राशि के नवम में हों, द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह देखें (लग्न को) तो ३ सन्तान एक साथ होती हैं। उनमें २ बुध के तुल्य १ लग्नेश के तुल्य होती हैं। यदि बुध व लग्न तुल्य राशि के हों और नवांश में गये हों तो तीनों एक से समझे। यदि धनराशि का अन्तिमांश लग्न हो, उसी अंश में बली ग्रह हो, और बली बुध व शनि से दृष्ट हो तो उसके अधिक सन्तान होवें।

गर्भमासों के अधिपति—(विशेष)

प्रथम मास-शुक्र, द्वितीय, मंगल, तृतीय, गुरु, चतुर्थ, रवि, पांचवें के चन्द्र, छटवें शनि, सातवें बुध, आठवें आधान लग्नेश, (भगवान विष्णु) रवि और चन्द्र ये आधान से प्रसव पर्यन्त के स्वामी कहे हैं, (ना० पूर्वार्द्ध द्वितीय त्रिस्कन्ध ज्योतिष) में वर्णित। आधानकाल में जो बली या निर्बल हो वैसा ही उस मास का फल समझे। जेसे बुध ५।९ वें हों, अन्य ग्रह निर्बल हो तो शिशु के २ मुख, ४ पैर, ४ हाथ हों। चन्द्र द्वितीय स्थान में हो, अन्य सब पापग्रहकी सन्धि में हों तो शिशु गूंगा हो।

यदि उपर्युक्त ग्रहों पर शुभ ग्रह बु० गु० शु० और चन्द्र की दृष्टि हो तो शिशु देर से बोले मं०श०बु० की राशि या नवांश में हो तो गर्भ ही में दांत निकल आयें, चतुर्थका स्वामी (कर्क) चन्द्र या लग्न में हो, शनि, मंगल से दृष्ट हो तो कुवड़ा हो। मीन का लग्न हो, श०, मं० व च से दृष्ट हो तो पंगु हो। पापग्रह व चन्द्र राशि ४ में सन्धि में हो, शुभ (चं०बु०गु०शु०) से अदृष्ट हो तो मूर्ख हो। मकर का अन्तिम अंश लग्न में हो, श० चं० र० से दृष्ट हो तो बौना हो। ५।९ लग्न के द्रेष्काण में पाप ग्रह हों तो क्रमशः पैर, शिर या हाथ से रहित हो यदि गर्भाधान के समय सिंह के रवि, चन्द्र पर श०, मं०, की दृष्टि हो तो नेत्रहीन हो।

यदि शुभ (चं०बु०गु०शु०) व पाप (श० भौ० के०) दोनों की दृष्टि हो तो फूली हो। लग्न से १२ वें चन्द्र हो तो बाँया, रवि हो तो दाँया नेत्र नष्ट हो। ऊपर के अशुभ

योगों पर शुभ ग्रह (चं० बु० गु० शु०) की दृष्टि हो तो फल पूर्ण नहीं होता है। यही कर्मज फलों का प्रभाव है, ऐसी दशा में देवाराधनान्त चिकित्सा से अशुभ का शुभ फल हो जाता है (अनुभूत है)।

यदि आधान लग्न में शनि का नवांश हो, शनि ७ वें हों तो ३ वर्ष के उपरान्त प्रसव हो, यदि लग्न में चन्द्रमा का नबांश हो और चन्द्र ७ वें हों तो १२ वें वर्ष पर जन्म हो, आधानकाल में जिस द्वादशांश में चन्द्र हो, उससे उतनी ही संख्या आगे की राशि में चन्द्रमा के जाने पर प्रसव हो। द्वादशांश भुक्त अंश आदि को २ से गुणा कर ५ से भाग दे, लब्धि राशि अंश कला, विकला मान की सूचक समझें। यह महर्षि नारद को उनके वरिष्ठ भ्राता ब्रह्मा जी के पुत्र ने कही थी, जिनकी विशेष चर्चा त्रिस्कन्ध ज्योतिष नारद पुराण में है।

गर्भाधान कालः ।। पारस्करः ।।

भगवान आत्रेय जी ने चरक संहिता (शरीरस्थान) द्वितीय अध्याय श्लोक में अतुल्य गोत्र भिन्नगोत्रीय स्त्री जो रजोधर्म से शुद्ध ब्रह्मविधि से विवाहित हो, को गर्भाधान की आज्ञा दी है। अन्यथा वंश विच्छेद कुष्ठ, अक्षि रोग, दमा, यक्ष्मादि से पीड़ित होते हैं यह द्विजाति मात्रको ही है, महर्षि याज्ञवल्क्य एवं व्यास जी ने (पारस्कर) हेमाद्रि में शंख ऋषि एवं व्यास जी ने कहा है। उसका सार निम्नलिखित है।

गर्भाधान में ग्राह्य दिन व फल

दिन	फल
प्रथम	आयुक्षीण हो, प्रसव में ही नष्ट हो—गर्भस्राव या गर्भपात हो
द्वितीय	सूतिकाग्रह में ही मृत्यु हो
तृतीय	अङ्गहीन, अल्पायु
चतुर्थ	अल्पायु, दरिद्री पुत्र
पञ्चम	पुत्रवती कन्या हो
षष्ठ	मध्यमपुत्र
सप्तम	पुत्रहीन कन्या
अष्टम	प्रभुभक्त पुत्र
नवमे	सौभाग्यवती कन्या
दशमे	गुणी पुत्र हो
ग्यारहवें	अधर्मिणी पुत्री (विष कन्या)
वारहवें	उत्तम पुत्र
तेरहवें	पापिष्ठा, वर्ण संकर उत्पन्न करने वाली कन्या
चौदहवें	धर्मज्ञ, कृतज्ञ, आत्मवेदी, दृढ़व्रतपुत्र
पन्द्रहवें	पतिव्रता, सौम्या, सहृदया कन्या
सोलहवें	प्राणियों का आश्रयदाता, धर्मात्मा, राष्ट्रनायक पुत्र

पर्व दिन पूर्णिमा, ग्रहण, अमावस्या, एकादशी, श्राद्धदिन अष्टमी व चतुर्दशी का परित्याग कर दें।

दिन में गर्भाधान करने से, नपुंसक, षण्ढा, अल्पवीर्य अल्पायु सन्तति होती है।

स्त्री के सोलहवें और पुरुष के २५ वें वर्ष से आगे, स्वस्थ, प्रसन्नचित्त, सहर्षता (परस्पर) में किया गर्भाधान, उत्तम पुत्रप्रद होता है।

ग्राह्य तिथि, वार, नक्षत्र-लग्न

तिथि—१,२ ३,५,७,६,१०,१२,१३, तिथियों में

वार—सोम, गुरु, शुक्र,

नक्षत्र—रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाती अनुराधा, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा, श्रवण, शतभिषा, स्त्री का श्रेष्ठ चन्द्रबल

गर्भाधान में त्याज्य तिथि नक्षत्रादि

गण्डान्त, दुष्टतारा, जन्मतारा, मूल, भरणी, अश्विनी रेवती ग्रहणदिन-व्यतीपात, वैधृति, श्राद्धदिन, परिघार्ध, उत्पात नक्षत्र, पापयुक्त लग्न, भद्रा, जन्म व अष्टम लग्न, षष्ठी चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या पौर्णिमा, रिक्ता ४।६।१४, सन्ध्या भौम-रवि, शनि, सङ्क्रान्तिदिन १ से ४ रजोदर्शन के दिन सर्वथा त्याज्य हैं।

गर्भाधान के समय स्वरों का ज्ञान

उपर्युक्त सभी बातें प्रत्येक गर्भाधान से पूर्व देखकर समझकर चलें, उसी समय स्त्री पुरुषों को अपने-२ स्वरों से भी ठीक काम लेकर अभीष्ट सिद्धि करना अत्यन्त वाञ्छनीय कर्त्तव्य है।

शिव स्वरोदय के इस अभीष्ट वरदान को शिरोधार्य समझें, यह चिर परम्परागत अनुभूत है, कभी व्यर्थ नहीं हुआ। बन्ध्या तथा मृतवस्त्रा एवं कन्याऽपत्य वाली स्त्रियाँ भी सर्वथा सङ्कल्प-सिद्ध हुई हैं।

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां, स्त्रीणाँञ्चैव सुधाकरः
उभयो सङ्गमें प्राप्ते बन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥१॥

विषमाङ्के दिवारात्रौ विषमाङ्के दिनाऽधिपः।
चन्द्र नेत्रा ऽग्नि तत्वेषु, बन्ध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥२॥

गर्भाधानं मारुते स्याच्चदुःखी, दिक्षुख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः।
गर्भस्रावः, स्वल्पजीवश्चबह्नो, भोगी भव्यःपार्थिवेनार्थ युक्तः ॥३॥

महीतत्वे सुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिना भवेत्।
शेषेषु गर्भहानिस्याज्जातमात्रस्य वा मृतिः ॥४॥

यदि ऋतुदान के समय पुरुष का दायाँ, स्त्री का बाँया स्वर हो, तब सङ्गम हो तो बन्ध्या भी पुत्रवती होती हैं। १॥ परन्तु यदि सम्भोग काल में दायां (सूर्य) स्वर बहे और भोग के ठीक उपरान्त बायां (चन्द्र स्वर बहने लगे तो स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकेगी।

ऋतुकाल के अनन्तर विषम दिनों में पुरुष का दायां (सूर्य) स्वर दिन व रात्रि में बहे और स्त्री के बायें (चन्द्र) स्वर में पृथ्वी, जल अथवा अग्नि तत्व बहता हो, तब सङ्गम हो जाय

तो भी बन्ध्याओं के पुत्र हुए हैं। यदि सम दिनों में स्नान के उपरान्त (८, १०, १२, १४, १६ वें) में उपरोक्त स्वर बहे तो कहना ही क्या, वह निश्चय ही पुत्र की प्राप्ति करती हैं। वायु तत्व में गर्भाधान हो तो दुःखी, अग्नितत्व में गर्भक्षय, या अल्पजीवी, आकाशतत्व में गर्भ नष्ट हो, जल तत्व में विख्यात सुखी, और पृथ्वी तत्व में सुन्दर-धनी भोगी पुत्र होते हैं।३।।

पृथ्वी तत्व के गर्भाधान में पुत्र, जल तत्व में कन्या, शेष तत्व (वायु, अग्नि, आकाश) में गर्भक्षीण अथवा होने के कुछ समय, दिन, मास, उपरान्त मृत्यु होती है।

विशेष :—वामनाड़ी का प्रवाहक, चन्द्र-शक्ति रूप है, दांई नाड़ी का प्रवाहक सूर्य (शिव) स्वरूप है, श्वांस बाहर जाने में शक्तिरूप और अन्दर श्वांस जाते समय शिव स्वरूप है। इस कारण स्त्री के बायें, पुरुष के दायें स्वर हों, और श्वास बाहर को जा रही हो, ठीक उस समय का गर्भाधान जीवलोक को कल्याणप्रद होता है। वाम नाड़ी अमृत रूपा, जगत्पोषण कर्त्ता है, (विश्वम्भर) दांई पैदा करता (ब्रह्मस्वरूप) है। बांई नाड़ी (स्वर) पुरुष समझें अथवा स्त्री (पृथ्वी) पुरुष (बीज) है। पृथ्वी (बीज) से हाड मांस त्वचा, नाड़ी और रोम जलतत्व के वीर्य, रुधिर-मज्जा, मूत्र और लार पांच-पाँच गुण हैं। देह में पृथ्वीतत्व ५० पल, जलतत्व ४० पल, अग्नितत्व ३० पल, वायुतत्व २० पल, आकाशतत्व १० के मान से बहते हैं, पृथ्वी का बीज (लं) जल तत्व का (वं) अग्नितत्व का (रं) पवनतत्व का (यं) आकाश तत्व का (हं) बीज है। इन सबको भली प्रकार समझने से आगे का मार्ग प्रशस्त होगा। गौ पृथ्वी, बैल शिवस्वरूप हैं।

ऋतुस्नानान्तर गर्भाधान पर्यन्त स्त्री, एक वर्ण की बछड़े की गौ के दूध में (यथा सम्भव श्यामा गौ हो) १ तोला शंखवल्ली (शंखाहूली) को घोट छान कर अपने चन्द्र स्वर, (बायेंस्वर) में पीती रहे, गर्भाधान से १ घंटे पूर्व, शिवलिङ्गी (नेपाली) लेकर शंखपुष्पी को पियें, और "ॐ जीवंरक्ष जीवंरक्ष"। भगवान महाशिव के मन्त्र को निरन्तर श्रद्धा, विश्वास से जपें।

उपर्युक्त विधि से दोनों स्त्री-पुरुष स्थिरमन प्रसन्नचित्त, निष्ठा, विश्वास तथा पारस्परिक प्रेम युक्त हो, स्त्री ३ वार पुरुष से (पतिसे) गर्भ देने की प्रार्थना करे। ऐसे गर्भाधान से निश्चय ही "रूप लावण्य सम्पन्नो नरसिंह प्रसूयते" बहुबार का चिर परम्परागत अनुभूत है। यही तथ्य सर्वत्र समझें।

अथर्ववेद काण्ड ११ सूक्त ४ ऋचा २२; १, ११; १२; १३ आदि में वर्णित प्राण ही सर्वेश्वर है, प्राण से सभी की उत्पत्ति; रक्षा, सम्भरण है, प्राण ही सूर्य चन्द्र प्रजापति है। प्राण आठ चक्र नेमि की भांति है। आदि २ योगियों का उपास्य है, यथा महाकुण्डलिनी शक्ति, समस्त सृष्टि में, परिव्याप्त है। व्यक्ति में यही कुण्डलिनी के रूप में, व्यक्त होती है। पीठस्थ मेरुदण्ड, सीधा पायु और उपस्थ के मध्य में लगता है, यही त्रिकोण चक्र में, स्वयम्भूलिंग है। जिसे अग्नि चक्र भी कहते हैं। इस स्वयम्भूलिंग के, सर्प की भाँति साढ़े तीन, बलयों में कुण्डलिनी स्थित है। इसके अनन्तर-मूलाधार; स्वाधिष्ठान। मणिपूर: अनाहत: विशुद्धाख्य और आज्ञा ये ६ चक्र हैं। ७वां सहस्रार, ८ वाँ शून्यचक्र है, यह अष्टचक्र नेमि है, जो क्रमशः ऊपर-२

है। इनको भेद कर, मस्तिष्क में शून्य चक्र है, जहां योगी, जीवात्मा को पहुँचाते हैं। यहाँ सहस्रार चक्र है, प्राण वायु, वाहिका, इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना, मेरुदण्ड से सम्बद्ध है। इड़ा और पिंगला ऋचा १२ में वर्णित सूर्य और चन्द्र हैं। सुषुम्ना के भीतर गंगा यमुना चित्रिणी और सरस्वती ब्रह्मा, ये तीन नाड़ियाँ हैं। सुषुम्ना कुण्डलिनी का यथामार्ग है। ये ही नाना प्रकार की साधनाओं, कुण्डलिनी शक्ति को उद्‌बुद्ध कर स्फोट नाद का, विषय हैं। इस नाद से सूर्य, चन्द्र और अग्नि रूप प्रकाश है। इसी से योगी व्यक्ति के अन्दर कुण्डलिनी को महाकुण्डलिनी में मिलाने का प्रयत्न करते हैं। इन्हीं से सौर जगत को, पूर्णतया ज्ञात कर आकाशमण्डलीय सौर जगत से तुलना कर ऋषियों ने ऋक्-यजु, साम और अथर्व ज्योतिष के सिद्धान्त को प्रचलित किया। पूर्वोक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी, तत्ववेत्ता योगी को अथर्वोक्त १०१ मृत्यु छूतक नहीं सकती है। वे अमृतपान करने वाले ये हैं।

"बनादृगहा द्वेति जगाद वेद"। ये प्राण (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना) से तत्वों और तत्वों से "स्वरोदय" द्वारा शुभाशुभ का ज्ञान एवं अरिष्टनिवारण में समर्थ होते है। स्वरोदय आगे इसी प्रकरण में विस्तृत है।

विद्वान भविष्यवक्ता "अंगविज्जा" आर्यभट्ट कृत ग्रन्थ में दिये जय-पराजय लाभ-हानि, जीवन-मरण: "अनुरक्त जयं पराजयं वा राजमरणं वा आरोग्यं वारण्यो आतंकं आदि-२ का अध्ययन भी करें। इसके नवम अध्याय के प्रथम द्वार में दिये शरीर के ७५ अंगों को मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्पर्श एक ही बार" करके प्रश्न करे—"एताणि आमसं पुछ" आदि २ (मस्तक शिर, सीमन्तक ललाट नेत्र, कान कपोल, ओष्ठ दांत, मुख, मसूड़ा, कन्धा, बाहु, मणिबन्ध हाथ, पैर आदि ७५ तो अर्थलाभ, जय, शत्रुओं के पराजय, मित्र-संपत्ति प्राप्ति, समागम, घरमें निवास, स्थान लाभ, यशप्राप्ति, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, भोग प्राप्ति, सुख, दासी, दास; यान सवारी गाय भैंस, धन-धान्य; क्षेत्र वस्तु विद्या एवं सम्पत्ति आदि की प्राप्ति होती है। उक्त अंगों का एक बार से अधिक स्पर्श करें तो विपरीत फल हो।

इसी के ५५ वें अध्याय में पृथ्वी के भीतर निहित धन के जानने की प्रक्रिया है, "तत्थ अत्थि णिधित" देखें। पृ० २१३ है। नष्टधनायनार्थ अध्याय ५७ इसके प्रारम्भ में "कालोऽन्तरामा सर्वदा सर्वदर्शी शुभाशुभैः फल सूचकैः सविशेषेण प्राणिनामपराङ्गेषुस्पर्श-व्यवहारेङ्गित चेष्टादिभिर्निमित्तै: फलमभिदर्शयति"। अर्थात् अंगस्पर्श-व्यवहार-चर्या चेष्टादिको ध्यान में रख फलादेश-निरूपण करें। इस विषय में अथर्ववेद के प्रयोग भी आगे आयेंगे।

अब तिथि—नक्षत्र योग करणों के स्वामियों को भी राशि स्वामियों की भाँति शुभाशुभ में समझें।

तिथि	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी
१	अग्नि	अश्विनी	अश्विनीकुमार
२	ब्रह्मा	भरणी	काल
३	गौरी	कृत्तिका	अग्नि

तिथि	स्वामी
४	गणेश
५	शेषनाग
६	कार्तिकेय
७	सूर्य
८	शिव
९	दुर्गा
१०	काल
११	विश्वेदेवा
१२	विष्णु
१३	काम
१४	शिव
पूर्णिमा	चन्द्र
अमा	पितर

नक्षत्र	स्वामी
रोहिणी	ब्रह्मा।
मृगशिर	चन्द्र
आर्द्रा	रुद्र
पुनर्वसु	अदिति
पुष्य	गुरु
आश्लेषा	सर्प
मघा	पितर
पूर्वाफाल्गुनी	भग
उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा
हस्त	सूर्य
चित्रा	विश्वकर्मा
स्वाति	पवन
विशाखा	शुक्राग्नि
अनुराधा	मित्र
ज्येष्ठा	इन्द्र
मूल	निऋति
पूर्वाषाढा	जल
उ० षा०	विश्वेदेवा
अभिजित	ब्रह्मा
श्रवण	विष्णु
धनिष्ठा	वसु
शतभिषा	वरुण
पूर्वाभाद्रपद	अजैकपाद
उ० भा०	अहिर्बुध्न्य
रेवती	पूषा

योग	स्वामी
विष्कम्भ	यम
प्रीतिकर	विष्णु
आयुष्मान	चन्द्र
सौभाग्य	ब्रह्म
शोभन	गुरु
अतिगण्ड	चन्द्र
सुकर्मा	इन्द्र
धृति	जल

करण	
बव	इन्द्र
बालव	ब्रह्मा
कौलव	सूर्य
तैतिल	सूर्य
गर	पृथ्वी
वणिज	लक्ष्मी
विष्ठि	यम

ये ७ चरसंज्ञक हैं

योग	स्वामी
शूल	सर्प
गण्ड	अग्नि
वृद्धि	सूर्य
ध्रुव	भूमि
व्याघात	वायु
हर्षण	भंग
वज्र	वरुण
सिद्धि	गणेश
व्यतीपात	रुद्र
वरीयान	कुवेर
परिघ	विश्वकर्मा
शिव	मित्र
सिद्ध	कार्तिकेय
साध्य	सावित्री
शुभ	लक्ष्मी
शुक्ल	पार्वती
ब्रह्म	अश्विनी कुमार
ऐन्द्र	पितर
वैधृति	दिति

करण

शकुनि	कलियुग
चतुष्पाद	रुद्र
नाग	सर्प
किंस्तुघ्न	वायु

ये ४ स्थिर संज्ञक हैं

रविवार	स्थिर
चन्द्रवार	चर
भौमवार	उग्र
बुधवार	सम (वाणिज्य में शुभ)
गुरुवार	लघु (विद्या में)
शुक्रवार	मृदु
शनिवार	तीक्ष्ण (शल्य कर्म में)

ज्येष्ठा, मूल, गण्डान्त संज्ञक, श्लेषा सर्प संज्ञक समझें।

उत्तराषाढ़ा की अन्त की १५, श्रवण की ४, कुल १९ घटी अभिजित होता है जो सभी में शुभ है।

योग संज्ञा

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वार
१२	११	५	३	६	८	९	दग्ध
४	६	७	२	८	९	७	विष
१२	६	७	८	९	१०	११	हुताशन

सिद्धा तिथियाँ

३	२	५	१	४	योगा
८	७	१०	६	९	तिथियों में वार
१३	१२	१५	११	१४	सिद्धियोग

४, ६, ८, ९, १२, १४ तिथियों को पक्षरन्ध्र-संज्ञक कहा है।

प्रात: से रात्रिपर्यन्त की अमा सिनीवाली चतुर्दशी से विद्ध को दर्श, प्रतिपदा से युक्त अमा को कूहू कहा है।

भद्रा

स्वर्ग सौर—बैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष, आषाढ़
मृत्युलोक—फाल्गुन, भादों, चैत्र, श्रावण
नागलोक—पौष, माघ, कार्तिक, आश्विन
में रहती है—स्वर्ग में शुभ, पाताल में धनसंचय मृत्युलोक की विनाशकारी रहती है।

प्रश्नकर्त्ता की चेष्टायें

पर्यस्तिका, आमर्श, अपश्रय, आलम्बन खड़े रहना, देखना, हँसना, प्रश्न करना, नमस्कार करना, संलाप आगमन, रुदन, परिवेदन, क्रन्दन, पतन, अभ्युत्थान, निर्गमन, जंभाई लेना, चुंबन आलिङ्गन आदि को ध्यान में रख फलादेश कहना श्रेयस्कर कहा है।

इन सभी को ध्यान में रक्खें।

गर्भाधान के समय मन का विचार

गर्भोपपत्तौ तु मन : स्त्रियां यं, जन्तुं ब्रजेत्तत्सदृशं प्रसूते । च० सं० श० स्था० अ० २।२४ भगवान् आत्रेय की वाणी है कि बीजग्रहण के समय स्त्री का मन जिस प्राणी की ओर जाता है, जैसा संकल्प होता है, उसी के अनुरूप सन्तान होती है ।

ॐ पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनुसिच्यते ।

तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत ।।२।। अ० कां० ६ सू० ११ मं०२ । भगवान प्रजापति का उपदेश है कि पुरुष में ही वीर्य उत्पन्न होता है, वही गर्भाधान से गर्भ में सेचन किया जाता है । वही निश्चय से पुत्र के प्राप्त कराने में हेतु है ।

प्रजापतिरनुमति सिनीवाल्यऽची क्लृपत् ।
स्त्रैषू य मन्यत्रदधत् पुमांसनुद्धदिह ।।३।।

प्रजापति, पुरुष और अनुमतिपति के अभिमत पुत्र का चिन्तन करने वाली "सिनीबाली" स्त्री ही गर्भधारण और पालन में समर्थ हो सकते हैं, अन्यथा विधि से कन्या उत्पन्न होती है ।

गर्भिणी के गर्भ पर तथा गर्भाधानकाल में उत्तम संस्कार डालने की अनिवार्यता का ऋग्वेद मं० ७ अ० ५ सू० ८० मं० १ व २ में आदेश दिया है ।

ओ३म् प्रति स्तोनेभिरुषसं वसिष्ठाः गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अवुध्नन् ।
विवर्तयन्ती रजसी समन्ते आविष्कृण्वन्तीं भुवनानि विश्वा ।।१।।
एषास्या नव्यमायुर्दधाना गूढ़वी तमो ज्योतिषोषा अवोधि ।
अग्रं एति युवति रह्वयाषा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ।।२।।

गर्भस्थ वालक पितामह हो, पितामह के तुल्य ही हो, इसका हेतु मन और प्रथम संस्कार ही है । ऋ० मं० ६ अ० २ सू० १६ मं० ३५/२७

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानौ अक्षरे सीदन्नृतस्ययोनिमा ३५/२७

प्रजोत्पत्ति में स्त्री पुरुष दोनों के मनोबल, संस्कार व व्यवहार, आहार तथा स्वास्थ्य एवं पारस्परिक प्रगाढ़ प्रेम, निष्ठा और विश्वास ही मूल कारण है। ऐसा शुक्ल यजुर्वेद अ० २३ मं० २१ में भगवान का आदेश है ।

ॐ उत्सक्थ्याऽअवगुदं धेहि समाञ्जि चारया वृषन् ।

या स्त्रोणां जीव भोजनः ।।२१।।

भगवान आत्रेय ने चरक शास्त्र में "प्रजोत्पत्ति विषय" अध्याय २ में भी निर्दिष्ट किया है कि

स्त्रीगमन विधि

स्त्री-पुरुष प्रसन्नचित्त से प्रजापति परमेश्वर की आराधना (यज्ञ) कर गर्भधारण काल में उपर्युक्त अष्टाक्षरी मन्त्र (जीवंरक्ष-जीवंरक्ष) को मानसिक जपके साथ, प्रीतिपूर्वक, सुन्दर वेश भूषण युक्त, कामल-स्वच्छ, श्वेत वस्त्रों की शय्या पर पुरुष अपने दायें, स्त्री वायें स्वरों

में पुरुष अपने दायें पैर को, स्त्री वायें पैर को अपने-२ श्वास ऊपर चढ़ा कर शय्या पर चढ़ें या बैठें और निम्न मन्त्र पढ़ें।

ॐ अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि।
धाता त्वादधातु विधाता त्वादधातु ब्रह्मवर्चस भवेदिति ॥

ब्रह्मा वृहस्पति विष्णुः सोमः सूर्य्य स्तथाश्विनौ।
भगोऽथ मित्रा वरुणौ पुत्रं वीरं दधातुमे ॥१॥

इसे पढ़कर लेटे, घर में प्रकाश हो शय्या का सिरहाना पूर्व को रक्खें।

गर्भधारण काल से पूर्व ही ढाक का रस गौ घृत में मिला स्त्री-पुरुष अपनी प्रजननेन्द्रियों के अग्रभाग में अनिवार्य रूप से लेपकरें। गर्भधारण ३ बार करें।

गर्भधारण के १ घंटा बाद देवी ठण्डे जल से मुँह, हाथ आदि धोयें, पूर्व नहीं चित्त ही लेटी रहें।

गर्भधारण से पूर्व हल्का आधा भोजन करें, भूखे रहना, अधिक पेट का भरना ये दोनों ही बाधक हैं।

दिन में तथा गर्भधारण से १ घंटा पूर्व शंखपुष्पी १ तोला दूध में लें। स्वर स्त्री का बायां पुरुष, का दायां प्रवल चले इसकी आज से ही यत्न से तय्यारी करना जरूरी है। पुरोडाश को पति स्वयं लें और उसमें से स्त्री को दें। गर्भधारण काल में पुरुषों के चित्र हों, प्रातः उठते हो, चांदी, स्वर्ण रत्नों के दर्शन, स्पर्शकरें, बछड़े के दर्शन करें, उस पर हथेली, फिरायें गर्भधारण में जप करें, पति वीर पुरुषों. भक्तों, महानदेवों की गाथा श्रवण करायें। दोनों ही ऐसी कोई बात न करें जिससे क्रोध आये, मन कुन्द हो, प्रसन्नता प्रफुल्लता का सारा वातावरण सृष्टि रचना के निमित्त हृदय से व्यवहार से बनायें, आभूषण, वस्त्र, माला, इत्र, लेप, चन्दन, कपूर आदि सुखद, स्वच्छ शय्या हो केसरिया या श्वेत ही वस्त्र हों, चन्दनादि धूप हो, शय्या का सिरहाना पूर्व को होना कल्याणप्रद है।

(वृक्षके नीचे गर्भधारण अशुभ है) रोशनी का रखना शुभ सिर के समीप जल, दूध, घृत, मधु, का होना शुभ।

गर्भाधान विवेचन

ग्रन्थ के पूर्व प्रथम अध्याय में अथर्व शरीर रचना प्रकरण में सृष्टि के सजनकर्त्ता देवों के अंश इस पिण्ड देह में कहाँ, किस प्रकार हैं यह अथर्ववेद कां० ११ सूक्त ८ में विधिवत वर्णित है। इसी की पुष्टि ऐतरेय उपनिषद से पूर्णतया की है। यथा—ऐ० उ०

विश्व के देव	शरीर में देवतांश
१. परब्रह्म	जीव, आत्मा
२. सूर्य	नेत्र
३. पृथ्वी	नासिका
४. आपः	रसना

५. अग्नि	वाणी-मुख
६. दिशा (आकाश)	कान
७. वायु रुद्र	प्राण त्वचा
८. औषधि, वनस्पति	केश
९. लोहिनी आप:	रक्त रुधिर
१०. द्यौः	मस्तक
११. अन्तरिक्ष	नाभि, उदर, बक्ष
१२. पृथ्वि	पैर
१३. पर्वत (पर्वदान)	पर्व जोड़
१४. मृत्यु-आप:	वीर्य-रज
१५. अश्विनौ	श्वास उच्छ्वास

उपर्युक्त कां ११ सू० ८ के मन्त्र (२७-२९) में वर्णित इस यज्ञ में घी रेत ही है, इस रेत की आहुति स्त्री के गर्भाशय में डाली जाती है। इसी रेत के साथ विश्व के समस्त देवों के अंश रूप जो पिण्डदेह में पिता के थे; उनके अणुतमरूप सत्त्वांश वीर्य के द्वारा प्रविष्ट होते हैं अर्थात् ब्रह्माण्ड में जो देवता जो पानी और जो ब्रह्म के साथ विराट पुरुष है वे वीर्य के साथ प्रवेश करते हैं। जल तो प्रवाही पदार्थ के रूप में गर्भाशय में रहता ही है, उसी में विराट पुरुष (ब्रह्म)का अंश जीवात्मा में पहुँचता है।

स्थूल देह साढ़े तीन हस्तप्रमाण में सूक्ष्म देह अङ्गुष्ट प्रमाण है, इसी में कारण देह यवप्रमाण है, उसमें महाकारण शरीर प्रबाल के तुल्य रहता है, प्रकृति रूप माता के गर्भस्थ रज में प्रवाल के तुल्य ही अण्डे होते हैं, इनमें से वृष्य एक ही में रेत प्रवेश करता है। पुरुष के रेत (वीर्य) में पूंछ वाले अणुरूप कीट होते हैं, उनमें वृष्य गभधारण में समर्थ एक ही होता है, वही इस रज के अण्डे में प्रविष्ट होता है, प्रवेश काल में जब अण्डा फटता है तो उसका पूरा ही अन्तस्थ तत्व उसी में रहता है , अर्थात् फटने से बाहर नहीं जाता। वीर्य के कीट का आधा ही भाग उसी पिण्ड में प्रवेश करता है। आधे से पूंछ से वह अण्डे को ढँक लेता है यही दोनों गर्भ रूप में गर्भस्थ जल में तैरते हुए बढ़ते रहते हैं, गर्भ की वृद्धि के साथ जल भी बढ़ता जाता है। इसी से इस गर्भस्थ जल में तैरने वाले ब्रह्म को केशव कहा जाता है।

स्त्री के गर्भ में एक ऐसी विचित्र रसायन इस समय उत्पन्न हो जाती है, जो पुरुष बीज के शेष जीवाणुओं को सारे के सारे को ही नष्ट कर देती है, यही गर्भ की रसायन गर्भवती की छाया पड़ने मात्र से सर्प को अन्धा बना देती है, यही नहीं यदि सर्प गर्भवती को काटे तो मर जाता है ऐसा अनुभव में आया है। इसमें विचित्र गन्ध भी होती है, उसी विचित्र गन्ध से आकृष्ट होकर यातुधान राक्षस आदि गर्भ को खाने को धावित होते रहते हैं। इसी से राक्षसादि से गर्भ की रक्षा की अनिवार्यता होती है।

उपर्युक्त प्राण (रेत तथा रज) में कीटाणु का होना अ० वे० कां० ११ सू० ४ मंत्र ११ (प्राण: तक्मा) प्राण ही जीवनीय शक्ति है। मन्त्र २३।। में वर्णित है अष्टा चक्रं वर्तते एक नेमि सहस्राक्षर प्रपुरो निपश्चा।

अर्धेन विश्वं भुवनं जजान ।

यह प्राण अष्टचक्रों, सहस्राक्षरों से युक्त, आगे पीछे गतिशील हो, आधे भाग से सब भुवनों का सृजनकर्त्ता है ।

इसी कां० ११ सू० ४ मंत्र २६ में वर्णित है कि "अपांगर्भमिव जीव से प्राण बध्नामित्वामयि" पानी के गर्भ के समान हे प्राण जीवन के लिये अपने अन्दर धारण करता हूं। गर्भस्थ जल की यही उपर्युक्त पुष्टि करता है । इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ शरीर में हैं । ये ही क्रमशः गंगा यमुना सरस्वती हैं । इनमें सरस्वती सुषुम्ना है। इसी में प्राण की प्रेरक शक्ति रहती है। (यजुर्वेद २०।८०) "अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेमन्द्रायदधुरिन्द्रियम् । अश्विदेव तेज के साथ चक्षु देते हैं, सरस्वती प्राणशक्ति के साथ वीर्य देती है, इन्द्र जीवात्मा के लिये वाणी और बल के साथ इन्द्रियशक्ति अर्पित करता है । मंत्र में यह सरस्वती शब्द भी सुषुम्ना का वाचक है। इस मंत्र में प्रथम इन्द्र परमात्मा का, दूसरा इन्द्र जीवात्मा का वाचक है । इन्द्रिय शब्द आत्मा की शक्ति का वाचक है। अथर्व कां ५ सू० २५ में गर्भाधान विधि है, इसके मंत्र ३ में गर्भधारण करने वाली देवी सिनीवाली और सरस्वती है । इनमें सिनीवाली का अभिप्राय स्त्री की चन्द्र नाड़ी की प्रबलता में गर्भधारण करना अनिवार्य श्रेयस्कर हुआ है ।

'अश्विनो" शब्द प्राण, अपान के प्रतीक है, पुरुष का प्राण अर्थात् पुरुष की विकसित कमल से प्रबल सूर्य नाड़ी में गर्भधारण कराना वाञ्छनीय है । जो ग्रन्थ के निदान प्रकरण में स्वरोदय में है। "गर्भधेहि सरस्वती" इस प्रकार गर्भाधान कर्म को सरस्वती सुषुम्ना पुष्ट अक्षय बनाती है । ब्रह्माण्ड के सभी देवता, अपने अंशों से आकर अपने-२ अङ्गों की रक्षा और पुष्टि में तत्पर हो जाते हैं । यह "वीर जनन" उत्तम, दीर्घायु, स्वस्थ त्रैलोक्य में समर्थ पुत्र जनन क्रिया है। इसी परमात्मोपासना के मूलभूत प्राण की उपासना की चर्चा सामवेद ने अत्यन्त गहन रूप से की है । कां० ३ सू० २३ मंत्र १—में ब्रह्म की अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणा है, "जिस कारणसे तू बन्ध्या हुई है, उसे तुझ से दूर करके अलग तुझ से परे लिये जाते हैं ।" उपर्युक्त स्त्री का चन्द्र स्वर स्त्री के अंशों को कम करता हैं। पुरुष की सूर्य नाड़ी होने से गर्भधारण करने वाले कीट बलिष्ट होने से पुत्र की ही उत्पत्ति होती है ।

पुत्रेष्टि यज्ञ में पुरोडाश, अभिमन्त्रिति करके पति द्वारा स्त्री को पुत्र प्राप्ति हेतु प्रदान करने का प्राविधान किया है ।

पुरोडाश में प्रधान जौ, चावल, औषधि, वनस्पति हैं । अ० कां० ११ सू० ४ मंत्र १३ में "यवेह प्राणः आहित्रः" जौ में प्राण भरा हुआ है "व्रीहिः अपानः उच्यते" चावल को अपान कहा है मंत्र १६ में स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण शरीर में प्रेरणादायक प्राण ही, आथर्वणी आङ्गिरसी, दैवी, मानुषी औषधियों को प्राणवान बनाता है । इन औषधियों, वनस्पतियों की अग्नि (ओज) ही भूतमात्र का गर्भ कां० ५।२५ मंत्र ७ में माना है इसी कारण, समस्त यव आदि औषधियों तथा शंखपुष्पी अश्वत्थ, गूलर, शितावर, शिवलिङ्गी, वाराहीकन्द आदि-२ के मन्थ को गूलर के कटोरे में गूलर की रई से मथ कर पुरोडाश बनाने का प्राविधान किया है, जो निश्चय ही नपुंसकता तथा बन्ध्यापन को दूर कर, पुष्टवीर्य बनाता है, उन से बनी

अष्टमधातु (ओज) ही रेत हैं। बन्ध्या को गर्भाधानविधि में वैतान श्रौत सूत्र तथा कौशिक सूत्र, गोपथ ब्राह्मणोक्त पुरोडाश तथा उपर्युक्त रेत के अनुमन्त्रण का सारांश यही है। पुरुष के वीर्य में गर्भधारण कराने वाले कीटाणु या स्त्री के गर्भधारक अण्डों की क्षीणता स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीरों की कर्मजादि कारणों को दूर करने की विधिवत चर्चा की जा चुकी है जिस स्त्री को श्वेत प्रदर या पुरुष को मधुमेह हो उसमें कर्मज दोष प्रायः होते हैं। वे गर्भधारण में प्राय, अशक्त पाये जाते है। यदि गर्भ रह भी गया तो बीच में क्षीण हो जाता है। अथवा अङ्गहीन शक्तिहीन बच्चा रोगों के लिये ही होता हैं। पुत्र सुख नहीं होता। वैतान ३।२ (१२) "यन्मेरेत" "आदि से प्राणों को अनुमन्त्रण करने का निर्देश" जो अध्याय ८ (३) के पूर्वोल्लिखित है इसी का द्योतक है।

स्त्री-पुरुषों के रज-वीर्य के प्राणवान जीवाणुओं की रक्षा, समृद्धि तथा भावी गर्भ की पुष्टि के लिये प्रजननेन्द्रियों में पलाशार्क का प्रयोग तथा पुंसवन में शमी, अश्वत्थ या पलाशादि के उपयोग का प्राविधान है।

प्राण या रेत (शुक्र)

अ० कां० ११ सू० ४ मन्त्र २० "(देवतासु आभूतः) इन्द्रियादिकों में व्यापक प्राण हो (अन्तः गर्भः चरति) गर्भ के अन्दर चलता है। जो (भूतः स उ जायतेपुनः) पहिले हुआ था वही पुनः उत्पन्न होता है (भूतः स भव्यं भविष्यत्) जो पहिले से हुआ था वही अब होता है और आगे भी होगा। (पिता शचीभिः पुत्रं प्रविवेश) पिता अपनी सभी इन्द्रियों के साथ पुत्र में प्रविष्ट होता है। यही रेत (शुक्र) प्राण है। इसी को शुद्धि पुष्टि पुत्र की बल वीर्य, ओज, आयु की उत्पादन सम्वर्द्धन करने वाली है। इसी से मन्त्र निर्देश करता है "ऋषीणाँसत्यं चरितं असि" अथर्वाङ्गिरसां चरितं असि"

इसी का समर्थन तै० ब्रा० २।७।३।१ से होता है।

"सोमो वे यज्ञः प्राणः सोमः रेतः सोमः सोमो वै ब्राह्मणः ॥

थ० वे० अ० १६ मंत्र ७६ ॥ रेतोमूत्र बिजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् गर्भा जराणायुवृत ऽउल्वं जहाति जन्मना ॥ ७६

यजुर्वेद में वर्णित रेत ही प्राण और ओज है।

प्राण की उत्पत्ति में कारण

केनउपनिषद (१।१) "केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः" प्राण की प्रेरक शक्ति कौन सो है? उत्तर (१।२) "स उ प्राणस्यप्राणः" प्राण का प्रेरक वह आत्मा ही है। ईश० उप० १६

"याऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि" वह प्राण के अन्दर रहने वाला पुरुष मैं (आत्मा) हूँ ऐ० उ० (१।१।४) "नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुः"

आत्मा की प्रेरणा से नासिका रूपी इन्द्रिय खुल गई नासिका से प्राण और प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। यह परम्परा है कि "पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते, मनः प्राणे, प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्"। पुरुष (आत्मा) की वाणी (प्रेरणा) मन में, मन प्राण प्राण में, प्राण तेज (ओज) में (तेज) परदेवता में संलग्न होता है।

प्रश्न उपनिषद (६) "आदित्य उदयत् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यां प्राणान रश्मिसुसंनिधत्ते (तेज) सूर्य का जब उदय होता है तब सभी दिशाओं में सूर्यकिरणों द्वारा प्राण रक्खा जाता है, इस प्रकार सूर्य किरणों द्वारा प्राण पहुँचता है। विश्वव्यापक प्राण महत्तत्व से सूर्य में केन्द्रित हुआ वहाँ से सूर्यकिरणों द्वारा वायु में आया, वायु के साथ हमारे रक्त में आया, उसी का अन्तिम रूप रेत ओज-वीर्य है। जो प्रकृति से परे महद्ब्रह्म प्राण है, उसका प्रथम संयोग वायु से होता है, तब प्राण (रेत-ओज) अखिल विश्व में व्याप्त होकर वहता है। यही आधुनिक विज्ञान जगत का (न्यूट्रांन प्रोट्रांन) की मूल है।

जहाँ-जहाँ, जिस अवस्था में जिस शरीर में प्राण का अनुभव होता है उसमें वायु तत्व का आविष्कार है। प्राणवायु का आवागमन ही जन्म-मृत्यु का कारण है। इसी कारण गर्भाधान में तथा पुरोडाश अनुमन्त्रण में प्राणरूप रेत के अभिमन्त्रण से यज्ञरूप महद्ब्रह्म की अंशरूप देवशक्तियाँ गर्भधारण गर्भदृंहण, गर्भदोष निवारण में तत्पर हो जाती है। इस कारण गर्भाधान प्रकरण में निर्दिष्ट कां० २ सू० १६ से स्त्री पुरुष गर्भाधान काल तथा पुरोडाश भक्षण से पूर्व "प्राणापानौ" आदि ४ मन्त्रों से अपने प्राणों को भी अनुमन्त्रित करें। तदनन्तर सूक्त १७ "ओजोऽस्योजो" की ऋचा सातों से ही अपने रज-वीर्य को अनुमन्त्रित करें। तदनन्तर कां ७ सू० १६-१७ से प्रत्यतापी पुत्र उत्पन्न करने हेतु गर्भ को पति अनुमन्त्रित करें। यह गर्भाधानान्त तथा पुंसवन कर्म में भी करना चाहिये।

आठ प्रकार का स्त्रियों का बन्ध्यापन, पुरुषों की नपुंसकता और मधुमेह के होने में प्रायः कर्मज व्याधि ही कारण होती है।

कर्मज का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से होता है। सूक्ष्म शरीरमन से मन, आत्मा से सम्वन्धित होने से आथर्वणी, दैवी आङ्गिरसी भैषज्य ही उपयुक्त होती हैं।

आथर्वणी—कौशिक सूत्रोक्त, आङ्गिरसी वैतान श्रौत सूत्रोक्त होती हैं। दोनों ही में शौनकीय शाखा अथर्ववेद की आधारभूत होने से अथर्ववेदीय गर्भाधान-विधि सार्थक हुई है।

गर्भ दोष निवारण

गर्भाधान से पूर्व कां ८ सू० ६; कां० २० सू० ९६ की विधि से गर्भदोषनिवारण करना सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। यही नहीं, नपुंसकतानिवारण भी कां० ६ सू० १०१ की विधि से अनिवार्यतः करें।

स्वानुभूत

प्रायः गर्भ रह जाने के उपरान्त भी रक्तस्राव के लक्षण अनुभव मे आये है, उनमें कुछ को प्रत्येक मास में गर्भावस्था में रक्त जाते रहने पर भी सुन्दर स्वस्थ सर्वाङ्गपूर्ण पुत्रों का जन्म हुआ है, इसके निवारण की विधि भी वर्णित है।

परन्तु जिस स्त्री को गर्भ रहने पर भी काम-वासना शेष रह जाती है और उसकी स्वयं की ही सम्भोग की तीव्र आकांक्षा हो, और गर्भावस्था में सम्भोग करे तो गर्भ निश्चय क्षीण

हो जाता है। इसी कारण ऋग्-यजु अथर्व तीनों ही में गर्भधारण में ३ बार गर्भधारण के लिये स्त्री पति से प्रार्थना करे ऐसा निर्देश है। इसमें पूर्ण सतर्कता वाञ्छनीय है। इसमें स्थूल देह की औषधि "गुड हल" मराठी में (जासौन्दी) के लाल फूल के पराग वाला डण्ठलमय पराग घी में भून कर २ फूल ७ दिन चीनी के साथ सेवन से रजस्राव कुछ दूर हुए हैं।

सारांश गर्भदोषनिवारणादि के उपरान्त पुष्ट वीर्य में गर्भाधानसंस्कार पुत्रेष्टि विधि के उपरान्त उपयुक्त होता है। शंभूयात्।

अरिष्ट-मृत्युसूचक लक्षण ज्ञान

१. आकाश में सप्तऋषियों में एक छोटी तारिका (अरुन्धती); सप्तऋषियों के ऊपर के तारागण से उत्तर कुछ दूरी पर स्थित छोटा तारा (ध्रुव) चन्द्रमा अपनी छाया आकाश में व्याप्त तारागणों का बड़ा मार्ग (आकाश गङ्गा) जिसे दीख न पड़े, १ वर्ष नहीं जीवें।

२. किरण रहित सूर्य, किरणों युक्त अग्नि दीख पड़े वह ११ मास तक जीवित समझें।

३. मलमूत्र त्याग में जाग्रत या स्वप्न में स्वर्ण या चाँदी दीख पड़े, १० मास जीवन समझे।

४. रेत या कीचड़ में आगे से या पीछे जिसको खण्डित पैर दीखें, ७ मास जीवित रहे।

५. जिसके शिर पर काक, कपोत,गृध्र-चील बैठें या मँडरायें ६ मास से अधिक न जीवित रहे।

६. धूलवृष्टि से या काकपंक्ति से मरा या विकृत छाया देखें, ४ या ५ मास जीवित समझे।

७. बिना मेघ दक्षिण दिशा में विद्युत या जल में इन्द्र धनुष देखे तो २ या ३ मास जीवन समझें।

८. जल में या शीशे में जो अपने को देखे या बिना शिर का देखे, १ मास से अधिक न जीवित रहे।

९. शरीर में मुर्दे की सी गन्ध या चर्बी की सी गन्ध आती हो तो आधा मास जीवित रहे।

१०. जिसके स्नानमात्र से हृदय या पाद गीले ही रहें, या मस्तिष्क से धूम निकलता दीखे १० दिन जीवित रहे।

११. भिन्न-भिन्न प्रकार से वायु जिसके मर्मस्थानों को छेदे या जलस्पर्श से अप्रसन्नता हो तो मृत्यु पास है।

१२. रीछ वानरादि युक्त रथ से गाता हुआ दक्षिण दिशा में अपने को जाता स्वप्न में देखे तो मृत्यु समीप आई समझे।

१३, काले या श्याम वेश में स्त्रियाँ गाती हुई स्वप्न में दक्षिण को ले जाती दिखाई दें तो मृत्यु समीप है।

१४. स्वप्न में काले फटे वस्त्रधारण करे या कान फूटे देखे तो मृत्यु आ चुकी है यह समझे।

१५. स्वप्न में कीचड़ के समुद्र में एडी से शिर तक डूबा देखे तो मृत्यु आ चुकी है।

१६. स्वप्न में भस्म, अङ्गार, केश, सूखी नदी, सर्पादि देखे तो १० रात्रि जीवित न रहे।

१७. स्वप्न में पाषाण या आयुधयुक्त काला विकराल पुरुष मारे तो मृत्यु निकट समझे।

१८. सूर्योदय या प्रभात बेला में भौंकती हुई गीदड़ी प्रत्यक्ष सामने आये तो मृत्यु आगई।

१९. जिसका स्नान मात्र से हृदय अत्यन्त पीड़ा करे या दाँतों में हर्ष हो तो मृत्यु आ चुकी।

२०. जो दिन या रात्रि में जल्दी-जल्दी श्वास ले, दीपक की गन्ध का ज्ञान न हो तो मृत्यु आ चुकी।

२१. रात्रि में धनुष, दिन में नक्षत्र देखे या अन्य के नेत्रों में अपने को देखे तो मृत्यु आ चुकी।

२२. एक नेत्र से पानी आवे, कान स्थान छोड़ गये हों, नाक टेढ़ी हो गई हो तो मृत्यु आ गई।

२३. जिसकी काली कांटोंयुक्त जिह्वा और कीचड़ जैसा मुख चिपके विचित्र रक्त के गाल हों तो मृत्यु आ चुकी।

२४. जो केश खोल कर गाये, हंसे, नाचे दक्षिण को जाता हो तो जीवनान्त समझे।

२५. जिसे श्वेत सरसों जैसी पसीने की बूदें आयें और वार-वार स्वेद आये तो जीवनान्त समझे।

२६. जो स्वप्न में गदहे या ऊँटों के अशुभ रथ में दक्षिण को यात्रा करता देखे तो जीवनान्त समझे।

२७. दो या अनेक अपने स्वरूप देखे, कानों से न सुने, नेत्रों से न दिखाई दे, स्वप्न में गढ्ढे में गिरे उसको द्वार न दिखाई दे, जो खड्डे या खोल से न उठे, उसके जीवन का अन्त समझें।

२८. दृष्टि ऊपर को न हो, न रक्त प्रवाह हो, मुख की ऊष्मा न हो रोमों से युक्त नाभि हो, मूत्र गर्म और रुक-रुक कर हो तो जीवनान्त समझे।

२९. जो दिन या रात्रि में, मारने वाले को, प्रत्यक्ष देखे, तो वह मरा ही समझे।

३०. स्वप्नान्त में जो अग्नि में प्रवेश करता देखें, और स्मृति न रही हो, उसके जीवन का अन्त समझे।

३१. स्वप्न में अपना वर्ण श्वेत; रक्त या काला देखे, जीवनान्त समझे, ये सभी प्राणान्त सूचक चिह्न हैं।

३२. इन अरिष्ट सूचक चिन्हों को समझ-पूर्व या उत्तर में पवित्र स्थान में जहाँ कोलाहल न हो, एकान्त हो, उत्तर पूर्वाभिमुख, अपने प्राणान्त के हेतु महेश्वर को स्वस्ति कल्याण हेतु स्मरण करे काया सीधी, शिर ठोडी के नीचे नेत्र वन्द कर; जैसे वायुरहित स्थान में, रक्खा

दीप नहीं हिलता, मन को नियन्त्रित कर ध्यान में स्मरण कर दृष्टि, स्पर्श श्रवण, मन, बुद्धि आदि में निरन्तर प्रभु को रमता हुआ, हृदय में धारण करे। काल और धर्म को सभी का समूह समझे। इस द्वादशाध्यात्म योग, में शत या अष्टशत धारण मूर्द्धिन में धारण करे। इस धारण योग से प्राण, अपानादि वायु इधर-उधर नहीं जाते। तदनन्तर देह को प्रणव (ओ३म्) से पूर्ण करदे। ऐसा ओ३म्कार पूर्ण योगी क्षीण नहीं होता अक्षीण हो जाता है।

ये ही योगीजन अरिष्ट के ज्ञान तथा उसके निवारण में समर्थ हुए हैं, होते हैं। दुस्वप्ननाशनगण में कां० १९ सू० ५६ व ५७ आदि निवारण विधि देखें।

रत्न विज्ञान

इसी के साथ यह भी ध्यान रक्खें (छान्दोग्य, च० खं० अ० १ अग्नि (तेज) लाल; जल (श्वेत) अन्न (कृष्ण) स्वरूप हैं।

खाये हुए अन्न के तीन भाग होते है (मल, मांस, मन)। पिये हुए जल के भी ३ हैं (मूत्र, रक्त, प्राण) खाये हुए घृतादि के हड्डो-मज्जा, वाक्-अतः मन अन्नमय, प्राण जलमय वाक् तेजमय हैं। जीव मन के योग से शुक्र, रज में आता है। मनोवल, बुद्धिबल तथा पौरुष की वृद्धि हेतु, बुद्धि व प्राण का साम्य है, खान, पान, उसी प्रकार के हों जैसे-जैसे पुत्र की कामना है, अन्य वेश-भूषण आदि भी। आभूषण स्वर्ण आदि के होते हैं, इनको जल या दूध में डालकर गर्म किया जाय तो इनके जो महाभूत है, (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द) ये उन महाभूत (पञ्चतत्वों) की तन्मात्राओं के प्रसरण से जलादि तरङ्गित होता है, और औषधीय गुणों से युक्त हो शरीर में प्रविष्ट होकर विकारों को दूर करता है। अर्थात् सुवर्ण जलादि सूक्ष्माविषनाशक वात, पित्त, कफ तीनों की विषमता दूर करने वाला प्रचण्ड बल व जीवन शक्ति प्रदाता जीर्णरोगनाशक दीर्घ आयुप्रदाता, अथर्व वेद प्रथम काण्ड सूक्त ३५ के क्रमशः ३ मन्त्र तथा यजुर्वेद अध्याय ३४ मंत्र ५० साक्षी है।

रौप्य (चांदी) का जल, ज्ञान तन्तुवर्द्धक, बुद्धि की जाड्यता, मस्तिष्क की मौढ्यता, आन्त्रविकार, मूत्र, रक्त, प्राण, से सम्बन्धित रोग या अभाव में अनुकूलता, (हित करना) उदासीनता, व आलस्य विनाशक, त्वचा में चमकीलापन लाने में हृदय दौर्बल्यता दूर करने वाला, मस्तिष्क विकारों का अपहर्ता आदि होता है। ताम्रजल, सूक्ष्ममलापहारी, कफ रोग निवारक लौह जल वाताहारी, वंगजल प्रमेह, प्रदर विनाशो, नाग का निर्बलतापहारी यशद, जल नेत्र रोग, कर्ण रोग, बाल रोग, विनाशक होने से गर्भगत जीव के कल्याणार्थ, माता-पिता के वंशज रोगों से मुक्ति हेतु प्रयोग में जल या दूध के रूप में गर्म करके लें। रौप्यजल तृषा की शान्ति तथा शोथ रोगों का भी उपशमन करता है। पेय पदार्थों से उत्पन्न मल, रक्त, प्राण की पुष्टि होगी।

आभूषण

रौप्य व स्वर्ण, के आभूषण, मलेरिया, अदृष्ट व्रण (कैन्सरादि) हृदयरोग, मस्तिष्क विकार दूर करने में समर्थ होते हैं। अन्य रोगों का भी दमन करते हैं। ताम्बा, हैजा, विषैले

कृमिविनाशक व्रणादि, कुष्ठ गण्डमाला दोष ग्रन्थि वात निवारक होता है : मोर पंखका ताम्बा नीले थोथे का ताम्बा, केचवे का ताम्बा, समभाग लेकर मुद्रिका बनाकर पहिनें तो विषदोष शान्त हों। बच्चे की दृष्टि से रक्षा करता है। चांदी १६ ताम्बा १२ सोना १० भाग के अनुपात से लेकर शुक्ल पक्ष में गुरु वार या रविवार में पुष्य नक्षत्र आने पर "त्रिलौह, पुटिका को हवनादि के उपरान्त धारण करें तो सभी प्रकार के दारिद्र्य, कृत्या आसुरी दोष शान्त होते हैं।

रत्न

सभी रत्न हृदय को बलदाता होते हैं, संग-यशव का भूषण (हौलदिली) हृदय दौर्वल्य में धारण किया जाता है।

अकीक से शस्त्राघात आकस्मिक दुर्घटना, मन, मस्तिष्क, बुद्धि में चमत्कारी, चेतना, समस्त नक्षत्र जन्य दोषों की शान्ति अनुभव में आई है।

लाल माणिक—मंगल व सूर्य जनितारिष्ट व हृदय व मस्तिष्क विकारों में शान्तिदायक नेत्र ज्योति वर्द्धक, अर्शनिवारक सिद्ध हुआ है।

मोती—से चन्द्र ग्रह दोष निवृत्ति, मनोबल वर्द्धक, ध्यानावस्था में योग हृदय रोग निवारक, आनन्दप्रद, अन्य शारीरिक धातु व अंगों को पुष्टि कर्त्ता है।

मूंगा—से मंगल ग्रह दोष शान्ति, ऋण निवारक राजनैतिक चेतनाप्रद निद्रा दोष शान्त करने वाला, रजस्राव, रक्तस्राव, व्रणादि दोष निवारक

पन्ना—बुध ग्रह दोष निवारक, अपस्मार, सभी प्रकार के उन्मादों का अपहर्ता

पुखराज—गुरु ग्रह दोष निवारक, हृदय दौर्वल्यापहारी, आध्यात्मिक बलदाता

हीरा—शुक्र ग्रह दोष, वीर्य विकार, मन, मस्तिष्क विकार विदारक गुप्त रहस्य प्राकट्यार्थ आध्यात्मिक दूरदर्शिताप्रद, अपस्मार विदारक है।

नीलम—शनि ग्रह दोष निवारक, परन्तु (जन्म कुण्डली के इष्टग्रह योग को लेकर अन्यथा बिपरीत फल प्रद), आकस्मिक दुर्घटों से संरक्षक -रक्तचाप, रक्त विकार, व्रण आदि में अचिन्त्य लाभप्रद, आर्थिक चेतना प्रद

गोमेद—राहुग्रह दोषापहारी, आकस्मिक, आनुषङ्गिक आधिदैविक बाधाओं से रक्षक हृद्य है।

संगयशव—अकीक जहरमोहरा संगसतारा आदि के अनूठे अद्भुत, चमत्कार व लाभ दृष्टि में आये हैं। परम्परागत, सन्त, महर्षियों की वाणी हैं। इनकी भस्में भी महाभूतों की पञ्चतन्मात्रा के प्रसरण से बहुमुखी जीवनोपयोगी समस्त धातु पुष्ट कर वैद्यगण कहते आये हैं।

उपर्युक्त रत्नों व धातुओं द्वारा सूर्य किरणों के सेबन से बिना औषध रोगोपशमन हो जाते हैं। यहीं नहीं पीले, लाल, नीले, हरे और श्वेत कांच के खुले मुंह के पात्रों में गंगाजल

भर कर सूर्योदय से अस्त पर्यन्त सूर्य ताप में रक्खें, उन्हें उसी रङ्ग के ऊर्ण या रेशम ि‌ ढाँक दें उठाते समय मुंह बन्द कर लें।

इसमें से गंगाजल लेकर उपर्युक्त धातुओं या मणियों के तप्त जल में मिलाकर लेने से रूप, लावण्य, नैरूज्यता, बल, विवेक पौष्ट्यता, वृष्यता, आध्यात्मिकता में चमत्कार-क्रान्तियाँ अनुभव में आ चुकी हैं।

वस्त्र-वेश

वस्त्र तथा चन्दनादि के लेप, विविध इत्र, विविध पुष्प मालायें विविध प्रकार की धूपों से भी, मन, बुद्धि, मस्तिष्क, हृदय, प्राण, अपान पर गहरा प्रभाव तन्त्र-ग्रन्थों में कहा है। जैसे भगवती पीताम्बर को पीतवस्त्र, पीतभोजन, पीतपुष्प, भगवान भास्कर को रक्तवस्त्र, रक्त स्वर्ण, पान, चन्दन, रक्त पुष्प, रक्त (हिनादि), चन्द्रमा को चांदी, गौरवस्त्र, गौरपुष्प, दर्पण, गौरवस्त्र, भौम को सुवर्ण, रक्तवस्त्र, रक्तपुष्प, रक्तचन्दन लेप, बुध को काँस्य, नीलवस्त्र नील कमल माला, गुरु को हीरसुव (केसरिया) वस्त्र, पीतमाला, पीतभोजन, शुक्र को रौप्य, श्वेत वस्त्र, श्वेत चमेली के सुगन्धित पुष्प, श्वेत चन्दन, श्वेत इत्र, दधि भक्षण, शनि को लौह-नील वस्त्र, काले तिल, काले उड़द, की खिचड़ी, महिषी घृत अभीष्ट कहे हैं।

नामी की अपेक्षा वाक्, वाक् की अपेक्षा मन की श्रेष्ठता, मन से संङ्कल्प, संकल्प की अपेक्षा चित्त, चित्त की अपेक्षा ध्यान, ध्यान से बिज्ञान, विज्ञान से बल, वल की अपेक्षा अन्नादिभोज्य, अन्न की अपेक्षा पेय, पेय की अपेक्षा तेज, तेज की अपेक्षा आकाश, आकाश की अपेक्षा स्मरण, स्मरण की अपेक्षा आशा, आशा से प्राण, प्राण से सत्य स्वरूप की महानता ज्ञेय है।

इन सब पर साधारण प्रकाश डालने का लक्ष्य गर्भाधानकालीन वातावरण आहार-व्यवहार की प्राधान्यता और शुक्र शोणित की सौष्ठवता है। अतः ही जल व आकाश धातु प्रधान तेज (अग्नि) गौरवर्ण, अग्नि में पृथ्वी और वायु तत्वों की प्रधानता कृष्ण वर्ण, अग्नि तत्व में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश तत्वों की समता होगी तो श्याम वर्ण की उत्पत्ति होती है, सुश्रुत शा० २ अ० साक्षी है। अष्टाङ्ग संग्रहकार के मत में—

"तत्र शुक्रे शुक्ल घृतमण्डाभे वा गर्भस्थगौरत्वं, तैलाभे कृष्णत्वं मध्वावे श्यामत्वम्"

वीर्य श्वेत वर्ण का हो तो गर्भ गौरवर्ण, तैलवत हो तो कृष्णत्व, मधुतुल्य हो तो श्यामता, आती है। वीर्य की भिन्नता में महाभूतों की न्यूनाधिकता हेतु है। इसी भाँति गर्भिणी के आहार-विहार का प्रभाव गर्भ के वर्णादि पर पड़ता है। गर्भ के मन की विभिन्नता में माता-पिता का मन, गर्भिणी को उत्तम कथा आदि श्रवण, पूर्व जन्म कृत अभ्यास, तथा सत्व विशेष कारण है। निरन्तर अभ्यास से भी मन की विभिन्नता हो जाती है।

शुक्र, शोणित, योनि, गर्भाशय की शुद्धता गर्भोत्पत्ति में आवश्यक है। इस विषय में अन्य विधियों का विवेचन आगे अध्याय में मिलेगा। पुत्रेष्टि यज्ञ की विधि मंत्र परिशिष्ट में हैं।

पूर्व इसके कि गर्भाधान संस्कार की विधि एवं यज्ञ की विधि का वर्णन किया जाय, यह स्पष्टतः समझना चाहिये कि गर्भाधानान्त स्त्री को वर्तमान ऐक्सरे न लगाया जाय, इसके दुष्परिणाम से उत्पन्न दोष लन्दन की ख्यात लेडी डाक्टर डीऐलिस स्टुग्रार्ट का कटु अनुभव १५ स्त्रियों पर किये जाने पर लिखा-पढ़ा था, उनमें से जिनपर ऐक्सरे हुआ उनकी सन्तान प्रायः १० वर्ष की आयु तक पाण्डुरोग, रक्त का अभाव या श्वेतपन की विषैले व्रण-कैन्सर आदि से ग्रसित हुए। उस प्रदेश की ४ अरबों की धन राशि का अपव्यय हुआ था, पागलपन व रोगों से ग्रसित हुए। अन्यच्च अमेरिका के महाधनिक-वैज्ञानिक डा० मार्शल टेलर का कथन देखें कि प्रजनन से पूर्व स्त्री को दी गई क्विनेन या अन्य औषधियाँ रक्त चाप, रक्तार्श, रक्त विकार, बधिरपन गूंगापन एवं शारीरिक अङ्गों की विकृति का हेतु सिद्ध हुई। विवेकी जन अपने अगाध प्राच्य कल्याण श्रोत वेद-तन्त्र, आयुर्वेद को पुनः समझें और अनुसरण करें।

पुत्रेष्टि यज्ञ का समारम्भ शुभ तिथि वार, नक्षत्र, लग्न, ग्रह गोचर, उत्तम चन्द्रबल के साथ करें, जो पीछे निदिष्ट हैं, यह गर्भाधान से पूर्व किन्तु ऋतुस्नान के उपरान्त हो। ऐसा भृगुजी तथा महर्षि कौशिक गृह्य सूत्र कर्त्ता का निदेश है। यथा "अथादौ स्थालीपाक् विधानेन दर्शपूर्ण मास विधिः। ततो मेधाजननानि, पुत्र, पशु धन-धान्य प्रजा स्त्री आदि सर्व सम्पत्साधकानि।

नक्षत्र कल्पे—नक्षत्र ग्रहोपसृष्ट भयार्त रोग गृहीतानांञ्छान्तये (भार्गवी) राजश्री ब्रह्मवर्चस कामस्य वार्हस्पत्यः। प्रजापश्वन्नलाभाय-प्रजाक्षय निवृत्तये च प्राजापत्यः।" पुष्टि कर्मणांमुपधानोपस्थानाः। कौ० ३।७

सूत्रात्पौष्टिक मन्त्राणामुपधानोपस्थानयो विनियोगः कर्त्तव्यः

विशेष ध्यान देने योग्य निर्देश

१—समस्त उपासक, मंत्र की उपासनासे पूर्व, अपने गुरु जी से मन्त्रोपदेश लें। गुरुदेव-मंत्रों के १० संस्कार व १ सेतु, २ महा सेतु, ३ मुख शोधन, ४ कुल्लुका, ५ शापोद्धार, ६ संजीवन ७ उत्कीलन, ८ निर्मलीकरण ९ ऋषिन्यास, १० देवन्यास, ११ अङ्गन्यास, १२ करन्यास, १३ मुद्रा, १४ अस्त्र-(ब्रह्मास्त्र ब्रह्मशीर्ष ब्रह्म दण्ड) १५ आसन, १६ प्राणायाम, आदि से पूर्णतया दीक्षित करें, इन बातों के बिना समझे, वा बिना समझाये, कार्य करने पर मंत्रादि तो निष्फल होते ही हैं, संकट व प्रायश्चित्त भी होता है।

२—मण्डप का तथा उसमें किस देव का स्थान कहाँ हो चित्र, में देखें।

दिशा

पूर्व या उत्तराभिमुख बैठें (देव और साधक) अर्थात् पूज्य पूजक के बीच प्राची ही दशा मानी गई है।

पूजन सामिग्री किधर रक्खें (गन्धर्वतन्त्र)

वीरासन, पद्मासनादि वनाकर बैठें और साधक सामने सामिग्री रक्खें। घी का दीपक, दायें, तेल का दीपक यंत्र पूर्व पर बायें, धूप बायें। गन्ध-पुष्प, चावल, फल,

नैवैद्यादि दायें, बायें सामने परन्तु पीठ पीछे न रक्खें। अर्घ्य बायें: हाथ धोने को जल पीछे, पूजा सामिग्री को मूल मंत्र से छींटें दें। धेनुमुदा, मुद्राप्रकरण दिखाकर शुद्धि करें। नैवेद्यादि, पुष्प, गन्धादि सब ढक कर रक्खें, जब तक प्रधान का आवाहन न हो। उघाड़ी हुई को राक्षस, उच्छिष्ट कर डालते हैं।

पूजा घर की ईशान दिशा में वेदी पर यंत्र बनाकर प्रधानकलश स्थापित करें। पूजक का आसन पश्चिम दिशा में, क्षेत्रपाल, योगिनी पीठ वायव्य में, षोडशमातृका-सप्त-ऋषि सप्तचिरजीवी, पञ्चोंकार, उत्तर, नवग्रह वेदी पूर्वोत्तर के बीच में. पञ्चोङ्कार पूर्व में द्वादशगणेश अग्नि व दक्षिण के मध्य, ब्रह्मासन दक्षिण, वास्तु वेदी नैऋत्य, प्रधान वेदी उत्तर, पूर्व।

जौ बोने में शुभाशुभ ज्ञान (सिद्धान्त शेखर)

यजमान अभिवृद्धि के लिये पूजा कार्य में जौ बोयें, सम्यक् ऊँचे, पुष्ट, कोमल श्वेत पीत शुभ; धूम्र वर्ण के, अपूर्ण, तिरछे. श्याम, कुब्ज, अशुभ होते हैं।

फल

काले, सूखाप्रद, धुयें के रङ्ग के कलह, अपूर्ण-जननाश, श्याम, दुर्भिक्ष तिरछे व्याधि, कुब्ज शत्रुभयप्रद होते हैं। (सारस्वत) तन्त्रका कथन है कि श्याम, कृष्ण से अर्थ हानि, तिरछे से व्याधि, कुब्ज से दुःख, दुष्प्रतिरूढ़ से मृत्यु, कटे से रोग, स्थान देश, इष्ट कार्य में हानिप्रद है।

मूल मन्त्र से १०० या १००० व्याहृति होम कर के शान्ति करें।

दीपक शुभाशुभ ज्ञान

देवता के धूप व तेल का दीपक बायें, श्वेत वर्तिका तेल या घी का दीप दायें, लाल बत्ती के तेल या घी के दीपक को बायें ही रक्खें।

अखण्डदीप

स्वर्ण, चांदी, ताँबा, कांस्य, लोहा, मिट्टी, गेहूं, उड़द, मूंग जौ के चूर्णका होता है, स्वर्ण से कार्य सिद्धि, चांदी से वशीकरण, ताँबा दोनों के अभाव में लें। कांस्य से विद्वेष, लौह से मारण, मिट्टी से उच्चाट, गेहूं के चून से वाद-विवाद में विजय, उड़द से शत्रु स्तम्भन मूंग से शान्ति कार्य, सन्धि कार्य में नदी या तालाब के दोनों किनारों की मिट्टी का बनायें।

दीपक में घृत तैल विधान (डामर तंत्र)

समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये गोघृत मारण में भैंस, विद्वेष में ऊँटनी शान्ति कार्य में (आवीका) उच्चाटन में बकरी के घी का विधान है।

अथवा

सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिये तिल तेल का विधान है, धी के अभाव में मारण सरसों के तेल का भी विधान है। सुगन्धित तेल भी समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये ग्राह्य है।

वर्ति

बत्ती विषम संख्या की एक से सौ तक कार्य के अनुपात से रक्खें, बड़े कार्य में अधिक छोटे में थोड़ी संख्या की ली जाती हैं। वत्ती श्वेत, पीत, मंजिष्ठ, कुसुम्भक कृष्णं, कर्बुर-षट कर्मों में बताई गई हैं। सब के अभाव में श्वेत वर्ती ली जाती है।

चलाने के लिये शलाका

दीपक के चलाने को स्वर्ण, चांदी, गूलर की १६/८/४ अंगुलों को आगे तीक्ष्ण बीच में सरल हो। भगवती के लिये त्रिशूल चिह्न हनुमान जी के लिये मुष्टिका जैसी हो।

दीपमुख

समस्त कामनाओं की सिद्धि, स्तम्भन, उच्चाटनार्थ-पूर्वाभिमुख-रक्षा, विद्वेषार्थ पश्चिम लक्ष्मी प्राप्ति हेतु उत्तर, मारण में दक्षिण को मुख होना चाहिये।

दीपदान में प्रतिज्ञा

पूर्व कलश के आगे षट कोण यन्त्र लिखें। तिथि वार आदि का उच्चारण करके अद्येहैतद्दीप शिखा सम संख्या वर्ण सहस्रावच्छिन्न, समय परिछिन्न, अमुकदेव अनुचरत्व प्राप्ति पर्वक (अमुक) देवता प्रीति कामोऽद्यारम्य नवम्यन्तमहर्निश वातादि दोषरहितमिमं दीपं श्री (अमुक) देवताकं श्री (अमुक) देवता पुरतः, प्रज्वालयिष्ये। "उक्तकामेषु यद्यत्कामेषु त्तत्तत्कामना मुच्चार्योक्ता विधिना दीयं वदत्वातं दीपं गन्धाक्षतादिभिः पूजयेत्

दीप स्थापना में शकुनों को पूर्णतया ध्यान से देखें

१—दीपारम्भ में जो कहते हैं वह निश्चय होता है, इस कारण अशुभ वाणी न बोले

२—दीपारम्भ में, रक्तवेश, पूर्णाङ्ग, रक्तमाला, रक्त तिलक आये या दर्शन हो तो निश्चय कार्यसिद्धि होती है। शूद्र आये तो मध्यम सिद्धि, म्लेच्छ आये या दर्शन हों तो दीपदाता का बन्धन होता है। बिल्ली चूहे के दर्शन मध्यम हैं।

३—दीपज्योति सम-सीधी,श्वेत हो तो आठ दिन में सिद्धि, यदि ज्वाला टेढ़ी हो तो बन्धुओं का तथा सम्पूर्ण कार्यों का नाश होता है। खरकङ्क हो तो दाता का मरण, ज्योति कृष्ण हो तो शत्रुओं का कार्य बने, दाता का नष्ट होता है।

४—दीपक प्रारम्भ करते ही बुझ जाये तो कार्य सिद्ध देर से हो, यदि प्रारम्भ से ३ प्रहर के अन्दर नष्ट हो तो मास या वर्ष में कार्य सिद्धि हो, यदिरात्रि में नष्ट हो तो घर में धनधान्य पशु नष्ट हों, यदि दीपक चट-चट शब्द करे तो निश्चय कार्यनाश होता है, दीपक चूता हो तो चोर भय, यदि ठीक करने पर भी चूता हो तो पशु नाश हो, दीपक फूट जाये तो १८ दिन में दाता व पारिवारिक जनों को मरणतुल्य कष्ट होता है, दीपक नष्ट होने पर यदि उसी बत्ती को जलायें तो दाता व कर्त्ता की मन्द दृष्टि हो, नई बत्ती जलायें तो ६ मास उपरान्त सिद्धि हो, प्रज्वलित दीप को अपवित्र मानव छू ले तो दाता को शारीरिक व्याधि, यदि बिल्ली, कुत्ता, श्वान छुयें तो राजभय होता है। दीप स्थापन-मंत्र अध्याय ४ में देखें।

दीपशकुन

उपरोक्त विघ्नों के रक्षणार्थ सावधानी से समय-समय पर दीप को देखना चाहिये ।

दीप विघ्नों की शान्ति

घी, चीनी, तिल, चावल, कमलगट्टों से उसी देवता के मन्त्र से होम करे ।

कामना भेद से कलश में विशेष पदार्थ डालें

धर्म के लिये यज्ञियभस्म, धन के लिये मुक्ता, श्री के हेतु कमलगट्टा कामार्थीगोरोचत, मोक्षर्थीवस्त्र, विजयार्थी बड़ी खरैटी, उच्चाटनार्थ कटेहरो, वशीकरण में मोरपंखी, मारण में काली मिर्च, सम्मोहनार्थ धत्तूरा आकर्षणार्थ, पारन्ती डालें ।

सर्वोषधि

कूठ-मांसी, हल्दी-दारु हल्दी, मुरा, शैलेय, चन्दन, वच, चंपक, मुस्ता

सप्तमृत्तिका

हाथी, घोड़ा, वामी, तीर्थ, गोशाला, रथ, समुद्र—

पञ्चरत्न

कनक-कुलिश, नील पद्मराग, मुक्ता

पञ्चपल्लव

पीपल, गूलर, पिलखुन (प्लक्ष) आम बट,

जौ बोने के शुभाशुभ का ज्ञान

सम्यक् ऊँचे, पुष्ट, कोमल, श्वेत, कार्य सिद्धि प्रद, काले हों तो वर्षा का नाश धुएँ के रङ्ग के कलह, अपूर्ण हों तो जन नाश, श्याम हों तो दुर्भिक्ष, तिर्यग हों तो व्याधि कुब्ज हों तो शत्रु भय, (सिद्धान्त शेखर) (सारस्वत) श्याम कृष्ण से अर्थ हानि, तिरछे से व्याधि कुब्ज से दुःख, दुष्प्ररूढ़ से मृत्यु, कटे छटे हों तो रोग स्थान, देश, इष्ट हानि हो ।

विघ्नों की शान्ति मूलमन्त्र से होम करने से होती है ।

पञ्चगव्यप्रमाणादि (वशिष्ठ संहिता)

गोशकृद् द्विगुणं मूत्रं, दुग्धं दद्याच्चतुर्गुणम् । घृत चाष्टं गुणं चैव पञ्चेगव्ये तथा दधि । गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि, कुशोदक, गोश्रृङ्गोदक

पञ्चगव्य सम्मेलन प्रकार

ॐ भूभवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहिधियो योनः प्रचोदयात् ॥१॥
इससे गोमूत्र डालें ।

ॐ गन्धद्वारा दुराधर्षा नित्यपुष्टं, करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामि होपह्वये श्रियम् ॥२॥ गोवर
ॐ आप्यायश्व समेतु तेव्विश्वतः सोमवृष्ण्यम् ।
भवाव्वाजस्य संगथे ॥३॥ (दूध)

ॐ दधिक्राव्णोऽअकारिषाञ्जिष्णो रश्वस्य व्वाजिनः ।
सुरभिनो मुखाकरत्प्रणऽआयू षित्तारिषत् ।। (दधि) ।।४।।

ॐ तेजोसिशुक्रमस्यमृतमसिधामनामासि ।
प्रियं देवाना मनाधृष्टं देवत् जननोसि ।।५।। (स्त्री)

ॐ काण्डा त्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।।६।।

कुशोदक डालें, इसी में गौ के सींगं धोकर जल डालें और मिलायें
ओ३म् देवस्य त्वासवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्यूष्णो हस्ताभ्याम् ।।

अथर्ववेद के मण्डल ४ के सूक्त २३-२४, २५, २६, २७, २८, २९ से अभिमन्त्रित करें तब चारों ओर कूर्च से भूमि पर छिड़क दें, तत्पश्चात् आचार्यदि, यजमानादि पियें तो कर्मज कालज दोषज दारुण दुःखों से मुक्त हो सत्चिन्मयी बुद्धि होती है।

अथ कन्या पूजनम

कन्या २ वर्ष से अधिक आयु वालीं, २ वर्ष की कुमारी, ३ की त्रिमूर्ति, ४ की कल्याणी ५ की रोहिणी, ६ की कालिका, ७ की चण्डिका, ८ की शाम्भवी, ९ की दुर्गा, १० वर्ष की सुभद्रा होती हैं। परन्तु उत्तम कन्या भले ही विवाहिता हो, देवी भगवती के निमित्त पूजनीया है। (देवी पुराण)

१ कुमारी—दुःख, दारिद्र्य, शत्रुभय विनाश, आयु, विद्या, बल, वीर्य, ब्रह्मवर्चादि के हेतु कन्या का पूजन, भोजन, वस्त्रादि दान दें।

२ त्रिमूर्ति ३ वर्ष की आयुवृद्धि, अपमृत्यु, व्याधि, पीड़ा, दुःख दौर्भाग्यनाश सौख्य, धन-धान्य आरोग्य, पुत्र, पौत्रादि लाभ के लिये

३ कल्याणी ४ बर्ष की आरोग्य, सुख, कार्यलाभ, धन, यश, कल्याणार्थ

४ रोहिणी—यश-पदलाभ-सफलता, ऐश्वर्य के हेतु।

५ कालिका—समस्त विद्या, जय, राज्य लाभ, शत्रुसंहारार्थ

६ चण्डिका—संग्राम जय प्राप्ति हेतु

७ शाम्भवी—दुख, दारिद्र्य, राजमोहन, ब्रह्म हत्यादि पाप, महापाप, शापशमनार्थ

८ दुर्गा—समस्त लोकों में वाह्याभ्यन्तरीय शत्रु-विष, उग्रकार्य दुर्गति प्रेतत्व आदि में

९ सुभद्रा—सौभाग्य, धन-धान्यादि लाभ, अभीष्ट सिद्धि, सेवक दासी-दास, वंश, कृषि, पशु, उद्योगादि की अभिवृद्धि के हेतु पूजन करें।

वर्जित कन्या

अङ्गहीन, अङ्गबुद्धि, कुष्ठादि की, विकार वाली, निन्द्य कुल की, स्तनदोषी रक्तस्राविणी घाववाली, जन्मान्ध, केकरी, काणी, कुरूपा, शरीर में रोम हों, दासी की पुत्री, निन्द्य कन्याओं का भूल या प्रमाद या लोभ से पूजन न करें।

ब्राह्मणी कन्या समस्त कामनाओं में, क्षत्रिय-विजय में, वैश्य कन्या लाभार्थ, शूद्र वंश-वृद्धि, पुत्र पौत्र प्राप्ति, अन्त्यज कन्या को दारुण कर्म साफल्यर्थ पूजन बतलाय । ।

वर्णभेद से पूजाभेद

गौरवर्ण-सर्वार्थ सिद्धि, पीतवर्ण की-जय-कीर्ति, लालवर्ण की लाभार्थ काली, मारणार्थ पूजनीय कही है (कौलाबली तन्त्र)

पूजामन्त्र

ओ३म् मन्त्राक्षर मयीं लक्ष्मीं मातृर्णा रूप धारिणीम् । नव दुर्गात्मिकां साक्षात् कन्या मावाहयाम्यहम् ।। इसी से सबका पूजन करें ।

अथ जपविधानम्

न न्यासं योषितानाञ्च नध्यानं नच पूजनम् ।। केवल जपमात्रेणमन्त्रा सिद्ध्यन्तियोषिताम् । वैछिन्नत्वादिकदोषाये पञ्चाशन्मन्त्र संस्थिता । तैर्दोषैः सकला व्याप्तामनवः सप्त कोटयः ।। अतस्तद्दोष शान्त्यर्थ संस्कार दशकंचरेत् ।। मन्त्र महोदधौ ।।२०।।९७।।

जननं दीपनं चैव बोधनं ताडनं तथा ।। अथाभिषेको विमलीकरणं जीवनं तथा ।।

तर्पणं गोपनं चैव आप्यायनमिति स्मृतम् ।। संस्कार दशकं प्रोक्त मनूनां दोषनाशनम् ।।

सम्पूर्ण उपासकों का अनिवार्य परम कर्तव्य है कि गुरुमुख द्वारा मन्त्रोपदेश ग्रहण करने के उपरान्त मन्त्र के १० संस्कार तदनन्तर सेतु, महासेतु, मुखशोधन, कुल्लुका शापोद्धार, संजीवन, उत्कीलन, निर्मलीकरण, आदि विषय गुरु द्वारा जानकर प्रयोग करें, तभी मन्त्रसिद्धि शीघ्र, सरलता से सम्भव हो सकती है । परम्परागत गुरु द्वारा समझ लें ।

पाठविधिः ।।

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।। धैर्य लय समर्थञ्च षडेते पाठका गुणाः ।।६।।

पाठक के दोष

गीती शीघ्री, शिरः कम्पी तथा लिखित पाठकः ।। अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्चषडेते
पाठकाऽधमाः ।।—पाणिनीय शिक्षा

मन्त्रजपे पाठे च भेदः

मनसा यः स्मेरत्स्तोत्रं वचसा व मनुं जपेत् ।।
उभयंनिष्फलं देवि ! भिन्न भाण्डोदकं यथा ।।

दीक्षा शब्दार्थः —**कुलार्णवे १५ उल्लासे**

दिव्यज्ञानं यतोदद्यात्कुर्यात्पापक्षयं यतः ।।
तेनदीक्षेतिलोकेऽस्मिन्कीर्तितः तन्त्रपारगैः ।।

गुरु शब्दार्थ

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्द स्तन्निरोधकः ।।
अन्धकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ।।
गकाराद्ज्ञानसम्पत्ती रेफः पापस्यदाहकः ।।
उकारास्च्छिवतातात्म्यं दद्यादिति गुरुः स्मृतः ।।—**यामले**

कुलचूणामणौ

उदासीनो ह्यु दासीनां वनस्थाः वनवासिनः ।।
यतीनाञ्चयती प्रोक्तो गृहस्थानां गुरुर्गृही ।।
वैष्णवे वैष्णवो ग्राह्यः शैवे शैवस्तथा पुनः ।।
शाक्तके त्रितयं विद्या दीक्षा स्वामी न संशयः ।।

गुरुरपि गृहस्थ एव

सर्व शास्त्रार्थ वेत्ता गृहस्थो गुरु उच्यते ।—**कुलार्णवे**

गुरु शब्दार्थ यामले ।।

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तोरेफः पापस्य दाहकः ।।
उकारः शक्ति इत्युक्तस्त्रितयात्मागुरुः स्मृतः ।।—**पिंगलामते**

मन्त्र शब्द व्युत्पत्तिमाह ।।

मननं विश्व विज्ञानं त्राणं संसार बन्धनात् ।।
यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते ततः ।।
मननात्त्राणनाश्चैव मद्रूपस्याबोधनात् ।।
मन्त्र इत्युच्यते सम्यङ्मदधिष्ठानतः प्रिये ।। (रुद्रयामले)
गुप्तोपदेशतो मन्त्री मनना प्राणनादपि ।।(तन्त्रान्तरे)

तोङल तन्त्रोक्त मन्त्र चैतन्यविधिः ।।

सर्वं मन्त्रस्य चैतन्यं शृणुपार्वतिसादरं ।।
सहस्रारेमहापद्मे बिन्दु रूपं परं शिवम् ।।
कुण्डलिनीं समुत्थाप्य हंसेन मनुनासुधीः ।।
नासाग्रेयास्थिरा दृष्टिर्जायते परमेश्वरी ।।
तदैवमन्त्र चैतन्यं कुण्डली चक्रगं भवेत् ।।
सहस्रारे महापद्मे कुण्डल्या सहितं गुरुम् ।।
भावयेत्सर्वमन्त्राणां चैतन्यं जायते प्रिये ।।
तदेव प्रजपेन्मन्त्रं सिद्धिदंनात्रसंशयः ।।

गन्धर्व तन्त्रे

नदद्याद्भास्करायार्घ्यं शंखतोयैर्महेश्वरि ।।
यावन्नदीयते चार्घोभास्करायमहेश्वरिः ।।

तावन्नपूजयेद्विष्णुं शङ्कर वा सुरेश्वरीम् ।
सूर्यः सोमो यमः कालोमहाभूतानिपञ्चवै ।।
एतेशुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः ।।
सर्वे देवा शरीरस्थाः ममभन्त्रस्य साक्षिणः ।।
पूर्व जन्मार्जितां विद्या ममहस्ते प्रदापय ।।

"गृह्यसूत्रोक्त, अशुभ रजोदर्शन शान्ति"

श्रो३म् इदंवपुर्निवचन जनाश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वेयदोविभृतो मातुरन्ये इडेह जाते यम्याउमबन्धू ।। ऋ० मं० ५ अ० ४ सू० ४७
श्रो३म् अन्तर्गा भश्चरति देवताम्बा भूतोभूतः सञ्जायते पुनः
संभूता भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्रविवेशशचीभिः ।। अ० कां० ११ सू० ४
ॐ ता उभौ चतुरापदः सम्प्रसारयावः स्वर्गेलोके ।
प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ।। शु० य० अ० २३ मं० २०

वेदों में तथा प्रत्यक्ष में प्रजासृजनमूल नारी (स्त्री) होने से तथा विशुद्ध पुष्ट रज वीर्य व संस्कारों को उत्तम, देव, राष्ट्र गुरु भक्त इच्छानुकूल, धीमान, श्रीमान दीर्घजीवी सन्तति का आदिकारण कहा है, इसी से कन्या की योग्य, मंगलकरणी शिक्षा-दीक्षा-व्यवस्था संरक्षकों द्वारा अनिवार्य होने से प्रथम रजोधर्म का ज्ञान व अनिष्टकारी कारणों को वेद-विधि से दूर करने का संकल्प होना उचित समझ, श्रीगणेश किया जाता है ।

"कन्या ऋतु धर्म वर्णनम्"

अष्ट वर्षा भवेद्गौरी, नव वर्षातु रोहिणी,
दश वर्षा भवेत्कन्या, अत ऊर्ध्वं रजस्वलाः ।
दशमे ऽनग्निका वास्यात्, द्वादशे वृषलीस्मृता ।
अपरा वृषली ज्ञेया , कुमारी या रजस्वला ।। कारिकायाम् ।।

चरक संहिता के अष्टम अध्याय "जाति सूत्रीय शरीर" के ८ वें मन्त्र में १२ वर्ष की कन्या से छोटी अतिबला और १६ वर्ष की बाला को सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति का हेतु माना है । पुरुष २५ से ३२ वर्ष की आयुवाला ही सर्वश्रेष्ठ माना है । इस कारण कन्या के सर्व प्रथम रजस्वला होने के मास, तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, योग, करण, रक्त तथा वस्त्रादि का फल तथा ऋतुकाल के धर्मों का ज्ञान होने से, वैधव्यादि तथा बन्ध्या आदि अनिष्टकारी फलों से रक्षार्थ शान्ति-कार्यों का वर्णन किया जाता है ।

प्रथम ऋतुकाल के मासों का फल

मास	फल	विशेष विवरण
चैत्र	विधवा	पुरुषोत्तम मास सर्वसुख
वैसाख	धन पुत्र	शुक्लपक्ष शुभ
ज्येष्ठ	रोग	कृष्णपक्ष अशुभ

आषाढ़	सन्तान मरें
श्रावण	धनयुक्त
भाद्रपद	दुर्भगा
आश्विन	तपस्विनी
कार्तिक	अल्पायु
मार्गशीर्ष	बहु सन्तति
पौष	जारिणी
माघ	पुत्र—सुखी
फाल्गुन	पतिव्रता

प्रथम ऋतुकाल की तिथियों का फल

१. पतिव्रता	९. युवा विधवा	कृष्णा १० वीं के उपरान्त
२. दुखी	१०. सुखी, भोगी	अमावस्या पर्यन्त की
३. पुत्रवती	११. पवित्र	हो तो कुलटा हो
४. विधवा (बाल)	१२. मरण	
५. सौभाग्यवती	१३. शुभावह	
६. कार्यनाशिनी	१४. छिनाल	
७. सुप्रजा	पूर्णिमा. शुभ	
८. राक्षसी	अमावस्या अशुभ	

प्रथम ऋतु के वार-फल

रवि—विधवा, चन्द्र—सन्तान मरें, भौम—आत्म हत्या, बुध—बहु कन्या, गुरु—पुत्र-प्राप्ति, भृगु—बहु प्रजा, शनि—जारिणी होती है।

प्रथम ऋतु नक्षत्र फल

अश्विनी	सुभगा	मघा	द्रव्यवती	मूल	साध्वी पतिव्रता
भरणी	युवा विधवा	पू० फा०	धनधान्ययुता	पू० षा०	सौभाग्यवती
कृत्तिका	बन्ध्या	उ० फा०	पतिपरायणा	उ० षा०	धनयुक्त
रोहिणी	सुन्दर वाणी	हस्त	पुत्र-धन	श्रवण	सौभाग्यसम्पत्तिवाली
मृगशिर	दरिद्रा	चित्रा	पतिव्रता	धनिष्ठा	शुभ
आर्द्रा	क्रोधिनी	स्वाती	छिनाल	शतभिषा	कल्याण-जननी
पुनर्वसु	पुत्रवती	विशाखा	निठुर	पू० भा०	लक्ष्मी युक्ता
पुष्य	धनधान्ययुत	अनुराधा	दुर्भगा	उ० भा०	शुभदाता
श्लेषा	काकबन्ध्या	ज्येष्ठा	बालवैधव्य	रेवती	परित्यागी

योग-फल

१. विष्कम्भ	बाल वैधव्य	१५. वज्र	बन्ध्या
२. प्रीतियोग	दाम्पत्य प्रेम	१६. सिद्धि	पुत्रप्राप्ति
३. आयुष्मान	धन प्राप्ति	१७. व्यतीपात	पतिवियोग
४. सौभाग्य	पुत्र प्राप्ति	१८. वरीयान	मृत्वत्सा
५. शोभन	मंगलमय	१९. परिघ	अल्पायु
६. अतिगण्ड	युवा वैधव्य	२०. शिव	पुत्रप्राप्ति
७. सुकर्मा	शुभफल	२१. सिद्धियोग	सर्वकार्यसिद्धि
८. धृति	सम्पत्ति	२२. साध्य	धर्म परायणा
९. शूल	रोगिणी	२३. शुभयोग	सद्गुणान्विता
१०. गण्ड	दुःखी	२४. शुक्ल योग	शुभकर्मरत
११. वृद्धि	पुत्रप्राप्ति	२५. ब्रह्मयोग	पतिव्रता
१२. ध्रुव	आनन्दकर	२६. ऐन्द्रयोग	ईश्वरभक्ता
१३. व्याघात	पतिघ्नी	२७. वैधृति	विधवापन
१४. हर्षण	आनन्दप्रद		

प्रथम ऋतुकाल में करणफल

१. बव—बन्ध्या, २ बालव—पुत्रसम्पदा ३ कौलव—जारिणी ४ तैतिल—प्रियम्वदा ५ गर—गुणसम्पन्नः ६ वणिज-पुत्रिणी

योगफल

१ विष्टि—मृत्वत्सा २ शकुनि—कामातुर ३ चतुष्पद—पतिव्रता ५ नाग—पुत्रवती ६ किन्स्तुघ्न—जारिणी

ऋतुकाल में संक्रान्ति फल

मेष	जारिणी	सिंह	पुत्रवती	धन	पतिव्रता
वृष	सुखसम्भोग	कन्या	अभिमानिनी	मकर	कृशगात्री
मिथुन	धनधान्ययुता	तुला	सयानी	कुम्भ	धनसम्पन्न
कर्क	दुःखिता	वृश्चिक	वेश्या	मीन	चंचला अस्थिरमती

लग्नफल

मेष	दरिद्रा	सिंह	पुत्रवती	धन	स्वाभिमानिनी-धनी
वृष	धनी	कन्या	पतिव्रता	मकर	कर्कशा
मिथुन	कामुकी	तुला	चतुर	कुम्भ	उभयकुल घातिनी
कर्क	पतिघ्नी	वृश्चिक	बहुदुःखी	मीन	सर्वगुणान्विता

प्रथम ऋतु के रक्तवर्ण-फल

१. शुक्ल वर्ण रुधिर	अखण्डसुखी पुत्रवती
२. खरगोश के रक्त का	पुत्रवती

३. महावरी	कन्या सन्तति	दिन में दुर्योगभद्रा
४. आकाशी नीला	मृतवत्सा	से रहित श्रेष्ठ
५. चित्र-विचित्र	स्त्री की मृत्यु हो	रात्रि-अनिष्टप्रद
६. पिंगट (श्वेतपीत मिश्रित)	मृतप्रजा	
७. कृष्ण वर्ण	बालवैधव्य	
८. घुंघची समान निकले	शुभफल	
९. मध्यम निकले	श्रेष्ठतर	
१०. बहुरक्तस्राव	दुर्भगा	
११. थोड़ा बिन्दु-बिन्दु	जारिणी	
१२. लाल	पुत्रवती	
१३. काला	मृतप्रजा	
१४. पूक (कीच) के समान	बन्ध्या हो	
१५. धौला और पीला निकले	काकवन्ध्या	
१६. पीत वर्ण का निकले	वेश्या हो	
१७. सिन्दुर सम निकले	कन्या सन्तति वाली हो	

काल फल

दिन का पूर्व भाग	सौभाग्यवती	पूर्व रात्रि में हो	बन्ध्या
मध्याह्न	दरिद्रा	दोनों सन्ध्याओं में हो	वेश्या
अपराह्न	शुभदा	अर्द्धरात्रि में हो	युवा विधवा
सायांह्न	पूर्ण भोगवती	सन्धि में हो	सर्व अनर्थ प्रद

वस्त्र फल

श्वेत	सुभगा	पोत	भोगिनी	दृढ़वस्त्र	पतिपरायणा
लाल	रुग्णा	विचित्रवर्ण	पतिव्रता	पुराना	अनर्थप्रद
नोल	बालवैधव्य	सूक्ष्म वस्त्र	कृशांगी	मध्यम	सुभगा
				मैला (क्षीण)	मलिनता दुर्वचनी

रजस्वला का स्नान

हस्त, स्वाती, अश्विनी, मृगशिर, अनुराधा, धनिष्ठा, रोहिणी तीनों उत्तरा ज्येष्ठा नक्षत्र, रिक्ता (४-९-१४) को छोड़ अन्य तिथियों में सोम शुक्र-वुध गुरुवारों में स्नान करें।

मृ० रे० स्वा० ह० अ० और रोहिणी में स्नान शीघ्र, शुभ गर्भप्रद होता हैं, गौ का गोवर, अपामार्ग लेपन कर स्नान करना श्रेयस्कर कहा है।

प्रथम रजोदर्शन-काल के विशेष लक्षण

प्रथम रजोदर्शनकाल में हाथ में बुहारी–काठ तिनका अग्नि शूर्प-पयाल (सूखे चावल-धान) की भूसी या धान-लोह-पत्थर हथियार आदि अशुभ घर के द्वार की देहली पिता के घर ऊपर सोती अवस्था में अशुभ रजोंदर्शन काल में पिता आदि सहेली पति का दर्शन अशुभ

रजस्वला के साधारण धर्म

एक घर जिसमें सब रहें रजस्वला न रहे दिन में न सोये, न स्नान करे न वस्त्र निचोड़े, न दांतुन करे, अन्य जाति से स्पर्श व भाषण न करे, पति से भी स्पर्श न करे, तीन रात्रि अपना मुख न दिखाये, न वाणी सुनाये, तारागणों को न देखे, काजल न लगायें, तेल न डाले रास्ता न चले, नख न काटे, रस्सी न छुये, न ये मिट्टी के बर्तन में खाये, अञ्जलि से जल पिये । प्रथम दिन चाण्डाली रजस्वला की संज्ञा व फल द्वितीय ब्रह्मघातिनी तृतीय धोबिन संज्ञा होती है प्रसूता का, सा हल्का स्वल्प भोजन करे । चौथे दिन अपामार्ग की दांतुन, अपामार्ग, मिट्टी, गोमय से स्नान कर पति के स्पर्श योग्य, ५ वें दिन पितृकार्य व देवकार्य के योग्य होती हैं ।

इन दिनों में गर्भाधान कुष्ठ, यक्ष्मा, मूक, बधिर अन्ध अपङ्ग, क्षीणाङ्ग क्षीणायु का दुष्ट प्रकृति का होता है । उपरोक्त अशुभ बातों के दुष्ट फल के निराकरणार्थ घृत दूर्वा तिल-चावलादि से १०८ मृत्युञ्जयमन्त्र से होम,स्वर्ण, गौभूमि दान करने से शान्ति का विधान है।

महर्षियों ने पारस्कर गृह्यसूत्र में तथा प्रयोग पारिजातक में शौनक ऋषि एवं आश्वलायन तथा वाशिष्ठगृह्यसूत्रों में अशुभ रजोदर्शन की विधियां निर्दिष्ट की हैं । उनका आचरण श्रेयस्कर, कन्या के उज्वल भविष्य का परिचायक सिद्ध होगा। विदुषी माता और विचारवान् संरक्षक पितृ वर्ग का अनिवार्य परम कर्त्तव्य है कि अबोध, पितृघर में लज्जा अर्थादि के भार से भयभीत कन्या को मिथ्याहार-विहार जन्य-कर्मज- कालज उपरोक्त व्याधियों (शारीरिक आर्थिक-मानसिक) तथा वैधव्यादिदोष,वन्ध्यात्वादि आने वाले अनर्थों के रक्षाविधान में प्रमाद न करें । कन्या उभयकुल की मान प्रतिष्ठा वंश वृद्धि की रीढ़ (मूल) है । उसके उज्वल भविष्व में उभयकुल की अभिवृद्धि निहित है ।

गृह्यसूत्रोक्त अशुभ रजोदर्शन शान्ति विधि

प्रथम रजोदर्शन के १३ दोष व प्रतिफल ज्योतिष शास्त्रोक्तगत पृष्ठों में लिखे हैं । धार्मिक, कर्मकाण्डकी विधि यहां लिखी जायेगी "धर्मसिन्धु" तथा संस्कार कौस्तुभ में महर्षि कश्यप ने लिखा है कि प्रथम ऋतुकाल में पुष्पिणी स्त्री का पति या पिता पुत्रवती स्त्रियों को चावलों से निर्मित आसन पर विठाये और हरिद्रा पुष्प, चन्दन,ताम्बूल,फल, फूल व माला से स्वागत कर धूप दीप दे, उन पुत्रवती स्त्रियों से "पुत्रवतो हो, आशीर्वाद प्राप्त करे । दीपयुक्त घर में प्रवेश करें, उन्हें स्वशक्ति अनुसार पूजन कर लवण के अपूप मूग को दालादि भेंट करें । महर्षि वसिष्ठ का वचन है, रजस्वला तीन रात्रि अशुचि रहती है, घृतयुक्त भोजन् ताल में स्नान न करे, भूमिशयन करे दिन में न सोये, अग्नि न छुये (वलिवैश्वदेवयज्ञ न करे) रस्सी न छुये न दांतुन करे न पुष्प, गन्ध यज्ञ आभूषण धारण करे ग्रह नक्षत्र न देखे, अश्लील कैसा भी आचरण न करे नये, फूटे ठोकरा (खपंर) से जल पिये, अञ्जलि लोह के वर्तनों में न खाये न पिये, गोरस का त्याग करे ताम्रपात्र में खाये पिये ।

रजस्वला की शुद्धि की विधि : ।।स्मृत्यर्थसार।। रजस्वला छै स्थानों की मिट्टी (जंगली सूअर की खोदी हुई गौशाला अश्वशाला हस्तिशाला यज्ञियभूमि तीर्थरज) से ६० बार मल कर स्नान करे । अपामार्ग से स्नान करे ।

ग्रह लग्न आदि के अशुभफल निवृत्यर्थ-लजवन्ती छुईमुई कूट खोल कांगनी जौ सरसों देवदारु,हल्दी सर्वोषध लोध आदि जल में डाल मय वस्त्र शिर सहित स्नान करे पूर्व इसके अपामार्ग की दातुन करे पांचवे दिन शुद्ध होकर चन्द्र तारा आदि की अनुकूलता में पवित्र भूमि में उपरोक्त विधि पूर्वक, उपर्युक्त आसन पर पूर्वाभिमुख वैठ कर आचमन प्राणायाम कर देश काल पूर्वक संकल्प करे।

मम पत्न्या: (पुत्र्या:) प्रथम रजोदर्शने ऽमुक दुष्टमास लग्न पक्ष योग करण दिन रात्रि आदि सूचित सकलारिष्ट निरासन द्वारा वैधव्य, वन्ध्यात्व, दारिद्रय पतिघ्न मृता ऽपत्यादि ब्रह्महत्यादि दोष गौ द्विज देवादिशाप कर्मज कालज ज्ञात अज्ञात पाप ताप प्रतारण पूर्वक श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थ संग्रह मखा शौनकोक्तां शान्तिं करिष्ये। इतिसङ्कल्प्य गणेश पूजन पुण्याह वाचन, गौर्यादि षोडशमातृका पूजन ब्राह्मयादि सप्तमातृका पूजन नान्दी श्राद्धानिकृत्वा शान्तं, दान्तं, कुटुम्बिनं, मन्त्र तन्त्रज्ञमाचार्य ब्राह्मण च जपहोमार्थमष्टौ षट्, चतुरो, वा ऋत्विजोऽपि वृत्वा, गन्धादिना पूजयेत्। तत आचार्य्यो गृहेशान देशे शुचौ "महीद्यौ:, इति भूमि स्पृष्ट्वा, तद्दक्षिणोत्तरतश्च तथैव मन्त्रावृत्या भूमिं स्पृष्ट्वा "ओषधय: समबदन्त" इति द्रोण प्रमाण ब्रीहिभिर्मध्ये, तद्दक्षिणोत्तरतश्च पृष्ठ देशे उपरोक्त मंत्रावृत्या राशित्रयंकृत्वा तैनेव क्रमेण राशित्रये नवम कालकमभग्नं कुम्भ त्रयं "आजिघ्रकलशम्" इति मन्त्रावृत्या स्थापयेत् एवं सर्वत्रानुष्ठेयम् मंत्रावृत्ति:। तत: "प्रसुवआप:" इति नवर्चेन कलशेषूदक पूरणम्। "गन्ध द्वारां" इति त्रिष्वपिगन्धं प्रक्षिप्य "या औषधि:, इति सर्वौषधि "ओषधय: सभवदन्त" इति यवान् क्षिपेति। ततोमध्य कुम्भे यव, ब्रीहि, तिल, माष, उदुम्बर, कुशा, दूर्वा, राजीव, चम्पेबिल्वका:।

विष्णुक्रान्ताऽथ तुलसी वर्हिष: शंखपुष्पिका। शतावर्यश्वगन्धा च निगुण्डों सर्षपद्वयम्। अपामार्ग: पलाशश्चपनसो जीवकस्तथा।

१ प्रियङ्गवश्च गोधूमा ब्रीहयोऽश्वतत्थ एब च। क्षीरं दधि सर्पिश्चपद्मपत्रं २ तथोत्पलम्। कुरण्टक३ त्रयं गुञ्जा४ बचा५ भद्रकमुस्तका:६ द्वात्रिं७ शदौष धानीह यथा सम्भवमाहरेत्। तत: त्रीषु कलशेषु "काण्डात्काण्डात" इति दूर्बा "अश्वत्थेव, इतिपञ्चपल्लवान्, गजाश्वस्थान रथ्या८ वल्मीक सङ्गम ह्रद गोष्ठस्थान मृद:। "स्योनापृथिवी" इतिक्षिप्त्वा "याफलिनो, इतिपूगीफलम् "सहि रत्नानि, इति कनक९ कुलिश नील पद्मराग मौक्तिकानिपञ्चरत्नानि "हिरण्यरूप" इति हिरण्यं क्षिपेत्। "युवासुवासा:" इति सूत्रेणवाससा च कलशं कण्ठान् वेष्टयित्वा, गन्धोक्षत पुष्प मालादिभि: कलशान्भूषयेत्। तत: कलशत्रयोपरितेनैव क्रमेण सौवर्णं, राजतं कांस्यमयम्, ताम्रमयं वैणवं,१० मृन्मयं वायवादिपूरित पात्रं त्रयं "पूर्णादर्वि:" इतिनिधाय, तदुपरिश्वेतं वस्त्रं त्रयं न्यस्य, तत्रचन्दनादिनाऽष्ट दलानि कुर्यात्। तत्र मत्रें गायत्र्या, भुवनेश्वरी मावहा मीति यथाशक्ति सुवर्ण निर्मितां भुबनेश्वरी प्रतिमांमग्नि उत्तारणपूर्वकं स्थापयेत्। तद्दक्षिण कुम्भोपरिवस्त्रे "इन्द्राणीमासु" इति इन्द्राणीमाबाहयामीति सौवर्णीं मिन्द्राणि प्रतिमां संस्थाप्योत्तर कलशोपरि "इन्द्रत्वा" इति इन्द्रमाबाहयामिति, इति सौवर्णीं मिन्द्र प्रतिमां स्थापयेत्। ततउक्त मंत्रे रुक्त क्रमेण वेबत्रयस्य काण्डानुसमयेन षोडशो पचार पूजां कुर्यात्। ततोमध्य कुम्भे आचार्य्योऽष्ट सहस्रमष्टशतंबा गायत्रीं जप्त्वा श्री सूक्तं जपेत्। "हिरण्यवर्णा

इति पंचदशर्चं श्रीसूक्तं तत एकऋत्विग्दक्षिण कुम्भे रुद्रसूक्तानिजपेत । "कद्रुद्राय" इति नव ऋचम् । "इमारुद्राय" इत्येकादशर्चम् "आतेपितः" इति पञ्चदशर्चम् "इमारुद्राय स्थिरधन्वनः इति चतस्रः । "आवोराजान" (१) "तुमुष्टुहि" (२) "भुवनस्यपितरम्" (३) "त्र्यम्बकम" (४) 'अथान्य ऋत्विगुत्तर कुम्भे एकादशोवृत्तिभिः रुद्रं जपेत् रुद्रं जप्त्वा "शन्न [इन्द्राग्नि" इति सूक्तं पञ्चदशर्चं जपेत् । तत कुम्भपश्चिम देशे स्थण्डिले ऽग्निप्रणीय, तदीशान्यां वेद्यादौ नव-ग्रहादीन् तस्तन्मन्त्रै रावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य, तदीशान्यां प्राग्वत कुम्भं संस्थाप्य तत्र वरुणमावाहयामि, आवाह्याग्नि समीपमेत्य ब्रह्मोपवेशनमाज्यान्ते विशेषः । प्रणीता प्रणयने पयस प्रणयनम् । आसादने आज्यानन्तरं ग्रहसमिधः तिलाः दूर्वाः, तिलमिश्राः गोधूमाः, तण्डुलाः चरोः पयसि श्रपणम् । आज्य भागान्ते यजमानो दक्षिणतः उपविश्य "होमार्थञ्च" जपार्थञ्च वरयेद्दृत्विजो वहून् । "आचार्य्यो द्विजैसह, इति चोक्तेराचार्यात्विजां होमावगमःत्तेषाँ चास्वत्वेन त्यागा योगात्तैश्च कियमाणे होमे यजमानेनप्रत्याहुति त्यागश्चाशक्यत्वात्तदानीमेवाङ्गप्रधान होम देवता उद्दिश्य एताभ्य इदं न ममेति त्यजेत् । अत्रैवं अथर्ववेदोक्त "सत्वंन्नो मुञ्चत्वंहसः" "अंहो लिङ्गाभि" इति सूक्तै र्जपो पूर्वसंख्याकैः रुद्रावृत्या समाचरेत् तत्तत सूक्तै र्होमं समाचरेत् । ततः आचार्यः स ऋत्विक् नवग्रहेभ्याष्टाविंशति संख्याका घृताक्ताः अर्कादि समिधास्तिलाज्या-हुतिश्च हुत्वाऽधिदेवता प्रत्यधिदेवता, विनायकादिपञ्च लोकपालेभ्यस्तन्न्यून संख्यया जुहुयात् । एभ्यस्तुपालाश्यः समिधः ग्रहाणां यदाष्टौ, तदान्येभ्य श्चतस्त्र इति सम्प्रदायः । यज्ञान्ते प्रणीतोदकैः अथर्व वेदोक्त

"सत्वन्नोमुञ्चन्त्वंहसः," एतत्सूक्तैः अन्यैरपि रजोदोष निवृत्यर्थं संमःर्जनं कुर्यात् । मन्त्र आगे ४।१ खण्ड व ९ वें अध्याय में छपे हैं।

यज्ञान्ते आज्यपात्रंमाचार्याय दद्यात्, ततोब्राह्मणभोजनसंकल्पः ।

"कृतस्य कर्मणः साँगता सिद्धयर्थमाचार्याय दक्षिणांदद्यात् । ऋत्विगादिभ्यो यथाशक्ति दक्षिणांदत्वाऽन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्योयथाशक्ति भूयसीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे इति दत्वा ।। तेषामाशिषो गृह्णीयात् ।। ततोदेवताऽग्नि विसर्जनम् । यान्तु ग्रहगणाः सर्वे स्वशक्तया पूजिता मया ।। इष्टकाम प्रसिद्धयर्थं पुनरागमनाय च

ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उपप्रयन्तु मरुतः सुद्रानव ऽइन्द्र प्राशूर्भवास चा ।।१।। आवाहित देवताः स्वस्थानेऽच्छत । गच्छ-गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वरः ।। यत्र ब्रह्मादयो देवा स्तत्रगच्छहुताशनः ।।१।।

ओ३म् यज्ञं-यज्ञं गच्छ यज्ञपतिगच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा । एषते यज्ञो यज्ञपते सहसू क्तवाकऽ सब्ववीरस्तञ्जुषस्व स्वाहा ।।१।।

यज्ञ नारायण स्वस्थाने गच्छ ।। मया (अमुक) मास पक्ष तिथ्यादि यथाकाले यथादेशे यथाशक्ति द्रव्यादिकेन यत्कृतंनारदोक्त, शौनकोक्त रजोदर्शन शान्त्याख्यं कर्म तत्कालहीन भक्तिहीनं श्रद्धाहीनं, विधिहीनम्वा ब्राह्मणानां बचनात् श्री सूर्याद्यावाहित देवता प्रसादात्सर्वं परिपूर्णमस्त्वितिभवन्तो ब्रुवन्तु ।। "अस्तु परिपूर्णमिति वारत्रयं ब्राह्मणा ब्रूयुः ।।

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषुयत् । स्मरणादेवता द्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादितिश्रुतिः ।। यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञ क्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णता याति सद्यो वंदेतमच्युतम् ।। ओ३म् विष्णवेनमो विष्णवे नमो विष्णवे नमः ।।३।। एवं यः कुरुते शान्ति नारदोक्त (शौनकोक्त) प्रमाणतः ।।तदनिष्टं तु सकलं सद्य एव विनश्यतीति पारस्कर गृह्यसूत्रोक्त रजोदर्शन शान्ति-प्रयोगः ।।

कृपया अध्याय चार प्रथम खण्ड तथा नवें अध्याय में से उपर्युक्तमन्त्र पढ़ना चाहिए। यह अनुभूत विधि गुरुपरम्परागत वर्णन की है। यदि सद्गृहस्थ व उनकी गृह देवियों ने श्रद्धा प्रेम, विश्वास से इसे अङ्गीकार किया तो वे निश्चय ही अपनी पुत्रियों, पुत्र वधुओं को बालवैधव्य, युवावैधव्य, मंगलीदोष वन्ध्यात्व, मृतवत्सा, अनपत्य, कन्याऽपत्य, पतिघ्न कुलघ्न, दारिद्र्य वेश्यावृत्ति, रुग्णत्वः, कर्क शादिदोषों से पीछा छुड़ाने में अपना श्रम सफल बनायेंगी, उनसे विनम्रविनय है कि इसे ध्यान से पढें, समस्त नारी समाज को समझायें जिससे कि वर्तमान महान अनर्थों के भार से वेपमान पृथ्वीमाता, कुलदेवता, पितृश्वर गुरुजनों को भयङ्कर कलिकालीन कठोर कुचक्र तथा पाश्चात्य संस्कृति के निठुर भूतसे, शान्ति का सुअवसर मिले और उन सब की कृपा से अबोध गृहस्थधर्मप्रवेशेच्छु मानवोचित नीति का अनुसरण कर सकें।

वास्तु विज्ञान (ग्रामद्यानुकूल्यम्)

घर आदि बनाने में ग्राम, दिशा, भूमि, मास, नक्षत्र, लाभ, व्यय लग्न, अंश तथा शल्यशोधन करें।

"ग्रामादेरानुकूलत्वं दिशोभूतग्रहस्य चं । मास ऋक्षादि शुद्धि च वीक्ष्याय व्ययभांशकान्" ।।१।।

ग्रह बलम्

गुरु शुक्रार्क चन्द्रेषु स्वोच्चादि बलशालिषु । गुर्वर्कैंदुबलं लब्ध्वागृहारम्भ प्रशस्यते ।। २

वृ० शु० सू० चं० ये अपने उच्च में हों, बलवान हों, ऐसे समय में गु० सू० चं० का बल देख घर प्रारम्भ शुभ फलदाता होता हैं ।।२।।

विवाहोक्तान्महादोषानृते जामित्रशुद्धितः । रिक्ताः कुजार्क वारौ च चरलग्नं चरांशकम् ।।३

विवाहोक्त महादोषों में से जामित्र दोष शुद्धि के सिवा अन्य समस्त दोष, रिक्ता तिथि मंगल, रविवार, चरलग्न, या चर कानवाँश घर बनाने में त्याग दें ।। ३।।

त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांश षष्ठं चाग्रस्थितम् विधुम् ।
बुधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद्गेहं शुभाश्रये ।।४।।

मंगल सूर्य के अंश, ६ वें चन्द्रमा, या सन्मुख चन्द्र, को त्याग दें, मिथुन, कन्या, धन, मीन राशिस्थ सूर्य त्याग दें, तब गृह निर्माण करना शुभ होता है ।।५।।

द्वार शुद्धिः

द्वारशुद्धि निरीक्ष्यादौ भशुद्धि वृषचक्रतः । निष्पञ्चके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गे वाऽऽलयमारभेत ।।५

प्रथम द्वार चक्र, और नक्षत्र शुद्धि वृषचक्र से देखें; पञ्चकरहित, स्थिर या द्विस्वभाव लग्नों में ही गृहनिर्माण शुभ होता है ।।५

ग्रामानुकूल्यम्

स्वनामराशेर्यद्राशि द्विशारांकेशदिङ्मितः । संग्राम शुभदः प्रोक्त स्त्वशुभः स्यात्ततोऽन्यथा ।।६

अपनी नामराशि से ग्राम नाम राशि २:५:६:११:१० में से कोई भी एक हो तो शुभ, शेष अशुभ ।।६

प्रथमे सप्तमे व्योम गृह हानि स्त्रिषष्ठगे । तुर्यादिष्टादशेरोगा शेषस्थाने भवेत्सुखम् ।।७

अपनी नामराशि से ग्राम की नाम राशि १ या ७ हो तो शून्य; ३।६ हो घर की हानि ४, ८, १२ रोगकारक, इससे शेष ६ वें में निदिष्ट २:५:६:११:१० शुभ ।

शल्यशोधनम्

कुंडार्थमादौपारिशोध्यपृथ्वींपृष्ठेमुखाद्यः प्रथमः स्फुटीभवेत् ।
वागादिवर्णः किलतद्दिशिस्मृतं शल्यंमुनींद्रैर्हपयैस्तु मध्यगः ।।८
स्मृत्वेष्टदेवतांप्रष्टुर्वचनस्याद्यमक्षरम् ।
गृहीत्वातु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ।।६

कुण्डनिर्माणि-या गृहनिर्माण में निम्न भांति शल्यशोधन करें । प्रश्नकर्त्ता मयपत्र-पुष्प दक्षिणादि प्रभुसंस्मरणकर जो प्रश्न करे-उसके मुख से निकले प्रथम अक्षर या लिखित प्रश्न के प्रथम अक्षर या किसी भी पुष्प के प्रथम नामाक्षर जो ले या लिखे का (अः कः चः टः तः पः यः श) अष्टवर्गों में से जिस वर्ग का प्रथम अक्षर उसका हो उसी वर्ग संख्या को अवर्ग से शवर्गान्त, ८ को पूर्व आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम वायव्य, उत्तर, ईशान इन ८ दिशाओं में क्रमशः बाँटें उस दिशा को निम्न जो भी शल्य हो समझे और उसका निम्न फल भी समझें ।

प्रश्नाक्षर फलम् ।

यदि प्रथम अक्षर अ से अः पर्यन्त अवर्ग है तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य का हाड़ है, उसे न निकाले तो मृत्युकारक होगा । यदि प्रथम अक्षर कवर्ग का है तो आग्नेय दिशा में २ हाथ नीचे गदहे का हाड़ हो जो राजभय, त्रास, दण्डकारक है । यदि चवर्ग का हो तो दक्षिण में स्वामी की कमर के बराबर नीचा मनुष्य का हाड़ है, जो मृत्यु, रोग दुर्घटना करने वाला है । यदि ट वर्ग हो तो नैऋति में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते का हाड़ है, जो पुत्रनाश वंशविच्छेद, गर्भस्राव, मृतापत्यादोष, स्त्री, गौ, महिषी, घोड़ी सभी को वन्ध्याकारक है ।

यदि प्रश्न का प्रथम तवर्ग का अक्षर हो, पश्चिम दिशा में लड़के का हाड़ है जो गृह स्वामी की गृहनिर्माण से पूर्व ही मृत्युप्रद है । यदि पवर्ग का अक्षर हो तो वायव्य दिशा में ४ हाथ नीचे भूसा, कोयला लकड़ी है जो मित्र, बन्धुनाश, दुस्वप्नकारक है । यदि यवर्ग है तो उत्तर दिशा में हाथ भर नीचा ब्राह्मण का हाड़ है जो, विविध क्लेश, दौर्भाग्य, दारिद्र, मिथ्या-लाञ्छन, सहसा बना घर हाथ से परहस्त में चले जाने का प्रतीक है । यदि ८ वां शवर्ग का आदि का अक्षर हो तो ईशान दिशा में डेढ़ हाथ गहरा गौ का हाड़ है जो गोधन कृषि, उद्योग,

उत्पादन को हानिकारक है। यदि क्ष, त्र, ज्ञ में से कोई हो तो मध्य में कमर के बराबर खोदने से मनुष्य का कपाल भस्म, लोह, है जो कुलक्षय करने वाला है।

इस प्रकार शल्य को भली भांति कुण्ड, घर, कूप, वापी, तडाग, वाग मन्दिर, धर्मशाला आदि निर्माण करने से पूर्व देखें और आगे लिखी अथर्वविधि से यदि कल्याण की इच्छा, निष्ठा और विश्वास हो, करें।

गृह जातक

स्वरोदय के मर्मज्ञ महर्षियों ने अ से श तक आठ वर्गों के ४९ अक्षर कहे हैं, जिनमें अ वर्ग के १६; कवर्ग के ५; चवर्ग के ५, टवर्ग के ५; तवर्ग के ५; पवर्ग के ५; यवर्ग के ४ शवर्ग के ४ कुल ४९ हैं। इन वर्गों के क्रमशः निम्न स्वामी हैं अवर्ग=गरुड़; कवर्ग—बिलाव; च-सिंह; ट—श्वान; त—सर्प; पवर्ग मूषक; य— वर्ग हाथी; शवर्ग—शूकर। इनमें अपने नाम के अक्षर के वर्ग से ५ वाँ वर्ग शत्रु समझें। इसमें शुभाशुभ का ज्ञान कर लें।

काकिणी

१—अपने नामाक्षर वर्ग संख्या को दूना करें। ग्रामादि के नामाक्षर वर्ग संख्या को उसी में जोड़ें, तब योग में आठ का भाग दें। इसी प्रकार ग्राम या पर-वर्ग के नामाक्षर वर्ग संख्या को दूना करें उसमें अपनी नामाक्षर वर्ग संख्या जोडें और योग में आठ का भाग दें—उन शेष में जिसकी शेष संख्या अधिक हो उसी को ऋणी समझें—ग्राम अपना ऋणी हो तो उसमें घर बनायें।

२—कृत्तिका से आश्लेष तक के ७ नक्षत्रों में से चन्द्रमा हो तो घर का द्वार दक्षिण में; अनुराधा से ७ धनिष्ठा तक में चन्द्रमा हो तो द्वार उत्तर में, मघा से ७ विशाखा तक चन्द्रमा हो तो द्वार पूर्व में; और धनिष्ठा से ७ भरणी तक के किसी नक्षत्र में चन्द्रमा हो द्वार पश्चिम में मुख समझें।

भूमि रज

आर्द्रा नक्षत्र के प्रथम चरणों में सूर्य के रहने पर भूमि को तीन दिन रज रहता है, बीज-वपन आदि में विचारें।

भूमि शयन

सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उससे ५, ७, ९, १२, १९, २६ वें नक्षत्र में भूमिशयन होता है, उसमें सभी निर्माण, खनन, हल जोतना, बीज बोने आदि का प्रारम्भ करना अशुभ है।

शेष शिरोज्ञान

भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक में, शेषशिर पूर्व में, मार्गशीर्ष, पौष माघ में दक्षिण में फाल्गुन, चैत्र, वैसाख में पश्चिम में, ज्येष्ठ, असाढ़, श्रावण, उत्तर में शेष-शिर जानें, मुख की २ पुच्छ की २ दिशा त्याग मध्य में खात, बीजवपन आदि करें। देवालयादि, जलाशयादि-

गृह आदि निर्माण में जहां राहु (शेष) मुख हो उसके पृष्ठ कोणं में नीम (खात) खोदना, बीज बोना, आदि शुभ हैं—सूक्ष्म ज्ञान निम्न है—

ईशानमें	वायव्य में	नैऋत्य में	आग्नेय में	
मीन, मेष, वृष के सूर्यों में	मिथुन, कर्क, सिंह के सूर्यों में	कन्या,तुला,वृश्चिक सूर्यों में	धन, मकर, कुम्भ के सूर्यों में	देवालयादि प्रारम्भ प्याऊ बाग, कुण्ड, धर्मशाला
मकर, कुम्भ, मीन के सूर्यों में	मेष, वृष, मिथुन के सूर्यों में	कर्क, सिंह, कन्या के सूर्यों में	तुल, वृश्चिक, धन के सूर्यों में	जलाशय, वापी, कूपादि का प्रारम्भ
सिंह, कन्या, तुल के सूर्यों में	वृश्चिक, धन मकर के सूर्यों में	कुम्भ, मीन, मेष के सूर्यों में	वृष, मिथुन, कर्क के सूर्यों में	गृह आदि निर्माण प्रारम्भ
(खात दिशा) आग्नेय	ईशान	वायव्य	नैऋत्य	खात करने की दिशा

वास्तु भूमि के शुभाशुभ ज्ञान की विधि (अन्य)

पूर्वदिन में सायं ही एक हाथ लम्बा, १ चौड़ा ; १ वालिश्त गहरा गड्ड़ा खोदें (उपरोक्त) उसे सौभाग्यवती कन्या, धुले-स्नानकर, स्वच्छबस्त्रधारणकर, पवित्र घट में पुष्प चावल, हल्दी आदि डाल, मौलि कलावा वाधें, स्वस्तिक बना, पवित्र जल से पूर्ण कर मंगल गान, हरि कीर्तन के साथ गर्त को जल से पूर्ण स्वरूप से भरें। उसे प्रातः ही देखें—जल हो तो शुभ, सूख गया हो तो मध्यम, यदि जल सूखकर दरार हो गई हों—अशुभ समझें। किन्तु देश काल-पात्र के अनुरोधपर ही करें।

शिलान्यास

पूजा, प्रतिष्ठा के उपरान्त प्रथम पाषाण आग्नेय दिशा में दूसरा दक्षिण ३ नैऋत्य, ४ पश्चिम, ५ वायव्य, ६ वां उत्तर, ७ ईशान, ८ पूर्व में स्थापित करें, इसी क्रम से रक्षातंत्र की कीलें गाढ़ें, इसी प्रकार, पाषाण स्थापित करें। रक्षार्थ दण्ड आग्नेय में करें—आगे वास्तुशान्ति में देखें

श्रवण मृगाशिर, रेवती, हस्त, रोहिणी पुष्य, तीनों उत्तरा-शिला न्यासमें हैं।

आय आदि साधन विधि

घर आदि की भूमि की लम्बाई-चौड़ाई, अन्दर की ओर से तथा देवालयादि धार्मिक निर्माण की बाहर की ओर से हाथ से नापें-परन्तु ३२ हाथ लम्बे चौड़े मकान या चार द्वार वाले घर में आय का विचार न करें" लम्बाई चौड़ाई का गुणाकर पिण्ड बनायें। उन्हें क्रमशः ९ स्थानों पर रक्खें और क्रमशः पिण्ड को ९। ९। ६। ८। ३। ८। ८। ४। ८ से गुणा करें, उसी क्रम से ८। ७। ८। १२। ६। २७। १५। २७। १२० से भाग दें जो शेष बचें उन्हें क्रमशः आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि योग, आयु समझें, यदि गृह और गृहस्वामी का नक्षत्र एक हो तो मृत्युकारक है आय ८ होते हैं—१ ध्वज, २ धूम्र, ३ सिंह, ४ श्वान, ५ वृषभ, ६ गर्दभ, ७ हस्ति ८ (०) काक । इनमें विषम संख्या के शुभ, सम संख्या के अशुभ है। १ ध्वज आय ब्राह्मण ३ सिंह-क्षत्रिय, ७ हस्ति शूद्र, ५ बृषभ आय वैश्य के लिये शुभ है। अन्य आय नीच (क्षुद्र) समस्त जाति को शुभ है।

घर का नक्षत्र और व्यय का ज्ञान

उपर्युक्त पिण्ड को ८ से गुणा कर २७ से भाग देने पर शेष संख्या वाला गृह का नक्षत्र होता है ; इस नक्षत्र को ८ से भाग दें-जो शेष रहे वही व्यय है, आय से व्यय कम हो तो शुभ, अन्यथा अशुभ ।

ग्राम या घर के नक्षत्र से वासकर्त्ता के नाम नत्रत्र तक फल में समझें
मस्तक—७—धनलाभ
पृष्ठ —७—हानि, निर्धनता
हृदय —७—सुख, समृद्धि
पाद —७—पर्यटन

चरणी विचार

उपरोक्त गृहस्वामी के हाथ की लम्बाई चौड़ाई के योग को ८ से भाग दें शेध १ पशुहानिः २ पशुनाशः ३ पशुलाभः ४ पशुक्षयः ५ पशुरोगः ६ पशुवृद्धि ८-० पशुबाहुल्य समझें ।

मण्डलेश ज्ञान

उपरोक्त ल०+चौ० के योग ही का ६ से भाग दें, शेष का फल १ दाता, २ नृपति, ३ नपुंसक, ४ चोर, ५ विद्वान, ६ भोगी, ७ धनाढ्यः ८ दरिद्र, ६-(०) कुवेर के अनुसार समझें ।

उपर्युक्त आयों के विशेष फल

१ ध्वज-कीर्ति; (२) धूम्र, शोक; (३) सिंह (जय): (४) श्वान (वैर) ५ वृषभ (धनः) ६ गर्दभ (निर्धन) ७ हस्ति (सुख): ८ ध्वांक्ष (रोग-भय)

व्यय साधन में विशेष ज्ञान

घर का द्वार पूर्व को बनांने में—वृषभ आय, दक्षिण को गज आय

गृह राशि ज्ञान

उपरोक्त पिण्ड को ८ से गुणा २७ से भाग देने पर शेष नक्षत्रों से अ० भ० कृ० हों तो घर की राशि मेष, म० पू० फा०, सिंह ५, मू० पू० षा०, उ० षा० धन (६) शेष नक्षत्रों से क्रमशः दो, दो की ही एक राशि, यथा रो० मृ० वृष० २; आर्द्रा पुन० (मिथुन) पु० श्ले० कर्क और ह० चि० कन्या ६, स्वा० वि० तुल (७) अनु० ज्ये० (वृश्चिक ८) श्र० ध० (१० मकर) श० पू० कुम्भ उ० भा० रे० (मीन) समझें ।

गृह का नामकरण

पूर्व में १, दक्षिण में २, पश्चिम में ४, उत्तर में ८ कल्पना करें । घर का द्वार जिस दिशा में हो उपरोक्त में से उसी अंक संख्या को लें, उस संख्या में, घर में जिस दिशा में जितने भी दालान हों, उस संख्या के अङ्कों को जोड़ें, उस योग में १ और मिला दें । अब १ से १६ तक की संख्या के अङ्कों का क्रमशः नाम समझें । १ (ध्रुवः) २ (धान्य): ३ (जय) ४ (नन्द)

५ (खर) ६ कान्त ७ (मनोहर) ८ (सुमुख) ९ (दुर्मुख) १० (क्रूर) ११ (रिपुदं) १२ (धनद) १३ (क्षय) १४ (आक्रन्द) १५ विपुल) १६ (विजय)- फल नामानुसार समझें।

अंश ग्रहण

पूर्व जो आय व व्यय बताये हैं उनमें से खर्च की संख्याको-पिण्ड (ल०+चौ०) "क्षेत्र फल" की संख्या में जोड़े, उसी योग में घर के उपरोक्त नामाक्षर मिलायें, इन तीनों के योग में ३ का भाग दें, शेष २ अशुभ-१ या ३ (०) शुभ।

ग्रह में स्थान योजना

पूर्व में स्नानालय; आग्नेय में पाकशाला, दक्षिण शयनकक्ष, नैऋ॑ति में शस्त्रागार, पश्चिम-भोजनालय, वायव्य में पशुशाला, उत्तर में भण्डार (द्रव्यादि), ईशान में यज्ञशाला, देवालय बनाना शुभ है।

विशेष ज्ञातव्य

गृहादि निर्माण में गुण अधिक दोष थोड़े हों तो शुभ; परन्तु आयसे व्यय, या ऋणी धनी, और नक्षत्र की विरुद्धता कदापि न लें, उसे त्याग दें।

वास्तु चक्र नाम

गृह के आरम्भ में वृषभ चक्र; स्तम्भस्थापन में कूर्म चक्र; प्रवेश काल में कलशचक्र देखें। वास्तु चक्र बुधवार को शुभ माना है।

विशेष

१—गृहनिर्माण के लिये सप्त सकार योग—शनिवार स्वाती नक्षत्र; सिंह लग्न शुक्ल पक्ष, सप्तमी तिथि; शुभ योग और श्रावण मास निर्माण मुहूर्त्त में यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो "शाला" वास्तु देव की पत्नी-स्वामी या उसमें वास करने वालों को पुत्र-पौत्र स्वास्थ्य, सन्मति, सांमनस्य (परस्पर प्रीति) सम्पदा धन-धान्य वाहन, पशु, भोग्य पदार्थों से पूर्ण शास्त्रीयजनों का आश्रय होती हैं।

विपरीत इसके—कृष्ण पक्ष में निर्माण प्रारम्भ से चोर भय होता है।

आयादि का फल—विषम आय हैं तो शुभ सम हैं तो अशुभ दुःखप्रद।

रवि और मंगल के वार-राशि अंश वाले घर में अग्निमय; अधिक धन और न्यून आय मकान का जो नक्षत्र आया है ; उससे गृहारम्भ दिन नक्षत्र तक तथा स्वामी के जन्म नक्षत्र तक ; जिनकी जितनी संख्या हो उसमें ९ का भाग दे।१।३।५।७ शेषहों तो अशुभ; २।४।६।८।१ शेष तो शुभ।४।९।१४।३०। तिथियां अशुभ, शेष तिथि आयें तो शुभ, योगों में अतिगण्ड, शूल, विष्कम्भ, गण्ड; व्याघात, वज्र व्यतिपात और वैधृति आये तो नितान्त अशुभ, शेष आयें तो शुभ। आयु में भी अधिक आयु वाला शुभ- कम का अशुभ। इसी प्रकार स्वामी तथा घर का एकही नक्षत्र आवे तो मृत्युप्रद है।

गृह की आयु में विशेष—गृह निर्माण कालिक लग्न में गुरु, ६वें रवि ७वें बुध ४शुक्र ३शनि हो तो १०० वर्ष की; लग्न में शुक्र ३रवि, ६वें भौम ५वें गुरु हो तो २०० वर्ष; लग्न में शुक्र १०वें बुध ११वें रवि, १।४।७।१०वें गुरु हो तो १५० वर्ष की १।४।७।१०वें उच्च का गुरु हो और अन्यपूर्वत् हो तो ३०० वर्ष की; गु. शु. चं उच्च के चौथे स्थान में अन्य शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हों तो २०० से अधिक आयु; शुक्र मूल त्रिकोण ५।६ या उच्च का होकर ४थे में होतो गृहस्वामी सुखी सर्व प्रकार सन्तुष्ट और गृह सैकड़ों वर्ष सुदृढ बना रहता है जिसके प्रारम्भ काल में चतुर्थ भाव में गु. १०वे चन्द्रमा; ११वें मं. शु० होंतो ८० वर्ष की जिसके आरम्भ में कोई भी ग्रह शत्रु के नवांश में स्थित होकर १ या ७ अथवा १० वें में हो तो वह घर एक या दो वर्षों में ही बेचने की विवशता होती है ,

गृह द्वार में विशेष—कुम्भ के सूर्य फाल्गुन में; कर्क के सूर्य सिंह में श्रावण में; मकर में पौष में गृहनिर्माण करें तो द्वार पूर्व या पश्चिम का शुभ है। १।२ राशि वैशाख मास में ७।८ में अगहन में उत्तर दक्षिण द्वार शुभ है। पूर्णिमा से कृष्णा अष्टमी तक पूर्व में कृष्णा ६ से कृष्णा १४ तक उत्तर में; ३० अमासे शुक्ला अष्टमी, तक पश्चिम में शुक्ला ६ से शुक्ला १४ तक दक्षिण में बनाना शुभ है। २।३।५।६।७।१०।११ और द्वादशी में बना द्वार शुभ होता है शुक्लपक्ष में द्वार निर्माण शुभ कृष्ण पक्ष के बने द्वार में चोरी का सततभय होता है।

सूर्यस्थित नक्षत्र से द्वारनिर्माण नक्षत्रों तक गिनकर क्रमशः इस प्रकार रक्खें और फल भी समझें। प्रथम ४।शिर में लक्ष्मीप्रद; आगे ८ नक्षत्र चारो कोणों में रक्खें और उनमें बने दर्वाजे से घर नष्ट (उजाड़) हो। उनसे आगे ८ बाजू (शांखाओं) में रक्खें इनमें बना सुख, सम्पत्ति वैभव हो , इसके आगे के ३ देहली में स्वामीमरण और उससे आगे के ४मध्य भाग में रक्खे इनमें बना दर्वाजा सुख, सम्पत्तिप्रद होता है।

गृहारम्भ के मासों का फल

चैत्र (शोक) ; वैसाख (धान्यप्राप्ति) ज्येष्ठ (मृत्युकारक) असाढ (पशुहानि) श्रावण (द्रव्यप्रद) भादों (दरिद्रपन) आश्विन (कलह) कार्तिक (सेवक नाश) मार्गशीर्ष (धनप्राप्ति) पौष (लक्ष्मीप्रद) माघ (अग्निभय) फाल्गुन (धन-धान्य-सौख्यप्रद)

गृहद्वार

गृह को नौ भागों में बाटें, प्रथम ५ भाग दक्षिण दिशा में ; पुनः तीन भाग उत्तर दिशा में, शेष १ भाग के मध्य में द्वार शुभ है। कल्याणकामी गृह के द्वार के ऊपर द्वार कदापि न बनायें, न एक द्वार के सम्मुख दूसरा द्वार ही बनायें, ये सर्वनाश के प्रतीक हैं।

गृह द्वार शाखा चक्र

रविजिस नक्षत्र पर हों, उससे दिन नक्षत्र पर्यन्त गिनें। क्रमशः फल

स्थान	संख्या	फल
प्रथम शिर में	४	श्रीलाभ
(२) कोण	८	उद्वसन
(३) शाखा	८	सौख्य

(४) देहली	३	गृहस्वामी का नाश
(५) मध्य	४	सौख्य, समृद्धि

गृहारम्भ में वृषभ-चक्र-शुद्धि ज्ञान—रवि-नक्षत्र से दिननक्षत्र पर्यन्त अभिजित-तक गिनें

(१) शिर	३	अग्निदाह
(२) अग्रपाद	४	शून्य-असत-अनर्थ
(३) पृष्ठपाद	४	स्थिरता
(४) पृष्ठ	३	लक्ष्मीप्रद
(५) दाईं कुक्षि	४	लाभ-सौख्य
(६) पुच्छ	३	गृहस्वामी नाश
(७) वामकुक्षि	४	दारिद्र, दुख, नि:स्वम्
(८) मुख	३	पीड़ा-अनर्थ, आपत्तिभय

गृहमध्ये कूप-नल का विचार

(१) मध्य में (अर्थहानि) ; (२) ईशान में (सुपुष्टि:) ; (३) पूर्व (ऐश्वर्य) ; (४) आग्नेय (पुत्रनाश); (५) दक्षिण (स्त्रीनाश) ; (६) नैर्ऋत्य (गृहेशनाश) ; (७) पश्चिम (सम्पत्) (८) वायव्य (शत्रुभय) ; (९) उत्तर में (सुख) प्रद होता है।

चुल्लि चक्र—रविनक्षत्र से दिननक्षत्र पर्यन्त गिनें (१) पीठ में (६) सुखप्रद ; (२) मस्तक (४) मृत्युप्रद ; बाहु (८) सौभाग्य भोग्यप्रद ; गर्भ (५) विनाश ; भुज के (२) भोगप्रद; चरण के (२) सर्वनाशकारक होते हैं। उपरोक्त शुभ नक्षत्रों में ही चूल्हा बनायें और इन्हीं शुभ नक्षत्रों में प्रथम अग्नि प्रज्वलित करें।

स्तम्भ (पाषाण, ध्वजारोपणादि) में कूर्मचक्र

गृहारम्भ को तिथि जो भी हो उसको ५ से गुणा करे ; कृत्तिका से प्रारम्भ कर उस दिन की जो नक्षत्रसंख्या हो उसे तथा उस योग में १२ मिलायें, कुल योग में ९ का भाग दें। शेष ४: ७ : १ हों तो कूर्म जलस्थान में लाभप्रद है। ५:२:८ शेष हों तो कूर्म-भूमि पर हैं-अनर्थकरी; यदि ३:६:० शेष हों तो कूर्म आकाश में मृत्युप्रद समझें।

स्तम्भ चक्र—सूर्य नक्षत्र से दिननक्षत्र तक गिनें

(१) मूल-२-धनक्षय ; (२) मध्य-२०-सर्वसौख्य ; (३) अग्र-६, मृत्युप्रद शुभफलप्रद नक्षत्र में ही स्तम्भ-तथा ध्वजारोपण करें।

धनरक्षण—मुहूर्त्त (भौमचक्र)

सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिने, निम्न प्रकार रक्खें, निम्न फल समझें

(१) मूल	३	गृहस्वामी की मृत्यु, नाश,
(२) गर्भ	५	सौख्यप्रद
(३) मध्य	८	पुत्र-पौत्रादि सुख

(४)	पुष्प	८	मित्रनाश
(५)	अग्र	३	गृहस्वामी को सुख, सौभाग्य, पुत्र-धन, सम्पदाप्रद

नूतन गृह या नित्य भौमचक्र देखकर धन गिन कर रखना अभिवृद्धिकारक होता है।

गृहारम्भ के नक्षत्रादि मुहूर्त्त

तीनों उत्तरा, मृ० रो० पुष्य अनु० ह० चि०, स्वा० श० रे० शुभ हैं। रवि, भौम को छोड़ अन्य दिन शुभ, चन्द्रबल, रविबल मिलता हो, स्थिर लग्न हो, शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो, शुभ नवांश हो, तब थंभों का खड़ा करना शुभ होता है। अन्य कर्म अशभ हैं, परन्तु कूप, बावड़ी में शुभ है।

दुष्ट योग

वज्र-व्याघात, शूल-व्यतीपात, विष्कम्भ तथा परिध तथा रवि मंगल वार सर्वथा त्याज्य कहे हैं।

वास्तु शान्ति-अग्निचक्र

उपरोक्त समस्त अशुभ लक्षणों से उत्पन्न विघ्न की शान्ति तथा गृहप्रवेश, अग्नि, चोर, सर्प राक्षस, यातुधान, पिशाचादि, विघ्न, रोगोपशमनार्थ, आथर्वणी-वास्तु शान्ति करें।

वास्तुशान्ति होम में अग्निविचार निम्न प्रकार करें—जिस तिथि में वास्तु देवता-या-अन्य शान्ति करनी हो, उसमें अग्निवास ज्ञान हेतु उसी तिथि में एक मिलायें, उसी में उस दिन के वार की संख्या जोडें, योग में चार से भाग दें—शेष ३ या ४ (०) हों तो अग्निवास मृत्युलोक में है। सौख्यप्रद है। १ शेष से स्वर्ग में है, प्राणनाशक है ; २ शेष से पाताल में अर्थनाशक है।

गृहाहुति क्रमः

सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें

(१) सूर्य—३—अशुभ ; (२) बुध—३—शुभ ; (३) शुक्र—३—शुभ (४) शनि ३—अशुभ—(५) चन्द्र—३—शुभ , (६) मंगल—३—अशुभ (७) गुरु—३—शुभ ; (८) राहु—३—अशुभ ; (९) केतु—३—अशुभ हैं।

गृह प्रवेश

नूतनप्रासाद प्रवेश—यात्रावापिसी में गृह प्रवेश—जीर्णगृह प्रवेश, राजदर्शन में उत्तरायण में—प्रथम वास्तु पूजाकर—भूतबलि के उपरान्त शुभ होता है। शुभ नक्षत्र—चि०, अनु०, मृ०, रे० पुष्य, स्वा० ध०, श्र० मू०, वार-चं० बु० गु० शु० श० तिथि रिक्ता तिथियों को त्याग अन्य तिथियाँ।

गृहप्रवेश में वामार्क ज्ञान-व-फल

गृहप्रवेश में वाम रवि शुभ है, प्रवेश लग्न से आठवें स्थान से पंचम स्थानों में सूर्य हो, और गृह द्वार पूर्व दिशा में हो या घर का द्वार दक्षिण को हो ; अथवा गृहद्वार पश्चिम में हो और सूर्य प्रवेश लग्न से द्वितीय स्थान में हो अथवा सूर्य प्रवेश लग्न के ११ वें स्थान से ५ स्थानों में से किसी में हो और गृहद्वार उत्तर को हो तो वह वामार्क होता है, वही शुभ है।

गृह प्रवेश में लग्नशुद्धि—प्रवेशलग्न से ६; ५; १ : ४ : ७ : १० वें शुभग्रह हों, ३ : ६ : ११ वें पापग्रह हों, प्रवेश लग्न स्थिर हो चन्द्रबल शुभ हो— तब प्रवेश शुभ है।

अशुभ लग्न—शुक्ल पक्ष में लग्न से १:२:४:७:१०:५:६ में चन्द्र अशुभ है, ७:१० वें बैठे सभी ग्रह अशुभ हैं, इष्टकाल में शत्रु का नवांश हो तो अशुभकारक है।

गृह की आयु प्रमाण

लग्न में शुक्र, १० वें बुध ११ वें रवि और केन्द्र में गुरु ग्रह आरम्भ लग्न में हों तो गृह आयु २०० वर्ष। गृहारम्भ लग्न में गुरु, ४ थे शुक्र, १० बुध ६ वें रवि, ३ रे शनि हों तो १०० वर्ष। गृहारम्भ लग्न से १० वें गु० बु० शु० ११ वें रवि, भौम हों तो गृह आयु ८० वर्ष-लक्ष्मी धन-धान्ययुक्त आयु जानें।

ये साधारणतया वास्तु प्रकरण की आवश्यक विचारणीय बातें हैं। इनमें से समस्त अशुभ की तथा चिर कल्याणार्थ वास्तु शान्ति विधि कौशिक सूत्र-वैतान श्रौत सूत्र. शान्ति-कल्प, अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा निम्न प्रकार करें।

कर्म-योग-यज्ञ

उपस्थाय प्रथम जामृतस्य। आत्मनात्मनमभिसं बिवेश ।। (वा० यजु० अ. ३२ मं ११)
ऋतस्यतन्तुं विततं विवृत्य। तदपश्यत्तदभवदत्तदासीत् ।। १२ ।।

सत्य के पूर्व प्रवर्तक परमात्मा को उपासना करके आत्मा से परमात्मा में प्रविष्ट हुआ सत्य के फैले हुए धागे को पृथक् देखकर वैसा हुआ जैसा कि पूर्व में था। यह मानव की पूर्ण अवस्था है। इससे पूर्व तीन अवस्थायें हैं, प्रथम में (अ० वे० कां० २ सू १ मं० ४-५) एक बार द्युलोक: भूलोकसम्पूर्ण लोकों में भ्रमण कर आया हूँ। "द्वितीय अवस्था" (मं० ५) अमृत का फैला हुआ सुखप्रद मूल सूत्र देखने हेतु ही सब भुवनों में चक्कर लगाया। तृतीय अवस्था (मं० ४) विभिन्न जगत में अभिन्न का होना ही सच्चा सुख है। प्रथम (अज्ञानावस्था) २ (भोगावस्था) ३ (त्यागावस्था) ४ (भक्तावस्था) है। "स्वर्विद: व्रा: अभ्यनूषत ।।१।। अमृतस्यधाम विद्वान् ।२।। यस्तानिवेद सपितुष्पिताऽसत् ।।३।। व्रतपालक आत्मज्ञानी अमृत के धाम को जानकर उस की स्तुति करते हैं; वे पूर्ण समर्थ होते है। "यत्र विश्वं भवति एक रूपम्" १ यहाँ विविध विभिन्न जगत (विश्व) एकरूप होता है। 'सत: असत: च योनिं स: विव: ।।४।१।१ सत् असत् का कारण वह है यह यथायोग्य ज्ञानी जानता है। और ब्रह्म ब्रह्मण: उज्जभार (४।१-३) ब्रह्म ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है।

यज्ञ

"प्रथमायधास्य वेधर्म श्रीणन्तु" (४।१-२) सबके मुख्य आधारभूत परमात्मा के लिये यज्ञसिद्ध करो। ब्रह्म का अर्थ परब्रह्म, परमात्मा, आत्मा, ज्ञान, मंत्र, वेद, ब्राह्मण, भक्त, तप सदाचार, धन, अन्न, सूर्य, अग्नि, बुद्धि और प्रजापति हैं।

इस यज्ञ की शक्ति स्वाहा और स्वधा हैं। स्वधा से (स्वयं शक्तिमान्) (स्वाहा) से परित्याग, सर्वस्वार्पण है। "जुषेथां यज्ञम्" (६।६-८) यज्ञ का सेवन करो और यज्ञसे "अमृत मस्मासुधत्तम्" हमें अमृत प्रदान करो। "यज्ञं येविश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे (४।१४-४) उत्तम विद्वान् विश्वाधार यज्ञ को करते है।

"सदेवानामधिपतिर्बभूव" (०।५-२) वही यज्ञ देवों का स्वामी हुआ।

"जीव"

"जीवोमृतस्य चरति स्वधाभि अमर्त्या मर्त्येमा स योनिः। (६।१०-८) अमर जीव मर्त्यदेह के साथ समान योनि में उत्पन्न होकर विचरता है।

"अद्या ममार सह्य सं आन" (६।१०-६) वह आज मर गया, कल प्राण धारण करता रहा आदि-२। इसी जीव की उन्नति-कल्याण, अभ्युदय के लिये ही कर्म योग, यज्ञ ज्ञान आदि है। "ब्रह्मैनद्विद्यात्तपसा विपश्चित् (६।६-३)

माया

ज्ञानी कृच्छ्र तपसे इस ब्रह्म को जाने। माया हजज्ञे मायायाः (८।६।५) माया से माया उत्पन्न होती है (५।६।८) पाप से दूर रहो, प्रशस्त सत्कर्म करो और अमरत्व प्राप्त करो। (५।६-३) उस परमात्मा के-दुष्टों को पाशों से बाँधने वाले सेवक कभी भी नेत्र बन्द नहीं करते, पापियों को पाशों से बाँधने के लिये वे अपने पाश लेकर हर समय हर स्थान में तैयार रहते हैं।

सिद्धि प्राप्ति

सिद्धि-प्राप्ति के चार मार्ग हैं। (१) प्रभु भक्ति करना (२) श्रेष्ठों के आदर्श सन्मुख रख कर उस पर चलना (३) पाप का भय धारण करना (४) प्रतिबन्धक विघ्न तथा शत्रु (वाह्याभ्यन्तर से) दूर करना। इसी के लिये "स्वाहा" तन, मन, धन, सर्वस्व प्रभु, राष्ट्र, जनहित समर्पण करना।

यत् मे अस्ति तेन सह, सर्वतनूः, सर्वगुः सर्वात्मा सर्वपूरुषः त्वाप्रपद्ये त्वा प्रविशामि। (अं० वे० ११।१४)

जो भी कुछ अपना कहने योग्य हो, उसे लेकर, सब शरीर, सब इन्द्रिय, सब आत्म-शक्तियां लेकर तुझे प्राप्त होता हूँ, और तुझ में प्रविष्ट होता हूं। सर्वस्वसमर्पण की यह परम सीमा वेद में वर्णित की है। (कां० ६।४७-१) में यज्ञ में "वैश्वानर अग्निः" से प्रार्थना कि है कि यज्ञपति हमारी रक्षा करे, हमारी आयु बढ़ाये, हम चिरस्वस्थ रह मंगलमय सिद्धि प्राप्त करते रहें।

भूत, भविष्य, वर्तमान

"पुरुषएवेद सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" ऋ० वे० १०।९०।२ वा. य. ३०।२ अ० १९।६-८ वर्तमान काल में जो पुरुष है वही उसके भूत और भविष्य का रूप है और वह अमृत का स्वामी है। सारांश भूतकालीन पुरुषार्थ ही वर्तमान का और वर्तमान का पुरुषार्थ (कर्म) भविष्य का बीज है। यहाँ सतर्कता की आवश्यकता है, "पाप्मा मा माप्रापत् मृत्युः मा मा प्रापत् अहं द्यावा सलिले अन्तर्दधे (१७।१।२९) पापी और पाप मेरे निकट न आये, मुझे मृत्यु प्राप्त न हो, मैं अपनी वाणी को शुद्ध जीवन से युक्त करता हूं। यह यज्ञ में दृढ़ संकल्प, दृढ़ विश्वास, दृढ़ श्रद्धा हो।

यज्ञ का मुख

रोहितो यज्ञानांमुखम् अ० वे० (१३।२-३९) सूर्य ही यज्ञों का मुख होकर प्रकाश प्रदान करता है। "रोहितो यज्ञस्य जनिता अ० वे० (१३।१-१३) रोहित सूर्य हो यज्ञ का उत्पादक है। अग्नि यज्ञ का उत्पादक है। "रोहितो यज्ञं व्यदधात्" अ० वे० (१३।१-१४) रोहित ही अग्नि होने से यज्ञ को बनाता है। अग्नि ३ प्रकार की हैं, परब्रह्म, तेजोमय, देदीप्यमान, प्रकाश-दाता का अंश द्युलोक में, सूर्य अन्तरिक्ष में, विद्युत, पृथ्वी पर अग्नि है जो एक ही का अंश होने से एक ही हैं।" सएतिसविता। सो अग्निः। स इन्द्रः। (अ० वे० ४।१-५) वह सूर्य ही अग्नि और विद्युत है।

पूर्व में यह आ चुका है कि ब्रह्म से ब्रह्म उत्पन्न हुआ, वह ब्रह्म सूर्य ही है इसी से भूत उत्पन्न होते हैं, इसी से जीवन प्राप्त करते हैं उसी में अन्त में मिलते हैं। वह ब्रह्म है। एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदादित्यो दृश्यते (कौ० उ० २।१२) आदित्यो ब्रह्मेत्युपास्ते। छां. उ. ३।१९।१ यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः। तै० उ० २।८।१) आदित्यो ब्रह्म (मै. उ. ६।१६) आदित्येपुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपासते। वृ० उ० २।१।२। स धाता सविधर्ता। अ० वे० १३।४।१४ स एवमृत्युः सोऽमृतंसोऽभ्वं सरक्षः। सरुद्रः वसुत्वनिर्वसुदेयेनमोवा के०॥ तस्येमे सर्वेयातव उप प्रशिषमासते। तस्यामूसर्वा नक्षत्रावशे चन्द्रमा सह॥अ० १३।६।२५-२८

वही मृत्यु है; वही अमृत है, वही बड़ा देव है और वही रक्षक अथवा राक्षस है। वही रुद्र है, सब ये ग्रह नक्षत्र, चन्द्रमा आदि भी उसी के अनुशासन में रहते हैं। सूर्य की ८ किरणें हैं "आरोगो, भ्राजः पटरः, पतङ्गः, स्वर्णरो, ज्योतिषोमान्-विभासः। ते अस्मै सर्वे दिवम् आत-पन्ति" इति तैत्तिरीयक "कश्यपोष्टम्" स महामेरुं न जहाति "इति। यस्मिन्सूर्या अर्पिताः सप्तसाकम "इति च (तै. आ. १।७-१) यह "कश्यप" निरन्तर महामेरु पर स्थिर रह कर सर्व-जगत का निरीक्षण करती है। "दिवि त्वात्रिरधात्सूर्यामासाय कर्त्तवे। (१३।२।१२) महीने का विभाग करने के लिये तुझे (सूर्य को) द्युलोक में रक्खा है। यही ऋग्वेद मंडल १।५० के ९ मंत्र तथा (अ. वे. १३।२ के १६ से २४) में सूर्य ही ब्रह्म है। अग्नि परम्परया सूर्य का पौत्र है, शनि और यम पुत्र है। व्यक्ति भी सूर्य का ही अंश है। परब्रह्म का सत्व सूर्य में है वही अंश रूप से प्रत्येक प्राणी में आया है। यह सूर्य का ही अणुरेणु है। यही सूर्य जप, तप, यज्ञ योग, भोग, आरोग्य, स्वास्थ्य तथा परात्पर परब्रह्म की साधना का मूल है। इसी को योगी तथा याज्ञिक अपने-२ मार्गों से प्राप्त करते हैं।

सप्तचक्र योगक्रिया दर्शन व भेदन

चक्र जो मानव शरीर में है और जिनको भेदन कर योगीजन कुण्डलिनी जाग्रत करते हैं, ये ८ प्रकार के वर्णित हैं -

१. मूलाधार २ स्वाधिष्ठान ३ मणिपुर ४ अनाहत ५ विशुद्ध ६ आज्ञा ७ सहस्रार ८ शून्य, (सूर्य)

१. मूलाधार-चारपखडियों का; रंगलाल बीज मंत्र नीचे से परिक्रमा क्रम से वं शं षं सं।

२. स्वाधिष्ठान—छैपंखडियाँ: पीला बीज मंत्र उसी क्रम से बं भं मं यं रं लं।

३. मणिपुर—दस पंखडियाँ: नील कमल बीज पं फं तं थं दं धं नं डं ढं णं।

४. अनाहत—बारह पंखडियाँ: गुलाबी चं छं जं झं ञं कं खं गं घं ङं टं ठं।

५. विशुद्ध—सोलहपंखडियां किरमची, ऋं ॠं लृं लॄं अं अः इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः।

६. आज्ञाचक्र—(अग्निचक्र, ज्ञानचक्र) दो दल का: हं क्षं

७. सहस्रदल (ब्रह्मरन्ध) श्वेतकमल बीच में हल्का नील बिन्दु

८. शून्य चक्र

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
१ चक्र	मूलाधार रीढ़ की	स्वाधिष्ठान	मणिपुर	अनाहत	विशुद्ध	अग्नि आज्ञा	ब्रह्मरंन्ध्र	सूर्य
२ स्थान	हड्डी के नीचे गुदा पेढ़ू	लिंग	नाभि	हृत्कमल (हृदय)	कण्ठ	भ्रू मध्य	सहस्रार मूर्ध्नि	
३ जपसंख्या	६०००	६०००	६०००	६०००	१०००	— १०००	— १०००	
४ घ. प.	१-४०	१६-४०	१६-४०	१६-४०	२-४६	२-४७	२-४७	
५ वायु	अपान	अपान	समान	प्राण	उदान	प्राण	व्यान	
६ वाचा	—	—	परा	पश्यन्ति	मध्यमा	—	—	
७ शक्ति	गुप्ता, प्रासका कराला, विकराला क्रिया इच्छा	व्यंगता शारदा वाणी अमृता पूर्णा रोहिणी सावित्री	सर्वंगा सोमा या भद्रा	पद्मिनी सदर्भा रतिप्रिया वैजयन्ति	सर्वतोभद्रा प्राणधारिणी सप्त द्योतिनी ब्रह्मवाणी	महाकाली महालक्ष्मी इच्छाशक्ति	मूलाकृति कैवल्य	

			तक्षिणी	सौभद्रा	शर्वरि			
			सौन्दर्या	अत्रिमाया	लोहिता			
			शान्तमुद्रा	कुहवासिनी	यक्षिणी			
			विशाखा	धोकिनी	सौभाग्यदायिका			
			दर्शनी	रेखा	भानुमती			
			रुचिरा	श्रिया	मदालसा			
			लक्ष्मी ज्ञान					
			श्री रमा	तरङ्गिणी	शिखरिणी			
			(पार्वती द्रव्य)	तारा	छाया			
				गौरी (इच्छा)	विष्णु प्रिया			
					विश्वोदरा			
					माया			
					चित्र घण्टा			
					अव्यक्तस्वरात्म			
८ देवता	गजानन	ब्रह्मा	विष्णु	महेश	जीवात्मा	आत्मा	परमात्मा	
९ वर्ण	आरक्त	पीत	नील	धवल	धूम्र	शुभ्रस्फटिक	नानावर्ण	
१० पुरो	माया	कांची	अवन्ति	मथुरा	द्वारिका	काशी	अयोध्या	
११ वार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार	सोमवार	
१२ मुक्ति	सलोकता	सलोकता	समीपता	सरूपता	सरूपता	सायुज्यता	कैवल्य	
१३ मात्रा	अ	अ	उ	म	म	अर्धमात्रा	अर्धमात्रा	
१४ देह	स्थूल	स्थूल	लिंग	कारणदेह	कारणदेह	महाकारण	विज्ञान	
१५ अवस्था	जागृति	जागृति	स्वप्न	सुषुप्ति	सुषुप्ति	तुर्या	उन्मनी	
११६ अभिमान	विश्व	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	प्राज्ञा	प्रत्यगात्मा	निरभिमान	
७ भोग	सुख, दुःख	सुख, दुख स्थूल	प्रवावीत्त	आनन्द	आनन्द	आनन्दावभास	निरानन्द	
१८ गुण	रजोगुण	रजोगुण	सतोगुण	तमोगुण	तमोगुण	सतोगुण	निर्गुण	

१९ तत्त्व	पृथ्वी	पृथ्वी	आप		तेज	वायु	आकाश
२० वेद	ऋग्वेद	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	सामवेद	अथर्वण	निर्वेद
२१ अग्नि	आहवनीय	आहवनीय	आवसथ्य	दक्षिणाग्नि	×	संवर्तक	ज्ञानाग्नि
२२ ऋषि	ईश्वर	इन्द्र	अंगिरा	ईश्वर	अग्नि	ईश्वर	परब्रह्म
२३ अष्टाँग	×	×	नाद	विन्दु	कला	जोतिरूप	विन्दु
२४ उपवायु	×	धनंजय	कृकल	देवदत्त	कूर्म	देवदत्त	नाग
२५ मुद्रा	ऐं-शुद्ध	क्लीं-क्षमा	श्रीं-वितत्	ऐं-विस्तृत	ह्लिंग	क्लीं मोक्ष	परमात्मप्रकाश
२६ आनन्द	परमानन्द सहजानन्द वीरानन्द योगानन्द	प्रशस्त कुरंग, गर्वगत अवज्ञ अविश्वास मूर्च्छित	सुषुप्त वृष्ण इच्छा पिशुन सल्लस मोह भय द्रोण कषाय विषाद	त्रैलोक्य वित्कर प्राण स्वपद अंश प्रकाश अनुताप क्रपद चित्तसंमत विकल्प महद विवेक अहंकृत	हुं फट् वंषट् स्वाहा स्वधा मन अमृत गांग शुद्ध रप धर नील धीम प्राण	सहज नित्य	निरानन्द

योग-समीक्षा

योग का मूल कुण्डलिनी है, यह दो शक्ति-स्रोतों पर आधारित है—१, सूर्य २, पृथ्वी हैं, इन्हीं को सहस्रार चक्र और मूलाधार-उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। उत्तर ध्रुव मस्तिष्क का मध्यविन्दु सहस्रार और दक्षिण ध्रुव काम-बीजमूलाधार चक्र हैं। इनको जोड़ने वाली मेरुदण्ड की सूक्ष्म शक्ति का नाम ब्रह्मनाड़ी है, उसी में अप्रत्यक्ष इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना (गंगा, यमुना, सरस्वती) हैं। सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा का प्रकाशित होना; सूर्य ही अग्नि है, यह पूर्व आ चुका है, इडा वाम भाग में पिंगला दक्षिण भाग में, इडा वामावर्त से, पिंगला दक्षिणावर्त से स्थित है। इडा में चन्द्र, पिंगला में सूर्य है। इडा शक्ति रूप पिंगला शम्भु रूप से हैं। लिंग मूल से ऊपर नाभि से नीचे कन्द तुल्य पक्षी के अण्डे जैसा उत्पत्ति स्थान है, यहां से ७२ हजार नाडियां निकली हैं, उनमें ७२ और उनमें से दस, उनमें से भी ये ३ मुख्य हैं। प्राणवाहिनी नाड़ियों में (१) इडा २ पिंगला ३ सुषुम्ना ४ गान्धारी ५ हस्ति ६ जिह्वा ७ पूषा ८ यशस्विनी ९ अलंबुषा १० कुहू (शंखिनी) मुख्य हैं।

ताले में ताली के तुल्य समस्त अवरोधों से छुटने का कार्य कुंडलिनी करती है। जागृत हुई कुण्डलिनी असीम शक्ति का प्रादुर्भाव करती है, इसी से नाद पुनः बिन्दु जागृत होते हैं। मंत्र वर्ण में अनेक शारीरिक मानसिक, इच्छा, शक्ति, ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तियाँ उभरती हैं, परा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी प्रखर होती हैं, रोगों-क्लेशों, आदि सभी बन्धनों से छुड़ा कर, अमृत-पान कराती है।

शरीर में—सप्तद्वीप मानवदेह में विराट

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीप समन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः॥ शिवसंहिता २।१।२

व्यष्टि (मानवदेह) में सुमेरुपर्वतः, सप्तद्वीप, समस्त सरितायें. सागर पर्वत क्षेत्र, क्षेत्र-पाल, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह, तीर्थ, और पीठ, देवता निवास करते हैं।

महायोग विज्ञान-के अनुसार-अस्थिस्थान में जम्बुद्वीप, मांस स्थान में कुशद्वीप, शिराओं में क्रौंचद्वीप, रक्त में शाकद्वीप ; त्वचा में शाल्मलीद्वीप, लोम समूह में प्लक्षद्वीप और नाभि में पुष्कर द्वीप विद्यमान है।

सप्तसागर

इसी प्रकार शरीर में सात समुद्र हैं। मूत्र में लवण सागर, शुक्र में क्षीर सागर, मज्जा में दधि सागर ; मेद में घृत सागर, नाभि में इक्षु सागर, रक्त में सुरासागर अवस्थित हैं।

शरीर में सप्त तीर्थ

मस्तिष्क में श्रीशैल, ललाट में केदार, नासिका और भौंओं के बीच काशी, स्तनों में कुरुक्षेत्र, हृदय में प्रयाग, मूलाधार में कमलालय तीर्थ हैं। (जाबाल दर्शनोपनिषत् ४।४८)

शरीर में नदियां

गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु, काबेरी, चन्द्रभागा, वितस्ता, इरावती, ये प्रमुख तथा ७२ हजार छोटी नदियां, पन्द्रह तिथियां, सात वार, २७ नक्षत्र ; १२ राशियाँ ; २८ योग ; ७ करण, ६ ग्रह उपग्रह, दशदिग्पाल, ५ लोकपाल इस मानव देह में हैं। (महायोग विज्ञान)

यह अथर्व काण्ड ११ सूक्त ७ में विवृत विवरण है।

ब्रह्मणो हृदयस्थाने कण्ठे विष्णुः समाश्रितः। तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटस्थे महेश्वरः (ब्रह्म विद्योपनिषद ४१)

शरीर में तीर्थराज

इंडाभागीरथी गंगा पिंगला यमुना नदी. इड़ापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती ।।

त्रिवेणी सङ्गमोयत्र तीर्थराजः स उच्यते। तासां तु संगमे स्नात्वा धन्योयाति परांगतिम्। (म० यो० वि०)

इड़ागंगा, पिंगला यमुना और इंडा पिंगला में सुषुम्ना सरस्वती का संगम तीर्थराज है। यही शिव तीर्थ है, इड़ा को वरणा, पिंगला को असि, कह कर इनके साथ सुषुम्ना का जहाँ संगम है वह वाराणसी है। शिव संहिता ५। १२६—१२७ आज्ञाचक्र के दायें भाग में वाईं ओर जाने वाली इडा ही गंगा है।

वाणी

कारण देह का सम्बन्ध आत्मा से है, आत्मा अन्तःकरण को प्रेरित करती है, अन्तःकरण मन को ; मन बुद्धि का प्रेरक है ; यह जिह्वा के माध्यम से प्रगट होने वाली वाणी है। इस वाणी की साधना को मात्र वाणी (शब्द) नहीं समझना चाहिये। इसे अन्योन्याश्रय भाव से अन्तःकरण की शुद्ध करने वाली समझें।

वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानांमाताऽमृतस्यनाभिः। तै. ब्रा. २। ८। ८। ५

ऋत् का प्रथम सृजन अविनाशी "वाक्" है यही वेदों की माता है, यही अमृत नाभि है।

क्ल यदवाग्वदन्त्य विचेतनानि। राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।

चतस्त्रव्रलर्ज्जदुदुरेपयांसि। क्वल्विदस्याः परमं जगाम। (सरस्वती रहस्योपनिषद्) वाक विश्वव्यापिनी है, समस्त प्राणियों में व्याप्त है। अल्पचेतनों में भी विद्यमान है। देवों को सञ्चालक है, न जाने उसे कब जान सकेंगे।

स व वाचमे प्रथमामत्यवहत् सा यदा मृत्युमत्यमुच्यतसोऽग्निरभवत् सोऽयमग्निः परेण-मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यते। बृ. आ. उ. १। ३। १२

वाक् देवता को प्राण ने मृत्यु से पार किया, यह "वाक्" अग्नि बनकर अमर असीम शक्तियों से ओतप्रोत हो ज्योतिर्मय हो गई।

"मंत्रशक्ति"

मन्त्रशक्ति असीम है। जप से विकसित होती है। साम क्या है? स्वर की गति छा. उ. १।८।४

तस्य हैतस्य साम्नोयः स्वंवेद। भवति हास्य स्वेतस्य वै स्वर एव स्वम्। बृ.आ. १।३।२५

सामका रूपस्वर है जो स्वर साम को जानता है वह उसे प्राप्त भी कर लेता है। स्वरन्ति त्वासुते नरो वसो निरेकउक्थिनः ।। ऋ. ८। ३३२।।

भगवान् अन्तःकरण (हृदयकमल) में से बाहर निकलने के लिये भक्ति भरे स्वर (वेदस्व) के रूप में प्रस्फुटित होते हैं। स्वरेणसन्धयेद् योगम् ।। (ब्रह्म विन्दूपनिषदि)

योग (जीवात्मा—परमात्मा ; अपान-प्राण, भक्त भगवान् यजमान—यज्ञ—यज्ञपति) की साधना स्वर की साधना स्वर के माध्यम से करें। स्वरन्ति त्वा सुतं नरो वसो निरेक उक्थिन। ऋ० वे० ८। ३३। २ अभ्युदय के लिये प्रयत्न पर प्राणी—भावनापूर्वक स्वरसाधना करते हैं।

स्वरन्ति घोषं विततं ऋतायवः। ऋ. वे० ५।५४। १२ इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र संव्याप्त ब्रह्मघोष को उपर्युक्त योगवेत्ता के रूप में परिणत करते हैं।

वाक् शक्ति ही अग्नि है। यह अग्नि सर्वत्रं तेजस्विता, ऊर्जा प्रखरता एवं आभा उत्पन्न करती है। इसी कारण वाक् शक्ति अग्नि भी है। त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ऋ १०। ९८। ९ पूर्व काल में ऋषि वाणी द्वारा अग्नि को प्राप्त करते रहें।

अथर्ववेद ।। शिवास्त एका ।। मन्त्र में वर्णित वैखरी, मध्यमा, परा तथा पश्यन्ती वाणियों के प्रभाव के अनुरूप ही उनके नाम वायु, सूर्य दिग्पाल ; चन्द्र नाम भी दिया गया है। अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा ऽक्षिणो प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशत् चन्द्रमा मनोभूत्वा हृदयं प्राविशत्। (ऐ. ब्रा. २।४।२ अग्नि ने वाक् बनकर मुख में प्रवेश किया। नाक में होकर वायु देवता, सूर्य नेत्रों में; दिग्पाल कानों में प्रविष्ट हुए। चन्द्रमा मन बनकर हृदय में प्रविष्ट हुए।

देव, वेदमन्त्र, वाक्, जप, स्वर, के तात्त्विक सरूप है जो इसे समझ कर मंत्र-शक्ति को जाग्रत करते हैं, वे मूर्तमान चमत्कार का प्रत्यक्षीकरण करते हैं।

अ. वे. १०।८।४१ ये उच्चतर रूप से गायत्री को विशेष रीति से प्राप्त करते हैं।

वाणी और वाणी का मूल

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।।६।।

मारुतस्तूरसिचरन्मन्द्रं जनयतिस्वरम् ॥७॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्यमारुतः ।

वर्णाञ्जनय ते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥८॥ पाणिनीय शिक्षा

(१) आत्मा ही बुद्धि से युक्त होकर विशेष प्रयोजन का अनुसन्धान करता है। (२) तदनन्तर उस प्रयोजन को प्रकट करने के लिये मन की नियुक्ति करता है (३) मन शरीर के अग्नि को प्रेरित करता है, (४) वह अग्नि वायु को गतिमान करता है (५) वह वायु वक्ष (छाती) के ऊपर आकर मन्द्र स्वर करता है (६) वह मूर्धा में आकर मुख के विविध स्थानों में आघात करताहै, (७) विविध स्थानों में आघात होने के कारण विविध वर्ण उत्पन्न होते हैं, "वही" वाणी है।

इस प्रकार वाणी का मूल स्थान-आत्मा है जैसा कि ऋ. वे. ७।१।१ में वर्णित है कि "मानसा धीती वाचः अग्रं अनयन्" यह आत्मोन्नति का साधन कहा है।

अथर्व ९।(१०) १५।२७-२८ तथा ऋग्वेद १।१६४ के अनुसार ब्रह्मज्ञानी मनन कर वाणी के चार पैरों (पादों) को जानते हैं।

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयंति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।४५।।

इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः ।।४६

उर्पयुक्त चार पादों में से तीन हृदय में गुप्त हैं, प्रगट होने वाला चौथा मनुष्यों की भाषा है उस वाणी का मूल स्थान एक ही सत्य वसु आत्मा है। इसे ज्ञानी इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि यम, मातरिश्वा आदि नाम से वर्णित करते हैं।

मन्त्र, वर्ण माला पद स्वरूप स्वर ही है। इसी की योगी योग में, कर्मकाण्डी, यज्ञ में जपादि में, स्वर, (मंत्र) वाणी को प्रकृष्ट स्थान मानते हैं।

रोग

रोग का मूल पाप है। पाप का कारण मन, बुद्धि, अन्तःकरण हैं। इनके द्वारा ज्ञानेन्द्रियों और केर्मन्द्रियों के पाप होते हैं। पाप विना भोगे नष्ट नहीं होता नाभुक्तं क्षीयते कर्म "अवश्यमेव हिभोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाऽशुभम" यह पूर्व में आ ही चुका है। "मार्कण्डेयपुराण" कर्मफल (१६; १७; १८; १९) में वर्णित है किये पाप पुण्य के फल भोगे विना कर्मवन्धन से छुटकारा नहीं होता। जो पापी हैं वे ही दरिद्र होते हैं। नाना क्लेश; भय; संकट; सन्तापों से जकड़े हुए बेमौत मरते है,

आधिक्षयेणाधिभवाः क्षीयन्ते व्याधयोऽप्यलम् ।

शुद्धया पुण्यया साधोक्रियया साधुसेवया ॥

मनः प्रयाति नैर्मल्यं निकषेणेव काञ्चनम् ।

आनन्दो वर्धते देहे शुध्दे चेतसि राघव ॥

सत्व शुद्ध्या वहन्त्येते क्रमेण प्राण वायवः ।
जरयन्ति तथान्नानि व्याधिस्तेन विनश्यति ।। (योग वाशिष्ठ)

शरीर के रोग व्याधि, मन के रोग आधि कहलाते हैं। इन दोनों का कारण विवेक की कमी और मूर्खता की प्रबलता है। अविवेक से मन बेकाबू होकर, अभक्ष्य भक्षण, अगम्य गमन, अस्त व्यस्तता, अनियमितता, दुष्टसंग, मस्तिष्क में दुर्विचार, भरे रहता है। मस्तिष्क दूषित होने पर नाड़ियां शिथिल हो जाती अंग काम करना छोड़ देते हैं, प्राण शक्ति का संचार अस्त-व्यस्त हो जाता है, है और नाना रोग उत्पन्न हो नाना भांति दुःखदायक हो जाते हैं।

मानसिक विकारों से शरीर रुग्ण होता है

प्रायश्चित्त

इन कृतकर्मो के बन्धन, आधि-व्याधियों से मुक्त होने के लिये एक मात्र साधन "प्रायश्चित्त" ही है। सारांश यह कि ये पाप के अनुपात से कई गुना पुण्य करना+प्रायश्चित्त है। यह पृथक् विचार कर देखें।

मुक्ति

उपर्युक्त-देह चार प्रकार का-स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और भेषज भी ४ प्रकार की है १. आथर्वणी, २. आंगिरसी ३. दैवी और ४. मानुषी और वाणी भी चार प्रकार की कही है परा, पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी तथा मुक्ति भी चार प्रकार की है-सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, और सायुज्य।

१. सारूप्य :—जो भक्त ऐसी प्रबल सदिच्छा, व क्रियायें करता है कि मैं अपने इष्ट के ही रूप में लीन हो जाऊं; वैसा ही हो जाना सरूपता मुक्ति है।

२. सालोक्य :—जो ज्ञानी भक्त ब्रह्म लोक; सत्य लोक, विष्णु लोक आदि में जाने का दृढ़ संकल्प व अनुष्ठान करता है; वह मरणोपरान्त उसी लोक को प्राप्त करता है

३. सामीप्यमुक्ति—जो ज्ञानी भक्त अपने इष्ट के सामीप्य का सङ्कल्प-व्रत अनुष्ठान करता है वह उसकी समीपता में पहुँचता है, यह सामीप्य मुक्ति है।

४. सायुज्यमुक्ति—जिन महापुरुषों की मुक्ति होती है, उनमें अपने मूल स्वरूप (महाकारण) में मिलने की प्रबलतम इच्छा होती है, ऐसी अवस्था में उनका सत्त्वगुण प्रबल हो जाता है; तब वह शरीर त्याग करता है, "स्थूल" शरीर त्यागने के उपरान्त "सूक्ष्म" शरीर में जो पृथ्वी तथा जल तत्व का आवरण था-उसमें से प्रथम पृथ्वीतत्व-अपने मूलतत्व में मिल जाता है, उसके उपरान्त जलतत्व जाता है और मूलभूत जलतत्व में मिल जाता है। उसके उपरान्त "तेज" कारण शरीर में स्थित हो जाता है। कारण शरीर में स्थित—"तेज" "वायु" तथा "आकाश" तत्वों में से प्रथम आकाश तत्व, आकाश तत्व में मिल जाता है; तदुपरान्त "तेज" और "वायु" तत्व "महत्तत्व" अर्थात "महाकरण" शरीर में विलीन होते हैं। यह अन्तिम चतुर्थसायुज्य मुक्ति कहलाती है।

अथर्व कां २ सू० ३४ मं ५ "दिवंगच्छ। देवयानैः पथिभिः स्वर्ग याहि। ज्योतिर्मय (प्रकाशवान) स्थान प्राप्त कर; देवमार्ग से स्वर्ग में जो यह अन्तिम सिद्धि—प्रकाशमार्ग तथा प्राण को वशी करने से होती है। इसी में वर्णित है। "पर्याचरन्तं प्राणं" चारों ओर संचार करने वाले प्राण को स्वाधीन करें। यह प्राण का संचार जहां योग्य रीति से नहीं होता है वहां रोग होते हैं। प्राण को अपनी इच्छा से प्रेरित करने की शक्ति प्राप्त होने से सब शरीर नीरोग और दीर्घायुष्य अमरत्व निश्चित ही प्राप्त हो जाता है।

मुक्ति का मार्ग

अ. कां २ सू. ३ मं ३—ये दोध्याना: मनसा चक्षुषा च वध्यमान अनुअन्वैक्षन्तः॥ स्वयं तेजस्वी होते हुए, पूर्वोक्ततपोऽनुष्ठान से अपना तेज जिन 'महात्माओं ने बढ़ाया है—वे बद्ध हुए को मन से, नेत्र की अनुकम्पा की दृष्टि से देखते हैं "वे ही मुक्ति के अधिकारी हैं" वे ही समस्त देहों के बन्धनों से छूट सकते हैं और कैवल्यधाम में पहुंच कर विराजमान हो सकते हैं।

मं.३—४ :—उत्तम मध्यम और अधम पाशों से मुक्त होने तथा निष्पाप हो पाप-बन्धन से मुक्त होने योग्य हों ऐसी प्रार्थना की गई है।

कां. ६ सू. १२३ मं. २—सत्कर्मी परमधाम में स्थित होता है, यह सुनिश्चित है। यज्ञ-कर्त्ता उसी धाम में पहुँचता है, उसका इष्टापूर्व से स्वागत करो–यह वर्णित है।

मंत्र ४—जो अन्न पकायें; दान दें, यज्ञ, जप, उपस्थानादि करें—इनसे मैं कभी भी निवृत्त न होऊं—प्रार्थना की है।

कां.६ सू.१ ११—मं. १:--जो बद्ध है और पाप बन्धन से मुक्त होने को आक्रोश करता है उसकी मुक्तता होती है—जो उन्मत्त नहीं होता उसका अभ्युदय होता है।

मं. ४ व ५ :—दैवी और राक्षसी पाप करने के कारण जो उन्मत्त होते हैं उनका उपाय (यज्ञादि) करके उन्माद को दूर किया जा सकता है।

प्राण का आने का मार्ग

प्राणविषयक अ० वे० कां० ११ सू. २ के पुष्टि अ० वे० कां १० सू. २ से भी हो रही है।

मं. २६ मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः॥ २६

प्राण मस्तिष्क के ऊर्ध्व भाग में ब्रह्मरंध्र में होकर शरीर में सञ्चार करता है, यह आगमन का प्रथम चक्र है और आठवें मूलाधारचक्र में पहुँचता है। योगी का मार्ग विपरीत होता है, इसीसे वे मूलाधार चक्र का प्रथम भेदन कर प्रथम चक्र ब्रह्मरन्ध्र जो अब (विपरीत दशा में) आठवाँ है, उसका भेदन करता है।

कां. १० सू. २ मं ३१—"अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। आदि...... से अष्ट-चक्र जो चित्र में निर्दिष्ट हैं, सम्पुष्टि की है।

आदित्य उदयन यत्प्राचां दिशं प्रविशति तेन प्राच्यां प्राणान रश्मिषुसंनिधत्त। प्रश्नोपनिषद १। ६—६) सूर्योदय की किरणों द्वारा प्राण पहुँचता है। यह सूर्य ही प्राण स्वरूप वैश्वानर अग्नि है।

(घेरण्डसंहिता ५। ८४) के अनुसार प्रतिदिन में श्वास २१६०० बार चलता है। १ मिनट में १५ बार ; एक घंटे में ९०० बार चलता है।

हंकारेण वहिर्याति, स कारेण विश से पुन: "षड्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्यै—कविंशतिः। अजपा नाम गायत्री जीवो जपति सर्वदा"

षडचक्र भेदनक्रिया "योग चूड़ामणि उपनिषद्" १। ३१-३५ तथा "ध्यान विन्दु" (६१-६५) के अनुसार १ ध्यान २ जप ३ अवस्थालय ४ वृत्ति निरोध ५ षाण्मुखीमुद्रा योग ६ तथा देवयान मार्ग, कुण्डलिनी जाग्रत करने के लिए कहा गया है। ये हठयोग क्रिया की हैं परन्तु राजयोग क्रिया में कुण्डलिनी जागरण का सुलभ, सरलतम मार्ग अजपाजप उपर्युक्त कहा है। इसका "अजपाजप" का संकल्प प्रात: उठते ही कर लेने से जप का फल मिल जाता है। जिसकी कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है, मृत्यु पर विजय, सर्वसिद्धि प्राप्त करता हुआ दिव्य लोकों का भ्रमण कर, कैवल्यधाम प्राप्त करता है।

परलोक–लोक लोकान्तरगमन

जब कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है तब मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त चक्रों के अधिष्ठान देवों के लोकों के क्रमश: एक के बाद दूसरे के भ्रमण व देवों के साक्षात्कार होने लगते हैं।

ब्रह्म लोक

उनमें से ब्रह्मलोक में समस्त ऋषि ; मुनि, साधक सिद्ध पृथक् २ मृगासन, व्याघ्रासन, कुशासनों पर भूमितल में ध्यानावस्थित हैं, उन सभी के मध्य उच्च आसन पर ब्रह्मा जी ध्यान-मग्न हैं। "विष्णुलोक" :—यह एक विशालतम राज्य-सा है ; सुन्दर, स्वच्छ राजप्रासाद से बने हैं—मध्य में श्री महालक्ष्मीजी के साथ श्री विष्णुभगवान् विराजमान हैं। इधर उधर देव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध जन खड़े उपस्थानकर न्याय अभ्युदय की कामना कर रहे हैं।

शिवलोक :—वर्फ से आच्छादित कैलाश शिखर पर श्री सदाशिव श्रीपार्वतीजी के साथ विराजमान हैं। नन्दीश्वर, सर्प गणेश, तथा समस्तगण आज्ञापालन को उत्सुक हैं।

स्वर्ग लोक :—अत्यन्तभव्य-मणि आदि विविधरत्नों की बनी वीथियां हैं उनसे चमक दमक रहा है, सुन्दर नगर-भवन, उद्यान, वाटिकायें, सदा खिलने वाली पारिजातादि पुष्पों की सुगन्धि से पूर्ण हैं सभी प्रकार सुविधायें हैं, सभी स्वतन्त्रता से जप-यज्ञ आदि २ में तल्लीन हैं।

पितृलोक

पितृलोक में जीव "वासनादेह" में बँधा हुआ है। कोई भी सुखी प्रतीत नहीं होता।

विरले विवेकी जीव अपने अगले जन्म की प्रतीक्षा में हैं। कुछ सूक्ष्म शरीर से भोग भोगने का वृथा प्रयास कर रहे हैं, पितृलोक में भारी भीड़-सी है।

नरक लोक—यहाँ तो पापियों का ही समुदाय स्वकृत निन्द्य, जघन्य कर्मों के फल भोग रहे हैं। यमलोक तथा शिवलोक से सेवक आकर इनके अनिष्ट कर्मों के अनुसार यातनायें दे रहे हैं।

प्रेत आत्माओं को भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान होता है।

ये वासना देह से छुटकारा पाने का यत्न नहीं करते, ये पूर्व देह के मद मत्सर, ईर्ष्या या सम्बन्ध निभाने में व्यस्त होते हैं। कोई अपने पुरातन वैर के लिये देहधारियों को पीड़ित करते हैं।

वाणी का द्वितीय चमत्कार

समस्त देवगण यज्ञ के, यज्ञ-मंत्र के अधीन हैं। मन्त्रोच्चारण में ऋषि देवता छन्द तथा स्वरों का महत्व दिया जाचुका है।

कर्म-सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीर के माध्यम से मन, वाणी, बुद्धि और अन्तःकरण की प्रेरणा से ही होता है। इनकी उन्नति, पवित्रता, यज्ञ तथा यज्ञपति की उपासना से ही होतो है। व्यष्टि में स्थित देवगण को जागृत करना ही मानव का ध्येय हो। देव सविता प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतनः पुनातु वाचस्पतिर्वाच न स्वदतु ॥ यजु० ३०—१॥

सत्कर्म और प्राण

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पताम्। (यजु. ९।२१;१८।२९;२२।३३)
प्राणश्चमेऽपानश्च मे व्यानश्चमे असुश्च मे यज्ञेन कल्पताम्॥ (य० १८।२)
प्राणश्चमेयज्ञेन कल्पताम्॥ (यजु. १८।२२)

यज्ञ सत्कर्म का नाम है। यज्ञ अनेक प्रकार से होता है। इसी को लक्ष्यकर जीवात्मा प्रार्थना करता है कि मेरी आयु यज्ञ से बढ़े, मेरा प्राण यज्ञ से समर्थ हो। मेरे प्राण, अपान-व्यान आदि प्राण-यज्ञ द्वारा बलिष्ठ होते हुए यज्ञार्पित हों।

प्राणदाता अग्नि

प्राणदा, अपानदा, व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः॥ (य० १७।१५)

प्राणपामे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्चमे। वाचोमे विश्व भेषजो मनसोऽसि विलायकः य० ॥२०,३४ तू प्राण, अपान, व्यान, तेज और बन्धन से स्वतन्त्रता देने वाला है। तू मेरे प्राण अपान, चक्षु, श्रोत्रादि ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियों का रक्षक है। मेरी वाणी के दोष दूर करने वाला, मन; बुद्धि अन्तःकरण को पवित्र करने की भैषज्य है।

अयंपुरोभुवः। तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनः॥ (य० १३।५४)

यह आरो भुवर्लोक है, उसमें रहने से ही प्राण भौवायन है। बसन्त प्राणायन है। भूर्लोक (पृथ्वी) अन्तरिक्ष-भुवर्लोक है। यही प्राण का स्थान है, यही वायु का स्थान है, प्राण का ऋतु बसन्त है। फल-फूल, पल्लव, सौगन्ध्ययुक्त शीतल-मन्द पवन सृष्टि को नवजीवन प्रदान करते हैं। यह प्राण के यज्ञ द्वारा पवित्र होने पर सम्भव है।

प्राण के साथ इन्द्रियों का विकास

पुनर्मनः पुनरायुर्मे आगन्पुनः। प्राणः पुनरात्मा म आगन।
पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्। वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा।
अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्॥ (य० ४।१५)

मेरा मन, आयुष्य; प्राण; आत्मा; चक्षु; (दृष्टि) श्रोत (श्रवणशक्ति) आदि स्वस्थता पूर्ण पुनः प्राप्त हो। शरीर (सूक्ष्म, प्राण) का रक्षक सर्व हितकर्त्ता आत्मा पापों से हमारी रक्षा करे। इन शरीर की शक्तियों का लीन या क्षीण होने का कारण पाप कर्म है, जो प्रत्यक्ष ही है। यही पुनर्जन्म का ज्वलन्त प्रतीक भी हैं। यह आत्मशुद्धि से ही पुनः पूर्ववत ही प्राप्त होता है, यह वेद वाणी है। इससे अथर्व (३।१६।१); (२।२८।३) की पुष्टि होती है।

"प्राणापानी मृत्योर्मा पातं स्वाहा"। मेमं प्राणोहासोन्मो अपानः॥
प्राण अपान मुझे मृत्यु से बचायें। प्राण अपान इसको न त्यागें।

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्याव: पाशेभ्योमुञ्च॥ ४॥ वातः प्राणः अथर्व (१६।४४) प्राण हमारे प्राण का रक्षण कर हे जीवनाधार, हमारे जीवन को सुखमय बना। हे अनियम! अनियम (दुर्गति) पाशों से हमें बचा।

संहार कर्त्ता देव रुद्र हैं, ये एकादश रुद्र कहलाते हैं। वे १० प्राण ११ वाँ आत्मा ही है। कतमेरुद्राइति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः॥ इन की पवित्रता स्वतन्त्रता से ही आत्मा पापों से रहित पवित्र बलिष्ठ होता है।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तंत्वा परमेष्ठिन्। पर्यानिरायुषा वर्चसा दधातु (अ०१३।१।१७

यहीं प्राण हमारा मित्र बने। हे परमेष्ठिन्? हमें वह दीर्घायु और तेज के साथ प्राप्त हो। इस उपासना से मानवी अभ्युदय का सम्बन्ध दीर्घायुष्य, नैरुज्यप्रद होता है। (अ० वे० ८।१।६) तथा ८।२-१३) को ये ऋचाएँ निर्विवाद, सक्ष्म तथा वासना देह एवं प्राण शरीर के समस्त पाप को नष्ट कर के दीर्घायुष्य अमृत प्रदान करती हैं। यही नहीं अ० वे० कां० १६ सू०३८ मं० १-२ में वर्णित है कि जिसके शरीर में रोग नाशक गूगल का उत्तम गन्ध व्यापता है, उस को राजयक्ष्मा की रोग पीड़ा नहीं होती तथा दूसरे का शपथ (शाप-कृत्या, अभिचार नजर) भी नहीं लगती है। इससे सभी प्रकार के यक्ष्मादि भयङ्कर रोग-शीघ्रधावक हरिण के तुल्य कंपते हुए भाग खडे होते हैं।

नतं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथको अश्नुते। यं भेषजस्यं गुग्गुलोःसुरभिर्गन्धो अश्नुते बिश्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगादश्ला द्रवेरते॥ तथा अ० वे० कां ३।११-२ यदि क्षितायुर्यदिवा-

परेतो रोग के कारण क्षीण ग्रायुवाले अथवा सांसारिक सुखों से दूर हो, या मृत्यु के निकट ग्राचु के रोगी को भी महारोग के कठिन भयंकर पाश से छुड़ाता हूं। इस रोगी को सौ शरद् ऋतुओं तक जीने के लिये यह प्रयत्न (यज्ञ) है।

इस विषय में यजु २-५ का भी उद्घोष है।

दिविविष्णु व्यक्तिस्त जागनेत छन्दसा। ततोनिर्भयोक्तायोऽस्मान द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अन्तरिक्षेविष्णुव्यक्र स्त त्रैष्टुतेछन्दसा सतोनिर्भक्तो०।
पृथिव्यां विष्णु व्यंक्रस्तंगायत्रे छन्दसा। सतो निर्भक्तो,
अस्यादन्नात्। अस्येप्रतिष्ठान्ये। अगन्यस्वः। सं यो तेषाभूम्।

अग्निन में प्रक्षिप्तचरु (हव्य) रोगनाशक, पुष्टिप्रद-जलादिशोधक पदार्थों मान्त्रिक शक्ति यज्ञ से इहलौकिक और पारलौकिक समस्तविघ्न, बाधाओं आधि व्याधियों को नष्ट कर नीरोगता, अमरत्व तथा परब्रह्म महाकारण शरीर में तन्निहित होने में समर्थ होते श० प० २।४,३।२-२—विस्पष्ट कर रहा है।।

एतेन वैतज्ञेनेष्ट वोभयीनामोषधीनां याश्चमनुष्या उपजीवन्ति याश्चपशवः कृत्यामिव त्वत् विषमिव त्वत् अपजघ्नुः तत आश्नन् मनुष्या आलिशन्तपशवः।।

इस यज्ञ के द्वारा ही उन समस्त औषधियों के स्वास्थ्यनाशक विष-प्रभाव को नष्ट कर दिया गया, जिनका उपयोग मनुष्य, पशु करते हैं, परिणामस्वरूप अन्नादि सेवन करने योग्य हुए। इस विषय में गोपथ ब्रह्मण (१।१९) औषीतकि ब्राह्मण (५।१) में विवृत विवरण साक्षी है।

अ० वे० कां ८ सू० २ आयुष्यगण में वर्णित-मं. ९/१० में कहा है कि यद्यपि मृत्यु का मार्ग अजेय है तथापि ज्ञान-कवच से १०१ मृत्युयें, नैर्ऋतिपाश, दूर किये जा सकते हैं यथा का ६+६३ में दिये निर्ऋति, यम, मृत्यु, क्रव्यादग्नि, वरुण के पाश टाले जा सकते हैं। कां० १३+३ में ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञानी को कष्ट देने के प्रति ब्रह्मास्त्र (शापरूप-वाणी) का प्रयोग है

यइमे द्यावा पृथिवी जजान योद्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतंगो अनु विचाकशीति।।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उदवेपय ऐहि तप्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्यप्रति मुञ्च पाशान्।। १३।३-१

जगतस्त्रष्टा, जगन्निवास, तेजोमयप्रकाश, दिशा उपदिशाओं का आश्रय विश्वाधिपति उसपर अत्यन्त क्रुद्ध होता है जो, ज्ञानी ब्रह्मण को कष्ट देता है। उसे कम्पायमान करता है, क्षीण बल बना कर अन्त में उपर्युक्त बन्धनों में पाशों में डालता है।

यह बन्धन सूक्ष्म तथा प्राण शरीर के ही हैं भोग दुःख स्थूल द्वारा भोगने पड़ते हैं इन पर औषधि, शल्यक्रिया, सूची भेदन आदि कदापि कार्य नहीं कर सकते- इनका निवारण-उपर्युक्त ज्ञान-कवच से ही होता है अन्यथा नहीं, यही आथर्वणी भेषज है।

इसीलिये अ० ८।२-६ मंत्र से देवों के उपयुक्त अस्त्र, पाश तुझ पर न गिरें, तुझे मृत्यु से दूर करता हूँ, प्रेताग्नि को भी दूर करता हूँ-तेरो अमित जीवन की मर्यादा निश्चित करता हूँ इसी के मं० १२ में कहा है तेरे शत्रु (बाह्य-आभ्यन्तर) विपत्ति, रोग, बिनाशक-घातक क्षीण करने वाले सभी कारणों को दूर करता हूँ। मं० १६/१८-चावल, जौ आदि कृषि धान्य गौ आदि के दूध आदि को विष रहित, पाप वृत्ति तथा रोगों को हटाने में समर्थ बनाता हूँ उनसे भी अवभयभीत न हो

मं० २४ अब तू नहीं मर सकता डरने का अब कोई कारण नहीं, जहाँ अन्धकार नहीं वहाँ मृत्यु कभी भी नहीं पहुँचता है तुझे ज्ञान के प्रकाश में ले आया हूँ मं० २५-यही ज्ञानऔर दीर्घ जीवनीय विद्या है यहां गौ, घोड़ा, पशु, पक्षी भी दीर्घायु होते हैं। यह भेषज यज्ञ साध्य ही है जो स्थूल, सूक्ष्म कारण को प्रकाश में लाती है।

यज्ञ का प्रभावशाली वर्णन

अ० कां ६/३२-१ व २ :—इस पीड़ा देने वाले-यातुधान, राक्षस, कीटाणु के संहार करने वाले हवि का अग्नि की प्रदीप्तावस्था में उत्तम विधि से हवन करो। यही इनको यम के पास पचहुँचाने वाली अनन्त अप्रेय शक्ति वाली भेषज है। कां ५/२९-१ से ३ :—हे जात वेदाग्ने तू वैद्यों का भी वैद्य भेषज निर्माता रोग के कारणों का ज्ञाता निराकरण कर्त्ता है। तू सभी देवों से सम्पर्क करता हुआ ऐसी व्यवस्था कर कि हम को पीड़ित करने वाले, खा जाने वाले, क्षीन करने वाले, दयनीय दरिद्री बनाने वाले रोगों की मर्यादा नष्ट हो जाये और, गौ, अश्व, मनुष्य सभी प्राणियों को नीरोग अवस्था के साथ दीर्घायुष्य प्राप्त हो सके।

कां ७/७४ सभी प्रकार की गण्डमालायें निवारणार्थ "त्वाष्ट्रेण वचसा) सूक्ष्मता उत्पन्न करने वाली वाणी से तथा" जातवेदः इहविश्चाहा सुमनाःऽदीदिह "अग्ने हमसब उस तुझ दीप्त हुए को निरोग प्रजा वाले होकर प्राप्त हों। "मूलेन सर्वा विध्यामि' इस तेरी मूलभूत शक्ति से भेदन करते हैं।

यज्ञ से ज्वरनिवारण

अ० कां ५।२२—१:—अग्निः, सोमः ग्रावा, वरुण आदि पवित्र बलशाली देव और वेदी, कुशा, प्रदीप्त समिधायें से ज्वर प्रभृति रोगों, द्वेषों को दूर करें।

यज्ञ से यक्ष्मरोगनाशन

अ० कां १२।२—१—जो रोग पशुओं ; मनुष्यों में हैं यहां से दूर हो जावें। सभी स्वस्थ और नीरोग हों। मं.२—सभी रोग दुराचारी, पापियों के यहां शरण लें। मं.३ प्रेतदाहक अग्नि यदि किसी घर मेंआई हो तो एक मास उपरान्त पुनः कभी न आवे। मं ४ प्रेतदाहक अग्नि दूर रहे और जातवेदा यज्ञीय अग्नि प्रदीप्त रहे। मं २५ वृद्ध के पीछे तरुण चले अर्थात तरुण पहिले न मरे। मं० २५ वृद्ध होकर पूर्ण आयु की समाप्ति में ही मरें।

मं० २९—प्राणायाम से स्वतन्त्रप्राण बनाने वाले योगी स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों को निर्दोष बनाकर मृत्यु को दूर कर दीर्घजीवी होते हैं।

मं० ३२ यज्ञ से मृत तथा जीवित दोनों ही को लाभ होता है इसकी कल्पना ज्ञान से ही हो सकती है। मं० ३३ अमर धर्मयुक्त यह अग्नि सभी का हित कर्त्ता, अभ्युदय कर्त्ता है, इसे सभी प्रतीप्त करें। मं० ३६ यदि प्रेताग्नि (अन्त्येष्टि) द्वारा विधिवत शान्त न की गई तो वह कृषि, कारीगरी (उद्योग) तथा पैतृक धन के साथ ज्येष्ठ पुत्र के दारिद्रय दुःख का कारण हो जाती है इसलिये इसे शान्त करें। मं० ४० पाप, दोष, दुराचार की मूल कारण यह प्रेत दाहक अग्नि ही है। मं० ४५ प्रदीप्त जात वेदाग्नि में यज्ञ करने से दीर्घायु होती है; मृतों को (वासनादेह) से छुटकारा होकर पितृलोक तथा धन, सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य प्रदान करता है।

अ०कां ३ सू० ११-१ अज्ञात तथा ज्ञात रोग या राजयक्ष्मा या पकड़ने वाले रोगों से इन्द्र और जात वेदाग्नि रोगी को मुक्त कर देते हैं। बड़े बड़े ये यज्ञ औषधियों से किये जाते हैं॥ भैषज्य यज्ञा वा एते। गो० ब्रा० १।१९ कां ५।३०॥ मंत्र १६ ज्ञानी (योगी) आचार्य—कहता है मैं अपनी वाक् शक्ति से इन उपर्युक्त क्षय, ज्वरादि समस्त तथा निम्न समस्त रोगों को तुझ रोगी से हटाकर दूर करता हूँ।

यज्ञ से घातक—प्रयोग नाशन

अ० कां ५।३१—कच्चेवर्तन, मिश्रित धान्य, कच्चामांस, मेढ़े, बकरी भेड, एकखुर के पशु, दोनों दांतों वाले पशु, गधा, अमूला औषधि नराची वनस्पति, खेत, गार्हपत्य अग्नि, पूर्वाग्नि, घर या कमरा सभा क्रीड़ाभूमि, पांसे, सेना, वाण, धनुष, दुन्दुभि, कुंवा, श्मशान पुरुष की हड्डी, प्रज्वलित अग्नि, प्रेताग्नि, में दुष्ट लोग कृत्या का प्रयोग करते हैं। उन्हें जात वेताग्नि से शान्त करता हूं।

यज्ञ से आनुवंशिक पाप नाशन

कां० ५ सू० ३० मं० १३ स्त्री या पुरुष द्रोह, माता-पिता के कृत पापों से उत्पन्न आनुवंशिक रोग तथा अन्य दारुण दुःखदायी रोगों से क्षीण आयु, क्षीण बल, क्षीण दसों इन्द्रियो की शक्तिः प्राणों, मन, अन्तःकरण की क्षीणता को दूर कर मृत्यु से दूर (पार) करके वाक्शक्ति से हस्ताभिमर्शनसे, कृपा दृष्टि से यज्ञ बल, ब्रह्म बल से स्वस्थ, दीर्घायु पूर्णायु का बनाता हूँ। यह यज्ञ का बल है।

यज्ञ से कृषि पशु सम्बर्धन

कृषि विधि, बीज बोना, कृषि संरक्षण, कृषि सम्बर्धन धान्य छेदन, धान्य मदन, धान्य संग्रह तथा पशु स्वस्त्ययन पशु बाहुल्य, पशु संरक्षण के लिये अथर्व कां ३ सू १७ मंत्र ५; कां. ३।१० में यज्ञ की विधि वर्णित है।

वाणिज्य

व्यापार की नाना प्रकार की विचित्र नई नई सभी बाधायें तथा व्यापार की हानि को लाभप्रद, आरोग्य, दीर्घायुक्त तथा सुखमय बनाने के लिये कां ३ सू. १५ आदि की विधि है,

अर्थोत्थापनगण—की यज्ञीय विधि से ।। कर्मज-व्याधि के क्षेत्र में होना ही प्रमाणित कर रहा है । इसके अनुभूत प्रयोग चकाचौंध में डाल देते हैं ।

विद्याध्ययन दिव्यज्ञानप्राप्ति

विद्यार्थियों, ब्रह्मचारियों के पठन-पाठन का माध्यम कैसा हो कैसे उनकी मलिन बुद्धि कुशाग्रह हो ; कैसे गुह्यतमविषयों में सरलता से शीघ्रता से प्रविष्ट, लोक लोकान्तरों में स्वयं का तथा अन्यों के कल्याणप्रद हो यह "मेधाजनन" की विधि की यज्ञीय विधि स्वस्थज्ञान का वास्तविक मूल जननी है ।

यज्ञ से भूमि स्थिरीकरण

भूमि हिलने, भूः स्खलन, भूमिक्षरण, पर्वतस्खलन, ओला वृष्टि विद्युतपात आदि विघ्नों की शान्ति तथा विविध विपुल, रत्न, धन-धान्य गोरस आदि समस्त राष्ट्रीय सांसारिक भोग्य वस्तुओं की प्राप्ति के लिये अ. वे, कां १२।१ की यज्ञीय विधि—सुख, समृद्धि, आरोग्य, स्वास्थ्य तथा अभ्युदय का अकथनीय भेषज है ।

यज्ञ से वास्तु जनितरिष्ट शान्ति

सभी अपनी क्षमता तथा रुचि के अनुसार, पर्णकुटी, कच्चाघर, पक्के भवन उद्योगों के उपयुक्त मकान, यज्ञमण्डप, आदि का निर्माण करते हैं । उस भूमि में निहित या भवन-निर्माण-कालीन अनेकों दोष जो वास्तु विधि में विधिवत वर्णित है होते हैं जिनके कारण राजभय, सर्पभय अग्निभय, जलभय, शत्रुभय, गृहेषमृत्यु, चोरभय, चोरों का म्लेच्छकर्मियों का बास, नपुंसकों का बास, रोगियों का बास, दरिद्र, धन धर्म धरानाश कुलनाश, गौ आदि संहार, अश्वनाश, उद्योगनाश, व्यापार नाश, के साथ बनने से पूर्व विकता है या पूरा ही नहीं हो पाता—आदि ये सब भी कर्मज व्याधि हैं इस सबका आयुर्वेद से लेशमात्र सम्बन्ध नहीं । इसको शान्ति के लिये अ० वे० कां ५।२६—के प्रथम मंत्र से अन्तपर्यन्त "यजूंषि यज्ञे—समिध: स्वाहाग्नि"—की शान्ति विधि वर्णित है, इस शान्ति से अनेकों कल्याण प्रद ज्वलन्त उदाहरण अनुभव में आ चुके हैं । वे ही मकान धनधान्य, सुखसमृद्धि से अब परिपूर्ण उनके निवासी-(स्वामी) मानते हैं ।

यज्ञ से राष्ट्र कल्याण

प्रत्येक राष्ट्र अपने से दुर्बल को नहीं टिकने देता । सबल को भी निर्बल बनाने के लिए राष्ट्र कुचक्र रचता रहता है । राष्ट्र के आन्तरिक, सत्तालोलुप, अर्थ-लोलुप, पदलोलुप विविधभांति दुर्बल बनाने को कुचेष्टा के अवसर ताके रहते हैं । उधर शत्रु आक्रमण कराकर या करके परतन्त्र (दास) बना निरीहों का निर्दयता से शोषण करने को हर प्रकार की यातनायें देता है ।

इस शत्रु के पराजय के लिये केवल क्षत्रिय बल अपर्याप्त और नगण्य है इसकी अपेक्षाकृत ब्रह्म बल से शत्रु संहार के लिये यज्ञ किया जाता है विश्वामित्रजी के क्षात्रबल को परास्त करने वाला । वशिष्ठ जी का ब्रह्मबलपूर्ण मात्र (दण्ड) का खड़ा करना था जो वास्तु विधि

में निर्दिष्ट अ० वे० कां ३ सू० १२ मंत्र "इहैवध्रुवां" की यज्ञीय विधि से खड़ा कर "रक्षोहणगण" की विधि से सुरक्षित "अपराजितगण" की विधि का प्रकृष्टतम प्रतीक था जिससे विश्वामित्र को यह स्वीकार कर कहना ही पड़ गया।

धिग् बलं क्षत्रिय बलम् । ब्रह्मतेजो बलबलम् ॥
ऐकेन ब्रह्मदण्डेन, सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥

अ० कां ३ ; २; ३ ; कां ८। ८ ; ४ ; ३ ; ६ ।२६ ; ५।२१ ; २० ; ८ तथा ५।१ काण्ड आदि २ में वर्णित विधि से कवचधारण कराना, दुन्दुभिब जाना, अस्त्र-शस्त्र, वाहनों वीरों को अभिमन्त्रित कर, उन्हीं को युद्ध में इसीविधि से विधिवत् ज्ञान करने के उपरान्त भेजना कि आज यह वापस आयेगा या मारा जायेगा अनेक इस में वर्णित क्रियाओं से शत्रुदल को हतोत्साहित कर परास्त करना यह कर्मज व्याधि के क्षेत्र में ही परिगणित है।

यज्ञ से अद्भुत दोष जनितारिष्टशान्ति

उल्कापातादि ग्रह-उपग्रह, नक्षत्रादि के समस्त आकाश, द्यौ, भौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक; ईति, भीति आदि अनावृष्टि, अतिवृष्टि नदी का नया मार्ग अपना कर नगरों की ओर आना, कुओं का सूख जाना, समुद्र का आबादी की आर बढ़ना आदि सभी के भयङ्कर परिणाम सामूहिक तथा वैयक्तिक रूप से प्राणियों को पीड़ित करते हैं, इनका आयुर्वेद से सम्बन्ध नहीं यह सभी कर्मज व्याधियाँ हैं इनकी शान्ति यज्ञों से पृथक्-२ विधि से इसमें निहित है।

स्त्रियों, पुरुषोंके गार्हस्थ्य कष्ट

कन्याओं के जन्म; विवाह; प्रथमकालीन ऋतु धम के प्रथम गर्भाधान कालीन अनेकों अनिर्वचनीय अपार कष्ट होते हैं, विवाह के लिये योग्य, अनुकूल वर का न मिलना, विवाहान्त पति पत्नी के पारस्परिक दाम्पत्य प्रेम में बाधा-ईर्ष्या, मन्यु (क्रोध) आदि सर्व सुखों के रहते व्यथित करते हैं। ये सभी बाधायें तथा पुत्र या पति के सुखों की बाधा, या अभावती और भी कष्ट प्रद होते हैं, पुरुष की नपुंसकता, स्त्री के बन्ध्यापन के कारणभूत दोष कर्मज ही होते हैं। इन की शान्ति के लिये, "अंहोलिगादिगणों" से वृहच्छान्ति यज्ञ ही अन्तिम, अपरिहार्य भेषज कही है। इन सबसे यह विस्पष्ट है कि कर्मज, व्याधि, मिथ्या आहार-विहार जन्य व्याधि से पृथक् व्याधिथी; है और रहेगी। इस का सम्बन्ध अधिकतर सूक्ष्म, कारण तथा वासना देहों से होने से; स्थूल चिकित्सा की अपेक्षा सूक्ष्मतत्व की भेषज्य ही-आथर्वणी, आङ्गिरसी और दैवी है वर्णित हैं। मानवी-ओषधियां आयुर्वेद के क्षेत्र में हैं आयुर्वेद भी अथर्व वेद की शाखा होने से वैदिक ही है। भगवान् आत्रेय ने चरक चि० स्थान अ० ८ श्लोक १२ में स्वयं कहा है

"प्रयुक्तया यथा चेष्टया राज यक्ष्मापुराजिता।
तां वेद बिहितामिष्टमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ॥

जिस यज्ञ के प्रयोग से प्राचीन काल में राज यक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था आरोग्यार्थी उसी वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करें। पुरा से सतयुगादि समझें, ऋग्वेदोक्त राजयक्ष्मादि के मंत्र, जो उल्लिखित है स्वयं ही मूर्तमान प्रमाण है।

सबल तथाविकरितयुवा राष्ट्र तथा निष्काम तत्व वेत्ता मनिषि गरण इस "कर्मज व्याधि" के अन्वेषरण में लुप्त प्राच्य वैदिक ग्रन्थों के, प्राप्त करने, संरक्षरण, सम्बर्द्धन को हय-ग्रीव भगवान् के मार्ग के अनुसररण में पूर्णबल से आगे बढ़े इसी मात्र का कामना के साथ।

वेदों में छन्दों का प्रयोग और फल महत्त्व

अथर्व वेद काण्ड १६ सूक्त २१—ब्रह्मा ऋषि। छन्दांसि देवता। एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहतो छन्द—वेदे—यज्ञकर्मणि च छन्दसांप्रयोगे—विविध फल विविध कामना सिद्धयर्थे च विनियोग।

गायत्र्युं १ ष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यै ॥ १

१ गायत्री (२) उष्णिक् (३) अनुष्टुप् (४) बृहती (५) पङ्क्ति (६) त्रिष्टुप् और (७) जगती ही इन सात छन्दों में ही वेद का अखण्ड, अक्षय अपार ज्ञान भण्डार भरा षड़ा है। ये छन्द अज्ञान को हटाने तथा ज्ञान का प्रकाशन करने वाले निम्न तथ्यों के साथ वरिणत हैं। छन्दों में ये मुक्य हैं, अन्य इन्हीं के अंश हैं। इनको उत्पत्ति, प्रयोग तथा फल निम्न प्रकार है।

अथर्व काण्ड ६ सूक्त १० ब्रह्मा ऋषिः। गौ, विराट् अध्यात्मम २३ मित्रा वरुणौ देवते, १, ७, १४, १७, २८, जगती २१ पञ्चपदातिं शक्वरो-२४ चतुष्पदा पुरस्कृति भुंरिगतिजगती, २, २६, २७ भुरिक्-शेष अनुष्टप् छन्दांसि आत्मा-वाणी-वेद छन्दादि महत्यज्ञान, फलादि वर्णन लोक-लोकान्तरीय दिव्यज्ञान दिव्यप्रकाश लाभार्थे जपे उपस्थाने होमे विनियोग

यद्गायत्रे अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुंभंवा त्रैष्टुभान्निरतक्षत।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृत त्वामानशुः ॥२

गायत्रेणप्रतिं मिमीते अर्कमर्केणसाम त्रैष्टुंभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२

जगता सिन्धुं दिव्यऽस्कभायद् रथन्तरेसूर्यं पर्य पश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्नापरिरिचे महित्वा ॥३॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसाते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥१७॥

ऋचो अक्षरे परमेव्योऽमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्नवेद किमृचाकरिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥१८॥

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेनचाक्लृपविश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं विष्तंठे तेनं जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१९॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥२०॥

गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षराभुवनस्यपङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा
अधि वि क्षरन्ति ॥२१॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत् ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं निपाति ॥२३

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षंविराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूवतस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं
भव्यं वशे कृणोतु ॥२४॥

शकमयं धूममाराद पश्यं विषूवतापरएनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणिप्रथमान्यासन् ॥२५॥

त्रयःकेशिनं ऋतथ विचक्षते संवत्सरे वपतएक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥२६॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणाये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयंति तुरीयं वाचो मनुष्याऽवदन्ति ॥२७॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधावदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान माहुः ॥२८॥

काण्ड ७ सू० [२७ (२८)] मेधातिथिः ऋषिः । इडा–देवता । त्रिष्टुप् छन्दः (उपर्युक्त) प्रयोजने विनियोगः ।

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥१॥

कां० ७ सू० [४३ (४४)] प्रस्कण्व ऋषिः । वाक् । देवता । त्रिष्टुप् छन्द उपर्युक्त प्रयोजने तथा परनिन्दा स्तुतिपर कपापजनितारिष्ट निवारणे जपे-उपस्थाने-होमे च विनियोगः ।

शि॒वास्त॒ एका॒ अशि॑वास्त॒ एकाः॒ सर्वा॑ बिभर्षि सु॒मन॒स्यमा॑नः ।
ति॒स्रो वाचो॒ निहि॑ता अ॒न्तर॒स्मिन्तासा॒मेका॒ वि प॑पा॒तानु॒ घोष॑म् ॥१

उपर्युक्त कां० १९ सू९ २१ में वर्णित ७ छन्दों की उत्पत्ति-विनियोग, महिमा-फल निम्न प्रकार है। का० ७ सू० [४३ (४४)] में वाणी-कर पाद वाली कही है, इसी की पुष्टि कां० ६ सू० १० मन्त्र २७ में की है। १ परा २ पश्यन्ती ३ मध्यमा और ४ बैखरी ये चार वाणियों के भेद हैं इनमें से २ पश्यन्ती नाभि स्थान में १ परा हृदय स्थान में ३ मध्यमा कण्ठ में और ४ बैखरी का मुखस्थान है। इन चार स्थानों से वाणी की उत्पत्ति होती है। इनमें प्रथम तीन गुप्त हैं, जिन्हें ध्यान धारण से योगी ही जान सकते हैं।

इसी कां० ६ सू० १० के मन्त्र १३ में प्रश्न किया है "वाचः परमं व्योम पृच्छामि" १३ वाणी का उत्पत्ति स्थान कहाँ है "मंत्र १४ में उत्तर है" अयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योम, यह ब्रह्मा ही वाणी का परम उत्पत्ति स्थान है। आकाश का गुण शब्द है, शब्द आकाश से उत्पन्न होता है। आकाश का परम आकाश ब्रह्म (ज्येष्ठ ब्रह्म) ही है जिसे देवों का देव कहा है। इसी की पुष्टि तै० उ० (२।१।१) से की है" तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः।

इसी का मन्त्र १९ वर्णित करता है "आधे मन्त्र भाग से चेतन आत्मा और सारा जगत समर्थ बन सकता है। तो सूक्तों और अनुवाकों में कितना ज्ञान भण्डार होगा। मन्त्र १९ यह भी वर्णित करता है" त्रिपाद् ब्रह्म (वेदत्रयी) विविध रूप से जगत में विशेष रूप से परमात्मा स्वरूप से सर्व पदार्थों में व्याप्त हैं उसी की अगाध शक्ति सबका जीवनाधार है वही श्रेष्ठब्रह्म (ब्रह्म वेद अथर्व वेद) है।

उपर्युक्त वाणी एकपदी, द्विपदी, चतुष्पदी; अष्टापदी; नवपदी, सहस्राक्षरों वाली छन्दोबद्ध होती है। ये छन्द मंत्र २ के अनुसार दो चरण चार चरण वाले कहे हैं। उनके प्रत्येक चरण अक्षरों की संख्या से नापे गये हैं। यथा अनुष्टुप् में ८ अक्षर, गायत्री छन्द के तीन पाद आदि-२

गायत्री छन्द (गाय+त्र) प्राणों की रक्षा करता है, गायत्री छन्दों वाले मन्त्र प्राण रक्षक कहे गये हैं। २ त्रैष्टुभात् (त्रै+ष्टुभं) प्रकृति, जीवात्मा, परमात्मा का गुण बर्णन है। इस छन्द के मन्त्रों से प्रकृति विद्या; आत्मविद्या और ब्रह्म विद्या का ज्ञान तथा ऐहिक सुख के साथ आत्मविद्या से अमरत्व की प्राप्ति होती है।

३-(जगति जगत्) जगती छन्द के मन्त्रों में जगत सम्बन्धी अगाध अद्भुत ज्ञान वर्णित है। इसके ज्ञाता मोक्ष को प्राप्त करते हैं। साथ ही जगद ऐश्वर्य की उपलब्धि भी होती है उससे बढ़कर मोक्ष-प्राप्ति होती है। जगति छन्द में महासागर की भाँति द्युलोक का वर्णन है। ४ रथन्तर—छन्द से सूर्य का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। जो मानब को अन्तिम लक्ष्यतक पहुँचाने में समर्थ है अर्थात् जगत और स्वर्ग में और अन्त में मोक्षतक का उत्तम पथप्रदर्शक होता है।

गायत्री छन्द से अर्चनीय देव जो निराकार है, उसकी प्रतिमा का ज्ञान होता है, प्रत्येक देवता की शब्दमयी (प्रतिमा) गायत्री छन्द है।

इस पूजनीय देव से ही "सम" शान्ति प्राप्त होती है, इसी को अमृत कहा है।

त्रिष्टुप् छन्दों में भी प्रकृति, जीव और परमात्मा का वर्णन है।

इनके ज्ञान से वेद, वेदो,यज्ञ, तथा "परमव्योम" ब्रह्म के पिता, पितामह परमात्मा का ज्ञान तथा साक्षात्कार होता है। इसी कारण "वेदो हि निखिलं धर्म मूलम्" वेदज्ञान सभी धर्मों का सारभूत, सार्वभौम मूल है।

वैश्वानर की प्रतिमा

कां ८ सू० ६ मन्त्र ६ "वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद्रोदसी बिबबाधे अग्निः"। यह वैश्वानर भूलोक से द्यूलोक पर्यन्त फैला हुआ है। विश्व का संचालक होने से वैश्वानर कहलाता है। यह प्रकृति के साथ रह कर जगत की रचना करता है। यह छटवां है इससे पूर्व ये ५ हैं (१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण (४) महाकारण (मूल प्रकृति) ५ जीव और (६) वां वैश्वानर है। प्रथम चारों जड़, अन्त के २ चेतन हैं। इसी मन्त्र ६ में वर्णित है।

"ततः षष्ठात् अमुत उदितः स्तोमाः आयन्ति"। इस वैश्वानर छटवें से प्रकाशित होने वाले यज्ञ यहाँ भूमण्डल में आते हैं। यही सब यज्ञों का प्रकाशक है, उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ; आकाश से शब्द उत्पन्न हुआ अतः शब्द के जनक आकाश का जनक "परम-व्योम" है। यही वाणी का मूल उत्पत्ति स्थान और परम आकाश परमात्मा है। इसी कारण "वेद" परमात्मा का निश्वसित है। यही नहीं सामान्य शब्द भी आत्मा का ही शब्द है। यही ब्रह्मावाणी का परम आकाश है। आत्मा से शब्द की उत्पत्ति की यह प्रक्रिया है कि आत्मा बुद्धि से मिलकर बोलने की जब कामना करता है, तब मन को प्रेरणा होती है। मन शारीरिक उष्णता में हलचल करता है। वह अग्नि वायु को प्रेरित कर छाती से मुख में आकर स्थानों में आघात करता हुआ अनेकों शब्दों की उत्पत्ति करता है।

इसी मंत्र १३ में प्रश्न है "पृथिव्याः परं अन्तः पृच्छामि" पृथ्वी का परला अन्तिम भाग कौनसा है? उत्तर मंत्र १४ में यह है।

"इयं वेदिः पृथिव्याः परः अन्तः। मन्त्र से स्पष्ट है कि पृथ्वी गोल है। इस पृथ्वी का प्रारम्भ वेदी में है और यही वेदी अन्तिम भाग भी है।

इसी मन्त्र १३ में प्रश्न किया है "विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि" उत्तर मंत्र १४ में है "अयं यज्ञः विश्वस्य भुवनस्यनाभिः"। सब भुवनों का केन्द्रीय बिन्दु कौनसा है? यज्ञ ही सब भुवनों का केन्द्रीय बिन्दु है। इसी पर जगत की सारी वाह्यरचना की है, अर्थात् यज्ञ पर ही यह सब विश्व स्थिर हैं "यज्ञ के ह्रास में विश्व का ह्रास हो जायगा; यज्ञ विधिहीन होने पर विश्व की रचना बिगड़ जायगी। इसीं बात को गहन दृष्टि में रख कर सभी वेदों में "यज्ञ" विषय कर्म भूमि प्रारम्भ क्षेत्र मानकर "यज्ञ" का ही प्रतिपादन किया गया है। उसी केन्द्र के ज्ञान के लिये सभी जगत की उत्पत्ति है।

अथर्व कां० ७ सू. ५ "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन्" इसी आत्म-यज्ञ से याजक परमात्मा की पूजा करना श्रेष्ठ समझ पूजा करते हैं। इसी के मंत्र २ में वर्णित है, "यज्ञोवभूव, स आवभूव, सप्रजज्ञे, स उवावृधेपुन: । स देवानांमधिपतिर्वभूव" यह आत्म-यज्ञ प्रगट हुआ और सर्वत्र फैला इसके महत्व को ज्ञानियों ने समझ लिया; इस कारण यह वढ़ गया जो देवताओं का भी बढ़कर अधिपति हो गया।

उपरोक्त "परमव्योम" पर परतर; परतम (परम) अवस्था का व्योम (वि+ओम+अन्) ये तीनों प्रकृति जीव और परमात्मा और जीवात्मा के द्योतक हैं। सूक्ष्म, कारण और महाकारण अवस्थाओं में प्रकृति जीव और परमात्मा का जो अनुभव होता है, उसे व्योम कहते हैं।

उनमें परमश्रेष्ठ "परव्योम" होता है। इसकी ऋग्वेद मंत्र १०+९०; यजुर्वेद अ० ३० अथर्व कां० १९।६ से पुष्टि होती है।

ये यज्ञ के समस्त देव मंत्र के अक्षर में निवास करते हैं, ऐसा कां० ९ सू० १० मंत्र १८ में वर्णित है। सारांश एक-एक मंत्र के ज्ञान से इतने देवताओं का ज्ञान होना। वेद का ज्ञान प्रत्यक्ष देवताओं का ज्ञान है। यथा अग्निमन्त्रों से अग्निविद्या, वायु मन्त्रों से वायु विद्या प्रभृति। अग्नि, वायु, इन्द्र, रवि आदि शब्द सत्य आत्मा के बोधक ही हैं।

मनुष्य की उत्पत्ति के साथ उत्पन्न यही यज्ञ दिन के छटे भाग की समाप्ति के साथ पुन: उसी के पास पहुँचते हैं। ये ही ज्ञान और कर्म के प्रेरक हैं। यही जगत का द्रष्टा है। मं० ५ वर्णित कर रहा है।

"मायया: माया जज्ञे। मायया: परि मातली"।

मूल आदि माया से यह प्राकृतिक शरीर बना उसका अधिष्ठाता या निरीक्षक जीवात्मा बना, इसी का नाम जगत है। आदि माया से यह माया बनी, इसका निरीक्षक यहाँ आत्मा है। यह अविकृत मूल प्रकृति से विकृत जगत की रचना है। इसमें व्यापक देव ही उपर्युक्त वैश्वानर है। इसी का वर्णन वेदत्रयी में है। इसी को आत्मा, परमात्मा, ब्रह्मा, ब्रह्म पुरुष, पुरुषोत्तम, इन्द्र, महेन्द्र, क्षेत्रज्ञ आदि मंत्र ७ की भांति कहा है। इसकी प्रेरणा से सब यज्ञ चलते और इसकी प्रेरणा के विना स्तब्ध होते हैं। ऐसी इसकी अगाध महिमा है। इसी से जगत का सब चमत्कार है।

इस वाणी रूप कामधेनु के चारथन—चारों वेद हैं, इनसे अमृत को दोहनकर्त्ता आत्मा भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों में दोहन कर जिसको जैसा देना योग्य है, उसके अनुकूल वैसे ही भोग उसको देता है। यही देवों के व्रतों को चलाता है। यथा सूर्य का प्रकाश करना, जल का बहना, वायु का सुखाना आदि ये सब वाह्यव्रत हैं। आन्तरिकव्रत-नेत्रों का देखना, कान का सुनना ; प्राण का जीवन देना आदि ये सभी आत्मा की शक्ति से होते हैं।

यही विश्वरूपी-विराट-वैश्वानर मनुष्यों के हृदय में प्रगट होता है। इसे मनुष्य अपने अन्दर हृदय में देखता है। जो देखता है स्वयं स्वार्थ से भोग नहीं करता वह सुप्रजा प्राप्त करता हुआ सीधा अमृतधाम जाता है। यही "ज्ञान और कर्म"-की सिद्धि है।

इस अविनाशी वाणीरूपी परममाता कामधेनु के वेदरूप चारोंथनों से अमृत रूप दूध दुहने वाले सप्त ऋषिगण ये हैं। १ आत्मा २ बुद्धि (संज्ञान) ३ अहंकार ४ मन ५ प्राण ६ ज्ञानेन्द्रिय संघ और ७ कर्मेन्द्रिय संघ। ये सातों एक दूसरे से भिन्न हैं; इनके विभिन्न दोहनपात्र हैं और प्रत्येक का निकाला हुआ दूध भी भिन्न है। उस दूध के सेवन से पुष्टि भी भिन्न-भिन्न है अविनाशी तत्व से यह दोहन होता है। जो इसे जानता है वही अमृत पान करता है। इस प्रकार यज्ञ-वेदी, समिधा, दर्भ, अग्नि, मंत्र, और मंत्र के देवता ऋषि तथा छन्दों को विधिवत् परम्परागत समझें। विधिवत कर्मक्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करें। आगे यज्ञ कर्म विधि वर्णित है।

अथ यज्ञशाला निर्माण विधिः

अथर्ववेद। काण्ड ३ सूक्त १२ मंत्र ६

ब्रह्मा, शाला, वास्तोष्पतिः। त्रिष्टुप् २ विराड् जगती ३ बृहती ६ शक्वरीं गर्भा जगती, ७ आर्षी अनुष्टुप्, ८ भुरिक, ९ अनुष्टुप छन्दासि पुत्रेष्टि यज्ञ शाला निर्माणे विनियोगः।

इहैव ध्रुवा निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा।
तां त्वा शाले सर्ववीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१॥

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

धरुण्यऽसिशाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमा स्पन्दमानाः ॥३॥

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पति र्निमिनोतु प्रजानन्।
उक्षन्तूद्रा मरुतो घृतेन भगोनोराजा निकृषिं तनोतु ॥४॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे।
तृणं वसाना सुमना असुस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

ऋतेन स्थूणामधिरोह वंशोग्रो विराजन्नाप वृङ्क्ष्व शत्रून्।
मातेरिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥६॥

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥७॥ ८८)

पूर्णं नारि प्रभर कुम्भ मे तं घृतस्य धारा ममृतेन संभृताम ।
इमां पातृन् मृतेना समंङ्ग्धीष्ठापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥८॥

इमा आपः प्रभराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्रसीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९॥

कुण्ड बनाने वाले की परीक्षा

परशुराम मत से, कुण्ड तथा मण्डप निर्माणकर्ता, सत्यवक्ता, सदाचारी, विवेकी, कार्यकुशल, स्थिरमति, साहसी, कुण्ड, मण्डपादि का अनुभवी हो, इन्द्रिय विकार रहित, स्वच्छ वस्त्र धारी, रोगी न हो; व्यर्थ आडम्बर कर्त्ता न हो मितभाषी, देव में श्रद्धा वाला हो ।

मण्डप भूमि विभाग

(१) ३ से ७ हाथ के मण्डप में त्रिभाग नही होता, (२) ८ से १८ हाथ वाले के ३ भाग (३) २० से २८ हाथ वाले के ५ भाग (४) ३० से ७५ हाथ वाले के ७ भाग १०० से अधिक हाथ वाले में १० भाग करे ।

मण्डप में स्तम्भ विचार

(१) में ४ नम्बर (२) में १६, (४) ६४ तथा (५) वें में १२१ मण्डप होंगे

मण्डप-भूमि का नाम कथन

(१) एकभू-द्विभू (३) त्रिभू (४) चतुर्भू (५) पञ्चभू-समझें

अंगुलादि ज्ञान

८ परमाणु=१ त्रसरेणु । ८ त्रसरेणु=१ रथरेणु । ८रथरेणु=१ वालाग्र ८ वालाग्र=१ लिक्षा । ८ लिक्षा=१युका । ८ युका=१ यव । ८ यव=१ अंगुल । २४ अंगुल=१ हाथ । ५ हाथ=१ पुरुष समझे ।

यज्ञिय भूमि विचार

(१) अग्नि कोणप्लवा भूमी-विद्वेष-मरण और व्याधि हो-पुत्र, आयु धनक्षय हो ।
(२) दक्षिणप्लवा—निश्चय मृत्यु हों ।
(३) नैऋत्यप्लवा—भूमिहानि-घर की हानि
(४) पश्चिमप्लवा—धननाश
(५) वायुकोणप्लवा भूमि—उद्वेगकर्त्री होगी
(६) ईशानकोणप्लवा भूमि—अति शीघ्र लक्ष्मी प्रदान कराने वाली
(७) पूर्वप्लवा भूमि—कार्यवृद्धि
(८) उत्तरप्लवा—वरदायिनी हो
(९) पूर्वोत्तरप्लवा—सर्वथा, सर्वदा, सर्वाङ्ग सिद्धिप्रद होती है ।

मण्डप-अपनी या अन्य भूमि में-विचार

(१) यज्ञ मण्डप में अपनी भूमि श्रेष्ट है। (२) दूसरों की भूमि बिना कर दिये मण्डप बनाने में निष्फल। (३) निजी घर में कुण्ड व मण्डप बना सकते हैं (४) नदी तट आदि-दूसरे की भूमि की कोटि में नहीं आते (५) जहाँ मण्डप बनायें, वहाँ पहिले १२×१२ अंगुल का गड्ढा खोदें, फिर खोदी हुई मिट्टी उसी में निकालने के बाद भरें, भरने पर सम हो तो उत्तम, कम हो जाय तो निकृष्ट समझे (प्रयोगसार के अनुसार)

बौधायनमतानुसार

(१) खोदने में भस्म निकले तो यजमान नाश। (२) चीटी निकलें तो उस ग्राम का नाश। (३) गीली मिट्टी-बालू निकलें तो राष्ट्र हानि (४) केश निकलें तो स्त्रीनाश। (५) तुष निकलें तो पुत्रमृत्यु (६) कपाल निकलें तो ऋत्विगभय। (७) ईंट निकलें तो बन्धु वान्धव वियोग, (८) तृण से वर्मक्षय (६) गीली बालु से विद्यावान हो।

दिक्साधन अत्यावश्यक

(१) बिना दिक् साधे कुण्डनिर्माण से मृत्यु। कुण्डदर्पण के मत से

(२) वृहन्नारदमतानुसार—दिशा के ज्ञान व्यवहार-शून्य हो तो कुलनाश हो।

(३) कुण्ड प्रदीप के मत से-धन का नाश हो।

(४) विधानमाला के मत से—दिशा की भ्रान्ति हो तो भ्रान्तिमान हो।

मण्डप आरम्भ में विचार

विद्या अर्णव तन्त्र-(१) ऋत्विज, सदस्य एवं समाज के लोगों के सुविधार्थ, अधम-मध्यम उत्तम मण्डप वनायें।

(२) नारदपञ्चरात्र (कुण्ड) मण्डप वनाने में धुयें के निकास की पूर्ण व्यवस्था हो।

(३) पवित्र-शुशोभित, और चौकोर भूमि में मण्डप वनायें।

फलभेद से मण्डप-रचना

कात्यायन- अधम, मध्यम, उत्तम मण्डपों में परिमाण से उत्तरोत्तर विशेष फल होने से उत्तम की रचना करें। अग्निहोत्र-ज्योतिष्टोम में स्वर्गादि की प्राप्ति अधम से ही हो जावे तो उत्तम की आवश्यकता ही न होती। शारदा तिलक पन्ना १५७

वेदी वनाने की जानकारी

यजमान के हाथ की १ हाथ लम्बी १ हाथ चौड़ी×४ अंगुल ऊँची कछुये की पीठ के समान ढलवाँ हो। टेढ़ी, मध्य में ऊँची, नीची या गढ़ेदार, कठोर, देखने में खराब, प्रमाण से छोटी-वड़ी यजमान के संङ्कल्प को नष्टप्रद है

शास्त्रीय कुण्डों में योनि विचार

(१) योनि के न रहने से स्त्रीमरण, मृगीरोग, भगन्दर, दरिद्रता, पुत्र हानि हो।

(२) योनि कुण्ड के वीच में हो, योनि के मध्य मेखला में छेद हो और अग्रभाग १ अंगुल कुण्ड के मध्य, प्रवेशस्थल से ऊपर तक हो।

(३) योनि को स्थल से बनाते समय पीछे की ओर नाल एक अंगुल योनि की ऊँचाई बनायें।

(४) योनि के एकदम पूर्व दिशा की ओर अन्तिम सिरे की ओर ठीक बीच ही में छिद्र बनायें। उसमें एक पतली लम्बी लकड़ी लगा दें।

(५) योनि की नाल के दोनों ओर मिट्टी के २ गोले घंटे के तुल्य गोलाकार योनि-विस्तार से चतुर्थांश में बनायें, वे दक्षिण, उत्तर में मोटे, आगे से सूक्ष्म सुन्दर बनायें।

(६) योनि का अग्रभाग ओठ कहाता है।

(७) मुख अधोमुख पूर्व को हो।

(८) योनि के बीच गढ़ा रक्खे, हवन के समय घी योनि से सुभीते से निकलता रहे वैसी व्यवस्था करें, वैसा ही मध्य करें।

(९) योनि का पीछा ऊंचा, ऊठा आगे को ढलवां हो।

(१०) योनि के बीच में १ अंगुल, ऊँचा लिङ्ग मध्य में और योनि के मध्य में मुख हो।

मण्डप कुण्ड नाप विचार

(१) सूत्र की अधिकता शत्रु से हानि, मित्र से शत्रुता, सूत्र की हीनता से पंगु हो।

(२) छोटे खात से असिद्धि, अधिक से असुरों का बल, टूट-फूट से उच्चाटन, छिद्र हो तो मूकता, खात की हीनता से बन्धु-विरोध हो।

यज्ञमण्डप

यज्ञ का मण्डप, समतल, सुन्दर, स्वच्छ भूमि में पूर्वोत्तर शुभ होता है। दश हाथ लम्बा, दश चौड़ा (स्वामी के हाथ से) विविध तोरण माला युक्त विविधरङ्ग की ध्वजा, द्वारों पर माला, स्वस्तिक, पञ्चपल्लव फल, कलावा से युक्त जलपूर्ण घटों को रक्खें।

यूप

ब्राह्मण	ढाक	शिर के बराबर	यूप वेदी के पाद मूल में
क्षत्रिय	वट	कण्ठ के बराबर	यूपों के दक्षिण तोरण
वैश्य	बेल वृक्ष	छाती पर्यन्त	मध्य में ब्रह्मा मान आठ भाग करें
शूद्र	गूलर	नाभि पर्यन्त	

उन उपर्युक्त आठ भागों में से, क्रमशः, उत्तरोत्तर सोमं, कुवेरं, कुविदङ्गतम् धनद, धन्वनाग, "ईशावास्येति शंकरम्। नवग्रह मन्त्रों से नवग्रह देवता "त्रातारमिन्तिन्द्रम्" इन्द्र। "अग्नि दूतम्" पावक। "अग्नि पृथुः" धर्मराज "तद्विष्णोः" विष्णु। "नमः सूतेति" नैर्ऋतिम् "सप्तर्षयस्तु" सप्तऋषि। "बरुणस्यो त्तम्भनमसि" वरुण आदि की स्थापना करें।

इतिश्री "कर्मज व्याधि—निरोध" ग्रन्थस्थ द्वितीयोऽध्यायः

ॐ

नमः परमर्षिभ्यो नमः परमर्षिभ्यः

क्रियमाणः काम्यः नित्यः नैमित्तिक कर्मों की

अथर्वाङ्गिरस विधि

तृतीय अध्याय

क्रियमाणः काम्यः नित्यः नैमित्तिक कर्मों की अथर्वाङ्गिरस विधि

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक श्री केशव शास्त्री ने उपलब्ध पैप्पलाद और शौनक शाखाओं से युक्त तथा गोपथब्राह्मण, कौशिक सूत्र और वैतानसूत्र से युक्त अथर्ववेद का गहन चिन्तन कर कर्मजव्याधियों की व्याख्या और उन को दूर करने के उपायों और प्रयोगों का वर्णन किया है। अथर्ववेद राष्ट्र और समाज तथा राष्ट्र की प्रजा की समृद्धि, सुरक्षा तथा उनके श्रेय-प्रेय का सम्पादक अद्भुत साहित्य है।

इस वेद में मुख्यतया निम्नांकित विषयों का समावेश है—

राजनीतिक जीवन—राजनीतिक जीवन के सन्दर्भ में राष्ट्र, क्षत्र, विश, विश्पति, संसद् और ग्रामणी जैसी राजनीतिक शब्दावली का व्यवहार करते हुए राज्य के अंग, राज्य के कर्त्तव्य, कार्य राज्य के प्रकार (एकतंत्र, गणतंत्र), राजत्व, सभा, समितियाँ, शासन प्रबन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, स्वराज्य और वैराज्य आदि का विशद वर्णन मिलता है।

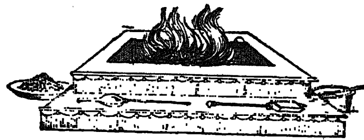
सामाजिक जीवन—अथर्ववेद ने मनुष्य के सामाजिक जीवन पर बहुत बारीकी से प्रकाश डाला है। समाज का संगठन कैसे होता है, परिवार संस्थाएँ और उनके कर्त्तव्य, विगत-संस्था। आचरण, आचार-व्यवहार, वस्त्रालंकार, खाद्य, पेय, नारी जीवन, घरेलू व्यवस्था, सामाजिक मनोरंजन का विशद निरूपण किया गया है।

धार्मिक जीवन—अथर्ववेद ने मनुष्य के धार्मिक जीवन को नित्य, नैमित्तिक कृत्यों, संस्कारों, यज्ञों, देवाराधन आदि अंगों में विभक्त कर भैषज्यानि, आयुष्यानि, अभिचारिकाणि, स्त्री कर्माणि, साम्मनस्यानि, राजकर्माणि" प्रायश्चित्तनि, पौष्टिकानि इन आठ कृत्यों द्वारा संस्राव्य यशोहवि, नैर्हस्तहवि, सप्तर्षिहवि, समान हवि, नैर्वाधहवि, भूतहवि, ध्रुवहवि इन आठ हवि संबंधी कृत्योंद्वारा ब्रह्मौदन, स्वर्गोदनसब, पंचौदनसब, चतुःआशापालसब, कर्कीसब, अविसब, अतिमृत्युसब, अनुडुहसब, पृश्नि और पृश्निगौसब, अजौदनसब, ब्रह्मांस्यौदन सब, ऋषभसब, वशासब, शालासब, वृहस्पतिसब, उर्वरासव इन सोलह प्रकार के सब, यज्ञों द्वारा भूतप्रेत, पिशाच, राक्षस आदि आसुरी शक्तियों का दमन त्रिषन्धि, निर्हस्तहवि तथा पाटा और वज औषधियों द्वारा, गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि क्रिया तक के सोलह संस्कारों द्वारा, अर्थोपार्जन के साधन कृषि, पशुपालन, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग द्वारा तथा भैषज्य

विज्ञान, ज्योति विज्ञान, शरीर विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित विज्ञान द्वारा और साहित्यिक, कलात्मक जीवन को इतिहास-पुराण, नाराशंसी गाथाओं, आख्यानसूक्तों, काव्य, संगीत, रस विवेचन द्वारा एवं दार्शनिक जीवन के तत्वज्ञान, तप, संयम, नियम द्वारा ओजस्वी, तेजस्वी बनाने का प्रयास किया है

श्री केशवदेव जी ने इन्हीं सांस्कृतिक तत्त्वों को समातित कर कर्मज व्याधि भैवज्य विज्ञान का निरूपण सांगोपांग किया है।

—संपादक



अथर्वाङ्गिरस विधि भू-शुद्धि भूमि पूजा तथा वन्दना

ॐ विमृग्वरीं पृथिवीं मा वदामिक्षमां भूमिं ब्रह्मणावा वृधानाम् ।

ऊर्जं पुष्टं बिभ्रती मन्न भागं घृतंत्वाभि निषीदेम भूमे ॥(अं.कां. १२।१-२९)

पवित्री करण

अम्बयो यन्त्यध्व भिजामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीमधुना पयः ॥ (१।४-१)

अमूर्याउपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नोहिन्वन्त्वध्वरम् । (१।४-२)

अपोदेवी रुपं ह्वये यत्रगावः पिबन्तिनः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥(१।४-३)

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम् । अपामुतप्रशस्तिभिरश्वाभवथ

वाजिनोगावोभवथवाजिनीः (१।४-४)

आसन बिछाये

ॐ श णश्चमा जङ्गिडश्चुविष्कन्धादभि रक्षताम् ।

अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्योरसेभ्यः ॥ (२।४-५)

इससे आसन शुद्धि के लिये सोधे हाथ से आसन पर कुशा फिरा कर दक्षिण को फेंक दे।

निरस्तः परावसुः सह पाप्मना निरस्त सोऽस्तुयो ऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ।।

आसन पर बैठ शिखा बन्धन आचमन, प्राणायाम, परम्परानुसार करे बैठे और इष्ट मंत्र का जप करे।

सर्व प्रथम अनुष्ठानों का उचित समय (वैशम्पायनसंहिता) मेष में धन धान्य प्रद, वृष में मरणतुल्य कष्ट, मिथुन-में सन्ततिनाश, कर्क में सर्व सिद्धिप्रद, सिंह में बुद्धि क्षीण कर्त्ता, कन्या में लक्ष्मोप्रद, तुला में सर्वार्थ सिद्धि, वृश्चिक में स्वर्ण लाभ, धन में मान हानि, मकर में पुण्य प्रद कुम्भ में धनसमृद्धि, मीन में दुःखप्रद माना है। (कालोत्तर) मुक्ति कामना से कृष्ण पक्ष

भूति कामना से शुक्लपक्ष, (स्मृतितत्व) २,५,७,१०,१३,१५ पूर्णिमा तिथियां, तथा देवता की तिथि जिसकी आराधना करें। (पुरश्चरण दीपिका) रवि, बुध, गुरु, शुक्रवार अश्विनी, रोहिणी, स्वाती, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा, तन्त्रस्तर) आर्द्रा कृत्तिका नक्षत्र, विष्णु को स्थिर, शिवको चर शक्ति को द्विस्वभाव लग्न शुक्र, गुरु, चन्द्र, तारा की अनुकूलता रहने पर प्रारम्भ करने का निर्देश किया है। किसी भी अनुष्ठान से ३ दिन पूर्व क्षौरादि बनवाकर शुद्ध हो लें। जप या होम स्थान की चारों ही दशाओं में क्रमशः १।१ बालिश्त लम्बी, पीपल, गूलर, पिलखुन वट की मेषें "ॐ नमः सुदर्शनायास्त्रायफट्। इस मंत्र से १०८ वार अभिमन्त्रित करें पूजा करके, इस मंत्र को पढें।

ॐ ये चात्र विघ्न कर्त्तारो भुवि दिव्यन्तरिक्षगाः ।।
विघ्नभूताश्च ये चान्ये ममन्त्रस्य सिद्धिषु ।।१।।
मयैतत्कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः ।।
अपसर्पन्तुते सर्वे निर्विघ्नं सिद्धिरस्तुमे ।।२।।

इन्हें पढ़ कर मेषों को चारों दशाओं में पूर्वादि क्रम से गाड दें। उन्हीं पर "ॐ सुदर्शनायास्त्रायफट्" इस मंत्र से अस्त्रों की पूजा करें। और वहीं पूर्वादि क्रम से पांचों लोकपालों का आवाहन पूजन करें। जप स्थान के बीच श्रीगणेशाम्बिका का आवाहन पूजन करें। कूर्म अनन्त, पृथ्वी, क्षेत्रपाल, वास्तुपुरुष, तथा ब्राह्मणों का पूजन करं, दिक्पालों, क्षेत्रपाल वास्तु, गणपति को उड़द की दाल, सिन्दूरादि सहित बलि देकर बाहर भूत बलि दें। मंत्र—

ॐ ये रौद्रा रौद्र कर्माणो रौद्रस्थान निवासिनः।
मातरोऽप्युग्ररूपाश्च गणाधिपतयश्च ये ।।१।।
विघ्न भूताश्च ये चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः।
ते सर्वे प्रीतमनसः प्रति ग्रहणन्त्विमंबलिम् ।।२।।

इन दो मंत्रों से भूत बलि देकर हाथ पैर धो, आचमन करें। बलि दसों दिशाओं में दें प्रथम रात्रि में उपासना के शुभाशुभ स्वप्नार्थ विचार करें। जैसे, स्नानादि से निवृत्त हो,-हरि-स्मरण कर कुशासनादि के विस्तर पर शयन करें। शयन समय भगवान वृषभध्वज से प्रार्थना करें।

ओ३म् भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन ।।
इष्टानिष्टे समाचक्ष्वमम सुप्तस्य शाश्वत ।।१।।
ओ३म् नमो मजाय त्रिनेत्राय पिंगलाय महात्मने।
वामाय विश्वरूपाय, स्वप्नाधिपतये नमः ।।२।।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वं कार्येष्वशेषतः।
क्रिया सिद्धि विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।।३।।

प्रार्थना कर सोयें, स्वप्न को गुरु आचार्य को ही बतायें और शुभाशुभ का ज्ञान करें।

जप-होम के दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्त में उठै, शौच से निवृत्त हो, अपामार्गकी दातुन कर। ताम्रादि पात्र में जल भर कर उसमें—सर्वग्रह दोष निवारणार्थ, लजवन्ती, छुईमुई, कूट,

खील, कांगनी, जौ, पीली सरसों, देवदारु, हल्दी, सर्वौषधि, लोध, तीर्थोदक, कुशादक, गोश्रृङ्गोदक, तीर्थरज, यज्ञियभस्म, डाल लें और निम्न मंत्र पढें। ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती ।। नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ।।१।। ॐ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ।। आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदामम ।।२।।

इस प्रकार तीर्थों का जल में आवाहन करें। स्नान कर ३ कुशाग्रों से ऋग्वेद के ४ वारुण मंत्रों से शिर पर जल छिड़कें। मन्त्र

ॐ सिसृक्षो निखलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापतेः ।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ।।१।।

अलक्ष्मीर्मलरूपा या सर्वभूतेषु संस्थिता ।
क्षालयन्ति निज स्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम् ।।२।।

यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु वो नमः ।।३।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षय : सुखम् ।
सन्तोष : क्षान्तिरास्तिक्यं विद्या भवतु वो नमः ।।४।।

तत्पश्चात् हाथों में जल लें, नासिक के पास लगाकर मानसिक "ॐ ऋतं च सत्यं" इस अघमर्षण मंत्र को पढ़ें, इस प्रकार स्नान, तर्पण (देव-ऋषि-पितृ) करके नये, शुष्क, श्वेत वस्त्र धारण करें। अपनो गुरु, कुल पराम्परानुकूल तिलक लगायें। तदनन्तर, पत्र-पुष्प, फल, दक्षिणा के साथ यज्ञमण्डप में प्रवेश करें दिग्पाल लोकपाल, देव, ऋषि, पितृश्वर तथा गुरु, आचार्य, द्विजों को प्रणाम कर यथा स्थान वैठकर आचमन, प्राणायाम गुरु, इष्ट देव की वन्दना करें

श्वेत वस्त्र से ढ़क कर, उस पर चावलों के अष्टदल कमल के ऊपर ताम्र कलश को स्वस्तिक, मौलो, मालादि से युक्त करकेरक्खें। जल डाल कर मंत्र पढ़ें ।

(परिशिष्ट) ७।२ के अनुसार दीप प्रज्वलित करने का विधान है। कृत्वा पिष्टमयं दीपं सुवर्तिस्नेह संप्लवम् ।

अतिनिहः प्रान्यान् इति द्वाभ्यांमेनं प्रदीपयेत्। (मन्त्र)—

अस्या ऋचायाः शौनक (सम्पत्कामः) ऋषिः। अग्निः, देवता विराट् प्रस्तार पंक्तिः छन्द-यज्ञ कर्मणि अभीष्ट फल लाभार्थे, दीप स्थापने विनियोग।

अतिनिहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः ।
विश्वा ह्यग्ने दुरितातर त्वमथास्मभ्यं सहवीरंरयिं दाः ।।२।६।५

अस्यसूक्तस्य अथर्वा ऋषिः।जातवेदाः।देवता।अनुष्टुप्छन्द उपर्युक्त प्रयोजने विनियोगः।

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहंसासंहस्वप्रत्यजातान् जातवेदोनुदस्व ।
इदंराष्ट्रं पिपृहिसौभंगाय विश्वएनमनु मदन्तु देवाः ।।१।।

दपिक की पूजा कर वायु कीट आदि से रक्षार्थ छिद्रों के ढक्कन से ढ़क दें। इस अग्नि से हृदयाग्नि दीप्त करने को प्रार्थना करें।

अस्य सूक्तस्य कबन्ध ऋषिः। सान्तपनाग्निः देवता। अनुष्टुप् ३ ककुम्मति छन्दांसि विजये, शस्त्रधारणे, यात्रासाफल्ये, रात्रिस्वस्त्ययने, दूरन्तरप्रदेशस्वस्त्ययने, सर्वार्थ सिद्धि प्राप्ति करणे हृदयाग्नि अनुमन्त्रणे, उपस्थाने विनियोग।

यएनंपरिषीदन्तिसमादधति चक्षसे। सं प्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥१

अग्नेः सांतपनस्याहमायुषेपदमारभे। अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममद्यन्तं मास्यतः ॥२

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेणसमाहिताम्। नाभिह्वारेपदंनि दधाति समृत्यवे ॥३

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अवगच्छति। अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नमगृह्णात्यायुषे ॥४

जो इस प्रदीप्त अग्नि के निकट चारों ओर हवनादि, दर्शनादि, बैठ कर करते हैं तो हृदय में आत्माग्नि प्रकाशित होती हैं। इससे प्रतोप्त स्थान (आत्मादि) के बली; दीर्घायु, वाणी व नेत्र से निकला धुवाँ (ज्ञान) कर्म ज्ञानमार्गियों को प्रकाश देता है। आत्मसमर्पण (ज्ञानिः ईश्वर, राष्ट) कर्त्ता अजर अमरत्व प्राप्त करते हैं, समीप वालों से अदृष्ट हो शत्रुओं पर विजय, अभ्युदय प्राप्त करता है। (कौ० ७।१) इसके द्वारा ज्ञान, कर्म, और प्रकाश के लिये भी प्रार्थना करें।

अस्य ७।५४ सूक्तस्य ब्रह्मा, भृगुः ऋषयः। ऋक्साम, इन्द्रादि देवताः। अनुष्टुप् छन्द, ज्ञान, कर्म, प्रवर्द्धने, अभ्युदयार्थे, ज्योति, उपस्थाने विनियोगः। (कौ० ५।६)

ऋचं सामयजामहे याभ्यां कर्माणिकुर्वते। एतेसदसि राजतो यज्ञं देवेषुयच्छतः ।१

ऋचं सामयदप्राक्षंहविरोजोयजर्बलम्। एषमा तस्मान्माहिंसीद्वेदः पृष्ठः शचीपते ॥२

ऋचा और साम द्वारा किया गया वेदाध्ययन देवों के कार्यों का साधन और कर्मभूमि का प्रकाश ज्ञान रूप है। यह गुरु से प्राप्त करने की प्रार्थना करें, यह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक उन्नति का ज्ञान सहायक स्थिर हो।

अस्य ७।५५ सूक्तस्य भृगुः ऋषिः। इन्द्रः देवता। विराट् परोष्णिग् छन्द मार्गः स्वस्त्ययनें दिव्य प्रकाशार्थे जपे, होमे च विनियोगः।

ये ते पन्थानो ऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः। तेभिः सुम्नयाधेहि नो वसो ॥१

इस प्रकार दीपस्थापन, पूजा, प्रार्थना करे इति दीपस्थापन।

उपर्युक्त तथा निम्न अम्बादि गण से यज्ञ कर्मार्थ जल अभिमन्त्रित कर अन्य यज्ञीय कार्य करे।

अनुष्ठान कर्म में सपत्नीक कृत्य करने का शास्त्रीय विधान है। पति के बाम भाग में ग्रंथि-बन्धन युक्त पत्नी बैठे। द्विजाति यज्ञोपबीत धारण करें। अन्यवर्ण अपने सम्प्रदायानुसार तुलसी, रूद्राक्ष आदि की माला धारण करे और फिर पवित्रेस्थो वैष्णव्यो सवितुर्वह् प्रशम्यु-त्पुनामि मंत्र पढ़कर कुश की बनी हुई पवित्री अनामिका अंगुली में धारण कर यजमान तथा आचार्य. दीपक धूप, पूजा सामिग्री के स्थानों पर घी सिन्दूर से षट कोण यंत्र बना कर लज्जा (ह्रीं) बीज पञ्चकोण षट्या के बोच लिखें उसी पर रंगे चावल पुष्प रखें और मंत्र पढें।

ओ३म् कूर्मासनाय नमः, ओ३म् ब्रह्मासनायनमः, ओ३म् कमलासनाय नमः ओ३म् सिद्धेश्वरासनाय नमः। उसके उपरान्त पृथ्वी (लं) बीज से तथा वेद मन्त्र से पृथ्वी का पूजन करें। मंत्र—

ऊँ पृथ्वीतिमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः। ऊँ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुनाधृता त्वं च धारय मान्देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥१

आसन और भूमि का पूजन कर समस्त वस्तु, भूमि, आदि को कुशाग्रों के जल से छींटे दें मंत्र।

ऊँ अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थांगतोऽपिवा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षस वाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥२

तत्पश्चात यजमान आदि के हाथों में अक्षत पुष्प देकर शान्ति मंत्र पढ़े ॐ नमो ब्रह्म वेदाय। ऊँ नमो अथर्व वेदाय। ऊँ भूर्भुवः स्वर्जनदोऽम्। अहमर्वाग्वसोः सदने सीदा मृतस्य सदने सीदामि सत्यस्य सदने सीदा मीष्टस्य पूर्तस्य सदन सीदामि मामृषदेवर्वाहः स्वासस्थं त्वाध्यासदेवमूर्णम्रदमनभिशोकम् ॥

तदनन्तर अथर्व कां २ सू० २ का जप करे।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्योऽविक्ष्वीड्यः।

तं त्वा यौमि ब्रह्मणादिव्य देव नमस्ते अस्तु दिविते सुधस्थम् ॥(२।२-१)

स्वस्त्ययनगण से स्वस्ति वाचन करे। पञ्चगव्य प्राशन आचार्य, यजमान, होता, जापक सभी करें। यजमान सपत्नीक-समस्त देव यजन में प्राङ्मुख, उपांशु होकर, सव्य अथवा ईशान भिमुख होकर पितृमेध आदि कर्म अपसव्य, दक्षिण या आग्नेयाभिमुख होकर करें।

जपके अनन्तर आनोभद्राइत्यादि स्वस्ति मंत्रों से स्वस्ति वाचन करें

स्वस्ति-वाचन

ॐ आनो भद्राःक्रतवो यन्तु विश्वतो दब्धासो ऽअपरीतास ऽउद्भिदः॥

देवानो यथा सदमिद्वृधे ऽअसुन्नप्रायुवोरक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥

दे॒वानां भ॒द्रा सु॑म॒तिऋ॑जूय॒तान्दे॒वाना॑ᳬ रा॒तिर॒भिनो निव॑र्त्तताम् ॥
दे॒वाना॑ᳬ स॒ख्यमुप॑ सेदिमाव्व॒यन्दे॒वानऽआयु॒ᳬप्रति॑रन्तु॒जीवसे॑ ॥२॥
तान्पूर्व॑यानि॒विदा॑हूमहेव्व॒यम्भगं॑ मि॒त्रमदि॑ति॒न्दक्ष॑म॒स्रिध॑म् ॥
अ॒र्य्य॒मण॒म्व्वरु॑णᳯसोम॑म॒श्विना॒ सर॑स्वतीनᳬसु॒भगा॒ मय॑स्करत् ॥३॥
तन्नो॒व्वातो॑ मयो॒भुव्वा॑तु भे॒षजन्तन्मा॒ता पृ॑थि॒वी तत्पि॒ताद्यौः ॥
तद्ग्रावा॑णᳬ सोम॒सुतो॑ मयो॒भुव॒स्तद॑श्विना शृणुतन्धिष्ण्या यु॒वम् ॥४॥
तमीशा॑न॒ञ्जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पति॑न्धियञ्जि॒न्न्वमव॑सेहूमहेव्व॒यम् ।
पू॒षा नो॒यथा॒व्वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धᳬस्व॒स्तये ॥५॥
स्व॒स्तिन॒ऽइन्द्रो॑वृ॒द्धश्र॑वाᳬ स्व॒स्तिन॑ᳬ पू॒षाव्वि॒श्ववे॑दाᳬ ॥
स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ऽअरि॑ष्टनेमिᳬ स्व॒स्तिनो॒ बृह॒स्पति॑र्द्धातु ॥६॥
पृष॑दश्वा म॒रुत॒ᳬ पृश्नि॑मातरᳬ शुभं॒यावा॑नोव्वि॒दथे॑षु॒जग्म॑यᳬ ॥
अ॒ग्नि॒जि॒ह्वा मन॑वᳬ सूर॑चक्षसो॒व्विश्वे॑नोदे॒वाऽअव॒साग॑मन्नि॒ह ॥७॥
भ॒द्रङ्कर्णे॑भिᳬशृणु॒याम॑देवाभ॒द्रम्प॑श्ये मा॒क्षभि॒र्यज॑त्राᳬ ॥
स्थि॒रैरङ्गै॑स्तुष्टु॒वाᳯस॑स्त॒नूभि॒र्व्व्य॑शेम॒हि॑दे॒वहि॑तं॒यदायु॑ᳬ ॥८॥
श॒तमिन्नु श॒रदो॒ऽअन्ति॑ दे॒वायत्रा॑ न॒श्च॒क्राज॒रस॑न्त॒नूना॑म् ॥
पु॒त्रासो॒यत्र॑पि॒तरो॒ भव॑न्ति॒मानो॑म॒ध्यारी॑रिष॒तायु॒र्गन्तोः ॥९॥
अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑ति॒रन्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्म्मा॒ता सपि॒ता सपु॒त्रᳬ ॥
विश्वे॑दे॒वाऽअदि॑ति॒ᳬ पञ्च॒जना॒ऽअदि॑ति॒र्ज्जा॒तमदि॑ति॒र्ज्जनि॑त्त्वम् ॥१०॥
तम्पत्नी॑भि॒रनु॑ गच्छेमदे॒वाᳬ पु॒त्रैर्भ्रातृ॑भिरु॒तवा॒ हिर॑ण्यैः ॥
नाकं॑गृभ्णा॒नाः सु॑कृ॒तस्य॑लो॒केतृ॒तीये॑ पृ॒ष्ठे ऽअधिरोच॒नेदि॒वᳬ ॥११॥
आ॒यु॒ष्य॑म्व्वर्च्च॑स्य॒ᳯ रा॒यस्पोष॒मौद्भि॑दम् ॥
इ॒दᳯ हिर॑ण्यं॒ वर्च्च॑स्व॒ज्जैत्रा॒ या वि॑शता॒दुमाम् ॥१२॥
द्यौᳬ शान्ति॑रन्तरि॑क्ष॒ᳯ शान्ति॑ᳬ पृथि॒वी शान्ति॑ रा॒पᳬ शान्ति॒

रोषधयः शान्तिः ॥ वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि ॥१३॥

यतो यतः समीहसे ततोनोऽअभयङ्कुरु॥ शन्नः कुरुप्रजाभ्योभयन्नः पशुभ्यः ॥१४॥

सुशान्ति र्भवतु। ॐ श्री महागणाधिपतये नमः॥ ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः॥ ॐ उमा महेश्वराभ्यां नमः ॥ ॐ वाणी हिरण्यगर्भाभ्यांनमः ॥ ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नम.। ॐ मातपितृ चरण कमलेभ्यो नमः॥ ॐ कुलदेवताभ्यो नमः॥ ॐ इष्ट देवताभ्यो नमः। ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः। ॐ बास्तुदेवताभ्यो नमः। ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्योनमो नमः। ॐ सर्वेभ्यो तीर्थेभ्यो नमोनमः। ॐ पुण्य पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ॥ ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः। लम्बोदर श्चविकटोविघ्न नाशो विनायकः ॥१॥ धूम्रकेतुगणाध्यक्षो भाल चन्द्रोगजाननः॥ द्वादशैतानि नामानियः पठेच्छृणुयादपि ॥२॥ विद्यारम्भे विबाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा॥ संग्रामे संकटे चैव बिघ्न स्तस्य न जायते ॥३॥ शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्॥ प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥४॥ अभीप्सितार्थं सिद्धयर्थं पूजितोयः सुरासुरैः॥ सर्व विघ्न हरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥५॥ सर्व मंगलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थे साधिके शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तुते ॥६॥ सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्॥ येषां हृदिस्थो भगवानमङ्गलायतनं हरिः ॥७॥ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥८॥ विनायकंगुरुंभानुं ब्रह्मा विष्णु महेश्वरान्। सरस्वतीं प्रणम्यादौ सर्व कार्यार्थ सिद्धये ॥९॥ सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रि भुवनेश्वराः॥ देवाः दिशन्तुनः सिद्धिं ब्रह्मेशान जनार्दनाः ॥१०॥ वक्रतुण्ड महाकाय सूर्य कोटि समप्रभा। अविघ्नं कुरू मेदेव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥११॥

इस भाँति प्रणाम कर नीचे दिया हुआ संकल्प लें,

प्रतिज्ञा संकल्प

संकल्प— ॐ स्वस्ति श्रीमन् मुकुन्दसच्चिदानन्दस्याज्ञयाप्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीयेप्रहरार्द्धे एक पञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथम पक्षेप्रथम दिवसे अह्नोद्वितीये यामे तृतीये मुहूर्त्ते रथन्तरादि द्वात्रिंशत्कल्पानांमध्ये श्रीश्वेत बाराहेकल्पेस्वायंभुवादि मन्वन्तराणांमध्येसप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृत त्रेता द्वापरकलिसंज्ञानां चतुर्युगानांमध्ये वर्तमाने अष्टाविंशतितमे कलियुगेतत्प्रथम चरणे तथा पञ्चाशत्कोटि योजनविस्तीर्ण भूमण्डलान्तर्गत सप्त द्वीप मध्य वर्तिनि जम्बू द्वीपे तत्राऽपि नव खण्डानांमध्ये नव सहस्र योजन विस्तीर्णेभरतखण्डे तत्राऽपि परम पवित्रे भारतवर्षे आर्यावर्त्तान्तिर्गत ब्रह्मावर्तैक देशे (अमुक्) क्षेत्रे (अमुक) मण्डले, गंगायाः (अमुक) नर्मदायाः (अमुक) यमुनाया (अमुक) दिक्भागे—

देव ब्राह्मणानां सन्निधौ श्रीमन्नृपति वीर विक्रमादित्य राज्यातीत (अमुक) संख्या परिमितं प्रवतमान सँवत्सरे प्रभवादिर्षाष्ठ संवत्सराणां मध्ये (अमुक) नाम सँवत्सरे (अमुक) अयन (अमुक) गोले (अमुक) ऋतौ (अमुक) मासे (अमुक) तिथा (अमुक) वासरे (अमुक) योगे (अमुक) करणे (अमुक) नक्षत्रे (अमुकराशिस्थे) श्रा सूयं (अमुक राशिस्थे) श्री चन्द्रे (अमुक राशिस्थे) देवगुरा, शेषेषु गृहेषुयथा यथाराशिस्थितेषु सत्सु, एवंग्रहगुण गण विशेषण विशिष्ठायांपुण्यस्तिथौ (अमुक) वेदान्तर्गत (अमुक) शाखाध्यायी (अमुक) सूत्रीय (अमुक) प्रवरीय (अमुक) गोत्रोत्पन्न (शर्मा, वर्मा, गुप्ता) दास-अहंमम (आत्मनः) अस्माक सर्वेषां सकुटुम्बिनां, बन्धु-वान्धवादीनां, पशु गोष्ठयादिका नाञ्च इह जन्मनि, जन्मान्तरे वा (अमुक देव आराधन, यजन, उपस्थान, अवसेचनादि) द्वारा कृत कायिक, वाचिक, मानसिक दुरित-ध्वंसपुरस्सर, ब्रह्महत्यादि पाप, स्वर्णस्तेयादिपाप विविध-शाप, ताप, नैऋति, कृत्या, वशा, क्रव्यात, अभिचार जनितवैकृत्यादि दोष, यक्ष गन्धर्व अप्सरा, यातुधान, असुर, पिशाचादि उन्मांद जनित समस्तविकार, क्षेत्रीय दोष यम-वरुणादि विविधपाश जनित विकार ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड, ब्रह्मशिरा, पाश्वपदास्त्र इन्द्र कुलिश त्रिशूल, तिग्महेति दिव्यायुध जनित रक्तस्रावादि विविध विकार जन्म लग्नाद्वर्ष लग्नान्मासलग्नाच्चतुर्थाऽष्टम, द्वादश, त्रिक, मार्कादिस्थाना-स्थित सूर्यादिक्रूर ग्रह ; तज्जनितारिष्ट निवृत्तिपूर्वक, अष्टोत्तरी, विशोत्तरी योगिनीदशा अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर दशा, सूक्ष्म-प्राण दशा, दिन दशा, तज्जनितारिष्ट निवृत्ति पूर्वक, ज्वर-पीडा, दाह पीडा नेत्र,कर्णोदरादि पीडा निवृत्तिपूर्वक, अल्पायुनिवत्तिपूर्वक आधि दैविक, आधि भौतिक, आध्यात्मिकक्लेश, वन्ध्यात्व, नपुंसकत्व, गर्भस्राव, मृतापत्यादि दोष, दाम्पत्यद्रोह, गुरु, पितु, मातुद्रोह, ईर्ष्यादि उपशमनपुरस्सर अंहसोन्मूलने दौर्भाग्यनाशने, अर्थोत्थापने, कृषि पशु, संवर्द्धने, मेधाजनने, पौष्टिके स्वस्त्ययने,ब्रह्मवर्चसे, दीर्घायुष्ये, विविध अद्भुत वैकृति तारका, उपतारका, उल्का पात, कपोत काक, गृद्धादि अद्भुत दुरित जनित समस्त क्लेश उपशमनार्थे बृहच्छान्तिके (अमुक) देवयजन-वलिदानार्चन, विविधपीठस्थ देवर्षिपतृणां पूजनं,नान्दीश्राद्धं, पुण्याहवाचन, आचार्य, ब्रह्मा, ऋत्विगादि वरणन, पति-पत्नि ग्रन्थि वन्धनादिकं, यथा लब्धोपचारै पूजनं, उत्तरवेदि अर्चनं, पञ्च भूसंस्कार, कुशकण्डिका, स्रुवादि संस्कार, ब्रह्मवरणन, ब्रह्मस्थापन, अग्नि आनयन, सम्मुखीकरणं स्थापन, वन्दन-पुरस्सर, नवग्रहादि, सर्वतोभद्रादि पीठस्थ देवानांयजन पुरस्सर, प्रधान देवता होम, पूर्णाहुति आदिकं जगद्बीज, यज्ञस्वरूप ब्रह्म, आत्मैक महाविष्णु प्रीत्यर्थ श्रीनारायणार्पणंञ्चाहं करिष्ये।

इस प्रकार हाथ में अक्षत पुष्प, फल, दक्षिणा, सुपारी जल लेकर समाहित शान्तमन, दृढ़ विश्वास और श्रद्धा के साथ गुरु प्रभुचरणों का ध्यान करते हुए संकल्प करें।

सहसंकल्प

उपर्युक्त कर्माङ्गभूत-गणपति, विश्वकर्मा, पूजनं, स्वास्ति वाचन पुण्याहवाचन, मातृका (स्थल-घृत जलादि) पूजनं वसोर्द्धारापूजनं, आयुष्य मंत्र जपं नान्दीश्राद्ध आचार्यादि वरणनमहं करिष्ये।

तदनन्तर कर्मार्थ कर्मपात्र शान्ति औषधियाँ, यज्ञिय शान्तिदश वृक्षों की टहनियाँ, पावन यज्ञ, तीर्थ, गौशाला, अश्वशाला, हस्तिशाला बामी कीरज, गोपीचन्दनादि। गोश्रृङ्गोदक, कुशोदक, तीर्थजल, यज्ञियजल बड़े ताम्र घट में डालें आसन पर पात्र को रक्खें, पात्र में दूर्वा व कुशा डालें।

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव ऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेणपवित्रेणसूर्यस्य रश्मिभिः॥ तस्य ते पवित्रपतेपवित्रपूतस्य यत्कामः पनेतच्छ केयम्॥

ॐ इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय॥ त्वामवस्युराचके।

कर्म पात्र में (शान्ति कार्यो मे उत्तर से, अभिचारादि कृत्यों में दक्षिण दिशा से लाये हुए) जल से पूर्ण कर, गन्ध, पुष्प, यव, तुलसीदलादि मौन होकर डालें।

(१) अनुष्ठान स्वय करने पर संकल्प मे करिष्ये और यजमान के लिए किए जाने पर करिष्यामि करना चाहिए।

कर्मार्थ, जल पूजनार्चन करें।मन्त्र :—

ॐ तत्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमान स्तदा शा स्ते यजमानो हविर्भिः॥

अहेड मानोवरुणो हवोध्युरुशठं समानऽआयुः प्रमोषीः॥

अस्मिन कलशे ॐ वरुण इहागच्छेहतिष्ठ इत्यावाह्य ॐ अपांपतये वरुणाय नमः गन्ध, अक्षत, पुष्प, माला से पूजन करें। प्रार्थना करें "कलशस्यमुखे विष्णु" ॐ गङ्गे च यमुने च गोदावरि सरस्वति। नमदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥१॥

अस्मिन्कलशे सर्वाणि तीर्थानि आवाहयामि, पूजयामि नमस्करोमि। तीर्थों का आवाहन करें। आवाहन मुद्रा करें। "देव दानव संवादे प्रार्थना करें। समस्त यज्ञ-कर्मो में अध्याय ४ अम्वादिगण से जल अभिमन्त्रित करके यज्ञ-कर्म करें। तत्पश्चात् दूब द्वारा इसी घट के जल से समस्त सामिग्री को छीटों से" ॐ अपवित्र शुद्ध करें दीप का पूजन करें। दीप की वर्ति घी तेल आदि "विशेष विचारणीय" में देखें।

भोदीप त्वं ब्रह्मरूप अन्धकार निवारक। इमां मया कृतां पूजां गृह्णस्तेजः प्रवर्धय॥१॥ दीपायनमः। गन्ध अक्षत, पुष्पों से पूजा करे। तदनन्तर गणपति पूजन करें

ॐ श्वेताङ्ग श्वेत वस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितंश्वेतगन्धैः क्षीराब्धौरत्नदीपैः सुरतरु विमले रत्नसिहाससनस्थम्। दोर्भिः पाशाङ्कुशेष्टस्भयधृतिविशदं चन्द्रमौलि त्रिनेत्रंध्यायेच्छान्त्यर्थमीशंगणपतिममलं श्री समेतं प्रसन्नम्॥११॥ पुष्प लेकर आवाहन करें।

हेहेरम्बत्वमेहिऐहि अम्बिका त्र्यम्बकात्मज। सिद्धि बुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षंलाभपितुष्पित॥ नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज। भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः॥२॥ आवाह्यामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः। इहागत्य गृहाण त्वं पूजां क्रतुंचरक्षमे॥२॥

ॐ गणानान्त्वा गणपतिठं हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिठं हवामहे निधीनान्त्वा निधि पतिठं हवामहेव्वसो मम ।। आहमजानि गर्भधमात्वमजासिगर्भधम् ।।१।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धि बुद्धि सहित श्री महागणाधिपतये नमः। गणपतिमावाहयामि स्थापयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धि बुद्धि सहित महागणाधिपतये नमः। इस ब्याहृति से पूजन कर विशेषार्घ्य प्रदान करें।

अर्घ्य

ॐ रक्ष-रक्ष गणाध्यक्ष रक्षत्रैलोक्य रक्षक ।। भक्तानांमभयंकर्त्ता त्राता भवभवार्णवात् द्वैमातुर कृपासिन्धोषाण्मातुरग्रजप्रभो ।। वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थदः ।।२।। गृहाणार्घ्यमिदं देव सर्वदेवनमस्कृत ।। अनेनसफलार्घ्येणफलदोऽस्तु सदामम ।।३।। ॐ भू० सि० मग० विशेषार्घ्यं समर्पयामि ।

प्रार्थना

विघ्नेश्वराय बरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।। नागाननायश्रुति यज्ञ विभूषिताय गौरी सुताथ गणनाथ नमो नमस्ते ।।१।। भक्तार्ति नाशनपराय गणेश्वराय, सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।। विद्याधराय विकटाय च वामनाय, भक्त प्रसन्न वरदाय नमो नमस्ते ।।२।। नमस्ते ब्रह्म रूपाय विष्णु रूपाय ते नमः। नमस्तेरूद्ररूपाय करि रूपाय ते नमः ।।३।। विश्वरूप स्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।। भक्त प्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ।।४।। लम्बोदर नमस्तुभ्यंसततं मोदक प्रिय। निर्विघ्न कुरुमे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ।।५

त्वं विघ्नशत्रु दलनेति च सुन्दरेति भक्त प्रियेति सुखदेति वरप्रदेति ।। विद्याप्रदेत्य घहरेति च ये स्तुवन्ति तेभ्योगणेश वरदो भवनित्य मेव ।।६।।

इस पूजा से सिद्धि बुद्धि सहित महागणाधिपति, सांगः सपरिवारः प्रीयताम् ।।

विषय प्रवेश में दिये गये (अम्बादिगण, अथर्ववेदोक्त कां० १ सू. ४,५,६,३३ कां. ६ सू. २२,२३,२४ व ५१ से जल अभिमन्तित्र करें। यही जल, देव पूजन यजन, दोषी के अवसेचन, मार्जन स्नान, समस्तकार्यों पान, दिक्बन्धनादि में लें।

दीप

यथारुचि, यथाकार्य, यथा परम्परागत निर्दिष्ट, दीप, वर्तिघृत आदि स्वर्ण शलाका प्रादेशमात्र, (अंगुष्ठ से तर्जनी की चौड़ाई पर्यन्त दूरी प्रादेश) कैंची से युक्त भूमि पर तथा यथा सम्भव पात्र में ही यंत्र खुदवा कर यारक्त चन्दन को स्याही से अनार की लेखनी से लिखें, पूजा रक्त चावलरक्त, रौली, चन्दन पुष्प ले कर भूमि पर, अक्षत पुष्प रखकर, ज्योति की प्रतिष्ठा करें दीपक को छेददार ढक्कन से ढक सुरक्षा कर लें।

ज्योति पूजन

ॐ भूर्भुवः स्वः आद्या सर्व सुरौजोद्भव तेज स्वरूपिण्यै नमः
ॐ जात वेदसे सुनवामसोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।। पूजन करें।

प्रार्थना

अथर्व वेद कां० १ सूक्त १३ से करें।

सर्व प्रथम अपने सामने पूर्वभांति ताम्र कलश स्थापित कर वरुण भगवान् को पूजा कर प्रार्थना करें।

वरुण-प्रार्थना

ॐ नमो नमस्ते स्फटिक प्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय ।।

सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते ।।१।।

पाशपाणे नमस्तुभ्यं पद्मिनी जीवनायक ।। पुण्याह वाचनं यावत्ताव त्वं सन्निधो भव ।।२।।
यह प्रार्थना कर पुण्याह वाचन करें।

पुण्याह वाचन

पृथ्वी पर घुटना और पिण्डलियों से स्पर्श कर कमल मुकुल तुल्य अञ्जलि को शिर के पास रख सीधे हाथ से कलश को धारण कर प्रार्थना करें।

दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च ।।

ॐ त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा ऽअदाभ्यः ।। अतो धर्माणि धारयन् ।।१।।

"यजमान-तेनायुः प्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घ मायुरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु ।" कहें द्विजः—"पुण्यं पुण्याहं दोर्घमायुरस्तु" कहें, ऐसे ही सभी जगह यजमान प्रार्थना करें-द्विज आशीर्वाद ३ बार कह कर दें।

य० ब्राह्मणानां हस्ते सुप्रोक्षितमस्तु, ॐ शिवा आपः सन्तु" जल दें द्विज—सन्तु शिवा आपः" कहें। य०—ॐ सौमनस्यमस्तु" पुष्प दें, द्वि.—अस्तु सौमनस्यम्" ३। य०—अक्षत दें। द्वि०—अस्त्वक्षतमरिष्टं च"। य० ॐ गन्धाः पान्तु, गन्ध दें—द्वि० सौमङ्गल्य ञ्चास्तु

पुण्याह वाचन

पद्धति में यजुर्वेदीय, पौराणिक निहित है, यहाँ अथर्वाङ्गिरस पद्धति से है।

ॐ धाताराति: सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नोऽअग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजाया संरराणोयजमानाय द्रविणं दधातु ।।१।।

अभयं द्यावा पृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु।

अभयं नो स्तूवान्तरिक्षं सप्त ऋषीणां च हविषाऽभयं नोऽअस्तु ।।२।।

नवो नवो भवसि जायमानोऽन्हां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।

भागं देवभ्यो विदध्वा स्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ।।३।।

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वं नायन् वानस्पत्यः सम्भृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान् सिंह इव ज्येष्यन्नभितं स्तनीहि ॥४॥

पुन्याह वाचन विप्रगण करें ।

इससे आशीर्वाद, दें

ॐ त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिर दितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥

कल्याणार्थ बचन

ॐ पनन्तु मा देवजनाः पुनन्त मनवोधिया पुनन्त विश्वा भूतानिपवमानः
पुनातुमा ॥१॥

ॐ विश्वजित्कल्याण्यै मा परिधेहि ॥ कल्याणि द्विपाच्च सं वं नो रक्षचतुष्पाद्यच्चं
नस्वम् ॥२॥

ऋद्धि का आशीर्वाद

ॐ ऋधङ्ङ्त्रोयोति य आवभूवामृता सुवर्द्ध भानः सुजन्मा ।
अदब्धासुभ्राजमानो देवत्रितो धर्तादाधारत्रीणि ॥

ॐ स्वस्तिमात्र उतपित्रेणो अस्तुस्वस्तिगोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः
विश्वं सुभूतंसुविदत्रं नो अस्तु ज्योग वद्दशेम सूर्यं ॥

स्वस्ति वाचन करे ।

ॐ आस्टष्वयं तीयजते उपाके उषासानक्ता सदतां नियोनौ ॥
दिव्येयोषणेबृहती सुरुक्मो अधिश्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥५॥

श्री वाचन करें ।

ॐ आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टु रधि निधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरासुवास्मै शतं जीं वाति शरदस्तवायम ॥६॥

आयुष्य वाचन

ॐ एहयांतु वरुणः सोमो अग्नि बृहस्पति वसु रे हयांतु ।
अस्य श्री यमुपसंयात सर्वउग्रस्य चेतुः समनसः सजाताः ॥७॥

राजश्री वाचन करें।

रक्षा तथा देव प्राप्ति का आशीर्वचन

ॐ वेदाः स्वस्ति ईन्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुनः स्वस्ति।
हविष्कृतो यज्ञियां यज्ञ कामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषंताम् ॥९॥ अथवा

ॐ त्यमूषुवाजिनं देवजूतं सहोवानन्त ऋतारं स्थानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतना जमासुं स्वस्तये ताक्ष्र्यमिहाहुवेम ॥९॥

आयुष्य स्वस्तिवाचन शेष पुण्याह वाचन पूर्वोल्लिखित ही है।

तदुपरान्त मातृका पूजन यथा क्रम से जो आगे उल्लिखित है करें।

यथाक्रम

विश्वकर्मा का पूजन करें।

ॐ ये भक्षयन्तो नवसून्यानुधुर्यानुग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद्विश्वकर्मा ॥

अदिति का कां ६ सू. ७ से पूजन करें। तदनन्तर
अनुमति का पूजन करें

ॐ अन्वद्यनो ऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अग्निश्च हव्यवाहनो भवतांदा
शुषे मम ॥

तत्पश्चात् सिनीवाली देवता, (७।४८), कुहू देवता (७।४९) राका देवता (७।५०) देवपत्न्यः (७।५१) आकूतिः (१९।४) के पूजन विशेषरूप से करें।

पुण्याहवाचन

यजमान—ॐ अक्षताः पान्तु, द्विज आयुष्यमस्तु॰३। ॐ पुष्पाणिपान्तु सौश्रियमस्तु ३ ॐ ताम्बूलानि पान्तु—ऐश्चर्यमस्तु ओ३म् दक्षिणाः पान्तु, वहुधनमस्तु ३ अत्राः पांतु स्वर्चितमस्तु,

यजमान आचार्य आदि को प्रणाम करते हुए यजमान कहे,
श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं वहुपुत्रं चायुष्यं चास्तु, इतिभवन्तो व्रुवन्तु।

द्विजाः—श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्त वहुपुत्रं चायुष्य चास्तु, इत्युक्त्वा
दीर्घमायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्त्विति, यजमान मूर्ध्नमभिषिञ्चेयुः ॥

यंकृत्वा सर्ववेदयज्ञ क्रियाकरण कर्मारम्भाः शोभनाः प्रवर्तन्ते तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा ऋग्यजुः सामाशीर्वचनं बहुऋषिमतं समनुज्ञातंभवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं, वाचयिष्ये। ॐ वाच्यतां ब्राह्मणानां हस्तेष्वक्षतान्दद्यात्तेवमाशिषोदद्युः।

ॐ भद्रं कर्णेभि॰ ॥१॥ देवानां भद्रा ॥२॥ नतद्रक्षांऽसिन पिशाचास्तरन्ति देवानामोजं॰ प्रथमजं ह्येतत् ॥ योबिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणते दीर्घमायु॰ समनुष्येषु कृणते दीर्घमायुः ॥३॥ दीर्घायुस्तऽओषधेरवनिता यस्मै चत्वा खनाम्यहम् ॥ अथो त्वन्दीर्घायुर्भूत्वाश तवल्श ाव्विरोहतात् ॥४॥ द्रविणोदा द्रविण सस्तरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्रियं सत् । द्रविणोदाव्वीरवतीमिशन्नो द्रविणोदारासते दीर्घमायु॰ ॥५॥ सवितापश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितो त्तरात्तात्सविताधरात्तात ॥ सविता नः सुवतुसर्वतातिं सवितानोरासतान्दीर्घ मायु॰ ॥६॥ नवोनवो भवति जायमानोह्नांकेतुरुषसामेत्यग्रम् ॥ भागन्देवेभ्यो विदधात्ययंप्रचंद्रमास्तिरते दीर्घमायु॰ ॥७॥ उच्चादिविदक्षिणावन्तोऽअस्थर्येऽ अश्वदाः सहते सूर्येण । हिरण्यदाऽअमृतत्वंभजन्ते वासोदाः सोमप्रतिरन्त आयुः ॥८॥

इस प्रकार आशीर्वाद दें।

व्रत जपनियम तपः स्वाध्याय क्रतु दयादम दानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम्। (यजमान कहें) द्विज—समाहितमनसः स्मः।

(य०) प्रसीदन्तु भवन्तः (दि०) प्रसन्नाः स्मः। (य०) शान्तिरस्तु (द्वि०) अस्तु (य०) तुष्टिरस्तु, ॐ तुष्टिरस्तु ॐ बृद्धिरस्तु ॐअविघ्नमस्तु ॐ आयुष्यमस्तु ॐ आरोग्यमस्तु ॐ शिवं कर्मास्तु ॐ कर्मसमृद्धिरस्तु ॐ वेदसमृद्धिरस्तु ॐ शास्त्र समृद्धिरस्तु ॐ धनधान्य समृद्धिरस्तु ॐ पुत्रपौत्रसमृद्धि रस्तु ॐ इष्टसंपदस्तु ॐ अरिष्टनिरसनमस्तु ॐ यत्पापं यद्रोगं नः अशुभम अकल्याणं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ॐ यच्छ्रेय स्तदस्तु ॐ उत्तरे कर्मणि निर्बिघ्नमस्तु ॐ उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु ॐ उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सपद्यन्ताम। ॐ तिथिकरणमुहूर्त्त नक्षत्रग्रहलग्न संपदस्तु ॥९॥

उदकसेक

ॐ तिथिकरण मुहूर्त्त नक्षत्रग्रह लग्नाधि देवताः प्रीयन्ताम। ॐ तिथिकरणे सुमुहूर्त्ते सग्रहे साधि देवते प्रीयेताम। ॐ दुर्गापाञ्चाल्यो प्रीयेताम। ॐ अग्निपुरोगाविश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्। ॐ इन्द्रपुरोगामरुद्गणाः प्रीयन्ताम्। ॐ माहेश्वरीपुरोगाउमामातरः प्रीयन्ताम। ॐ अरून्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम्। ॐ। विष्णुपुरोगाः सर्वेदेवाः प्रीयन्ताम। ॐ ब्रह्मपुरोगाःसर्वे वेदाः प्रीयन्ताम। ॐ ब्रह्मचब्राह्मणाश्चप्रीयन्ताम्। श्रीसरस्वत्योप्रीयेताम। ॐ श्रद्धामेधे प्रीयेताम्।

ॐ भगवती कात्यायनी प्रीयताम्। ॐ भगवतीमाहेश्वरी प्रीयताम्। ॐ भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवती सिद्धिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवतीपुष्टि करी प्रीयताम्।

ॐ भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम् । ॐ सर्वाकुलदेवताः प्रीयन्ताम् । ॐ सर्वाग्रामदेवताः प्रीयन्ताम् ॐ हताश्च ब्रह्मद्विषः ॐ हताश्च परिपन्थिनः । ॐ हताश्चविघ्नकर्त्तारः शत्रवः पराभवं यान्तु ॐ शाम्यन्तु घोराणि । ॐ शाम्यन्तु पापानि । ॐ शाम्यन्त्वीतयः । ॐ शुभानि बर्द्धन्ताम् । ॐ शिवा आपः सन्तु । ॐ शिवा ऋतवः सन्तु । ॐ शिवा ओषधयः सन्तु । ॐ शिवा नद्यः सन्तु । ॐ शिवागिरयः सन्तु । ॐ शिवा अतिथयः सन्तु । ॐ शिवा अग्नयः सन्तु ॐ शिवाआहुतयः सन्तु । ॐ अहोरात्रे शिवेस्याताम् ।

ॐ निकामे निकामेनः पर्ज्जन्यो वर्षतुफलवत्योनऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥१॥

ॐ शुक्राङ्गारक वुधवृहस्पतिशनैश्चरराहु केतु सोम सहिता आदित्यपुरोगाः सर्वेग्रहाः प्रीयन्ताम् । ॐ भगवान्नारायणः प्रीयताम ॥ ॐ भगवान्पार्ज्जन्यः प्रीयताम् । ॐ भगवान्स्वामीमहासेनः प्रीयताम् । ॐ पुण्याहकालान्वाचयिष्ये । इस प्रकार यजमान प्रार्थना करें । द्विज आशिषदें ।

ब्राह्म्यंपुण्यं महद्यच्च सृष्ट्युत्पादन कारकम् । वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत्पुण्याहं—ब्रुवन्तु नः ॥१॥ भोब्राह्मणाः मयाक्रियमाणस्य (अमुकमंत्रपुरश्चरणाख्यस्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु ओम० पुण्याहम ॥३॥ प्रतिवचन ३ वार कहैं ।

ॐ पुनन्तु मादेवजनाः पुनन्तु मनसाधियः ॥ पुनन्तुव्विश्वा भूतानिजातवेदः पुनीहिमा ॥१॥

पृथिव्यामुद्धृतायां तु यत्कल्याणं पुराकृतम ।

ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः ॥१॥ भोब्राह्मणामया० कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु । ॐ कल्याणम् ३ ॥

ॐ यथेमाँव्वाचङ्कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याँ, शूद्राय चार्याय चस्वाय चारणायच ॥ प्प्रियो देवानां दक्षिणायैदातुरिहभूया समयम्मे कामः समृध्यतामुपमादोनमतु ॥१॥

सागरस्ययथा वृद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता ॥ संपूर्णा सुप्रभावाच्चतां ऋद्धि ब्रुवन्तु नः ॥ भोब्राह्मणाः मया क्रिय० कर्मणः ऋद्धिभवन्तोब्रुवन्तु । ॐ ऋध्यताम् ।

ॐ सत्रस्य ऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता ऽअभूम ।

दिव्वम्पृथिव्या ऽअध्यारूहामाविवदामदेवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥१॥

स्वस्तिस्तुया ऽविनाशाख्या पुण्य कल्याण वृद्धिदा । विनायकप्रियानित्यं तां च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः ॥१॥ भोब्राह्मणाः मया० कर्मणः स्वस्ति भ० ॥ ॐ स्वस्ति

ॐ स्वुस्तिनु ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वुस्तिनंः पूषाव्विश्ववेदाः ।
स्वुस्तिनुस्ताक्ष्र्यो ऽअरिष्ट नेमिः स्वुस्तिनो वृहस्पतिर्द्धातु ।।१।।

समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका । हारप्रिया चमाङ्गल्यातांश्रियं चब्र वन्तु नः ।।१।
भोब्राह्मणः मया० कर्मणः श्रीरस्त्विवतिभवन्तो ब्रुवन्तु। ग्रस्तु श्रीः ।।

ॐ श्रीश्चते लुक्ष्मीश्चुपत्क्न्यावहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।।
इृष्णन्निषाणुमुन्मंऽ ऽइषाणसर्व्वलोकम्मंऽइषाण ।।१।।

(यजमान) पुण्याहवाचन

ग्रस्मिन पुण्याह वाचने न्यूनातिरिक्तो योविधिः सउपविष्ट ब्राह्मणानां वचनात् श्रीमहा गणपति प्रसादाच्च सर्वः परिपूर्णोऽस्तु । द्विज-ग्रस्तुपरिपूर्णम्

अभिषेकः

ग्रभिषेक में स्त्री की वायें करके ४ विवाहित ब्राह्मण, दूव, ग्राम की टहनी से वरुण कलश से जल लेकर यजमान दम्पति का ग्रभिषेक करें ।

१ ॐ पयः पृथिव्याम्, २, ॐ पञ्चनद्यः, ३, ॐ वरुणस्योत्तम्, ४,
ॐ पुनन्तु मा०, ५

ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्प्रसुवेऽश्विनो र्ब्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्य्यन्त्रियेदधामि वृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ।।६।।
देवस्यत्वा० सरस्वत्यै व्वाचो युन्तुर्यन्त्रेणुग्ने÷ साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ।।७।।
देवस्यत्वा०-आश्विनोभैषज्येनतेजसाब्रह्मवर्च्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येनव्वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलायश्रियैयशसे भिषिञ्चामि ।।८।। विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुवयद्भद्रंतन्न ऽआसुव ।।९।।
धामच्छंदग्निरिन्द्रोब्रह्मादेवो बृहस्पति÷ सचेतसो व्विश्वेदेवायज्ञम्प्रावन्तुनःशुभे ।।१।। अन्नपतेन्नस्यनोधेह्यनमीवस्य शुष्मिणः प्रप्प्रदातारन्तारिष्टाऽऊर्ज्जन्नोधेहि द्विपदे शंचतुष्पदे ।।११।। ॐ त्वं यविष्टदाशुषो नॄः पाहि शृणधीगिरः रक्षतो कमतत्मना ।।१२।। ॐ द्यौः शान्तिरन्तु० ।।१३।। यतोयतः समीहसे ।।१४।।
अमृताभिषेकोऽस्तु शान्तिः शान्तिः सुशांतिर्भवतु ।।

तत्पश्चात्पुत्रवती वृद्धा जो पावत्र वस्त्रादि धारण किये हों ग्रार्ती करें ।

ॐ अनाधृष्ठा पुरस्तादग्नेराधिपत्य ऽआयुम्मेदाः पुत्रवतीदक्षिणतइन्द्रस्या धिपत्येप्रजाम्मेंदाः विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पत राधिपत्ये ऽओजोमेदा व्विश्वाभ्योमाना ष्ट्राभ्यस्पाहिमनारश्वोसि ॥१॥

इस पुण्याहवाचन से अमुक मंत्र जप देबता प्रसन्न वरद हों।

अथ मातृका पूजनम्

मातृका पूजन में सर्व प्रथम षट् विनायकों का पूजन अनिवार्य होंने से लिखा जाता है। स्थापना—इनकी स्थापना गेहूँ आदि अन्नों को हल्दी में रञ्जित कर करनी चाहिये।

नाम—मोदश्चैव प्रमोदश्च सुमुखोदुर्मुखस्तथा अविघ्न कर्त्ता च षडेत विघ्ननायकाः। ओ३म् मोदायः नमः मोदं आवाहयामि ॥१॥ ओ३म् प्रमोदाय० प्रमोदमा ॥२॥ ओ३म् सुमुखाय। सुमुखम् ॥ ३ ओ३म् दुर्मुखाय, दुर्मुखमा ॥४॥ ओ३म् अविघ्नाय अविघ्नमा० ॥५॥ ओ३म् विघ्नकर्त्रे, विघ्नकर्तारमावाहयामि ॥६॥ इत्यावाह्य ओ३म् मनोजूति, प्रतिष्ठाप्य ओ३म् मोदादिषड्विनायकेभ्यो नमः। इति नाम मन्त्रेण षोडशोपचारैः सम्पूजयेत् ॥ अनया पूजया मोदादिषड्बिनायकाः प्रीयन्ताम् ॥

इसके उपरान्त गौर्यादि मातृका चावल और सुपाड़ियों के ढेरों से स्थापित कर पूजें।

नाम

गौरो पद्मा शची मेधा सावित्री विजयाजया। देवसेना स्वधास्वाहा मातरोलोकमातरः ॥१ हृष्टिः पुष्टि स्तथातुष्टिरात्मनः कुलदेवताः। गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ।२। ॐ गणेशायनमः गणेशमावाहयामि ॥१॥ ॐ गौर्य्यै नमः गौरीमावाहयामि ।२। ॐ पद्मायै नमः पद्मामावाहयामि ॥३॥ ॐ शच्यैनमः शचीमावाहयामि ॥४॥ ॐ मेधायै नमः मेधाम् ॥५॥ ॐ सावित्र्यै, सावित्रीम् ॥६॥ ॐ विजयायै, विजयाम् ॥७॥ से ॐ जयायैनमः० जयाम् ॥८॥ ॐ देवसेनायै, देवसेनाम् ॥९॥ ॐ स्वधायै, स्वधाम ॥१०॥ ॐ स्वाहायैस्वाहाम ॥११॥ ॐ मातृभ्योनमः मातृरावा० ॥१२॥ ॐ लोकमातृभ्यो लोकमातृरावा ॥१३॥ ॐ हृष्टयै, हृष्टिम् ॥१४॥ ॐ पुष्टयै, पुष्टिम् ॥१५॥ ॐ तुष्टयै, तुष्टिम् ॥१६॥ ॐ कुलदेवतायैनमः कुलदेवतामावाहयामि ॥१७॥ इस प्रकार आवाहन कर पूजन करें। मंत्र—

ॐ मनो जूति र्जुषतामाज्यस्य० ॥ प्रतिठाप्य ॐ गौर्य्यादिषोडश मातृकाभ्योनमः नाममात्रेणषोडशोपचारै सम्पूजयेत् ॥

तत्पश्चात् इन आवाहितमातृकाओं के पास दीवाल या पट्टेपर घी और कुंकुम से दक्षिण से उत्तर सात, पांच या तीन धारायें छोड़ें। मन्त्र

ॐ व्वसोः पवित्र मसिश तधारं वसोः पवित्रमसिसहस्त्रधारं देवस्त्वासविता पुनातु ॥ व्वसोः पवित्रेणश तधारेण सप्वा कामधुक्षः ॥२॥

अथ घृतमातृकानामानि

ॐ श्रीश्च लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती ।।
माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः ।।२।।

श्रियै नमः श्रियमावाहयामि ।।१।। ॐ लक्ष्म्यैनमः लक्ष्मीमा० ।।२।। ॐ धृ धृति ।।३।। मेधायै० मेधामा० ।।४।। ॐ पुष्ट्यै० पुष्टिमा० ।।५।। ॐ श्रद्धायै श्रद्धा ।।६।। ॐ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीमावाहयामि ।।७।। ॐ घृतमातृकाभ्यो नमः इति शोपचारैः पूजयेत् ।।

अथस्थलमातरः

वहीं पर चावल पिण्डों में स्थलमातृकाओं का पूजन करें। नाम—
"ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः ।।"

ॐ ब्राह्म्यै नमः ब्राह्मीमावाहयामि ।।१।। ॐ माहेश्वर्यै० माहेश्वरीमा० ।। ॐ कौमार्यै० कौमारीमा० ।।३।। ॐ वैष्णव्यै० वैष्णवीमा० ।।४।। ॐ वाराह्यै वाराहीमा० ।।५।। ॐ इन्द्राण्यै० इन्द्राणीमा० ।।६।। ॐ चामुण्डायैनमः चामुण्डामाव यामि। इत्यावाह्य ॐ ब्राह्म्यादि सप्तमातृकाभ्यो नमः इति नाम मन्त्रेणषोड पचारैः पूजयेत् ।।

अथायुष्यमन्त्रजपः

ॐ आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम् ।। इदꣳ हिरण्यम्वर्चं स्वज्जैत्राया विशतादुमाम् ।।१।। नतद्रक्षाꣳसि नपिशाचास्तरन्तिदेवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत् ।। योविभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ सदेवेषु कृणुते दीर्घमायुः समनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ।।२।। यदाबध्नंदाक्षायणाहिरण्यꣳ शतानीकाय सुमन स्यमानाः ।। तन्म ऽआबध्नामिशतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ।।३।।

इति मातृका पूजनम् ।।

अथ सांकल्पितनान्दीशुद्धप्रयोगः

तत्रादौ, आचम्य, प्राणानायम्य, देशकालौ संकीर्त्य, अद्यामुक मंत्र पुरश्चरण कर्माङ्गत्वे सांकल्पिक विधिना ब्राह्मणयुग्म भोजनपर्याप्तायानिष्क्रयी भूत यथा शक्ति हिरण्ययेन नान्द श्राद्धं करिष्ये। इति संकल्प्य[1]। ततः पाद्यादि दानम्। सत्य वसु संज्ञकाःविश्वेदेवाः नान्द मुखाः ओ३म् भूर्भुवः स्वः इदंवः पाद्य पादावनेजनं पाद प्रक्षालन स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ।।२ अमुक गोत्राः पितृ पितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः ओ३म् भूभुवः स्वः इदं वः पाद्यं पा प्रक्षालनं स्वाहा संपद्यनां वृद्धि ।।३।। (द्वितीय गोत्राः) मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहा

---

१ पूर्व तन्त्र में चिह्नित ऋचा १८।४-५१,५२; १८।३-४५, ४६, ६८, ६९ से कुशादि में प्रेतात्मा का आवाहन प्राण प्रतिष्ठा कां० १८।४।८१ से ८८ तक आवाहित पितरों का उपस्थान करें।

सपत्नीकाः नान्दी मुखाः ओ३म् भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पाद प्रक्षालनं स्वाहा सम्पद्यता वृद्धिः ॥४॥

संलग्न ऋचाओं की प्रयोगविधि

ऋचा (कां ३ सू. २१ ऋचा ७) दिवेपृथिवीम्" से दक्षिणञ्चा अग्नि अर्थात् श्मशान अग्नि, चाण्डाल अग्नि की प्रार्थना करे।

ऋचा (७।३-१/२) "अयाविष्टा" से होम देश को अभिमन्त्रित करें।

ऋचा (१३।२-१) "उदस्य केतव" से पित्रेष्टि कर्त्तागण पूर्वाभिमुख होकर बैठें।

ऋचा क्रमशः (१८।१-५१ ५२ ; १८।३।४५ ; ४६; ६८, ६९ से पितृगण का आवाहन कुशाग्रों में, कर प्राण-प्रतिष्ठा करे, (यह भस्मो, अस्थि, या अर्थी में भी किया जाता है)

ऋचा (१८।३-४४ ; १८।४-७१ ; १८।४-७२ ; १८।४।७३) में दक्षिणाग्नि उपरोक्त के सहयोग से प्रतिष्ठित, अग्नि में पूर्वाऽभिमुख होकर हवन करें। यजमान दक्षिणको अग्निध्र, (ब्रह्मा) अग्नि के पूर्व को बैठें।

ऋचा (१८।४-७२) से कुशा फैला कर परिक्रमा करे।

ऋचा १८।४।५२ से प्रेतात्मा को तिलादि पुरोडाशदे

ऋचा १८।४।५६ ; ५७ से प्रेत दाह में काष्ट अनुमन्त्रित कर दे।

ऋघा १८।४-५८ ; ५९, ६१, ६२, ६३ तथा ६४ से प्रेतात्मा को अग्नि में आहुतियाँ दे।

ऋचा १८।४-६० से यम को आहुति दे।

ऋचा १८।४-६१; ६२, ६३, ६४, ६५ ये उत्थापनी ऋचायें हैं इन्हीं से प्रेत को उठाकर शकट (अर्थी) पर रक्खें इन्हीं से सोये अर्थ (भाग्य) का उत्थापन होता है।

ये उत्थापनी ऋचाये, अर्थोत्थापन कर्म में भी विहित है, इनसे घट को अभिमन्त्रितकर उठायें।

ऋचा २।३५-१ से माहेन्द्र का उपस्थान, आवाहनादि करे।

ऋशा (७।९२ (८-७)-१) "यो अग्नौ" से त्रैयम्बक पुरोडाश (पिण्डदान) अनुमन्त्रित कर प्रेतात्मा को दे।

वैतान श्रौत सूत्र देखें

ऋचा ७।६-१ से ४ चरु होम का विधान है।

कां ७० [६ (७)] अदितिः।

१-४ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः)। अदितिः। त्रिष्टुप् २ भुरिक् ३-४ विराड्जगती।

अदि॑तिर्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥१॥
म॒हीमू॒ षु मा॒तरं॑ सुव्र॒तानामृ॒तस्य॒ पत्नी॒मव॑से हवामहे।
तु॒वि॒क्ष॒त्राम॒जर॑न्तीमुरू॒चीं सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिं सु॒प्रणी॑तिम् ॥२॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं शर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥३॥
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्व १ न्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नियच्छात् ॥४॥

(३५) विश्वकर्मा । (विश्वेदेवा)

१-५ अङ्गिरा । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप् १ बृहतीगर्भाः ४-५ भुरिक ।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद्विश्वकर्मा ॥१॥

इन दोनों सूक्तों से सव्य होकर इन दोनों (विश्वदेवा) विश्वकर्मा व-प्रदिति का आवाहन पूजन नान्दी मुख श्राद्ध में करना चाहिए ।

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं१ संभरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥१८।४।५२
पर्णो राजा पिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद्दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ १८।४।५३
ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्माऽन्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः सनो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥१८।४।५४
यथा यमाय हर्म्यमवपन्पञ्च मानवाः । एवा वपामि हर्म्यं यथा मे
भूरयोऽसत ॥१८।४।५५
इदं हिरण्यं बिभृहि यते पिताबिभः पुरा । स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि
दक्षिणम् ॥ १८।४।५६
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैऽतु मधुधारा व्युन्दती ॥ १८।४।५७
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥ १८।४।५८
त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंच्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ १८।४।५९

प्रवा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्रमिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ १८।४।६०

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ १८।४।६१

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ १८।४।६२

परायात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान्हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥ १८।४।६३

यद्वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः ।
तद्व एतत्पुनराप्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ १८।४।६४

अभूद्दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ १८।४।६५

नान्दी श्राद्ध में संकल्प के उपरान्त प्रेत आत्माओं का कुशा या भस्मी या अस्थि या पिण्डों में आवाहन करें। कां १८ सूक्त ४ ऋचा ७२ से कुशा फैलायें।

सोमाय पितृमते स्वधा नमः । १८।४।७२
पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः । ७३

सव्य हो विश्वकर्मा (विश्वेदेवाओं) कां० २ सू० ३५ से आवाहन पूर्वाभिमुख होकर करें।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद्विश्वकर्मा ॥१॥

प्रेतों (पितरों का) आवाहन अपसव्य होकर बायें घुटने को मोड़कर दक्षिणाभिमुख होकर करें। कां १८ सू० १ ऋ ५१-५२; सू० ३ ऋ० ४४-४५; ४६ तथा ६८ आवाहन में वैतान-सूत्रानुसार हैं।

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । १८।१।५१
त आ गता वसा शंतमेनाधा नः शंयोररपो दधात ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभिगृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ।।५२
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ।। १८।३।४४
उपहूतानः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ।।४५
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ।। ४६
अपूपापिहितान्कुम्भान्यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ।।६८
उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ।।८
प्रच्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ १८।३।९

इनसे आवाहन करें। उत्थापिनी ऋचाओं से उत्थापन करें।
कां० १८।४।५२ से तिल आदि दान करें

प्रेतात्माओं का सुकृतलोक

कां० १२ सू० २ भृगुऋषि । अग्नि, मन्त्रोक्ता, मृत्युर्देवते जगती छन्द । दिव्य पितृश्वराणां, लौकिकानां पितृश्वराणा मुपस्थाने, प्रेतत्वापन्ना नांसुकृत लोक प्राप्तये कैवल्यादि मुक्तये जपे, होमे उपस्थाने च विनियोग ।

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तराश्रितः १२।२।४४
जीवानामायुः प्रतिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै १२।२।४५
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि १२।२।४६

कां १२ सू० २ ऋचा ४५ भृगुः । ऋषि, मृत्यु देवता । जगती छन्द असद्गतिप्राप्ता । प्रेतत्वापन्नानां सुकृत लोकाऽऽवाप्तये उपस्थाने विनियोग ।

जीवानामायुः प्रतिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै १२।२।४५

/कां० ५ सू० ३० ऋचा १३, १४, १५, उन्मोचन ऋषिः । आयुष्कामो देवता १३, १५ /अनुष्टुभ; १४ विराट् प्रस्तार पंक्ति; कुशा, अस्थि, शरीरादिषुपुनः प्राण, मन, इन्द्रियगण, बल, जीवादि आमन्त्रणे विनियोग ।

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत्पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३॥
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥१४॥
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥१५॥
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पु नरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ६।५३।२
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद्विरिष्टम् ६।५३।३

इनसे प्राण प्रतिष्ठा करें ।

यद्वो मनः परागतं यद्बद्धमिह वेह वा ।
तद्व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ७।१३।४

इससे इधर-उधर भटके मन को यथावस्थित करें ।

कां १८ सू ४ ऋ० ८१ से ८८ तक से उपरोक्त आवाहित पितरों का उपस्थान करें ।

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय १८।४।८१
नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥ १८।४।८२
नमो वः पितरो यद्घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत्क्रूरं तस्मै ॥ १८।४।८३
नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत्स्योनं तस्मै ॥ ८४
नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८५

येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्माँस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥८६॥

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्माँस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥८७॥

आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

यद्ध सा ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८८॥

शेष पूर्वोल्लिखित है । ये ८ ऋचायें ८१-८२ अतिवृष्टि, अनावृष्टि में वरुण होम में भी विहित हैं । प्राण प्रतिष्ठा अंहोलिंगगणके कां ५ सू ३० ऋ १३-१४-१५ तथा मेधाजनन में दिये का ६ सू ५३ ऋ १,२,३ तथा कां ७।१३-४ से करें ।

अथासनदानम्

सत्यवसुसंज्ञकाना विश्वेषां देवानां नान्दी मुखानाम् ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा नमः संपद्यतां वृद्धिः नान्दी श्राद्धेक्षणौ क्रियेताम् ॥ ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवावः ॥२॥ अमुक गोत्राणाँ मातृ पितामही प्रपितामहीनां नान्दो मुखीनाम् ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा नमः संपद्यतां वृद्धिः नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेताम् ॥ ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवावः ॥२॥ अमुक गोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानां नान्दीमुखानाम् ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा नमः संपद्यतां वृद्धिः नान्दीश्राद्धे ०॥३॥ द्वितीय गोत्राणां मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहानां सपत्नीकानां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुव स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेताम् ॥४॥

ततोगन्धादि दानम्

सत्य वसु संज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यताँ वृद्धिः ॥१॥ अमुक गोत्राभ्यो मातृ पितामही प्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ॥२॥ अमुक गोत्रेभ्यः पितृ पितामह प्रपिता महेभ्यो । नान्दी मुखेभ्यः इदं गन्धाद्यर्चनं स्याहा संपद्यतां वृद्धिः ॥३॥ द्वितीय गोत्रेभ्यो मातामह प्रमातामहवृद्ध प्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धि ॥४॥

ततोभोजन निष्क्रय द्रव्यदानम्

सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दी मुखेभ्यो ब्राह्मण युग्म भोजन पर्याप्तमन्नं तन्निष्क्रयोभूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तममृतरूपेण स्वाहा संम्पद्यतां वृद्धिः ॥१॥ अमुक गोत्राभ्यो मातृ पितामही प्रपिता महीभ्यो नान्दी मुखीभ्यो ब्राह्मणयुग्म० ॥२॥ अमुक गोत्रेभ्यः पितृ पिता महप्रपितामहेभ्यो नान्दी मुखेभ्यो ब्राह्मणं युग्म भोजन पर्याप्तमन्नं तन्निष्क्रयी ॥३॥ द्वितीय गोत्रेभ्यो मातामह प्रमातामह वृद्ध प्रमाता महेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो ब्राह्मण युग्म ॥४॥

सक्षीरमुदकदानम्

सत्य वसु संज्ञका विश्वेदेवाः नान्दीमुखा० प्रीयन्ताम् । अमुक गोत्राः मातृ पितामह प्रपितामह्यः प्रीयन्ताम् ॥ पितृपितामह प्रपितामहाः सपत्नीका प्रीयताम् द्वितीय गोत्राः मातामह प्रमातामह वृद्ध प्रमातामहः सपत्नीका प्रीयताम् ।

अथाशिषो ग्रहणम्

गोत्रन्नोवर्द्धताम् (वर्द्धतां वो गोत्रम्) दातारानोऽभिवर्धन्ताम् (अभिवर्द्धन्तांवोदातार) वेदाश्चनो ऽभिवर्धन्ताम् (बर्धन्तां वो वेदाः) सन्ततिर्नो वर्द्धतां (वर्द्धतां वः संततिः) श्रद्धा च नो माव्यगमत् (माव्यगमद्धः श्रद्धा) वहुदेयं चनोऽस्तु (अस्तुवोवहुदेयम्) अन्नं चनो वहुभवेत् (भवतु वो बह्वन्नम्) अतिथिश्च लभामहे (लभन्तां वोऽतिथय) याचितारश्चनः सन्तु (सन्तु वो याचितारः) एता आशिषाः सत्याः सन्तु (सन्त्वेता सत्याशिषः)

इन्हीं ऋचाओं से दर्भ की इण्डली में दर्भ की रस्सियां बना छींके की भाँति घट को रख, पत्र, पुष्प, कच्चा दूध, मधु, घृत, तिल, आंवले, मुनक्का, मखाने अदरख उसमें छोड़े। यदि उस प्रेतात्मा की कोई भोग सामिग्री वस्त्र, अन्नादि को कामना हो, मय विशेष विधि से संङ्कल्प के पूर्ण करें।

कां० २ सू० ३५ ऋचा १ पूर्वोल्लिखित से माहेन्द्र का उपस्थान करें।

यजन की पूर्णाहुति के उपरान्त घट को जंगल के पीपल पर लटकादें उनकी विशेष तिथि यदि कोई हो तो उसको; अन्यथा अमावास्या को उसे यजमान गङ्गादिपावन तीर्थ में पवित्रता से ले जाकर, पहिले तीर्थ से अलग स्नान करें, भीगे वस्त्रों से ही तीर्थ का पूजन आवाहन, आचमन, रज मस्तिष्क पर धारण कर तीर्थस्थ देवता से स्नान व पितृगणों के कल्याण की प्रार्थना सङ्कल्प करें। पुनः तीर्थ में प्रथम स्वयं गोता लगायें परन्तु देह न मलें तत्पश्चात्त घट को साथ लेजाकर अपने साथ दक्षिणाभिमुख हो स्नान करें, करायें और नाभिमात्र जल में विसर्जन करें, तर्पण, सूर्यार्घ्य-सूर्योप स्थान कर शुष्क वस्त्रधारण करें। तीर्थ में साबुन न लगायें, वस्त्र भी न निचोड़ें। इस प्रकार कौशिक सूत्र, तथा वैतान सूत्रों में श्रौत, स्मार्त विधि शौनकीय शाखा अथर्ववेद में निहित हैं।

प्रायः मृत आत्मायें अभिभूत रोगी के शरीर में प्रविष्ट हो, उपद्रव करती हैं, कर्त्तागण पूर्वोक्त शान्ति जल से तथा (पीली सरसों, देशी शक्कर, शमी (छौंकरा, जाटो) के पत्र अपामार्ग व सहदेवी के चूर्ण से मिश्रित) से रक्षोहण गण से, छींटे देकर स्तम्भन करें ताकि वे जा न सकें और उपद्रव न कर पायें। उन्हें (भैंसागूगल, राल लोहवान व उपरोक्त सामिग्री से मिश्रित धूनी दें। यदि वे बौखलाये तो घबरायें नहीं अपनी क्रिया करते रहें।

यह विशेष विधि नान्दी श्राद्ध के साथ रोगी के तथा प्रेतात्मा के कल्याणार्थ करें। पूर्णतया अनुभूत है, संशय का कोई कारण शेष नहीं।

उपरोक्त दक्षिणादि, दान संकल्प :—करके यजमान दान करें (वैतान सूत्र) ॐ प्रजापते र्भागोऽसूर्जस्वान् पयस्वान् अक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वामामेक्षेष्ठाः अमुत्रा ऽमुष्मिल्लोक इह च प्राणां पानी मेपाहि समान व्यानो मेपाहि उदान रूपे मेपाहि; ऊर्ग असि ऊर्जं मे धेहि, कुर्वतो मे माक्षेष्ठा ददतो मे मोपदस, प्रजापतेरहं त्वया समक्षम ऋध्या सम्। (गो०बा० २।१।७) दक्षिणादि दाता तथा प्रतिगृहीता लेते, समय जपें :—यह समस्त यज्ञ कर्म में करने से उभयपक्ष का कल्याण होना सम्भव है।

ॐ क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ॥
कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि काम तत्ते ॥ अ० कां० ३ सू० २९ ऋ० ७ व ८ व कां० १९ सू० ५२

ॐ भूमिष्ट्वा प्रति गृहात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८॥
ॐ कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ।१
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२॥
ॐ दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वऽः ॥३॥
ॐ कामेन मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥४॥ (१९।५२-१ से ५)
ॐ यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५॥
ॐ यदन्नमग्नि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु (६।७१-१,२,३)
यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२॥
यदन्नमग्न्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥३॥
ॐ पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥ (७।६९-१)

ये पुण्याहवाचन नान्दी श्राद्ध दक्षिणा व समस्त दान कार्यों में स्थूल सूक्ष्म, वासनादेहों के कल्णार्थ विनियोग करें।

दक्षिणादानम

सत्य वसु संज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दी मुखेभ्यः कृतस्य नान्दी श्राद्धस्य फल प्रतिष्ठा सिद्धयर्थ द्राक्षामलक यवमूल निष्क्रयी भूतां दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे संपद्यतां वृद्धिः॥१॥ [यव मूलमार्द्र कम्] अमुक गोत्रेभ्योपितृ पितामही प्रपितामहीभ्यो नान्दी मुखीभ्यः कृतस्य० ॥२॥ अमुक गोत्रेभ्य पितृ पितामह प्रपिता महेभ्यो नान्दी मुखेभ्यः कृतस्य ॥३॥० द्वितीय गोत्रेभ्यो मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दी मुखेभ्यः कृतस्य ॥४॥० ततो नान्दी श्राद्धं संपन्नमिति पठित्वा ॥ ॐ व्वाजेव्वाजे ॥१॥ आमावाजस्य २ इति मन्त्र द्वये न विसर्जयेत् ॥ अस्मि न्नान्दी श्राद्धे न्यूनमति रिक्तोयो विधिः स उपविष्टः ब्राह्मणानां वचनात् नान्दी मुख प्रसादा त्सर्वाः परिपूर्णास्तु [अस्तुपरिपूर्णः] इति नान्दी श्राद्धम् ॥

अथाचार्य जापक वर्णनम

उत्तम वंशोत्पन्न, सदाचारी, सन्ध्यादि षट्कर्मकर्त्ता वेद शास्त्र वेत्ता, सुशील, नीरोग (बाल-वृद्धरहित) सर्वाङ्गपूर्ण, आस्तिक, स्नातक ब्राह्मणों को यज्ञ में आमन्त्रित कर पैर धोकर अर्घ्य, पूजा करें। आसनों पर पूर्वाऽभिमुख बिठायें, स्वयं यजमान उत्तराभिमुख बैठे, आचमनादि कर वरणहेतु अक्षत, पुष्प, माला-जपस्थली आसन वस्त्र, चरणपादुकादि लेकर आचार्य के पैरों का स्पर्श करते हुए।

"देशकालौ स्मृत्वा अमुक गोत्रोत्पन्नोमुकशर्मा-अमुक-कामनासिद्धयर्थम अमुक देवता प्रीतये करिष्य माणामुक मन्त्र जपपुरश्चरण कर्मणि (आदि-२) अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुक वेदान्तर्गतअ-मुक शाखाध्यायि-अमुक सूत्रीय-अमुक प्रवरीय-अमुक शर्माणं ब्राह्मणमेभिर्गन्धाक्षत ताम्बूल मुद्रिकासन माला कमण्डलु वासोभिराचार्यत्वेन् त्वामहं वृणे। इति वृत्वा। ॐ वृतो ऽस्मीति प्रतिवचनान्तरं गन्धाक्षत पुष्प मालादि भिराचार्यं सम्पूज्य। यज्ञं कंकण बाँधें।

ॐ यथा शक्रस्य वागीश आचार्यः सर्व कर्मषु।

तथामया त्वमाचार्यो वृतोऽस्मिन् यज्ञ कर्मणि ॥१॥ प्रार्थयेत्

आचार्य का वरण कर-दस-आठ-पांच, चार आदि जापकों को एक साथ ही या पृथक्-२ वरण करें।

अद्यामुक गोत्रोऽ अमुक शर्मा-अमुक कामनार्थ-अमुक देवता प्रीतये करिष्यमाणामुक मन्त्र पुरश्चरण कर्मणिवा-अमुक संख्यापरिमिता अमुक मन्त्र जप करणार्थम् अमुकामुक गोत्रो त्पन्नानमुकामुक शर्मणो विप्रानेभिगन्धाक्षत पुष्प माला वरण द्रव्यैः सम्पूज्य सर्वेषां पृथक-२ यज्ञ सूत्रं वद्धा प्रार्थयेत्।

ॐ जापकाश्च यथा पूर्वे शक्रादीनां मखेऽभवन्।

यूयं तथा मेभवितुं जापकाऽर्हथ सत्तमाः ॥१॥ इति प्रार्थ्य यजमानचार्य

जापकाः परस्परं यज्ञकङ्कणं वध्नीयुः॥ गन्धाद्यर्चनं चकुर्युः।

अथ प्रार्थना

ॐ अस्य यागस्य निष्पती भवन्तोऽभ्यर्थितामया । सुप्रसन्नैः प्रकर्त्तव्यं शान्तिकं विधि पूर्वकम् ॥१ अङ्गी कुर्वन्तु कर्मैतत्कल्पद्रुमसमाशिषः ॥ यथोक्त नियमैः युक्ता जपार्थे स्थिर बुद्धयः ॥२॥ अस्मिन् यज्ञे मया पूज्याः सन्तुमे नियमा न्विताः अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्म चारिण । देवध्यानरता नित्यं प्रसन्न मनसः सदा ॥ अदुष्ट भाषणाः सन्तु मासन्तु पर निन्दकाः ॥३॥ ममापि नियमा ह्येते भवंतु भवतामपि ॥४॥ ऐसे प्रार्थना कर प्रत्येक को दो वस्त्र, आसनं, यज्ञोपवीत, अर्घ्यपात्र, आचमन पात्र जल कमण्डल (लोटा) दो स्वर्ण की छापें परम्परागत (रुद्राक्ष, तुलसी) माला, पान, सुपाड़ी फल समर्पण करें । आचार्य को द्विगुण दक्षिणादि भेंट करें ।

अथ अग्निकोण में गणेश पूजन ॥

हाथ में अक्षत लेकर मन्त्रोच्चारण करना

ॐ गणानांत्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनः श्रण्वन्नूतिभिः सीदसादनम् ॥
ॐ हे हेरम्ब ? त्वमेह्येह्य बिकात्र्यम्बकात्मज ।
सिद्धि बुद्धि पतेत्र्यक्ष कोटिसूर्यसमप्रभ

नागास्य नागहार त्वंगणराजचतुर्भुज । भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशांकुशपरश्वधैः आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं चममक्रतोः । इहागत्यगृहाण त्वंपूजांरक्ष चमेक्रतुम् । ॐभूर्भुवः स्वः गणेशइहागच्छ इहतिष्ठगणपतयेनमः गणपतिमावाहयामिस्थापयामि नमः । पादयोः पाद्यं समर्पयामि नमः हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि नमः । मुखे आचमनीयं समर्पयामि नमः । सर्वाङ्गेस्नानीयंसमर्पयामि नमः । वस्त्रोपवस्त्रार्थे अलंकरणार्थे कौसुम्बसूत्रं साक्षतञ्च समर्पयामिनमः । यज्ञोपवीतंसमर्पयामिनमः । गन्धंविलेपयामि धूपमाघ्रापयामि नमः । प्रत्यक्ष-दीपं दर्शयामि नमः धूपदीपपात्रयोरक्षतान्निक्षिपेत् । हस्तौ प्रक्षाल्य । नैवेद्यं निवेदयामिनमः । जलेनाभ्युक्ष्य । गन्धपुष्पाभ्यामाच्छाद्य ॥ धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य सत्यंत्वर्तेन परिषिञ्चामि । प्रातः;ऋतं त्वासत्येन परिषिञ्चामि इति सायं) ग्रासमुद्रां प्रदर्श्य ॐ प्राणायस्वाहा ॐ अपानाय-स्वाहा ॐ उदानायस्वाहा ॐ व्यानायस्वाहा-ॐ समानायस्वाहा-मध्ये २ आचमनीयं समर्पयामि नमः । उत्तरापोषणार्थे किं चिन्नैवेद्यंनिवेदयामि नमः । पुनराचमनीयं समर्पयामि नमः । करोद्वर्तनार्थे गन्धं समर्पयामि नमः । हस्तप्रक्षालनार्थे मुखप्रक्षालनार्थे जलंसमर्पयामि नमः । मुख शुद्धयर्थे ताम्बूलपुङ्गीफलंएला लवंगकपूर र युतं समर्पयामि नमः । यथाशक्ति दक्षिणाद्रव्यं समर्प-यामिनमः

प्रार्थना

ॐ भक्तार्त्तिनाशनपराय गणेश्वरायसर्वेश्वरायशुभदायसुरेश्वराय ।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥१॥
विघ्नेश्वराय वरदायसुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय सितसर्पविभूषिताय गौरीं सुतायगणनाथनमो नमस्ते ॥२॥
अनया पूजयासिद्धि बुद्धि सहित महागणपतिः सांगः सपरिवारः प्रीयताम्
अथ पूर्व में पञ्चोंकारका पूजन ॥ अक्षत लेकर करें ।

ॐ आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूरऽइष व्योति व्याधी महारथो जायतान्दोग्ध्रीधेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णुरथेष्ठाः सभेयोयुवास्य यजमानस्य वीरो जायतान्निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतुफलवत्यो न ऽग्रोषधयः पच्यन्तां योगक्षे मोनः कल्पताम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः पूर्वे ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं आवाहयामि स्थापयामि नमः ।। ॐ भूर्भुवः स्वः दक्षिणे गायत्रि इहागच्छ इहतिष्ठ गायत्र्यै नमः ।। गायत्रीमावाहयामि स्थापयामि नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः पश्चिमेगोवर्द्धन इहागच्छ इह तिष्ठगोवर्द्धनाय नमः गोवर्द्धनमावाहयामि स्थापयामि नमः ।। ॐ भूर्भुवः स्वः उत्तरे पृथिवी इहागच्छ इहतिष्ठ पृथिव्यै नमः ।। पृथिवीमावाहयामि स्थापयामि नमः ।। ॐ भूर्भुवः स्वः मध्ये यज्ञ पते इहागच्छ इह तिष्ठ यज्ञपतये नमः यज्ञपतिमावाहयामि स्थापयामि नमः ।। प्रतिष्ठाप्य ।।

पूर्ववत् पाद्यादि से पूजन कराकर प्रार्थना ।।

ॐ ब्रह्मा देवी च गायत्री तथा गोवर्द्धनेश्वरः पृथ्वी यज्ञपतिश्चैतान् पंचोङ्कारान्नमाम्यहम् ।। अनया पूजया साङ्गा सपरिवारा ब्रह्मादि पंच प्रणवाः प्रीणान्तु नमम ।

गणेश पूजन

वहीं पर गणेश के समीप अग्नि कोण में वक्रादि द्वादश गणेश का पूजन कराना चाहिये ।

ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्चवो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्चवो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्चवो नमो-नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्चवो नमो-नमः ॐ भूर्भुवः स्वः वक्रादि द्वादश मूर्तिगणपा इहा गच्छत इह तिष्ठत ।। वक्रादि द्वादश मूर्ति गणपेध्यो नमः । वक्रादि द्वादश मूर्ति गणपान् आवाहयामि स्थापयामि नमः

(अर्घ्य, पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना

ॐ नमो देव गणेशाय नमस्ते विघ्न नाशन ।। नमो मूषकमारूढ़ शुभ कर्त्रेनमोनमः । नमः कात्यायनी पुत्र नमः परशुपाणये रवेरुदयतेरूपं विद्या बुद्धि विचक्षणे । देहिमेरूप सौभाग्यं देहिमे पुत्र सम्पदः ।। इच्छा सिद्धि प्रदो देव यथोक्त भवमेसदा ।। अनया पूजया साङ्गा सपरिवाराः वक्रादि द्वादश गणपाः प्रीयन्तु नमम ।

(नैर्ऋत्य कोण मे)

वास्तु पूजन

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानी ह्यस्मान्स्वा वेशो ऽअनमीवोभवानः यत्वेमहे प्रतितन्नो युषस्व शन्नोभव द्विपदेशंचतुष्पदे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वास्तु पुरुष इहा गच्छ इहतिष्ठ वास्तु पुरुषाय नमः ।। वास्तु पुरुष मावाहयामि स्थापयामि नमः ।।

(पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना

नाग पृष्ठ समारूढ़ं शूल हस्तं महावलम् ।। पातालनायकंदेवं वास्तु देवं नमाम्यहम् । अनया पूजया साङ्गः सपरिवारः वास्तु देवः प्रीयताम नमम ।।

(वायव्य कोण मे)

चतुः षष्ठि योगिनी पूजन

ॐ जात वेदसे सुनवामसो ममरातोयतोनिद हातिवेदः सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वाना वेव सिन्धुन्दुरितात्यग्निः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दिव्यादि चतुःषष्ठि योगिनोभ्यो नमः ।। दिव्यादि चतुः षष्टि वागिनीः आवाहयामि स्थापयामि नमः ।

(पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना

ॐ जयादि सर्वा योगिन्यः दुर्गा रूपाश्चताः स्मृता पूजया वलिदानेन सन्तुष्टास्संतु मे सदा ।।

अनया पूजया सांगाः सपरिवाराः दिव्यादि चतुष्षष्ठि योगिन्य प्रीयन्तां नमम ।

(वायव्यादि कोण में)

क्षेत्रपाल पूजन

ॐ अजारेपिशंगिलास्वाविल्कुरुपिशंगिलाशसग्रास्कन्दमारेशसत्याहिपन्थां विसर्पति ।

ॐ भूर्भुवःस्वः अजरादि पंचाशत्क्षेत्रपा इहागच्छत इहतिष्ठत अजरादि क्षेत्रपेभ्योनमः अजरादि क्षेत्रपान् आवाहयामि स्थापयामिनमः ।।

(पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना

ॐ क्षेत्रपालान्नमस्यामिसर्वारिष्टनिषूदनान् । अस्ययागस्यसिद्धयर्थ पूजयाराधितान् मया ।।

अनया पूजयासांगाः सपरिवाराःअजरादिपंचाशत्क्षेत्रपाः प्रीणन्तु ।।

(उत्तर दिशा में)

षोडशमातृकापूजन

ॐ गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी साचतुष्पदी अष्टापदो नवपदी वभूवुशी सहस्राक्षरापरमेव्योमन् ।

ॐभूर्भुवः स्वः गौर्यादिषोडशमातर इहागच्छत इह तिष्ठत ।। गौर्यादि षोडश मातृकेभ्योनमः ।। गौर्यादिमातृः आवाहयामि स्थापयामिनमः ।।

(पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना

ॐ गौरीपद्माशची मेघा सावित्री विजया जया ।। देवसेना स्वधास्वाहामातरोलोकमातरः हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवताः गणेशेनाधिकाह्येतावृद्धौपज्याश्चषोडशः ।। अनया पूजया सांगाः सपरिबाराः गौर्यादि षोडशमातृकाः प्रीणन्तु न मम ।

(ईशान कोण में)

वरुण पूजन

ॐ ईमम्मे वरुणश्रुधीहवमद्या चमृडय । त्वामवस्युराचके ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः बरुण इहागच्छ इहतिष्ठ वरुणायनमः ।। वरुणमावाहयामि स्थापयामिनमः ।

(पाद्यादिसे पूजन कराकर)

प्रार्थना

ॐ नागपाशधरंदेवं वरुणनक्रवाहनम् । शुद्धस्फटिकसंकाशंप्राण रूपंनमाम्यहम् ।। पाशहस्तं च बरुणमर्णसां प्रतिमीश्वरम् ।। आवाहयामि यज्ञेस्मिन् पूजेयप्रतिगृह्यताम् अनयापूजया साङ्गः सपरिवारः वरुणदेवः प्रीणातु न मम ।।

(ईशान कोणमें)

सूर्यादि नवग्रह पूजन

ॐ आकृष्णेन रजसावर्तमानो निवेशयन्नमृतंमर्त्यञ्च हिरण्ययेन सवितारथेन देवो यातिभुवनानिपश्यन् ।

ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्यादि नवग्रहाः इहागच्छत इहतिष्ठत सूर्यादि नवग्रहेभ्यो नम ।।

सूर्यादिनवग्रहानावाहयामि स्थापयामि नम ।।

(पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानु शशीभूमि सुतो वुधश्च ।। गुरुश्चशुक्र शनि-राहु केतव सर्वेग्रहा शन्तिकराभवन्तु ।।

ॐ अधि देवताभ्यो नमः ।। ॐ शिवो गौरी तथा स्कन्दो विष्णु ब्रह्मा पुरन्दरः । यमकालश्चित्रगुप्तश्चाधि देवाइमे स्मृताः ।। ॐ प्रत्यधिदेवताभ्यो नमः ।। ॐ अग्निरापो मही विष्णुरिन्द्ररिन्द्राणिका तथा ।। प्रजापतिर्भुजङ्गश्च ब्रह्माप्रत्यधिदेवताः ।। ॐ गणादि पंच लोक पालेभ्यो नमः ।। ॐ विनायकस्तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च ।। अश्विनौ चैव पंचैता ल्लोकपालान्नमाम्यहम् ।। ॐ इन्द्रादि दशदिक्पालेभ्यो नमः ।। ॐ इन्द्रोवन्हिः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणोमरुत् ।। कुवेर ईशो ब्रह्मा च अनन्तश्च दिगीश्वराः ।। दशदिक्पालानावाहयामि स्थापयामि नमः ।

(पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो, ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे ।

विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तो महा संकटे ।।
रुद्रो येन कपाल पाणि पुट के भिक्षाटनं कारिता ।
सूर्योभ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ।।
अनया पूजया सांङ्गा सपरिवाराः सूर्यादिय नव ग्रहाः प्रीयन्तां नमम ।।

वसोर्धारा पूजन

ॐ व्वसोः पुवित्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।।
देवस्त्वा सवितापुनातु व्वसोः पुवित्रेणशतधारेणसुप्वा कामधुक्षः

यजमान पत्नी शाखा पर तेल चढायें ।

श्रो लक्ष्मीर्धृतिर्मेधाश्रद्धा प्रज्ञा सरस्वती ।।
घृतेन पूजिता स्सर्वा सप्तैता घृतमातरः ।।
वसोधारि महामाये चामुण्डे मुण्ड मालिनी ।।
शीघ्रं माम् वरंदेहि परांगतिं नमोऽस्तुते ।।

अथकलशस्थापनम्

(पूर्वोक्तईशान कोण वेदी पर यंत्र बनाकर तामे का कलशस्थापन करें और उसमें वरुणादि देवताओं का आवाहन करें) ।

आवाहनमंत्र

ॐ भूरसिभूमिरस्यदिति रसिव्विश्वधायाव्विश्वस्यभुवनस्यधर्त्रीम् ।
पृथिवींयच्छ पृथिवींदृंह पृथिवींमाहिंसीः ।।१।।

कलशाधार भूमिं स्पृष्ट्वातत्र ॐ धान्यमसिधिनुहिदेवान्प्राणाय त्वोदानायत्वा व्वयानायत्वा दीर्घामनुप्रसिति मायुषेधान्देवोवः सविताहिरण्यपाणिः प्रति गृभ्णात्वच्छिद्रेणपाणिना चक्षुषेत्वा मुहीनाम्पयोसि ।।२।।

धान्यं क्षिपेत् । तस्योपरि

ॐ आजिघ्रकलशंमह्यात्वाव्विशंत्विंदवः पुनरूर्ज्जानिवर्तस्वसानः ।। सहस्रं धुक्ष्वो रुधा रायस्वतीः पुनर्मा व्विशताद्रयिः ।।

ताम्रकलशं स्थापयेत् ।।३।।

ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्थो व्वरुणस्यऽऋतसदन्न्यसिव्वरुणस्यऽऋत सदनमसिव्वरुणस्यऽऋत सदनमासीद ।।

कलशे जलमापूर्य ।।४।।

ॐ त्वांगन्धर्व्वाऽ अखनस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।। त्वामोषधे सोमोराजा व्विद्वान् यक्ष्माद मुच्यत ।

गन्धक्षिपेत् ॥५॥

ॐ याऽओषधीः पूर्व्वाजाताद्वेभ्यस्त्रियुगम्पुरा ॥
मनै नुवभ्रूणामहठ शतंधामा निसप्त च।

सर्वौषधीः क्षिपेत् ॥६॥

ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्तीपरुषः परुषस्परि ॥ एवानो दूर्व्वे
प्रतनु सहस्रेणशतेन च ॥

दूर्वाम् ॥७॥

ॐ अश्वत्थेवोनिषदनं पर्णेवोव्वसतिष्कृता ॥ गोभाजइत्किलासथ
यत्सनवथपूरुषम् ॥

इतिपञ्चपल्लवान् क्षिपेत् ॥८॥

स्योना पृथिवी नोभवानृक्षरानिवे शनी ॥ यच्छानःशर्म्म सप्रथाः ॥

सप्तमृदः ॥९॥

ॐ याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः वृहस्पति प्रसूता स्तान्नो
मुञ्चन्त्वठ, हसः ॥

पूगीफलं क्षिपेत् ॥१०॥

ॐ परिवाज पतिः कविरग्निहव्यान्यं क्रमीत् ॥ दधद्रत्नानि दाशुषे।

पञ्चरत्नानि क्षिपेत् ॥११॥

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ॥ सदाधार पृथिवीं
द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥

हिरण्यं क्षिपेत् ॥१२॥

ॐ सजातो ज्योतिषासह शर्म्मव्वरू थमासदत्स्वः ॥
व्वासोऽ अग्ने व्विश्वरूपठ, सव्ययस्वव्विभावसो ॥

वस्त्र व रक्त सूत्रं कण्ठे वेष्ठयेत ॥१३॥

ॐ पूर्णादर्व्वि परापतसु पूर्णा पुनरापत् ।
व्वस्नेवव्विक्रीणावहाऽ इष मूर्जठ, शतक्रतोः ॥

पूर्ण पात्रं निधाय ॥१४॥

ॐ मनो जूति र्जुषता इति प्रतिष्ठां कृत्वा तत्र

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः॥

अहेडमानोव्वरुणेहवोद्ध्युरुशंसः समानऽ आयुः प्रमोषीः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुण इहागच्छ इहतिष्ठ इत्यावाह्य ॐ अपांपति वरुणाय नमः ॥ इति षोडशोपचारैः सम्पूज्य ॥ "कलशस्यमुखे विष्णुः इत्याद्यभिमंत्र्यः ॐ देवदान व संवादे० इति कलशंप्रार्थयेत् ।

अथ प्रधानदेव आवाहन पूजनविधानम्

उपर्युक्त घट की स्थापना व पूजा के उपरान्त यदि सर्वतोभद्रवेदी अथवा लिङ्गतो भद्र पीठ न हो तो उसी पर श्वेत वस्त्र फैलाकर उसके ऊपर गन्ध से श्री लक्ष्मीनारायण या जो भी अपने अभीष्ट देवता हों उनके लिये अष्ट दलकमल, गन्ध और अनार की लेखनी सेबनालें। उसके बीच पुष्प तुलसीदल रखकर उसके ऊपर स्वर्णमयी देवमूर्तिया यंत्र या शालिग्राममूर्ति जो भी सम्भव हो अग्न्युत्तारणपूर्वक स्थापित करें और पूजन करें।

पूजन के पूर्वाङ्ग

तान्त्रिक रक्षा

सरसों लेकर दिग्रक्षा पूर्ववत् करें।

ॐ अप सर्पन्तु तेभूता ये भूताभुवि संस्थिताः ये भूताविघ्न कर्त्तारस्तेगच्छन्तुशिवाज्ञया।१
अपः क्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामवरोधेन पूजा कर्म समारभे ॥२॥
(भूमि को छूते हुए दिग्बन्धन करें।

ॐ सूर्यः सोमोयम कालसन्ध्येभूतान्यहक्षपा ।
पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशंखचरामरा। ब्राह्मयंशाशसनमास्थाय कल्पध्वमिहसन्निधिम् ॥

देवन्यास

देवोभूत्वा देवंयजेत् ॥ इसश्रुति के आदेशानुसार प्राणप्रतिष्ठा या पूजा से पूर्व अंग-न्यास करें पश्चात् प्राणप्रतिष्ठा अग्न्युत्तारण करें। पहिले पुरुष सूक्त से न्यास करें; तत्पश्चात श्री सूक्त, रुद्रसूक्त आदि से करें। इसी प्रकार देवमूर्ति से फूललगाकर देवमूर्ति में भी इन्ही से न्यास करें। यहां उदाहरणार्थ क्रिया में श्रीसूक्त से न्यास दिया जाता है।

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १ ॥ शिरसि ।
ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मी मनपगामिनीम् ।
यस्यांहिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषा नहम् ।
ॐ अश्वपूर्णां (र्वां) रथमध्यां हस्तिनाद प्रबोधिनीम् ।

श्रियं देवी मुपह्वये श्रीर्मादेवीजुषताम् ॥३॥ कर्णयोः ।
ॐ कांसोस्मितां हिरन्यप्राकारमार्द्रा ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ॥
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहो पह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥ घ्राणयो ॥
ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवीजुष्टामुदाराम् ॥
पद्मनेमीं (को) शरणमहंप्रपद्ये अलक्ष्मीर्मेनश्यतां त्वां वृणे ॥५॥ मुखे ॥
ॐ आदित्यवर्णे तपसोधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोथविल्व ॥
तस्य फलानितपसानुदन्तु मायान्तरायाश्चवाह्याअलक्ष्मीः ॥६॥ ग्रीवायां ॥

ॐ उपैतुमांदेवसखः कीर्तिश्चमणिनासह प्रादुर्भूतो (स्मि) सुराष्ट्रेस्मिन्-कीर्तिमृद्धिददातुमे ॥७॥ करयोः ॥

ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठा मलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धि च सर्वांनिर्णुदमे-गृहात् ॥ हृदि ॥८

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये-श्रियम् ॥९॥ नाभौ

ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशामहि । पशूनांरूपमन्नस्पमयिश्रीः श्रयतांयशः ॥१० लिङ्गे ॥

ॐ कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दम् ॥ श्रियं वासयमेकुलेमातरंपद्ममालिनीम् ॥११॥ गुदे ॥

ॐ आप अजन्तुस्निग्धानि चिक्लीत वसमेगृहे । निचदेवीं मातरंश्रिय वासयमेकुले ॥१२ सर्वो

ॐ आर्द्राः पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलांपद्ममालिनीम् । चन्द्रांहिरण्मयीं लक्ष्मांजातवेदो मआवह ॥ १३ जमुनो

ॐ अर्द्रां य करिणींयष्टींसुवर्णां हेममालिनीम् । सूर्यांहिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ॥ १० जघयोः

ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यंप्रभूतिंगावोदास्योश्वान् विन्देयंपुरुषानहम् ॥१॥ चरणयो
यः शुचिः प्रयतोभूत्वा जुहुयादा ज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्च दशर्चं च श्रीकामः सततजपेत् ॥१६॥

इस प्रकार न्यास करके आचार्य और यजमान—देशकालौसंकीर्त्य ॥ अस्या सुवर्णमयी श्री दुर्गा उद्धान्यदेवताया ॐ प्रतिमायाः (यंत्रस्यवा) घटनादि दोषपरिहारार्थं अग्न्युत्तारणपूर्वकं प्राणप्रतिष्ठां करिष्ये ॥

अग्न्युत्तारणम्

स्वर्णादि की मूर्ति या यन्त्र जो भाये उसें पास में रखकर घो से उवटन करके दूध व जल की धारा उस पर छोडें और नीचे लिखे मंत्र पढ़ें । इससे पूर्व दिग्रक्षा व स्थान रक्षार्थं रक्षोघ्न सूक्त अथर्ब वेद तथा ऋग्वेद पढ़ें और यव कुशा, दूव, सरसों, चावल, गोमय, दही;

काली मिर्च, कुशा और दक्षिणा जल तामे के पात्र में डालकर पहिले इसे अभिमन्त्रित करें। तब दूब तथा कुशा से उस जल से पूर्वादि क्रम (परिक्रमा क्रम) से यज्ञ मण्डप तथा समस्तभूमि याज्ञिक आदि को छींटे दें। सरसों को भी उसी भाँति छिड़कें (विकिरेत्)

अभिमन्त्रण

नमस्ते शारदा देवी काश्मीर प्रतिवासिनी। अहंशरणमाप्नोमिविद्यादानंददातुमे ।।१

ॐ गणाधिपं नमस्कृत्य, नमस्कृत्य पितामहं। विष्णुं रुद्रं श्रियं देवीं देभक्त्या सरस्वतीम् ।।२

स्थानं क्षेत्रं नमस्कृत्यदिननाथं निशाकरं। धरणीगर्भ संभूतं शशिपुत्रं वृहस्पतिम् ।।३
दैत्याचार्यं नमस्कृत्य सूर्यपुत्रं महाग्रहं। राहुं केतुं नमस्कृत्ययज्ञारम्भेविशेषतः।।४
शक्राद्याः देवताः सर्वेमुनीनां कथयाम्यहं। गर्गं मुनिं नमस्कृत्य नारदोऽपि महामुनिः।।५
वसिष्ठंमुनि शार्दूलंविश्वामित्रो महामुनिः। व्यासं कविं नमस्कृत्य सर्वशास्त्र विशारदाः।।६
विद्याधिकास्तुमुनयः आचार्यास्तुतपोधनाः। सर्वेतेप्रणिपत्येनयज्ञरक्षां करोतुमे।।७।।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैवनरोत्तमं, देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।८
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणत क्लेश नाशायगोविन्दाय नमोनमः ।।९।।
काममस्य त्वमे वैक कार्यस्य परसाधने हनुमद्य यत्नमास्थायममदुः खक्षयकरोभवः।।१०
महेशाय त्रिनेत्राय शूलिनेशक्तिपाणिने। प्रणतः क्लेश नाशायमहादेवायते नमः ।।११
देवी दानव शोणि तारुणकरै याश्वासयन्तीमुहू। सद्यस्तापनिषूदिनीभगवतीभक्तायमुक्ति ददौ ।।१२

रक्षोहणमन्त्र

ॐ रक्षोहणं वलगहनं वैष्ण वीमिद महन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे निष्ठयो यममात्यो निचखानेद महन्तं वलगमुत्किरामि।। यम्मे समानोनि च खानेद महन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे स वंधुर्यम सवंधुर्नि च खानेद महन्तं वलगमुत्किरामि। यम्मे सजातोयम सजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि।।१।। रक्षोहणो वो व्वलगहनः प्रोक्षामिवैष्णवान्नक्षोहणो वोव्वलगहनो वनयामि वैष्णवान्नक्षोहणो वोवल गहनो वस्तृणामि वैष्णवान्नक्षो हणौ वां वलगहनाऽउ पदधामि वैष्णवीं रक्षोहणौ वां वल गहनौपर्यूहामि वैष्णवमसिवैष्णवास्थ ।।२ रक्षसांभागोसि निरस्तर्ठ, रक्ष ऽइदमहर्ठ, रक्षोभितिष्ठामीदमहर्ठ, रक्षोववाधऽइ दमहर्ठ, रक्षोभितिष्ठामीदमहर्ठ, रक्षोववाधऽइदमहर्ठ, रक्षोधमन्त मोनयामि।। घृनेनद्यावा पृथिवी प्रोर्णु र्वाथां वायोव्वेस्तोका नामाग्निराज्यस्य वेतुस्वाहा स्वाहा कृतेऽऊर्ध्व नभसम्मारुतं गच्छतम् ।। रक्षोहा विश्व चर्षणिरभि योनि मयोहते।। द्रोणे सधस्थ मासदत् ।।४।।

पौराणिकरक्षाविधान

पूर्वे रक्षतुगोविन्द आग्नेय्यां गरुडध्वजः।। याम्यांरक्षतु वाराहो नारसिंहस्तु नैर्ऋते।।
केशवो वारुणीं रक्षेद्वायव्यां मधुसूदनः। उत्तरे श्रीधरोरक्षेदीशान्ये च गदाधरः।।
ऊर्ध्वं गोवर्द्धनो रक्षेदधश्चैव जनार्दन।। एवं दशदिशोरक्षे द्वासुदेवो जनार्दन।।
यज्ञाग्रे रक्षते शंख पृष्ठे पद्मं च उत्तमं। वामपार्श्वे गदारक्षेद्दक्षिणे चसुदर्शनः।।

उपेन्द्रः पातु ब्रह्माणं आचार्यं पातु वामनः । अच्युतः पातु ऋग्वेदं यजुर्वेदमधोक्षजः ॥
कृष्णो रक्षतुसामं च अथर्वाणं चमाधवः ॥ उपद्रष्टास्तु येविप्रास्तेपि रुद्रेण रक्षिता ॥
यजमानं सपत्नीकं पुण्डरीकाक्षरक्षतु ॥ रक्षाहीनं तुयत्स्थानं तत्सर्वंरक्षतोहरिः ॥
वेदमंत्रै श्च कर्त्तव्या रक्षाशुभ्रै श्च सर्षपै ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षां कुर्यात्सदाबुधः

अथ अग्न्युत्तारणमन्त्राः

समुद्रस्य त्त्वाव्वक याग्ने परिव्ययामसि । पावको ऽअस्मभ्यंठं शिवोभव ॥१॥
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि ॥ पावको ऽअस्मभ्यंठं शिवोभव ॥२॥
अपामिदं न्ययनठं समुद्रस्य निवेशनम् ॥ अन्याँस्तेऽ अस्मत्त पन्तुहेतयः
पावकोऽ अस्मभ्यंठं शिवोभव ॥३॥
नमस्ते हरसेशोचिषे नमस्तेऽ अस्त्वर्च्चिषे ॥
अन्याँस्तेऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽ स्मभ्यंठं शिवोभव ॥४॥

ॐ अग्ने पावक रोचिषामन्द्रया देवजिह्वया ॥ आदेवान्वक्षियक्षिच ॥५॥
ॐ सनः पावक दीदिवोग्ने देवाँ २ ऽइहावह ॥ उपयज्ञठं हविश्चनः ॥६॥
ॐ पावक यायश्चितयन्त्वा कृपाक्षामन् रुरुच ऽउषसोनुभानुना ॥
तूर्वन्नया मन्नेतशस्य नूरण ऽआपोघृणेन ततृषाणो ऽअजरः ॥७॥
ॐ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽअस्त्वर्चिषे ॥ अन्याँस्ते अस्मत्त पन्तुहेतयः
पावको अस्मभ्यठं शिवोभव ॥८॥
ॐ नृष द्‌देवेडप्सुषदेव्वेड् वर्हिषदेव्वेड् वनसदेव्वेड् स्वर्विदेव्वेट् ॥९॥
ये देवा देवानांयज्ञिया यज्ञिया ७ संवत्सरीणमुपभागमासते ॥
अह्नतादोहविषोयज्ञे ऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१०॥
ॐ ये देवा देवेष्वधि देवत्वमा यन्ये ब्रह्मणः पुर एतारो ऽअस्य ॥
येभ्योनऽऋते पवतेधाम किञ्चन नतेदिवोन पृथिव्याऽ अधिस्नुषु ॥११॥
ॐ प्राणदा ऽअपानदा व्यानदा व्वर्चोदा वरिवोदाः ॥
अन्याँस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽशस्मभ्यठं शिवोभव ॥१२॥

प्राण प्रतिष्ठा

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं हं सः सोहम् अस्याः श्री (अमुकदेव) प्रतिमायाः प्राणा इह प्राणाः ॥ ॐ आँ ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं हं सः सोहं अस्याः श्री (अमुक देव) प्रतिमायाः जीव इहस्थितः ॥ ॐ आँ ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं हं सः सोहं अस्याः श्री (अमुक देव) प्रतिमायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङमनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्र जिह्वाघ्राण पाणि पाद पायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥

ततः पञ्चामृतेन संस्नाप्य ।

ॐ आपोहिष्ठेत्यादि ऋचेनशुद्ध जलेन प्रोक्ष्य । स्थापित कलशोपरि संस्थाप्य ॥

ॐ मनो जूति ज्जुषता माज्ज्यस्य बृहस्पति र्यज्ञमि मन्तन्नो त्वरिष्ठं यज्ञठं समिमं दधातु ॥ विश्वे देवासऽइह मादयंतामो३ म्प्रतिष्ठ ॥१॥

ॐ एष वै प्रतिष्ठा न्नामयज्ञो यत्रै तेन यज्ञेन यजन्तं सर्वमेवप्रतिष्ठितंम्भवतु ॥
इति प्रतिष्ठाप्य ॥

नेत्रोन्मीलनम्

ॐ वृत्रस्यासि कनीनं कश्चक्षुर्दा ऽअसि चक्षुर्मेदेहि ॥

गन्धादि पञ्चोपचारान्दत्वा संस्कार सिद्धये षोडश प्रणवावृत्तिं कुर्यात् अनेन अस्याः श्री (अमुक देव) प्रतिमायाः गर्भाधानादि षोडश संस्कारान् सम्पादयामि ॥ एवं वदेत् ॥ पुनः न्यासंविधाय कलशं शंख घण्टे च सम्पूज्य देवं ध्यायन् घण्टा नादं कृत्वापूजां कुर्यात् ॥

अथप्रधानदेवतापूजनम् मन्त्र

ॐ सहस्र शीर्षा पूरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
सभूमिठं सर्व्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

ॐ हिरण्य वर्णां हरिणीं सुवर्णरजत स्रजां ॥ चन्द्रां हिरन्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ॥१॥

श्री लक्ष्मीनारायणमावाहयामि ।
(अनन्तर आसन के लिये पुष्प हाथ में लेकर)

ॐ पुरुष ऽएवेद ठं सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम् ।
उतामृतत्व स्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

ॐ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मी मनपगामिनीम् ॥
यस्यांहिरण्यं विन्देयंगामश्वंपुरुषानहम् ॥२॥

इत्यासनम् समर्पयामि ।

पाद्य के लिये जल में, श्यामाक, विष्णु क्रान्ता, कमल पुष्प, दूर्वा, जल आदि मिला कर लें ।

ॐ एता वानस्य महिमा, तोज्यायाँ श्चपूरुषः ।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपाद स्यामृतन्दिवि ॥३॥

ॐ अश्वपूर्णां रथमध्यां हस्तिनाद प्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मादेवीर्जुषताम् ॥३॥

इति पाद्यम् ।

अथ अर्घ्यम्

अर्घ्य के लिये दूर्वा, तिल, दर्भ, सरसों जौ, चावल, चन्दन, जल में डालें तब अर्पण करें

ॐ त्रिपादूर्ध्वऽ उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ॥

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽ अभि ॥४॥

ॐ काँसो स्मितां हिरण्य प्राकारमार्द्रां ज्वलन्तीम् तृप्तां तर्पयन्तीम् ॥

पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥४॥ अर्घ्यं समर्पयामि ॥

ॐ ततो विराड जायत विराजोऽ अधिपुरुषः ॥

सजातोऽ अत्यरिच्य तपश्चाद्भूमि मथोपरः ॥५॥

ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसाज्वलन्तीं श्रियं लोके देवि जुष्टामुदाराम् ॥

तां पद्मनीं शरण महं प्रपद्ये अलक्ष्मी मेंनश्यतां त्वां वृणे ॥५॥ आचमनम् ॥

मलापकर्षण स्नानम्

ॐ तस्मा यज्ञात्स र्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ।

पशूँस्ताँश्चक्रे व्वायव्या नारण्याग्ग्राम्याश्चये ॥६॥

ॐ आदित्यवर्णे तपसोधिजातो बनस्पतिस्तव वृक्षोथविल्बः ॥

तस्य फलानि तपसानुदन्तु मायान्तरायाश्च वाह्या अलक्ष्मीः ॥६॥ स्नानम् ।

ॐपयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ॥

पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ पयः स्नानम् ततोशुद्धोदक स्ना०

ॐ दधिक्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णो रश्वस्य व्वाजिनः ॥

सरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषितारिषत् ॥ दधिस्नानम्-ततोशुद्धोदक० ॐ घृतं घृत पावानः पिवतव्वसां वसापावानः पिवतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश ऽआदिशोव्विदिश ऽउद्दिशोदिग्भ्यः स्वाहा ॥ घृतस्ना० ततोशु० स्ना० ॐ मधुव्वाता ऽऋतायतेमधु क्षरन्ति सिन्धव माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः ॥

ॐ मधन क्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवरं रजः । मधुद्यौरस्तुनः पिता ॥ मधुस्ना० ॥ शु० स्ना० ॐ अपांरस मुद्वयसं सूर्ये सन्तं समाहितम् । अपांरसस्ययो रसस्तं व्वो गृह्णाम्युत्तममुपया मगृहीतो सीन्द्रायत्वा जुष्टं गृह्णाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टत मम् ॥ शर्करास्ना० ततोशुद्धो०

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ॥ एवानोदूर्वे प्रतनुसहस्रेणशतेन च ॥ सुगन्धित तैल स्ना०, ततोशु० स्ना०

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वति मपि यन्ति सस्रोतसः ॥
सरस्वती तुपञ्चधा सोदेशेभवत्सरित् ॥ पञ्चामृतस्ना० ततो शु० स्ना०

ॐ गन्ध द्वारां दुराधर्षां नित्य पुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ गन्ध (चन्दन) स्ना० । शु० स्ना०

ॐ अ॒ठं॰ शुनाते ऽअ॒ठं॰ शुः पृच्यताम्परुषापरुः ॥
गन्धस्ते सोममवतुमदायरसोऽअच्युतः ॥

सुगन्धित (उवटन) स्ना० । शु० स्ना०

ॐ शुद्ध वालः सर्वशुद्ध वालो मणि वालस्त ऽआश्विनाः । श्येतः श्येताक्षो रुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णायामा ऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ शुद्धोदकस्नानम् ।

पुनराचमनीयकम् ॥

श्रीसूक्त पुरुषसूक्त रुद्रसूक्तों से शंखमे से जल छोड़कर महाभिषेक करें ।

वस्त्र युग्मम् (दोवस्त्र)

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानिषज्ञिरे ॥ छन्दांसि सिषज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥ ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिनासह ॥

प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेस्मिन् कीर्ति वृध्दि ददातुमे ॥७॥ वस्त्रयुग्मं० स० ॥ ततो आचमनीयम्

ॐ तस्मादश्वाऽअजायन्त येकेचोभयादतः । गावोहजाज्ञिरे तस्मात्तस्मा ज्जाताऽअजावयः ॥८॥ ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठांमलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।

अभूतिमसमृद्धि चसर्वान्निर्णुदमे गृहात् ॥८॥ यज्ञोपवीतं स० ।

ॐ तंयज्ञं संबर्हिषिप्रौक्षन्पुरुषज्जातमग्रतः ॥ तेन देवाऽअयजन्तसाध्याऽऋषयश्चये ॥९॥

ॐगन्धद्वारां० ॥९० चन्दनं स०॥

ॐ अक्षन्नमीमदन्तह्यव प्रिया ऽअधूषत ।
अस्तोषतस्वभानवोविप्रानविष्ठयामती योजान्विन्द्रते हरी

अक्षतान् स०

हरिद्रा रञ्जितो देव ? सुख सौभाग्य दायकः ।
तस्मात्वां पूजयाम्यत्र दुःखशान्ति प्रयच्छ मे ॥ हरिद्रा चूर्णंस०

कुङ्कुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनी काम सम्भवम् ।
कुंकुमेनार्चितोदेव प्रसीद परमेश्वर ।। कुंकुमं स०

सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुम सन्निभम् ।
पूजितोऽसि मया देव प्रसीद परमेश्वर ? ।। सिन्दूरं स०

चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभग ? शान्ति कारकः ।
कर्पूर ज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वर ।। कज्जलं स०

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्तीपरुषः परुषस्परि
एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।।

दुर्वाङ्कुरान् स०

ॐ आर्द्रायः करिणींयष्टीं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मः आवह ।।

ॐ नमो विल्मिने च कवचिने च नमोवर्मिणे च व्वरूथिनेच नमः ।
श्रुताय चश्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च नमो घृष्णवे ।।

अनेन तुलसीदलानि, विल्व पत्राणि च समर्पयामि ।।

ॐ तांम आवह जातवेदो लक्ष्मीमनप गामिनीम् ।।
यस्यां हिरण्यं प्रभूति गावो दास्योश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ।।

ॐ अश्वत्थेवो निषदनं पर्णे वो व्वसतिष्कृता ।
गोभाज ऽइत्किलासथ यत्सनवथपूरुषम् ।।

ॐ याः फलिनीर्या ऽअफला ऽअपुष्पायाश्च पुष्पिणीः
ॐ बृहस्पति प्रसूतास्तान्नो मुञ्चन्त्वठं हसः ।।

ॐ महादेवीं च विद्महे विष्णु पत्नीञ्च धीमहि ।।
तन्नोदेवीः प्रचोदयात् ।। फलमालां स०

ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानिदाशुषे ।।

ॐ कर्दमेनप्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासयमे कुलेमातरंपद्म मालिनीम् ।। रत्न मालां समर्पयामि ।

ॐ आपः स्रजन्तु स्निग्धानीचिक्लीत वसमे गृहे ।
निच देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।।
इष्णन्निषाणामुम्मं ऽइषाण सर्वं लोकम्मं इषाण पुष्प माला सं०

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यं कल्पयन् ।
मुखङ्किमस्यासीत्किम् वाहू किमूरूपादाऽउच्येते ॥१०॥

ॐ मनस, काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।
पशूनां रूपमन्नस्य रसोयशः श्रीः श्रयतां यशः ।१०॥ पुष्पाणि सं०
ॐ अहिरिवभोगैः पर्येतिवाहुं ज्यायाहेतिं परिवाधमानः ।
हस्तघ्नोविश्वाव्वयुनानिविद्वान्पुमान्पुमाः सम्परिपातविश्वत ÷ ॥ सुगन्ध द्रवं समर्पयामि

ॐ ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्वाहूराजन्न्य ÷ कृत ÷ ॥
उरू तदस्य यद्वैश्य ÷ पभ्द्याᳬ शूद्रोऽअजायत ॥११॥

ॐ यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चञ्च श्रीकाम सततं जपेत ॥११॥

ॐ धूरसिधूर्व धूर्वतन्धूर्व तंयोस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयंधूर्वामः ।
देवानामसिवन्हितमठ सस्नितमं पप्रितमञ्जुष्टतमन्देव हूतमम् ॥

धूपं आघ्रापयामि ।

ॐ चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोः सूर्योऽजायत ॥
श्रोत्राद्वायुश्चप्राणश्चमुखादग्निरजायत ॥१२॥

ॐ सरसिजनिलये सरोज हस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ?
भगवति ? हरिवल्लभे ? मनोज्ञे त्रिभुवन ? भूतकरि ? प्रसीदमह्यम् ॥

ॐ अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्योः ज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥
अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥

दीपं दर्शयामि ॥ दीपकजलायें और अक्षत छोड़ कर घंटा वजायें ।

ॐ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षठशीर्ष्णोद्यौःसमवर्त्तत ॥
पद्भ्याम्भूमिर्दिशᳬश्रोत्रात्तथालोकाँ २॥ ऽअकल्पयन ॥

ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदोमआवह ।

आदौनैवेद्यं जलेनाभ्युक्ष्य, गन्धपुष्प तुलसीदलादिभिराच्छाद्य ।
धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य । योनिमुद्रां प्रदर्श्य । सत्यन्त्वर्तेन परिषिञ्चामि प्रातः

(सायं) ऋतं त्वा सत्येनपरिषिञ्चामि ।। घंटा वादयेत् ।।
ग्रास मुद्रां प्रदर्श्य ।।

ॐ प्राणाय स्वाहा (अंगुष्ठ अनामिका कनिष्ठाभिः ।

ॐ अपानाय स्वाहा (अंगुष्ठ तर्जनी मध्यमाभिः)

ॐ उदानाय स्वाहा (अंगुष्ठ तर्जनी मध्यमानामिकाभिः) ।। ॐ समानाय स्वाहा (सर्वाङ्गुलिभिः) । नैवद्यं निवेदयामि नमः मध्ये मध्ये आचमनोयं समर्पयामि नमः ।। उत्तरापोषणार्थेपुनर्नैवेद्यं निवेदयामि नमः । पुनराचमनीयं समर्पयामि नमः ।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवायज्ञमतन्वत ।
व्वसन्तोस्यासीदाज्ज्यङ्ग्रीष्मइध्मः शरद्धविः ॥१४॥

ॐ आर्द्रांयः करिणींयष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जात वेदोमआवह ।।१४।। आचमनम् स० नमः ।।

करोद्वर्तनकं ईश ? सुगन्धैः परिवासितैः ।।

ईप्सितंमेवरं देहि परत्र चपराङ्गतिम् ।। करोद्वर्तनम् स० नमः ।। हस्त प्रक्षालनार्थे जलम् गन्धतोय समानीतं सुवर्ण कलशे स्थितम् । हस्त प्रक्षालनार्थाय पानीयं ते निवेदये ।।

ऋतुफलम्

ॐ याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्चपुष्पिणीः ।
बृहस्पति प्रसूतास्ता नोमुञ्चन्त्वंहसः ॥

ऋतुफलानिस० नमः ।।

ताम्बूल पुङ्गीफलम्

ॐ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ॥
देवायद्यज्ञन्तन्वानाऽअ बध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥१५॥

ॐ ताम्मऽआवह जात वेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतिगावो दास्योश्वान्विन्देयंपुरुषानहम् ।।१५।।

ताम्बूलपूगीफलानिस० नमः

दक्षिणां द्रव्यम्

ॐ हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ।
सदाधार पृथिवींद्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥

स्वर्णमयीं दक्षणां स० नमः

ॐ यज्ञेनयज्ञमयजन्त देवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकम्महिमानः सचन्त यत्रपूर्वेसाध्याः सन्ति देवाः ॥

साष्टांगप्रणामः ॥

नीराजनम्

घृतकी वर्ति व कर्पूर से आरतीपात्र में रखकर गन्धपुष्प से पूजन कर खड़े होकर आरती करै घंटे वजते रहैं मंत्र

ॐ आरात्रि पार्थिवठं रजः पितुरं प्रायिधामभिः ।
दिवः सदां ७ सिवृहतीवितिष्ठसऽआत्वेषं वर्तते तमः ॥

चन्द्रादित्यौ चधरणी विद्युदग्निस्तथैव च ।
त्वमेवसर्व ज्योतिंषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

मन्त्र पुष्पाञ्जलिः ॥

ॐ राजाधिराजायप्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे समे कामान्काम कामाय मह्यं ॥ कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु कुवेरायवैश्रवणाय राजाधिराजाय महाराजाय नमः ॥ ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायीस्यात् सार्वभौमः सार्वायुषः आन्तादापरार्धात् ॥ पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति ॥ तदप्येषश्लोकोभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्या वसन्गृहे ॥ आवीक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति ॥

ॐ विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखो विश्वतो वाहुरुत विश्वतस्पात् ॥
सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

सेवन्तिका वकुल चम्पकपाटलाब्जैः ॥ पुन्नागजाति करवीर रसाल पुष्पैः ॥ विल्वप्रवाल तुलसीदल मञ्जरीभिः त्वांपूजयामि जगदीश्वर ? मे प्रसीद ॥ मंत्रपुष्पाञ्जलिस० नमः

ध्यानम् नमस्कारः

ॐ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यैरसाच्चविश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे ॥
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्यदेवत्वमाजानमग्रे ॥१॥
ॐ वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्य वर्णन्तमसः परस्तात् ॥
तमेवविदित्वातिमृत्युमेतिनान्यः पन्थाविद्यतेयनाय ॥२॥
ॐ प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तरजायमानोवहुधाविजायते ॥
तस्ययोनिम्परिपश्यन्तिधीरास्तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥३॥

ॐ योदेवेभ्यऽआतपतियोदेवानाम्पुरोहितः ॥
पूर्व्वोयोदेवेभ्यो जातो नमोरुचाय ब्राह्मये ॥४॥

रुचम्ब्रा_ह्मञ_नयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवनू ॥
यस्त्वैवम्ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे ॥५॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्क्न्या वहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणिरूपमश्वि नौ व्यात्तम् ॥
इष्णान्निषाणाम्मुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण ।

ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय च धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।
ॐ महादेव्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवीप्रचोदयात् ॥

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवायधीमहि ।
तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ।

ॐ महाविष्णवे नमः स्तुतिपाठं स० ।। तत :—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥१॥
नमो हिरण्यगर्भाय प्रधान व्यक्तिरूपिणे ।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञान स्वरूपिणे ॥२॥

देवानां दानवानां चसामान्यमसिदैवतम् ।
सर्वदाचरणद्वन्द्वं व्रजामिशरणं तव ॥३॥

एकस्त्वमसि लोकस्यस्रष्टा संहारकस्तथा ।
अध्यक्षश्चानुमन्ता चगुणमाया समावृतः ॥४॥
संसार सागरंघोरंमनन्तं क्लेश भाजनम् ।
त्वमेवशरणं प्राप्य निस्तरन्तिमनीषिणः ॥५॥

न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम् ।
तथाऽपि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे ॥६॥

नैवकिञ्चित्परोक्षं ते प्रत्यक्षोऽसिन कस्यचित् ।
नैकं किञ्चिदसाध्यंतेन च साध्योऽसिकस्यचित् ॥७॥

कार्याणांकारणंपूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम् ।
योगिनांपरमांसिद्धिं परमं तेपदं विदुः ॥८॥

अहंभीतोऽस्मिदेवेशसंसारेऽस्मिन्महाभये ।
त्राहिमांपुण्डरीकाक्षन जाने शरणंपरम ॥९॥

कालेष्वपि चसर्वेषु दिक्षुसर्वासु चाच्युत ।
शरीरेऽपिगतौ चापिवर्ततेमेमहद्भयम् ॥१०॥

त्वत्पादकमलादन्यन्नमे जन्मान्तरेष्वपि ।
निमित्तं कुशलस्यास्तियेनगच्छामिसद्गतिम् ॥११॥

विज्ञानंयदिदं प्राप्तं यदिदं ज्ञानमर्जितम् ।
जन्मान्तरेऽपि मेदेवमाभूदस्यपरिक्षयः ॥१२॥

दुर्गतावपि जातायां त्वंगतिस्त्वंमतिर्मम ।
यदिनाथं चविज्ञेयं तावतास्मि कृती सदा ॥१३॥

आकाम कलुषं चित्तं ममते पादयोः स्थितम् ।
कामये वैष्णवत्वंतुसर्वजन्मसुकेवलम् ॥१४॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरयेपरमात्मने ।
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥१५॥

परिवर्ततिेषुकालेषुपरिक्षीणेषुवन्धुषु ।
त्राहिमां कृपयाकृष्णशरणागतवत्सल ? ॥१६॥

कृष्णं नारायणं वन्दे कृष्णं वन्दे वृजप्रियम् ।
कृष्णं द्वैपायनं वन्दे कृष्णं वन्दे पृथा सुतम् ॥१७॥

आत्म समर्पणम्

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा,
देयं किमस्तिभवते जगदीश्वराय ।
राधा गृहीतमनसेऽमनसे चं तुभ्यं,
दत्तंमयानिजमनं तदिदं गृहाण ॥१॥

हे कृष्ण ? कृष्ण ? भगवान् ? मम चित्तभृङ्गः ।
आयाति कदापिभवतश्चरणारविन्दे ।
देहादिपुष्पनिरत कृपया तदानीम् ।
विक्षस्यसे वामनयेन निजंपादाब्जम् ॥२॥

संसार सागरान्नाथो पुत्र-मित्र-गृहाऽकुलात् ।
गोप्तारौमेयुवामेवप्रपन्नभयमञ्जनौ ॥३॥

योऽहं ममास्तियत्किञ्चिदिहलोकेपरत्र च ।
तत्सर्वंभवतेरद्य चरणेषु समर्पितम् ॥४॥

अहमस्मि अपराधानांमालयस्त्यक्त साधनः ।
अगतिश्चततो नाथौ भवतामेवमेगति ॥५॥

तवैवा ऽस्मिराधिकाकान्त कर्मणा मनसा गिरा ।
कृष्णकान्तेतवैवाऽस्मित्वमेवगतिर्मम ॥६॥

शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ।
प्रसादं कुरुतं दास्यंमयिदुष्टे अपराधिनि ॥७॥

मज्जन्मनोफलमिदं मधुकैटभारे। मत्प्रार्थनीयमदनुग्रहमेषमेव।
त्वद्भृत्य भृत्य परिचारक, भृत्यभृत्य। भृत्यस्यभृत्यमितिमांस्मर लोकनाथ ? ॥८॥

पापोंऽहंपाप कर्माऽहंपापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि नां सर्वदा नाथ सर्वपापहरोभव ॥९॥

अनायासेनमरणं विना दैन्येन जीवनम्।
देहान्तं तवसान्निध्यं देहिमे जगदीश्वरः ॥१०॥

इस महापुरुष विद्यास्तव तथा शरणागत स्तोत्र से प्रार्थना व आत्मसमर्पण करें।

प्रदिक्षणा

ॐ यः शुचिः प्रयतोभूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तंपञ्चदशर्चञ्च श्रीः कामः सततं जपेत् ॥१॥

ॐ ये तीर्थानिप्रचरन्तिसृका हस्ता निषङ्गिणः।
तेषा७सहस्रयोजनेवधन्वानि तन्मसि ॥२॥

यानिकानि च पापानि जन्मातर कृतानि च।
तानि तानि च प्रणस्यन्ति प्रदक्षिणां पदे पदे ॥३॥

तदनन्तर महाप्रभु को साष्टाङ्ग प्रणाम करें। मनः शिर, दृष्टि, वक्ष, वाणी, पैर, हाथ, जानु सेयुक्त साष्टाङ्क, हाथ, पैर, शिर, मन, बुद्धि युक्त पञ्चाङ्ग प्रणाम होती है।

परिक्रमा, देवी की एक, रवि कीसात, ३ गणेशजी की, ४ केशव, आधी शिवजी की कही गई है।

इस प्रकार भगवान पुरुषोत्तम की पूजा करके, पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा से या अन्य मन्त्र से भगवान पापापहा महाविष्णु का तर्पण करें। मन्त्र में इसे जोड़कर तर्पण करें।

भगवान् पापापहामहा विष्णु स्त्टप्यताम् ॥

सर्वतोभद्रपीठस्थापन

यज्ञवेदी में प्रधान देव की स्थापना को; सर्वतोभद्रपीठ की रचना करें। वर्गाकार चतुष्कोण १९/१९ पंक्तिओं अर्थात् १८/१८ कोष्टकों का कपड़े पर वनायें।

कुल कोष्ट ३२४ होंगे। इनमें १२ खण्डेन्दु श्वेत; २० कृष्ण शृंखला ८८ हरित वल्ली ७२ लाल-भद्र, ९६ श्वेत वापी, २० पीत परिधि १६ श्वेत; मध्य में अष्टदल कमल वनायें। बाहर चारों ओर क्रमशः सत, रज, तम (श्वेत-रक्त-कृष्ण) की परिखा वनायें।

खण्डेन्दु—ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य कोणों के ३/३ श्वेत

कृष्ण शृंखला—खण्डेन्दु के बीच के चारों दिशाओं के खाने छोड़ टेड़े उसी के नीचे बराबर के ५ काले (उड़द, तिलादि के) होंगे।

वल्ली—खण्डेन्दु के अगल बगल के श्वेत १/१ खाने के नीचे कृष्ण शृंखला के दोनों ओर के ११/११ चारों दशाओं के ८८ हरितया नील कहलायेंगे।

भद्र—एकदम ऊपर नीले (काले) रंग के कोष्ट से सटे ५ उसके नीचे नीले (कृष्ण) से सटे ३/३ उसके नीचे का १ कुल ६/६ चारों दशाओं के लालरङ्ग के होंगे।

वापी—भद्र से सटे ऊपर के २, उसके नीचे ४, उसके नीचे ६, उसके नीचे ६, उसके नीचे ४, उसके नीचे २ खाने श्वेत-बराबर सीधे ये प्रत्येक दशा में २४/२४ होंगे।

परिधि—भीतर के १६ (अष्टदल कमल) के चारों ओर पीले २० खाने हैं

पद्म—भीतर के १६ लालवर्ण के मयकर्णिका पद्म कहलायेंगे। इन ३२४ खानों के बाहर चारों ओर श्वेत उसके चारों ओर लाल सबके चारों ओर काली परिधि सत, रज, तम की होती है।

अथ सर्वतोभद्र पूजन विधि

भद्र के बीच कर्णिका पर अक्षत पुष्प हाथ में लेकर ब्रह्मा जी का आवाहन करें। संकल्प कर आवाहन

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्याऽउपमा अस्यविष्ठाः सतश्चयोनिमसतश्च वि वं॥

श्री ब्रह्मणे नमः; ब्रह्माणमावाहयामि; स्थापयामि; इह आगच्छ, इह तिष्ठ; मम पूजां गृहाण सुप्रीतो, सुखदो; वरदो भवः।१। इसी प्रकार अन्य सभी देवों के प्रति भी करें। उत्तर वापी में सोम का आवाहन करें—

व्वय ६ सोमव्रते तव मनस्तनूषु बिब्भ्रत %।
प्रजावन्तऽ सचेमहि॥२॥

उत्तर वापी में सोमायनमः। सोमं आवाहयामि।
ईशान कोण में खण्डेन्दु में ईशान का आवाहन

ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्प्पतिन्धियञ्जिन्न्वमवसेहू महेव्वयम्।
पूषानो यथाव्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धऽस्वस्तये॥३॥

ईशान खण्डेन्दु में ईशानाय नमः; ईशानमावाहयामि।
पूर्व की वापी में इन्द्र का आवाहन :—

ॐ त्रातारमिन्द्र वितारमितारमिन्द्रॐहवेहवेसुहव ६शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रम्पुरुहूतमिन्द्रॐस्वस्तिनो मघवा धात्विन्द्रः॥४॥

इन्द्राय नमः; इन्द्रमावाहयामि०।
अग्निकोण के खण्डेन्दु में अग्नि का आवाहन

ॐ त्वन्नोऽअग्ने तव देवपायुभिर्मघोनोरक्षतन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तन ये गवामस्य निमेषꣳरक्षमाणस्तव व्रते ॥५॥

अग्निकोण के खण्डेन्दु में—अग्नये नमः ; अग्निमावाहयामि० ॥
दक्षिण वापी में यम का आवाहन० ।

ॐ यमाय त्वाङ्गिर स्वते पितृमते स्वाहा ।
स्वाहा धर्म्मायस्वाहा धर्म्मः पित्रे ॥६॥

यमाय नमः; यममावाहयामि
नैऋत्य की वापी में :—निऋति का आवाहन ।

ॐ असुन्वन्तमयजानानमिच्छस्तनस्येत्यामन्विहितस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छसात ऽइत्या नमो देविनिऋते तुभ्यमस्तु ॥७॥

नैऋत्य के खण्डेन्दु में—निऋतये नमः निऋतिमावाहयामि० ॥
पश्चिम वापी में वरुण का आवाहन

ॐ तत्वायामि ब्रह्मणाव्वन्दमानस्तदाशास्तेयजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानोव्वरुणे हवोध्युरुशꣳसमानऽआयुःप्रमोषीः ॥८॥

वरुणाय नमः । वरुणमावाहयामि० ॥
वायव्य खण्डेन्दु में वायु का आवाहन

ॐ आनो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳसहस्रिणीभि रुपयाहियज्ञम् ।
व्वायोऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व य यूयम्पात स्वस्तिभिःसदानः ॥९॥

वायवे नमः वायुमावाहयामि० ।
लोहितभद्र में—अष्टवसुओं का आवाहन ।

ॐ सुगावो देवाःसदनाऽअकर्मणऽआजग्मेदꣳ सवनञ्जुषाणः ।
भरमाणाव्वहमानाहवीꣳष्यस्मेधत्तव्वसवोव्वसूनि स्वाहा ॥१०॥

अष्टवसुभ्यो नमः अष्टवसूनावाहयामि० ।
सोम ईशान के मध्यपीठ में एकादशरुद्र का आवाहन

ॐ रुद्राःसꣳसृज्य पृथिवीम्बृहज्योतिःसमीधिरे ।
तेषां भानुरजस्रऽइच्छुक्रो देवेषुरोचते ॥११॥

सोमरुद्र के बीच लालभद्र में, एकादशरुद्रेभ्यो नमः
एकादश रुद्रानावाहयामि० ॥

ईशान-इन्द्र के मध्य द्वादश आदित्यों का आवाहन

ॐ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासोभवतामृडयन्तः।
आवोर्व्वाची सुमतिर्व्ववृत्यादꣳहोश्चिद्यावरिवो वित्तरासदादित्ये भ्यस्त्वा ॥१२॥

द्वादश आदित्यानावाहयामि । द्वादशादित्येभ्यो नमः ।
इन्द्र और अग्नि के मध्य अश्विद्वय का आवाहन

ॐ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वतीव्वीर्य्यम् ।
व्वाचेन्द्रो बलेनन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥१३॥

अश्विभ्यां नमः; अश्विनीकुमारद्वयमावाहयामि ।
अग्नि और यम के मध्य सपैतृक विश्वेदेवों का आवाहन

ॐ विश्वेदेवा सऽआगत शृणुतामऽइमꣳ हवम् । एदम्बर्हिर्निषीदत ॥
उपयामगृहीतोऽसिव्विश्वेब्भ्यस्त्वादेवेभ्यऽएषतेयोनिर्व्विश्वेभ्यस्त्वादेवेभ्यः॥१४॥

सपैतृकविश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः । सपैतृक विश्वान्देवानावाहयामि० ॥०
यम और नैऋति के मध्य सप्तयक्षों का आवाहन

ॐ अभित्यन्देवꣳसवितारमोण्योः कविक्रतुमर्च्चाभिसत्यसवꣳरत्नक धामभिप्प्रियं मतिङ्कविम् ॥ ऊद्ध्वायस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतु ÷ कृपास्व ÷ ॥ प्रजाब्भ्यस्त्वाप्प्रजास्त्वानु प्राणन्तु प्प्रजास्त्वमनु प्प्राणिहि ॥१५॥

सप्त यक्षेभ्यो नमः; सप्त यक्षानावाहयामि० ।
निर्ऋति और वरुण के मध्य रक्तभद्र में अष्टकुलनागों का आवाहन

ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेब्भ्यो ये के चपृथिवीमनु ।
येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेब्भ्य ÷ सर्प्पेब्भ्यो नमः ॥१६॥

अष्ट कुल नागेभ्यो नमः; अष्टकुल नागानावाहयामि० ।
वरुण और वायु के मध्य लालभद्र में गन्धर्वाप्सराओं का आवाहन

ॐ ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्व्वस्तस्यौषधयोप्सरसो मुदोनाम् ।
सनऽइदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहाव्वाट् ताब्भ्य ÷ स्वाहा ॥१७॥

लालभद्र में;—गन्धर्वाप्सरसेभ्यो नमः; गन्धर्वाप्सरसानावाहयामि०
ब्रह्मा और सोम के मध्य सोमवापी में स्कन्द का आवाहन

ॐ यदक्रन्दःप्रथमञ्जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुतवापुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽउपस्तुत्यम्महि जातन्तेऽअर्वन् ॥१८॥

श्वेत वापी में—स्कन्दायनमः; स्कन्दमावाहयामि ।

श्वेतवापी में नन्दीश्वर का आवाहन

ॐ आशु%शिशानो व्वृषभो नभीमोघनाघनऽक्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दने निमिषऽएक वीरऽशतᳬसेनाऽअजयत्साकमिन्द्र ÷ ॥१९॥

श्वेतवापी में—नन्दीश्वराय नमः; नन्दीश्वरमावाहयामि० ।

श्वेत वापी में शूल का आवाहन ।

ॐ यत्ते गात्रादग्निनापच्यमानादभिशूलन्निहतस्यावधावति ।
मातद्भूम्यामाश्रिषन्मातृणेषु देवेब्भ्यस्तदुशद्भ्योरातमस्तु ॥२०॥

शूलाय नमः; शूलमावाहयामि० ।

ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्याऽउन्नयामि ।
समापोऽअद्भिरग्मतसमोषधीमिरोषधीः ॥२१॥

वहीं पर महा कालाय० महा कालम् ॥

ॐ शुक्र ज्योतिश्च चित्रञ्ज्योतिश्च सत्यञ्ज्योतिश्चज्ज्योतिष्माँश्च ।
शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यᳬ हा ÷ ॥२२॥

ब्रह्म और ईशान के बीच-कृष्णश्रृंखला-में-दक्षादि प्रजापतिभ्यो नमः
दक्षादि प्रजापतीन आवाहयामि ।

ॐ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्येसुतरसितरसेनमः ॥२३॥

ब्रह्म और इन्द्र के बीच-श्वेत-वाणी-में-दुर्गादेवीमावाहयामि ।

ॐ इदंव्विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् ।
समूढमस्य पाᳬसुरे स्वाहा ॥२४॥

विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ।० वहींपर

ॐ पितृब्भ्य ÷ स्वाधायिब्भ्य ÷ स्वधानमऽपितामहेब्भ्य ÷ स्वधायिब्भ्य ÷
स्वधानमऽप्प्रपिता महेब्भ्यऽस्वधायिब्भ्य ÷ स्वधानम ÷ ।
अक्षन्न्पितरोमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरऽपितरऽशुन्धध्वम् ॥२५॥

ब्रह्म-अग्नि के बीच-कृष्ण श्रृङ्खला-में-स्वधायै नमः स्वधामवाहयामि ।० वहींपर

ॐ परम्मृत्योऽअनुपरे हि पन्थांयस्तेऽअन्न्यऽइतरोदेवयानात् ।
चक्षुष्मतेश्रृण्वते तेब्ब्रवीमिमान ÷ प्प्रजाᳬरीरिष्षोमोतव्वीरान् ॥२६॥

ब्रह्म-यम के बीच-श्वेत वापी-में-मृत्युरोगेभ्यो नमः मृत्युरोगानावाहयामि ।

ॐ गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनः शृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम् ॥२७॥

ब्रह्म निर्ऋति के बीच-कृष्ण शृङ्खला-में गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि ।

ॐ अप्स्वग्ने सधिष्ट्वसौषधीरनुरुध्यसे । गर्ब्भेसञ्जायसेपुन ÷ ॥२८॥

ब्रह्म-बरुण के बीच-श्वेतवापी-में अद्भ्यो नमः अपमावाहयामि ।

ॐ मरुतो यस्याहिक्षयेपाथा दिवोव्विमहसꣳ ।
ससुगोपात मोजन ÷ । मरुद्भ्यो नमः ॥२९॥

ब्रह्म-वायु के बीच शृङ्खला में मरुद् गणानावाहयामि ।

ब्रह्म के पादमूल में-कर्णिका के निम्न भाग में जल के अधिपति अधिशयन कर्त्ता अधिवासी तीन देवों का आवाहन करें ।

ॐ स्योनापृथिवी नोभवानृक्षरानिवेशनि । यच्छानꣳशर्म्मसप्रथाꣳ ॥३०॥

पृथिव्यै नमः पृथिवीमावाहयामि ।

ॐ पञ्चनद्य ÷ सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसꣳ ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत्सरित ॥३१॥

गंगादि पवित्र नदीभ्यो नमः गङ्गादि नदी आवाहयामि ।

ॐ समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्र दानुꣳशम्भूर्म्मयोः भूरभिमाव्वाहि
स्वाहा वस्यूरसिदुवस्वाञ्च्छम्भूर्म्मयो भूरभिमाव्वाहि स्वाहा ॥३२॥

सप्तसागरेभ्यो नमः सप्तसागरानावाहयामि ।

ॐ परित्वागिर्व्वणो गिरऽइमाभवन्तु व्विश्वत ÷ ।
व्वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयꣳ ॥३३॥

कर्णिका के ऊपर-मेरवे नमः मेरुमावाहयामि ।

मण्डल के बाहर परिखा (सतोगुण) में-उत्तर से व्वायव्यपर्यन्त ८ दिशाओं में आयुधों का आवाहन, पूजन क्रमशः करें ।

ॐ गणानान्त्वा ॥३४॥

ॐ गणानान्त्वा-गदायै नमः गदामावाहयामि ।

ॐ त्रिꣳ० शद्धामविराजति वाक्पतङ्गा यधीयते ।
प्रति वस्तोरहद्युभि ÷ ॥३५॥

त्रिशूलाय नमः त्रिशूलम् आवाहयामि ।

ॐ महाँ २॥ इन्द्रो वज्रहस्तऽषोडशीशर्म्म यच्छतु ।
हन्तु पाप्मानं चोस्मान्द्वेष्टि उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैषतेयोनिर्महेन्द्राय त्वा ॥३६॥

वज्राय नमः वज्रमावाहयामि ।

ॐ व्वसु च मे व्वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मे ऽर्थश्च मे
एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पताम ॥३७॥

शक्तये नमः शक्तिमावाहयामि ।

ॐ इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत । मयि वऽकामधरणं भूयात् ॥३८॥

दण्डाय नमः दण्डमावाहयामि ।

ॐ खड्गोव्वैश्वदेवः श्वाकृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंठ० होमारुतऽ कृकलासः पिप्पकाशकुनि स्तेशरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतऽ ॥३९॥

खड्गाय नमः खड्गमावाहयामि ।

ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्म दवाधमं व्विमध्यमठं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥४०॥

पाशाय नमः पाशमावाहयामि ।

ॐ अठं० शुश्चमेरश्मिश्चमेऽदाभ्यश्चमेऽधिपतिश्चमऽउपाठं शुश्चमेऽन्तर्यामश्चमऽऐन्द्र वायवश्चमेमैत्रा वरुणश्च म मन्थी चमे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४१॥

अङ्कुशाय नमः अङ्कुशमावाहयामि ।

पुनः उत्तर से वायव्यपर्यन्त—

ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदस दन्मातरं पुरः ।
पितरश्च प्रयन्त्स्वः ॥४२॥

गोतमाय नमः गोतममृआवाहयामि ।

ॐ अयन्दक्षिणाव्विश्वकर्मा तस्य मनो व्वैश्व कर्मणंग्रीष्मोमानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभःस्वारठं स्वारादन्त र्यामोन्तर्यामात्पञ्चदशऽ पञ्चदशाद् बृहद्भरद्वाजऽ ऋषिःप्रजापति गृहीतया त्वया मनोगृहणामिप्रजाभ्यः ॥४३॥

भारद्वाजाय नमः भरद्वाजमृआवाहयामि ।

ॐ इदमुत्तरात्स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽऐड-मैडाम्मन्थी मन्थिनऽए कविꣳ शए कविꣳ शाद्वैराजं विश्वामित्रऽऋषि॒ प्रजापति गृहीतया त्वया श्रोत्र गृहणामि प्रजाभ्य॒ ॥४४॥

विश्वामित्राय नमः विश्वामित्रमावाहयामि ।

ॐ त्र्यायुषं जगदग्नेꣳकश्यपस्य त्र्यायुषम् ।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥४५॥

कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि ।

ॐ अयंपश्चाद्विश्व व्यचास्तस्य चक्षुर्व्वैश्व व्यचसं वर्षा श्चाक्षुष्यो जगतीव्वार्षी जगत्याऽऋक्समम्रृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशꣳ सप्त दशाद्वैरूपं जमदग्नि ऋषि॒ प्रजा पति गृहीतया त्वया चक्षुर्गृहणामि प्रजाभ्य॒ ॥४६॥

जमदग्नये नमः जमदग्निमआवाहयामि ।

ॐ अयं पुरोभुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तꣳ प्राणायनोगायत्रीव्वासन्तीगायत्र्यै गायत्रङ्गायन्त्रादुपाꣳशुरुपाꣳशो स्त्रि वृत्त्रिवृतोरथन्तरं व्वसिष्ठऽऋषि॒ प्रजापति गृहीतया त्वया प्राणङ् गृहणामि प्रजाभ्य॒॥४७॥

वसिष्ठाय नमः वसिष्ठम आवाहयामि ।

ॐ अत्र पितरो मादयद्ध्वं यथाभागमा वृषायद्ध्वम् ।

अमी मदन्त पितरो यथाभागमा वृषायिषत ॥४८॥

अत्रये नमः अत्रिमआवाहयामि ।

ॐ तम्पत्नीभिरनुगच्छेमदेवा ꣳपुत्रैर्भ्रातृभिरुत वाहिरण्यैꣳ ।

नाकं गृब्भ्णाना ꣳसुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठेऽअधिरोचनेदिवः ॥४९॥

अरुन्धत्यै नमः अरुन्धतीमआवाहयामि ।

उसके बाहरी भाग में कृष्ण (तमोगुण की) परिखा में पूर्व से ईशान पर्यन्त क्रमशः स्थापन करें ।

ॐ अदित्यै रास्ना सीन्द्राण्याꣳउष्णीष॒ ।

पूषासिधर्मा यदीष्व । ऐन्द्रैꣳ ऐन्द्रौ ॥५०॥

ॐ अम्बेऽअम्बिके—कौमार्यै० कौमारी ॥५१॥

ॐ इन्द्रायाहिधियेषितोव्विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि व्वाग्घतः ॥५२॥

ब्राह्म्यै नमः ब्राह्मीम् आवाहयामि ।

ॐ इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशाञ्जत्रवोऽदित्यैभसञ्जीमूतान्हृदयौ पशेनान्त रिक्षंपुरीततानभऽउदर्येण चक्रवाकौमतस्नाभ्यांदिवं व्वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभि रुपलान्प्ली ह्वाव्वः मीकान्क्लोमभिग्ग्लौभिर्गुल्माह्विराभिः स्रवन्ती ह्रदा न्कुक्षिभ्याᳪ समुद्रमुदरेणव्वैश्वानरं भस्मना ॥५३॥

वाराह्यै नमः वाराहीम् आवाहयामि ।

ॐ समख्येदेव्याधियासन्दक्षिणयोरु चक्षसा ।
मामऽआयुःप्रमोषीर्मो अहन्तव व्वीरंविदेयतवदेविसन्दृशि ॥५४॥

चामुण्डायै नमः चामुण्डाम् आवाहयामि ।

ॐ रक्षोहणं व्वलगहनं व्वैष्णवी मिदमहन्तंव्वलगमुत्किरामि
चम्मे निष्ट्योचममात्यो निचखानेदमहन्तं व्वलगमुत्किराभि
चम्मे समानोचम समानोनिचखानेदमहन्तं व्वलगमुत्किरामि
चम्मे सबन्धुर्चम सबन्धुर्निचखानेदमहन्तं व्वलगमुत्किरामि
चम्मे सजातो चम सजातोनिचखानो त्कृत्याङ्किरामि ॥५५॥

वैष्णव्यै नमः बैष्णवीम् आवाहयामि ।

ॐ या ते रुद्र शिवातनूरघोरापाप काशिनी ।
तयानस्तन्वाशन्त मयागिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥५६॥

माहेश्वर्यै नमः माहेश्वरीम् आवाहयामि ।

ॐ अम्बेऽआम्बिकेऽम्बालिके नमानयतिकश्चन ।
ससस्त्यश्वकः कांपील वासिनीᳪ स्वाहा ॥५७॥

वैनाय क्यै नमः वैनायकीम् आवहयामि स्थापयामि पूज्यामि । स्वागतोभव, स्थिरोभव, मम पूजां गृहाण सुखदो वरदो भवः ॥

इस प्रकार सर्वतोभद्रपीठ के देवताओं की स्थापना व पूजा करें तत्पश्चात् उसी के मध्य प्रधान देवता के हेतु कलश की स्थापना करें। उस कलश में या परयन्त्र या स्वर्णादि की प्रधान देवता की मूर्ति जो भी हो, अग्नि उत्तारण करें प्राण प्रतिष्ठा करने के उपरान्त स्थापना व यथा विधि पूजा करें।

उपर्युक्त विधि नान्दीश्राद्ध के साथ पद्धति के तान्त्रिक प्रयोगों में वर्णित लज्जा बीज (ह्रीं) की विधि से कांसे के थाल में अनार की लेखनी से सर्प की वामी की रज में लिखना उसी बीज का मानसिक जाप तथा वहीं पर लिखित अथर्वशीर्ष के पाठ से अद्भुत विचित्र अचिन्त्य घटनायें होंगी उनमें भयानक व लोभ आदि प्रपञ्चों में घसीट कर कर्म-विफल करने वाली भी होंगी उनसे प्रभावित न हों उपरोक्त कर्त्तव्य परायण रहने से निश्चित लाभ हुए है।

नव ग्रह वेदी क्षेत्रपाल योगिनी पीठ वास्तु पीठ सर्वतो भद्र आदि पीठों का वरुण कलश आदि का पूजन कर प्रधान देवता का पूजन करें। उसमें रात्रि सूक्त श्रीसूक्त पुरुषसूक्त शिव (रुद्र) सूक्तों से एक या सभी से अभिषेक करायें। ह्रीं बीज प्रतीकमात्र है। ऐसे ही अन्य देवता का करें।

अथयज्ञ विधि निरूपणम्, अथर्व शौनकीयशाखा

कौशिक सूत्र कण्डिका १३६—

अभिजिति शिष्यानुपनीय श्वोभूतेसंभारान्संभरति ।१। दधिसक्तून्पालाश दण्डमहते वसनेशुद्धमाज्यंशान्ता ओषधीनवमुदकुम्भम् ।२। वाह्यतः शान्तवृक्षस्येध्मं प्राञ्चमुपसमाधाय ।३। परिसमूह्य पर्युक्ष्यपरिस्तीर्य वर्हिरुदपात्रमुपसाद्य परिचरणेनाज्यं परिचर्य ।४। नित्यान्दुरस्ताद्धो मान्हुत्वान्यमागौ च ।५। (प्रारम्भ-कौ०सू०कं-२ सूत्र से करै—

इहेत देवीरमृतं वसाना हिरण्यवर्णा अनवद्यरूपाः ।
आपः (१) समुद्रो वरुणश्च[२] राजा संपातभागान्हविषो जुषन्तामा[३]
इन्द्र प्रशिष्टा वरुणप्रसूता अपः समुद्राद्दिवमुद्वहन्तु[४] ।
इन्द्र प्रशिष्टा वरुणप्रसूता दिवस्पृथिव्याः[५] श्रियमा वहन्तु । इति । कौ० कं० २।३

देखें (२।३) इन्द्राग्निभ्यामित्यमावास्यायाम् ।। कौ०कं० २ । सू० ३ ।। समाप्ति कं० १३५ सू० ४–७ से करे ।

अरणों प्रताप्य स्थण्डिलं परिमृज्य ।४। अथाग्निं जनयेत् ।५। इते एव

प्रथमं[२] जज्ञे[३] अग्निराभ्यो योनिभ्यो अधिजात वेदाः[४] ।

सगायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतुप्रजानन्निति जनयित्वा ।६।। भवतं नः ५ समनसौ समोकसावित्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ।७।। कंण्डिका २ ।।

सकलमंत्रपाठ कं० १०८ सूत्र २ देखें—यथा १४।१।६३

भवतं नः समनसौ समोकसावरेपसौ। मांहि सिष्टं यज्ञपतिं मायज्ञं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः। अग्निनाग्निः संसृज्यते कविर्वृहस्पतिर्युवा। हव्यवाड् जुहास्यः। त्वं अग्ने

अग्निना विप्रो विप्रेण सन्सता। सखा सख्या समिध्यसे। पाहिनो अग्न एकया पाहि न उतद्वितीयया। पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो। समीची माहनो पातामायुष्म त्या ऋचोमा सत्सि। तनूपात्साम्नो वर्सुविद लोकमनुसचराणि कं० १३९—५ से आगे

पश्चादग्नेर्दधिसक्तून्जुहोति-अग्नये ब्रह्म प्रजापतिभ्यांभृग्वङ्गिरोभ्य उशनसे काव्याय।६। ततोऽभयैरपराजितैर्गणकर्मभिर्विश्वकर्मभि रायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्।७। (अभयगण, अपराजितगण, गणकर्मगण, विश्वकर्मगण, आयुष्गण, स्वस्त्ययनगण;।

मानोदेवा अहिर्वधीदरसस्यशर्कोटस्येन्द्रस्य प्रथमो रथो यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा नमस्ते अस्तु विद्युते आरेऽसावस्मदस्तुयस्ते पृथुस्तनयित्नुरिति संस्थाप्य होमान्।८। (अथर्ववेद क्रमशः; ६।५६–१; ७।५६–५; १०।४–१; १२।१–४६; १।१३–१; १।२६–१; ७।११–१; होम में इनसे स्थापना करें।

प्रतिष्ठाप्यस्त्रुवं दधिसक्तून्प्राश्याचम्मोदकमुप समारभन्ते।९ अव्य चसश्चेति जपित्वा सावित्रीं ब्रह्मजज्ञानमित्येकांत्रिषप्तीयञ्च पच्छो वाचयेत्।१०। (अ०वे० १९।६८–१, ४।१–१; तथा विश्वकर्मागण। "येत्रिषप्ताः" १।१–१;

शेषमनुवाकस्य जपन्ति।११। (अ०वे० ४।१–२; ४।५–७)

यो यो भोगः कर्त्तव्यो भवति तं तं कुर्वते।१२।। सखल्वेतंपक्षमपक्षीयमाणः पक्षमनधीवान उपश्राम्येता दर्शात्।१३।

अथ शान्ति विधानम्

प्रथमग्रहशान्ति अथवा अन्यशान्ति कार्यों में भी निम्न बातों का परिचय आवश्यक है।

ग्रह	पिता	रङ्ग	स्थान	अधिदेवता	समिधा	फल	विशेष विवरण
१ सूर्य	कश्यप	रक्त	कलिंग	शम्भु	आक	सर्वव्याधीनाश	दहि-दूधघी मिश्रित
२ चन्द्र	ब्रह्मपुत्र	शुक्ल	यामुन	उमां	ढाक	समस्तसिद्धि	समिधाओं से होम
३ भौम	रुद्र	रक्त	अवन्ती	स्कन्द	कत्था	ज्ञान-धन	प्रादेशमात्र लम्बी हों
४ बुध	सोम	पीत	मागध	हरि	अपामार्ग	रूप-तेज	१०८ से कम न हों
५ गुरु	ब्रह्म	पीत	सिन्धुद्वीप	ब्रह्मा	पीपल	प्रभा-ब्रह्मत्व	प्रतिदेव २८ हों
६ शुक्र	भृगु	शुक्ल	सिन्धु	शक्र	दूब	सौभाग्य	
७ शनि	रवि	कृष्ण	सौराष्ट्र	यम	शमी	पापशान्ति	
८ राहु	प्रजापति	कृष्ण	सिंहल	काल	दूब	दीर्घायु-धर्म	
९ केतु	अग्नि	कृष्ण	मध्यदेश	चित्रगुप्त	दाभः	धर्म-विद्या अर्थ	

वेदी—हस्तमात्र या बाहुमात्र या अरत्निमात्र लम्बी चौड़ी

कुण्ड—इसी भाँति चौकोर एक योनि मेखला

मण्डप—चारद्वारमयविविध ध्वजाओं के सब दिशाओं में फहरायें "दूब पल्लवादि से युक्त खम्भों के पास घटमय जल, अथवा लिपा, पोता या धुला मकान।

आचार्य--अध्वर्यु-होता, विधिवेत्ता, वेदोच्चारण में प्रवीण, सदाचारी, निर्लोभी प्रतिग्रहदान से वर्जित हों। स्वस्थ हों, अंगहीन या अधिक अंग के न हों।

वलिद्रव्य

रवि—चावल, गुड़। **चन्द्रमा**—खीर। **भौम**—हवि। **बुध**—दूध-भात। **गुरु**—खिचड़ी (षष्ठिक्यं)। **शुक्र**—(दध्ना) दही भात। **शनि**—हविः। **राहु**—श्रृताश्रृतम्। **केतु**—विचित्र अन्न।

पूजाद्रव्य—विविध रंग के वस्त्र, पुष्प, गन्ध, गुग्गुल धूप, धेनु, शंख, बछड़ा, स्वर्ण, श्वेत गौ, भेड़, बकरी। विशेष अध्याय ६ में देखें।

शान्ति ॥

अथ अग्नेः सम्मुख करण प्रकारप्रश्नम्

आहुती देवमुत्पाद्यपश्चात्कर्म समाचरेत्।
अधोवक्त्रोर्द्धपादश्च प्राङ्मुखो हव्य वाहन॥
तिष्ठत्येवं प्रभावेन आहुति कस्य दीयते॥

अस्योत्तरः।

सपवित्राम्बु हस्तेन वन्हेः कुर्यात्प्रदक्षिणम्॥
हव्यवाट् सलिलं दृष्ट्वा विभीतो संमुखो भवेत्॥

अग्नेरास्यादीनांलक्षणम्॥

सधूमोग्निः शिरोज्ञेयं निर्धूमश्चक्षुरेवहि। ज्वलत्कृष्णोभवेत्कर्णः काष्ठमग्रे मनस्तथा॥ प्रज्वलितोऽग्निस्तथाजिह्वाएतदेवाग्नि लक्षणम्॥

आस्यान्तर्जुहुयादग्नेविपश्चितसर्वकर्मषु॥ कर्णेहोमेभवेद्व्याधिर्नेत्रेऽन्धत्वमुदीरितम्॥ नासिकायांमनः पीड़ामस्तकेधनसंक्षयः॥ स्वर्णसिन्दूरवालार्ककुंकुमक्षौद्रसन्निभः॥ सुवर्णरेतसो वर्णःशोभनःपतिकीर्तितः॥ भेरीवादित्रहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभावहः॥ नागचम्पकपुन्नाग पाटलायूथिकानिभः॥ पद्मेन्द्रीवरकल्हार सर्पिगुर्गुलसन्निभः। पावकस्य शुभोगन्धइत्युक्तं तन्त्रवेदिभिः॥ प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभः शिखिनः शिखा॥ शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापिविशेषतः॥ कुन्देन्दुधवलोधूमो वह्नेः प्रोक्तः शुभावहः॥ कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णोः यजमानं विनाशयेत्॥ खरस्वरसमोवन्हेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत॥ पूतिगन्धोहुत भुजोहोतुः दुःखप्रदोभवेत्॥ छिन्नावतोशिखा कुर्यान्मृत्युंधन परिक्षयम्॥ शुकपक्षनिभोपारावत समप्रभः॥ हानिं तुरगजातीनांगवांच कुरुते चिरात्॥ एवं विधेषु दोषेषुप्रायश्चित्तायदेशिकः॥ मूलेनाज्येनजुहुयात्पञ्चविंशतिमाहुतीः॥१६६॥ शारदायां ५ पटले होमोपयुक्त कुण्डादि नियम ज्ञानार्णवे॥

अथ होमोपयुक्तानि कुण्डानि तेषांपृथक्त्व न्यायेन क्रत्वर्थपुरुषार्थोभय रूपताञ्च दर्शयति ॥

यौनिकुण्डे भगाकारे वर्तुले वाऽर्ध चन्द्रके ॥ नवत्रिकोणकुण्डे वा चतुरश्रेष्ठपत्रके ॥१॥
योनिकुण्डेभवेद्वाग्मीभगेचाकृष्टिरुत्तमा ॥ वर्तुलेतुभवेल्लक्ष्मीरर्द्धचन्द्रे त्रयंभवेत् ॥२॥
नवत्रिकोण कुण्डेतु खेचरत्वंप्रजायते ॥ चतुरस्त्रेभवेच्छान्तिर्लक्ष्मीः पुष्टिररोगता ॥३॥
पद्माभेसर्वसम्पत्तिरचिरादेव जायते ॥ अष्टकोणे तुसुभगे समोहितफलंभवेत् ॥४॥

अथात्रहोमद्रव्याणां प्रमाणमभिधोयते ॥ कर्णमात्रंघृतं होमे शुक्तिमात्रंपयः स्मृतम् ॥ उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानिमनीषिणः ॥ तत्समंमधु दुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम् ॥ दधि प्रसृतिमात्रंस्याल्लाजाः स्युर्मुष्टि सम्मिताः ॥ पृथुकास्तत्प्रमाणाःस्युःशक्तवापितथोदिताः ॥ गुड़पलार्द्धमानं स्याच्छर्करापितथामता ॥ ग्रासार्द्धंचरुमानंस्यादिक्षु-पर्वाविधिर्मता ॥ एकैकंपत्र पुष्पाणि तथाऽपूपानि कल्पयेत् ॥ कदलोफलनारंगफलान्येकैकशोविदुः ॥ मातुलिङ्गचतुखण्डं पनसं दशधाकृतम् ॥ अष्टधानारिकेलानिखण्डेतानिविदुर्बुधाः ॥ त्रिधाकृटंफलं विल्वं कपित्थं खण्डितं त्रिधा ॥ उर्वारुक फलंहोमेवादितंखण्डितंत्रिधा ॥ फलान्यन्यानिखण्डानिसमिधः स्युर्दशाङ्गुलाः ॥ दूर्वात्रयंसमुद्दिष्टंगुडूचीचतुरंगुलाः ॥ व्रीहयोमुष्टिमात्रास्युर्मुद्गमाषयवाअपि ॥ तण्डुलास्युर्तदर्द्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मितः ॥ गोधूमरक्तकमला विहितामुष्टिमानतः ॥ तिलाश्चुलुक मात्रास्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः ॥ शुक्तिप्रमाणंलवणंमरीचान्येकविंशतिः ॥ पुरुर्वदरमानःस्याद्रामठंतत्समंस्मृतम् ॥ चन्दनागुरुकस्तूरोकर्पूरकुंकुमानिच ॥ तिन्तडोवीजमा-समुद्दिष्टानिदेशिकः ॥ वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत्समिद्धोमेषुदेशिकः ॥ शयानमाज्यहोमेषुनिषण्णं एतानि शेषवस्तुषु ॥

अथ उत्तर तन्त्र (होमविधि)

ब्रह्मवरण-पञ्चभू संस्कार-पूर्वक-अग्नि स्थापन

सर्व प्रथम कर्त्ता जपे—कर्ता ब्रह्मा।

ॐ अव्यसश्चव्यचसश्चबिलं विष्यामिमायया ।
ताभ्यामध्दृत्यवेदमथ कर्माणिकृण्महे ॥

ॐ नमो ब्रह्म वेदाय, ॐ नमो अथर्व वेदाय, ॐ ब्रह्मणे नमः; ॐ अथर्वणे नमः ॐ अथर्वाङ्गिरसेभ्यो नमः; ॐ भूर्भुवः स्वर्जनदोऽम् ।

पुरोडाश-रस प्राशन (दधि-मधु-घृत-रसे) कर, यजमान; ब्रह्मावरणन के समय जप करें।

ॐ भूपते भुवनपते भुवांपते महतो भूतस्यपते ब्रह्माणं त्वा वृणीमहे ।

(तै० ब्रा० ३।७।६।१)

यजमान, पत्रपुष्प, दक्षिणा, फल, अक्षत लेकर ब्रह्मा से विनय करें और ग्रन्थि बन्धनादि करें। वै० श्रौ० सू० १७ ब्रह्मा जप करें।

ॐ अहं भूपतिः, अहं भुवनपतिः; अहं भुवांपतिः; अहं महतो भूतस्यपतिः; तदहं मनसे प्रब्रवीमि मनो वाचे वागगायत्र्यै, गायत्र्युष्णिह, उष्णिगनुष्टुभे ऽनुष्टुब् बृहत्यै बृहती पङ्क्तये पङ्क्तिस्त्रिष्टुभे; त्रिष्टुब् जगत्यै जगती प्रजापतये प्रजापति विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॐ भुर्भुवः स्वर्जनदो३म् ।

(तै० ब्रा० ३।७।६।१) वै० श्रौ० सू० १८

ॐ अहमवाग्वसोः सदने सीदामृतस्य सदने सीदामि, सत्यस्य सदने सीदामि, इष्टस्य सदने सीदामि पूर्तस्य सदने सीदामि मा मृषदेववर्हिः स्वासस्थं त्वा ध्यासदेयमूर्णमदमनभिशोकम् । कौ० सू०

ॐ इन्द्रस्य बाहू स्थाविरौ वृषाणौचित्राइमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौयोक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्व १ र्यत् ॥

(१९।१३-१) अथर्व

ॐ आशुः शिशानो वृषभोनभीमोघनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सं क्रन्दनोऽनिमिषएकवीरः शतंसेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥२॥
सं क्रन्दनेननिमिषेण जिष्णुना ऽयोध्येन दुच्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नरइषु हस्तेन वृष्णा ॥३॥
सइषु हस्तैः सनिषङ्गिभिर्वशीसंसृष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सं सृष्टजित्सोमपाबाहुशर्ध्यु १ ग्रधन्वाप्रति हिताभिरस्ता ॥४॥
ॐ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजीसहमान उग्रः ।
ॐ अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५॥
इमंवीरमनुहर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनुसं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं बज्रबाहुं जयन्त मज्मप्रमृणन्त मोज सा ॥६॥
अभिगोत्राणि सहसागाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुच्यवनः पृतनाषाडयोध्यो३ स्माकं सेना अवतप्र युत्सु ॥७॥
बृहस्पते परिदीयारथेन रक्षोहामित्रां अपवाधमानः
प्रभञ्जंछ त्रून्प्रमृण न्नमित्रांनस्माकं मेध्यविता तनूनाम् ॥८॥

इन्द्र एषांनेता बृहस्पतिर्दक्षिणायज्ञः पुरएतुसोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जन्तीनां जयन्तीनांमरुतो यन्तमग्र्यें ॥९॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्यराज्ञ आदित्यानांमरुतांशर्ध उग्रम् ।
महामनसांभुवनच्यवानांघोषोदेवानां जयतामुदस्थात् ॥१०॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषुध्वजेष्वस्माकं याइषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीराउत्तरेभवन्त्वस्मान्देवासोऽवताहवेषु ॥११॥

इनका ब्रह्मा जप करै ।

तथा पतिपत्नी ग्रन्थि वन्धन इस ऋचा से करे ।

ॐ आशासाना सौमनसंप्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रताभूत्वासं नह्यस्वामृतायकम् ॥१४।१।४२

"याज्ञिक यजमानाचार्य निम्नमन्त्रों से अभिमन्त्रित कर मधुपर्क पान करें ।

"सोमेन वक्ष्यमाणः" ऐन्द्राग्नम अनुसृष्टम् "यस्य पिता पितामहाः सोमं नपिबेत् । (गो० ब्रा० २।१।१६) वै० श्रौ० अ० ३ कं ९ (११ सू १)

ऋत्विजो वृणीते ॥२॥ सोमेन "वक्षमाणः ऋत्विजः" ब्रह्माऽऽद्यान् वृणीते । यज्ञकर्म कर्तृतया स्वीकुर्वते वृणीते ऋत्विजः गृहीत मधुपर्कान् । येन सोम" (अ० वे० ६।७-१)

ॐ येनसोमादितिः यथामित्रावायन्त्यद्रुहः । तेनानोऽवसागहि ॥१॥
येनसोमसाहन्त्यासुरान्‌रन्धयासिनः । तेना नो अधि वोचत ॥२॥
येनदेवा असुराणामोजांस्य वृणीध्वम् । तेना नः शर्म यच्छत ॥३॥

यजु० (कुण्ड) (वेदी) अथर्व

अ० कां० ७ सू० ९९ अथर्वा० । वेदी । भुरिक् त्रिष्टुभ् ।

शौनकीय विधि "वेदी अनुमंत्रण"

"परिस्तृणीहि" (७।१०४) इससे श्रौत दर्श पूर्णमास आदि समस्त यज्ञों में वेदी को कुशाग्रों, दाभों से आच्छादित करने मैं अनुमन्त्रण दाभों का करें । (वेदी यजमान संमित होने से उसकी समानाकृति (यजमान की) होती है वै० १।६।७ आच्छादित दर्भ यजमान के पुण्यभोग स्थान में सुवर्णमय अलङ्कार हों ।

ॐ परि स्तृणीहि परि धेहि वेदीं मा जामि मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्काएतेयजमानस्य लोके ॥१॥२५१

९८ (१०२) हविः अनुमन्त्रण, उपस्थान

"संर्वहि" (७।१०३) से स्मार्त, दर्श, पूर्णमास यागों में आज्यशेष से युक्त, हवि, पुरोडाश युक्त र्वहि सर्वदेव प्रमुख को प्राप्त हो।

"स्वाहा इदं र्बहि स्वाहुतम् अस्तु" वै० १।४ कौ० १।६।

अथर्वा । इन्द्रः, विश्वेदेवाः । विराटत्रिष्टुम् ।

ॐ सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ॥

सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥१।२५०

यज्ञः (अ० कां १९।१)

"सं संस्रवन्तु" (१९।१) इस सूक्त से पुष्टि; तथा लक्ष्मी प्राप्ति कर्मो में" जौ, गेहूं धान, तिल, कांगनी, सवां आदि से युक्त खिचड़ी में दही, मधु मिला, अभिमन्त्रित कर होम करें। शेष चरु (भोग) को इसीसे अभिमन्त्रित कर खायें। कौ० ३।२। शान्ति कर्मो के लिये नदी या सरोवर, झरना, समुद्र-आदि के लाये पावन जल को अभिमन्त्रित करें। इसी से "अमृता नामक विश्वभेषजी शान्ति करें। "आपश्च विश्वभेषजी" ऋ० वे० १।२३।२०

"अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा ॥ ऋ० १०।९।६॥ शंत आपो ॥ (१९।२)

१-३ ब्रह्मा । यज्ञः, चन्द्रमाश्च । १-२ पथ्यावृहती, ३ पंक्ति प्रपाठक ३५

सं सं स्रवन्तु नद्य १ः संवाताः सं पतत्रिणः ।

यज्ञमिमं वर्धयतागिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।

यज्ञमिमं वर्धयतागिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२॥

रूपं रूपं वयो वयः संरभ्यैनं परिष्वजे ।

यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३।

आपः कां १९।२

इससे घटादि में समस्त पावन स्रोतों-जलों, नद, नदी आदि के अभिमानी देवताओं का आवाहन तथा वन्दना करें।

१-५ सिन्धुद्वीपः। आपः अनुष्टुप् ।छन्दः जलाभिमानीदेवानुमन्त्रणेविदियोगः

शंत आपोहैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।

शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥१॥

शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।

शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥२॥

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३॥

अपामह दिव्याऽ नामपां स्रोतस्याऽ नाम् ।
अपामह प्रणेजने ऽश्वा भवथ वाजिनः ॥४॥

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मं करणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥५॥

कां १६। (३) जातवेदाः ।

"दिवस्पृथिव्याः" (१६।३) तथा "प्रातरग्निम्" (६।१); "गिरावरगराटेषु" (३।१६) मेधा-जनन में विनियोग करें। "श्रुतकर्णाय" (१६।३-४) ऋचा अतीन्द्रियार्थदर्शी सर्व ज्ञातव्य वेदज्ञान तथा अभय प्रद है और क्रोधी (द्वेषकर्त्ता) के क्रोध शमन करने वाला भी है।

१-४ अथर्वाङ्गिराः अग्निः। त्रिष्टुप्; २ भुरिक छन्दासि उपर्युक्त प्रयोजन सिद्धये विनियोगः।

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥१॥

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु यओषधीषु पशुष्वप्स्व १ न्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्व १ः संरभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥२॥

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गोयाते तनूः पितृष्वा विवेश ।
पुष्टिर्याते मनुष्येऽषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासुधेहि ॥३॥ (११)

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामिरातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४॥ (१२)

आकूति : का० १६ सू-४

"यामाहुति" (१६।४) इन तीन ऋचाओं से मानसिक-वाचिक-कायिक समस्त अभीष्ट तथा जन्मान्तरीयज्ञान फलप्राप्ति हेतु जप, उपस्थान-होम करें।

१-४ अथर्वाङ्गिराः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पञ्चपदाविराडति जगती, २ जगति ।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वायो जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतुहव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥१॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सामे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥ (१६)

ऋत्विज् ब्रह्मा आदिको वरण कर, याज्ञिकों को स्वयं भी यजमान मधुपर्क पान कराये और करे। (कौ० सू० ४६।४) याज्ञिक अनुभवी वृद्ध श्रोत्रिय हों अथर्वाऽङ्गिरोविदं ब्रह्माणम्। सामविदम् उद्गातारम्। ऋग्विदं होतारम् यजुर्विदम् अध्वर्युम् (वै० सू० ख)

इस भांति ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु आदि का वरण व मधुपर्क करने के उपरान्त अध्वर्युः ब्रह्माजो से यज्ञारम्भ की प्रार्थना करें। कि निम्न भाँति के सभी जन्म-जन्मान्तरीय, क्षेत्रीय पाप शाप, दुख, संकट निवारक यज्ञ प्रारम्भ की आज्ञा शक्ति क्षमता प्रदान करें।

ॐ देव कृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। पितृ कृतस्य मनुष्य कृतस्य आत्म कृतस्यऽनाज्ञाता ज्ञात कृतस्य। यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरुमनसो वा प्रयुती देव हेडनम्। अरा वा योनो अभिदुच्छुना यते तस्मिंस्तदेनोवसवो निधेतन। (ऋग्वेद १०।३७।१२)

ॐ उभा कवी युवानां सत्यादा धर्मणस्परि। सत्यस्य धर्मणा विसख्या निसृजामहे। वै० श्रौ० अ० ३ कं० १३।२३।१४

इसी के साथ अथर्व कां ६ सू० ११३ व ११४ से प्रार्थना करे।

ॐ यद्देवादेवहेडनं देवासश्चकृमावयम् ।
आदित्यास्तस्मान्नोयूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥१॥
ऋतस्यर्तेनादित्यायजत्रामुञ्चतेह नः ।
यज्ञंयद्यज्ञवाहसः शिक्षन्तोनोपशेकिम् ॥२॥
मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामाविश्वेवोदेवाः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥६।११४-३

ॐ त्रितेदेवा असृजतै तदेनंस्वितएनन्मनुष्येऽषुममृजे ।
ततो यदि त्वाग्राहिरानशेतां तंदेवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ (अ० ६।११३-१)
मरीचीर्धूमान्प्रविशानुपाप्मन्नुदारान्गच्छोतवानीहारान् ।
नदीनांफेनाँ अनुतान्विनश्यभ्रूणघ्निपूषन्दुरितानिमृक्ष्व ॥२॥
द्वादशधानिहितं त्रितस्यापमृष्टंमनुष्यैनसानि ।
ततोयदि त्वाग्राहिरानशेतांतंदेवाब्रह्मणा नाशयन्तु ॥६।११३-३

ये मन्त्र आहुति, मार्जन, अवभृथस्नान, मंत्रों के कर्मों में भी विनियोग करें।
सर्व प्रायश्चित होम, आदित्यादिग्रह होम, पूर्णाहुति आदि में भी प्रयोग करें।
उपरोक्त रीति से ब्रह्मा से अध्वर्युः प्रार्थना करते हुए यह भी जपै

ॐ भूर्भुव स्वर्जनदोऽम् । ॐ ब्रहन्नपः प्रणेष्यामि, तव प्रणय ।

ब्रह्म आदेश दें और जपें।

ॐ यज्ञं देवता वर्धयत्वम् । नाकस्यपृष्ठेस्वर्गेलोकेयजमानोऽस्तु, सप्त ऋषीणां सुकृतां यत्र लोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानंधेहि; ॐ भूर्भुव स्वर्जनदो३म् । प्रणय । श्रौ० सू० कं० २।१। कौ० सू० १।१४॥

तत्पश्चात्पञ्चभू संस्कार करे। विशेष विधि यहाँ दी जाती है, शेष आगे दी हुई है। वेदी का जल के पात्र में चावल, जौ, शमीपत्र, पुष्प, चन्दन डालकर उपस्थान करे।

ॐ यस्यांमन्नं व्रीहियवौयस्यां इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यैपर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तुवर्षमेदसे ॥ (१२।१-४२)

कुशाग्रों से वेदी को तोन बार दक्षिण से उत्तर को रेखाङ्कित कर बुहारे। यह "स्फेन" से खींचे।

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यांपूष्णोहस्ताभ्यांप्रसूत आरंभे (१९।५१-२)
गोमयोदकेन उपलिप्य ।

ॐ यस्यां कृष्ण मरुणञ्च सहिते अहोरात्रेविहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृताबृतासानो दधातुभद्रयाप्रियेधामनिधामनि ॥ (१२।१-५२)

होम मे पूर्व स्रुवमूल को पकड़ कर जपे और स्रुवा में कलावा (मौलि) बाँधे, पूजा करें।

ॐ विष्णोर्हस्तोऽसिदक्षिणः पूष्णादत्तो वृहस्पतेः ।
तंत्वाहंस्रुवमाददेदेवानां हव्य वाहनम् ॥
अयंस्रुवो विदधाति होमाञ्छताक्षर छन्दसा जागतेन ।
सर्वायज्ञस्य समनक्ति विष्टा वार्हस्पत्येष्टिः शर्मणा दैव्येन ॥

स्रुवा से वेदीपर दक्षिण से उत्तर ३ रेखायें "अंगुष्ठ से तर्जनी की चौड़ाई मात्र" प्रादेशमात्र खीचे ।

ॐ इन्द्रः सीतां निगृह्णातुतां पूषाभिरक्षतु ।
सानः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ (३।१७-४)

पुनः ऋचा (१२।१-५२) उपर्युक्त[1] से सम्प्रोक्षण करे ।

वेदी के हवनीय प्रदेश की परिधियों को अनुमन्त्रित करे। पत्थर रखें ।

ॐ यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवींविश्वधायसंभृतागच्छावदामसि ॥१२।१-२७

वेदी की परिधि अनुमन्त्रण के उपरान्त

निम्न अ० वे० कां ७ सूक्त २८ ॥ वेदा स्वस्ति । के
मेधातिथिः ऋषि । वेदः । देवता । त्रिष्टुप् छन्द

दर्शपूर्णमासादि यागेषु दर्भमुष्टि; वेद अनुमन्त्रणे, पवित्री धारणे च विनियोग ।
इससे दर्भ मुष्टि अनुमन्त्रित करें ।

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिपरशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्तेदेवासोयज्ञमिमंजुषन्ताम् ॥७।२९।१

कुश परिस्तरण

वेदी तथा कुशमुष्ठि अनुमन्त्रण कर निम्नमंत्र (७।९९(१०४) से कुश परिस्तरण करें।

ॐ परिस्तृणीहि परिधेहिवेदिं माजामिमोषीरमुयाशयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्काएते यजमानस्यलोके ॥

पुनः वेदी तथा समस्त सामिग्री आदि का संम्प्रोक्षण करें ।

ॐ पृथिव्यैश्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नये ऽधिपतय स्वाहा ॥१
प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्योवायवे ऽधिपतय स्वाहा ॥२

दिवेचक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥६।१०।३

समिधाओं का अनुमन्त्रण

ॐ अग्नेर्मन्वेप्रथमस्यप्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधायमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहसनो मुञ्चत्वंहसः ॥४।२३-१

यज्ञमण्डप के द्वारों का पूजन

कां ५ सू० १२ ऋ० ५-अंगिराऋषिः । जातवेदा देवता । अनुष्टुपछन्द
यज्ञमण्डप द्वार अनुमन्त्रणे विनियोग ।

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तांपतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवींद्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्योभवतसुप्रायणाः ॥५

यज्ञ देव का आवाहन

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता सएनान्यक्षीषितोयजीयान् ॥३

यज्ञदेव को आसन-कुशपरिस्तरण

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशापृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्युऽप्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४
त्वंभूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वांपवित्रमृषयोऽभरन्त त्वंपुनीहिदुरितान्यस्मत् ॥१९।३३।३
दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याऽणिदर्भंविभ्रदात्मनामा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्यइवाभाहिप्रदिशश्चतस्रः ॥१९।३३।५

पवित्र करनेवाली ३ कुशाओं का अनुमन्त्रण

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
सनोऽयंदर्भः परिपातुविश्वतो देवोमणिरायुषा संसृजाति नः ॥१९।३३।१

सप्तउपयमन कुशाग्रों को अनुमंत्रण कर घीमें डुबा कर प्रज्वलित करके स्वआसन पर स्थित रह सव्य (प्रदक्षिणाक्रम से) तीनबार वेदी को परिक्रमाकर तूष्णीं अग्नि में छोड़ें ।

घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन्दर्भारोहमहतामिन्द्रियेण ॥१९।३३।२

प्रादेशमात्र समिधा ३ अनुमन्त्रितकर घीमें डुबाकर प्रज्वलितकर उपर्युक्त परिक्रमा क्रम मे ३ बार वेदी की प्रदक्षिणा कर तूष्णीं अग्नि में छोड़े ।

समिध्दो अद्यमनुषोदुरोणेदेवोदेवान्यजसि जातवेदः ।

आच वहमित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥५।१२।१

चरु-घृत, शाकल्य अनुमन्त्रण

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना संमरुद्भिः ।

सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ।

इसीसे पूर्णाहुति दी जावे ।

आचार्य व्याहृति होमकर अग्नि का पूजन करें ।

अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षसयंक्षदस्यमहिमानमग्नेः ॥५।२७।६

दैवा होतारऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेजिह्वयाभिगृणतगृणतानः स्विऽष्टये ।

तिस्रोदेवीबर्हिरेदंसदन्तामिडासरस्वतीमहीभारतीगृणाना ॥५।२७।९

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।

इन्द्राययज्ञं विश्वे देवाहविरिदं जुषन्ताम् ॥५।२७।१२

तदनन्तर पूर्व पीठस्थ आवाहित देवों के प्रति होमकर । पूर्व सङ्कल्पित होम स्वगृह्यसूत्र परम्परा से करें। अन्य सम्बन्धित विधि पूर्वोल्लिखित ही है ।

उपर्युक्त विधि ब्रह्मवेद के द्वारा जब की जावे तो पौराणिक या तान्त्रिक या अन्य गृह्यसूक्त विधि का प्रयोग न करें। एक ही गृह्यसूक्त (जिससे प्रारम्भ करें उसी) से पूर्ण करें ।

अक्षत पुष्पादि डालकरमृन्मयघट (सकोरे) रक्खे। समिधाओं को इस मन्त्र से अनुमन्त्रित करे ।

अं होलिङ्गगणमें "अग्नेमेन्वे" (४।२३)

यह बृहच्छान्ति के साथ देखें ।

तीन बार अग्नि, प्रणीता, प्रोक्षणी, स्रुवा आदि का इससे संमार्जन कुशा से करे ।

ॐ वाजं अग्ने वाजजितंवाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं संमार्ज्मि ॥ वै० श्रौ० सू० कं० २ सू १२

और "अर्वाञ्च" (श्रौत) अग्नि का आवाहन करे इसकी विधि पूर्व दी जा चुकी है इसी प्रकार जलाक्षत ले परिक्रमा करे ।

ॐ वाजं त्वाऽग्ने जेष्यन्तं सनिष्यन्तं संमार्ज्मि वाजं जयः
ॐ अर्वाञ्चं प्रतीचीनं त्रिरुप वाजयति ॥ वै० श्रौ० कं० २ सू० १३

परन्तु अभिचार तथा शान्ति कर्म में सर्प की बाँमी की मिट्टी की वेदी, शमी, याशाल्मली विल्व की समिधा या अश्वत्थ की समिधायें लें। उपरोक्त रीति से वेदी का प्रोक्षण कर दक्षिणाग्नि (चाण्डालाग्नि, श्मशानाग्नि) स्थापितकर आचार्य पूजा करे। यथा

ॐ पुरीष्योऽसि विश्वभराः। अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने। (१)
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥२॥
त्वमु त्वादध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥३
त्वमु त्वापाथ्यो वृषासमीधेदस्युहन्तमम्। धनं जयंरणेरणे ॥४॥ वै० श्रौ० कं १ (५) सू० १३

इससे ब्रह्मा अग्नि को अनुमन्त्रित कर प्रार्थना करे।

ॐ यद् अक्रन्दः प्रथमं जायमानउद्यन्त्समुद्राद्उत् वा पुरीषात्।
श्येनस्यपक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्स्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१॥
ॐ यद् अक्रन्दः सलिले जातो अर्वन् सहस्वान् वाजिन् वलवा न्बलेन।
तं त्वाऽऽदधुर्ब्रह्मणेभागमग्ने अथर्वाणः सामवेदो यजूंषि ॥२॥
ॐ ऋग्भिः पूतं प्रजापतिरथर्वणे ऽश्वं प्रथमं निनाय।
तस्य पदे प्रथमं ज्योतिरादधे समा वहाति सुकृतां यत्र लोकः ॥३॥
ॐ अभितिष्ठ प्रतन्यतो मह्यंप्रजां आयुश्च वाजिन् धेहि।
त्वया वधेयं द्विषतः सपत्नान् स्वर्ग मे लोकं यजमानाय धेहि ॥४॥
ॐ अभितिष्ठ प्रतन्यतः सहस्व पृतनायतः।
यथाऽहम् अभि भूः सर्वाणि तानि धूर्वतो जनान् ॥५॥ वै०श्रौ०अ० २ कं० ६ सू० १

इन पाञ्चों को ब्रह्मा जपें। ये अश्वमेध यज्ञ में अश्व के अन्वारब्ध कार्य में भी विनियोजित हैं।

कांस्यपात्र में ढक; लौकिक अग्नि को अग्निकोण से लायें प्राङ्मुखमुप समाधाय अग्नि स्थापित कर प्रार्थना करें। रिक्त पात्र में अक्षत पुष्प डालकर पृथक रख दे।

ॐ त्वामग्नेभृगवो नयन्तामाङ्गिरसः सदनं श्रेयंएहि। विश्वकर्मापुर एतुप्रजानन्धिष्ण्यं

पन्थामनु तेदिशाम् । भद्रंपन्थामनु ते दिशामः । श्रेयंपन्थामनु ते दिशामः । स्वस्त्यं पन्थामनु ते दिशामः । भद्रोभवः श्रेयोभवस्वस्त्यो भवः । कौ० सू०

अग्नि देवता का आवाहन करें। इससे जौ, चावल, पुष्प, अक्षत अग्नि को अर्पण करें।

ॐ अग्ने प्रेहिंप्रथमोदेवतानां चक्षुर्देवानांमुतमानुषाणाम् ।
इयंक्षमाणा भृगुंभिः सजोषाः स्वऽर्यन्तु यजमानास्वस्ति (४।१४-५)

अग्नि स्थापन इस ऋचा से करे।

ॐ विश्वभरा वसुधानीं प्रतिष्ठा हिरण्य वक्षाः जगतोनिवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रंती भूमिरग्निमिन्द्रं ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ (१२।१-६)

'पूर्वोक्त पञ्च इध्म (पाँच प्रादेशमात्र अर्थात् अंगुष्ठ से तर्जनी की चौड़ाई के) बराबर की ५ अश्वत्थ (पलाश) खदिर की समिधायें पूर्व मन्त्र से अनुमन्त्रित कर एक एक को निम्न ऋचाओं से प्रज्वलित अग्नि में छोड़ें (कौ० सू०) (कुशकण्डिका के उपरान्त)

ॐ अग्निर्भूम्यामोषधीष्वाग्निमापो बिभ्रत्यग्नि रश्मं सु ।
अग्निरन्तपुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ (१) (१२।१-१९)

तदनन्तर अमुक कर्म प्रारम्भ निमित्तं पञ्चेध्मं सकृञ्जु होति । प्रथम व्याहृति होम-एक एक से आज्याहुति दे प्रथम ॥ घृतस्यजूति ॥ १६।५६ (पृ० १६६)

ॐ भूः शम्भूत्यै त्वा गृह्ले भूतस्य
ॐ अग्ना वाग्नि श्वरति प्रविष्ट ऋषीणांपुत्रो अभिशस्तिपा उं
नमस्कारेण नमसाते जुहोमि मादेवानां मिथुया कर्मभागम् ॥ (४।३९-९)

इति प्रथमं ग्रहं गृह्लाति (१)

ॐ अग्निर्देव आतपत्यग्नेर्देवस्योर्व १_ न्तरिक्षम् ।
अग्निमर्तासइन्धतेहव्यवाहंघृत प्रियम् ॥१२।१-२० (२)
ॐ भुवः शंपुष्ट्यै त्वा गृह्ले पुष्टय
ॐ हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वांनिदेव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेद स्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥ (४।३९-१०

इति द्वितीय ग्रहं गृह्लाति। (२)

ॐ अग्निवासा पृथिव्यऽसितज्ञूस्त्विषीमन्त संशितंमा कृणोतु ॥ (३) ॥१२।१-२१
ॐ स्वः शं त्वा गृह्ले ऽपरिमिताय पोषाय ”

ॐ पुरस्ताद्युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासिकर्ता त्वयागामश्वं पुरुषं सनेम् । (५।२९-१)

इति तृतीय ग्रहं गृह्णाति । (३)

ॐ एतमिध्मंसमाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः । तस्मिन्विदेमसुमतिं स्वस्तिप्रजांचक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ (४) ॥ (१०।६-३५)
ॐ जनच्छं त्वा गृह्ले ऽपरिमित पोषाय "
ॐ यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेणमनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्व कर्मणा देवायन्तु सुमनस्यमानाः ॥ (२।३५-५)

इति चतुर्थ ग्रहं गृह्णाति । (४)

ॐ अस्मैक्षत्राणिधारयन्तमग्नेयुनज्मित्वा ब्रह्मणादैव्येन ।
दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेहभद्रंप्रेमं वोचे हविर्दादेवतासु ॥ (५) ७।७८।२
(राजकर्माऽभिचारिकेषु; अमुष्य त्वा प्राणायगृह्ले)
ॐ प्राणायगृह्लेऽपानाय व्यानाय समाना योदानाय "
ॐ यज्ञस्य चक्षुः प्रभृति मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ (१९।५८-५)

इति पञ्चमं ग्रहं गृह्लाणि ॥ (५)

तदुपरान्त ऋचा (१६।३३-५) से सम्प्रोक्षण करें ।

वेदी को अनुमन्त्रण करें

कुशकण्डिका की विधि जो आगे लिखी हुई है, उसी भाँति करें । विशेष माज्य निरूपण इस मन्त्र से करें । वै० श्रौ० सू०

ॐ घृतंते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वामनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य १ आवहन्तु घृतंतुभ्यं दुहतांगावो अग्ने ॥अथर्व ७।(८२)८७-६

घी व शाकल्य को स्रुवा से इस मन्त्र से उठायें ।

ॐ येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं संजातानांश्रैष्ठ्य आधेह्येनम् ॥ अथ (१।९-३)

चरु के चावल आदि को इस मन्त्र से धोकर चरुस्थाली में डालें।

ॐ यत् त्वा शिक्वः परावधीत्तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तुः शुचय शुचिम् ॥१०।६-३॥

इससे पूर्व धानों को उलूखल में डालकर मूसल से कूटे और स्वच्छ करले मन्त्रः।

ॐ यद्यत् कृष्णः शकुन एहगत्वात्सर न्विषक्तं विल आससाद।
य द्वादास्या३ द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१२।३-१३ अथर्व

इसके उपरान्त, अथर्व व यजुर्वेदोक्त व्याहृति होम कर, गणपति वेदी-नवग्रह वास्तुवेदी, सर्वतोभद्रपीठस्थ देवताओं का होम कर कर्म प्रधान देवता का होम करें। तदुपरान्त छाया दान-बलिदान (क्षेत्रपालका) स्विष्टकृद्धोम पूर्व मण्डल-भद्रपीठ के देवता-दिक्पालों का बलिदान करें।

होम मन्त्रों के दशांश मन्त्रों से या महाव्याहृतियों या गायत्री मन्त्र या प्रधान देवता के मन्त्र से ऋत्विगादि मयसपत्नीक यजमान हाथों में कुशा लेकर पात्र में कच्चा दूध व जल डालकर तर्पण उसके दशांश मन्त्रों से मार्जन कर पूर्णाहुति करें। पूर्णाहुति विधि आगे है विशेष इस प्रकार है।

प्रथम कुण्ड (वेदी) के पश्चिम यजमान बैठे और जल अक्षत पुष्प दक्षिणा लेकर पूर्वोक्त कर्मफल प्रतिष्ठार्थं (अमुक देवता प्रीत्यर्थं अमुक यज्ञं) अहं करीष्ये-यह आगे वर्णित है।

इस ऋचा से कुशा से संप्रोक्षण करें।

ॐ दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणिदर्भबिभ्रदात्मनामा व्यथिष्ठाः।
अतिष्ठाया वर्च्च साधान्यान्त्सूर्य इवाभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ (१९।३३-५)

इस ऋचा से अग्नि के दक्षिण ब्रह्मासन पर ब्रह्मा जी को स्थापित करे ५१ दर्भमयी कुशाओं का ब्रह्मा (प्रत्यक्ष) के अभाव में कल्पित कर स्थापना करें। और ब्रह्मा वरण कर जपें।

ॐ ऋषीणां प्रस्तरोऽऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ (१६।२-६)

ब्रह्मा स्वीकार करते हुए "ॐ वृतोऽस्मि" कहें। यह कौशिक सूत्र विधि है।

अथ पञ्चभू संस्कारपूर्वकमग्नि स्थापनम् (यजुर्वेदीय)

अथाचार्यो स्थण्डिले कुण्डे व पञ्चभू संस्कारान्कृत्वा लौकिकमग्निं स्थापयेत् अथ पञ्चभूसंस्काराः॥ तत्रकुशैर्हस्त परिमितांचतुरस्त्रां भूमिं परिसमूह्य (३ वार) तान् कुशानैशान्यांनिक्षिप्य॥ गोमयोदकेनोपलिप्य (३ वार) स्त्रुवमूलेनप्रादेशमात्रमुत्तरोत्तर क्रमेणप्रागग्रं-त्रिरुल्लिख्य॥ उल्लेखनक्रमेणानामिकांगुष्ठाभ्यांमृदमुद्धृत्य (३ वार) वारिणातंदेशमभ्युक्ष्य

(३ वार) कांस्यपात्रस्थं लौकिकाग्निमग्निकोणादानी यप्रत्यङ्मुख मुपसमाधाय ।। क्रव्यादांशंत्य-जेदनेनमंत्रेण ।।

ॐ क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरंयमराज्यंगच्छतुरि प्रवाहः ।। इहैवा यमितरो जातवेदा देवेभ्योहव्यंवहन्तु प्रजानन् ।।

अथावाहनम्

ॐ अग्निं दूतंपुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे ।। देवाँऽआसादयादिह ।। अग्न्यानीतपात्रे साक्षतो-दकंनिषिञ्चेत् ।।

सम्मुखीकरणम्

ॐ चत्वारिश्रृङ्गात्रयोऽअस्य पादाद्वेशीर्षेसप्तहस्तासोअस्य ।। त्रिधावद्धो वृषभोरोरवीति महोदेवो मर्त्याऽआविवेश ।। अग्ने वैश्वानरशाण्डिल्यासितदेवलेतित्रिप्रवरान्वितभूमिमातःवरुण-पितः मेषध्वज प्राङ्मुख मम सम्मुखोभव ।।

वरदनामाग्निंप्रतिष्ठाय ।। वरदनामाग्नये नमः ।। इतिनाममंत्रेणवायव्यकोणेस्थंडि-लाद्वहिरग्निपूजनंविधाय ।। अथध्यानम् ।। ॐ (१) रुद्रतेज समुद्भूतंद्विमूर्द्धा नं द्विनासिकम् ।। षण्नेत्रं च चतुः श्रोत्रं त्रिपादंसप्तहस्तकम् ।। याम्यभागेचतुर्हस्तं सव्यभागेत्रिहस्तकम् ।। श्रुवंश्रुचिं चशक्तिश्च अक्षमालां चदक्षिणे ।। तोमरं व्यञ्जनं चैव घृतपात्रं तुवामके ।। विभ्रन्तं सप्तभिर्हस्तै-र्द्विमुखंसप्तजिह्वकम् ।। दक्षिणे च चतुर्जिह्वं त्रिजिह्वं चोत्तरेमुखे ।। द्वात्रिंशत्कोटिमूर्त्याख्यं द्विपञ्चाशत्कलायुतं स्वाहांस्वधावषट्कारैरकितं मेषवाहनम् ॥ रक्तमाल्याम्बरं रक्तरक्तपद्मासने स्थितं ।। रुद्रं त्वां शुभनामाहं वन्हि मावाहयाम्यहन् ।। त्वं मुखंसर्वदेवानां सप्तार्चिरामितद्युते ।। आगच्छभगवन्नग्ने यज्ञेस्मिन्सन्निधिकुरु ।।

ॐ अग्निं प्रज्वलितंवन्दे जातवेदंहुताशनम् ।। हिरण्यवर्णमनलंसमृद्धंविश्वतोमुखम्

अथकुशकण्डिका विधिः ।।

तत्रादौ (कुण्ड) स्थण्डिल पश्चिमे यजमानउपविश्य ।। देशकालौसंकीर्त्य अमुक गोत्रोऽ-मुकवर्माशर्माऽहं (अमुक यज्ञ) कर्मणि इदं हविर्द्रव्यं गणेशपञ्चोङ्कार द्वादश विनायकषोडशमा-तृका वास्तुपुरुषसपैतृकंविश्वेदेवा ६४ योगिनी सप्तवसोर्धारा सूर्यादिग्रहा ईश्वराद्यधि देवताग्न्यादि प्रत्यधिदेवता पञ्चलोकपाल १० दिक्पाल ब्रह्मादिसर्वतोभद्र मण्डलस्थ पञ्चाशद्देवताभ्यो नमम ।। तत आचार्योग्नेर्दक्षिणतः परिस्तरणभूमिं त्यक्त्वा ब्रह्मणे आसनं दत्वा तदुपरि प्रागग्रानुदगग्रान् कुशानास्तीर्यब्रह्माणमग्नि प्रदक्षिण क्रमेणानीय अस्मिन् (अमुक) यज्ञे त्वंमेब्रह्मा भव ।। इत्यभिधाय ।। वरण कर्मणा पूर्वं सम्पादितं ब्राह्मणं तदभावे ५० कुशनिर्मितं (ब्रह्माणं) कल्पितआसनेउपवेशयेत्पूजयेच्च ।। ततः प्रणीतापात्रंपुरतःकृत्वा जलेनापूर्यकुशत्रयेणाच्छाद्य ब्रह्मणोमुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ।।

ततः परिस्तरणम् ।।

वर्हिषश्चतुर्थ (१६) भागमादाय चतुर्भिदर्भैः पूर्वाग्रै राग्नेयादीशानान्तम् ॥४॥ प्रागग्र ब्रह्मणोग्निपर्यन्तंम् ।।४।। प्रागग्रै नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् ।।४।। प्रागग्रै रग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् ।।४।।

परिस्तरणं कृत्वा ।। ततः अग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशिपवित्र छेदनार्थं कुशत्रयम् ।। पवित्रकरणार्थं पवित्रेसाग्ने अनन्तगर्भे द्वेकुशपत्रे ।। प्रोक्षणीपात्रम् ।।

आज्यस्थाली ।। चरुस्थाली ।। सम्मार्जन कुशाः पञ्च ।। उपयमनकुशाः सप्त ।। समिधस्तिस्त्रः पालाश्यः प्रादेशमात्राः ।। स्रुवः खादिरो हस्तमात्रः ।। आज्यंगव्यम् ।। शोधितास्तन्दुलाः ।। पूर्णपात्रम् ।। दक्षिणा वरोवा ।। पवित्र छेदन कुशानां पूर्वपूर्व दिशिक्रमेणासादनीयम् ।। ततः पवित्रछेदनैः पवित्र करणम् ।। द्वयोः पवित्रयोरुपरि पवित्र त्रयंनिधाय ।। अग्रतः प्रादेशमात्रं विहाय त्रिभि कुशैर्द्वे कुशतरुणे प्रच्छिद्य ।। द्वयोर्मूलं त्रीणि चोत्तरतः क्षियेत् ।। ततः सपवित्रहस्तेनप्रणीतोदकं त्रिप्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य ।। अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनम् ।। प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्ते करणम् ।। अनामिकागुंष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वात्रिरु द्विङ्गनम् ।। ततः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणं ।। प्रोक्षणी जलेन आज्यस्थाल्यादीनि पूर्णपात्रपर्यन्तानि क्रमेणैकैकशः प्रोक्ष्यः ।। असञ्चरो प्रणीताग्न्योरन्तराले प्रोक्षणी पात्रंनिधाय ।। आसादितमाज्यंपश्चादग्ने निहितायामाज्यस्थाल्यां प्रक्षिप्य ।। चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकमासिच्य ।। आसादितांस्तंडुलान्प्रक्षिप्य ।। तत्राज्यं ब्रह्माधिश्रयति ।। तदुत्तरतः स्वयंचरुमेवयुगपदग्नावारोप्य ईषच्छृतेचरौ ज्वलदुल्मुकं प्रदक्षिणंआज्यचर्वोः समन्ताद्भ्रामयेत् ।। दक्षिणपाणिनास्रुवमादाय ।। अधोमुखमग्नौ तापयित्वा सव्यपाणौ कृत्वा ।।

कुशकण्डिका ।।*

दक्षिणेन संमार्जनाग्रैर्मूलतोग्रपर्यन्तं मूलैरग्रमारभ्य अधस्तान्मूल पर्यन्तं ।। संमृज्य प्रणीतोदकेनाभिषिञ्च्य ।। पुनः प्रतप्य दक्षिणतोनिदध्यात् ।। ततः आज्यम् उत्थाप्य ।। आज्यस्य पश्चिमतो नीत्वाज्यस्योत्तरतः स्थापयित्वा आज्यमग्नेः पश्चादानीय ।। चरुंचानीय ।। आजस्योत्तरतो निदध्यात् ।। ततपूर्ववत्पवित्राभ्यामा ज्यमुत्पूय ।। अवलोक्य ।। तस्मादपद्रव्य निरसनंपुनः प्रोक्षिण्युत्पवनं ।। ततः उपयमनकुशानादाय ।। उत्तिष्ठन् प्रजापतिम्मनसाध्यात्वा ।। तूष्णीमग्नौ धृताक्ताः समिधस्तिस्त्रः प्रक्षिपेत् ।। तत उपविश्य ।। प्रोक्षिण्युदकेनसपवित्रेणाग्निमीशानादि उदक्पर्यन्तं परिषिच्य ।। दक्षिणजान्वाच्य ।।

ब्रह्मणान्वारब्धः ।। यजमानेनान्वारब्धश्च समिद्धतमेग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् ।। तत्राधारावाज्य भागौ च कृत्वा अनन्तरं स्रुवावस्थित हुतशेषं घृतस्यप्रोक्षणीपात्रे-प्रक्षेप ।।

---

* कुशकण्डिका में कुश का प्रयोग प्रधान है, कुशास्तरण किया जाता है। कुश को वैदिक भाषा में दर्भ कहा गया है। यजमान और आचार्य दोनों कुशासन बिछाकर बैठें। हवन समिधाओं से करें। आचार्य और यजमान दर्भपवित्र पाणि लेकर कृत्य कराएँ और करें। कुशाओं का प्राणों से जो संबंध है उसका ज्ञान सौपर्णाख्यान (ऐ० ब्रा० २५–२८ ॥ शत० ३।२।४) में मिलता है। यज्ञ, हवन में दोनों अनामिका अंगुलियों में प्राण और अपान के प्रतिनिधि-स्वरूप दो दर्भ पवित्रों (पैंती) को ग्रहण किया जाता है (तै०ब्रा० ३।३।४।४)। कुशकण्डिका की आवश्यकता द्वितीय अध्याय में दे दी गई है।

प्राणमय कोषको उपलक्षित करके कुशकण्डिका में वर्हिशस्तरण (कुश बिछाना) किया जाता है। प्राणों की रक्षा के यिए दर्भमय आसन का उपयोग किया जाता है। —संपादक

कां० १९ सू० ५८ ब्रह्मा ऋषिः। यज्ञ। वहवोदेवताश्च। त्रिष्टुप्, २ पुरोऽनुष्टुप्। ३ चतुष्पदाति शाक्वरी। ५ भुरिक्। छन्दांसि ब्रह्मयज्ञे अग्नौ प्रथम, यज्ञात्पूर्व आज्य होमे विनियोगः। पञ्चेध्मदान से पूर्व की विधि में ग्राह्य है।

घृतस्य जूतिः समना सदेवासंवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नोनो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१

उपास्मान्प्राणो ह्वयतामुप वयंप्राणं हवामहे।
वर्चो जग्राह पृथिव्य १ न्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधुत्ता ॥२

वर्चसोद्यावा पृथिवीसंग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनुसंचरेम।
यशसं गावो गोपतिमुपतिष्ठन्त्यायतीर्यशोगृहीत्वापृथिवीमनुसंचरेम ॥३

व्रजंकृणुध्वं सहिवोनृपाणो वर्मासीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वं मायसीरधृष्टामावः सुस्रोच्चमसोदृंहतातम् ॥४

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं चवाचाश्रोत्रेण मनसा जुहोमि
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणादेवायन्तु सुमनस्यमानाः ॥५

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञियायेभ्यो हव्यं क्रियतेभागधेयम्।
इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्ययावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६

कां १९ सू० ४२ ब्रह्मा ऋषि। ब्रह्म देवता। अनुष्टुप्। २ त्र्यवसानाककुम्मति पथ्यापङ्क्तिः ३ त्रिष्टुप्। ४ जगती छन्दांसि पापमोचन ब्रह्मयज्ञे ब्रह्म अनुमन्त्रणे यज्ञोपस्थाने विनियोगः। एवंञ्चहव्यादाने इन्द्रस्तवने विनियोगः।

ब्रह्महोता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्यु ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्मयज्ञस्यतत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः शमिताय स्वाहा ॥२

अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः।
इदमिन्द्र प्रतिहव्यं गृभायसत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३

अं॒हो॒मुचं॑ वृष॒भं य॒ज्ञियानां वि॒राज॑न्तं प्रथ॒मम॑ध्व॒राणा॑म् ।
अ॒पां नपा॑तम॒श्विना॑ हुवे धियं इन्द्रि॒येण॑ त इन्द्रि॒यं द॑त्त॒मोजः ॥४

अंहोमुचादि से यज्ञ में हविर्ग्रहण करने को इन्द्रदेव से प्रार्थना करें ।†

अथहोमः

अग्नेरुत्तरभागे । ॐ (नमः) प्रजापतयेस्वाहा, प्रजापतयेइदन्नमम ।। अग्नेर्दक्षिणभागे ।। ॐ इन्द्रायस्वाहा, इन्द्रायेदन्नमम ।। इत्याधारौ ।। मध्येसमिध्यतमे ।। ॐ अग्नयेस्वाहा, अग्नये इदन्नमम ।। ॐ सोमायस्वाहा, सोमायेदन्नमम ।। इत्याज्यभागौ ।। अथाचार्य्यो अग्निं सम्पूज्य ।। ततः गणेशादिमण्डल स्थापितदेवानां हवनं कुर्यात्तथैवसर्वतोभद्र मण्डलस्थ देवानामपि कुर्यात् ।। ततो महाव्याहृति, वेदमाता गायत्रीं चजुहुयात् ।। ततोहुतशेषं हविर्द्रव्यं गृहीत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः स्विष्टकृद्धोमं कुर्यात् ।।

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये० ।। ततोभूराद्यानवा हुतय । ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये ।। ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे, ॐ स्वः स्वाहा इदमग्नि वायुसूर्येभ्यः ।। ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्यहेडोऽअवयासिसीष्ठाः ।। यजिष्ठोवन्हितमः शोशुचा नो विश्वाद्वेषांसिप्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नी वरुणाभ्याम् ।।

ॐ अयाश्चाग्नेस्य नभिशास्तिपाश्च सत्वमित्वमयाऽअसि ।

अयानो यज्ञं वहास्ययानोधेहि भेषजठं स्वाहा; इदं अयसेऽअग्नये । ॐ येतेशतं वरुणये सहस्रं यज्ञियापाशा विततामहान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्मुचन्तुः स्वर्काः स्वाहा, इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवेविश्वेभ्योदेवेभ्य मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च ।

(६१) पूर्णायुः । (अ० कां० १६ सू ६१ मं १)

१ ब्रह्मा । ब्राह्मणस्पतिः । विराट् पथ्याबृहती ।

त॒नूस्त॒न्वा॑ऽमे सहेद॒तः स॒र्वमायु॑रशीय ।
स्यो॒नं मे॑ सीद पु॒रुः पृ॑णस्व॒ पव॑मानः स्व॒र्गे ॥१॥

(६२) सर्वप्रियत्वम् ।

१ ब्रह्मा । ब्राह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

प्रि॒यं मा॑ कृणु दे॒वेषु॑ प्रि॒यं राज॑सु मा कृणु ।
प्रि॒यं सर्व॑स्य॒ पश्य॑त उ॒त शू॒द्र उ॒तार्ये॑ ॥१॥

---

† टिप्पणी :—यह श्रौतविधि है । श्रौताधान अर्थात् श्रौत अग्नि में ही होते हैं स्मार्त (गृह्याग्नि) का विधान पूर्वोल्लिखित है ।

(६३) आयुर्वर्धनम् ।

१ ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराडुपरिष्टाद् बृहती ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं* प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ।

(६४) दीर्घायुत्वम्

१-४ ब्रह्मा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु ॥१॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान वर्धय प्रजया च धनेन च ॥२॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥३॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याऽय ॥४॥

(६५) अवनम्

१ ब्रह्मा । जातवेदाः सूर्यश्च । जगती

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥१॥

* प्राण ही महावीर, एकवीर, (एको ह्येवैष वीरी यत्प्राणः जै० उ० ३।५।१) दशवीर (प्राणाः वैदशबीराः शत० ४।२।१।६) आदि अनेक नामों से विख्यात है। प्राण ही शरीरनाम मृत्पिण्ड को अर्चनीय बनाता है (प्राणे न हि एवस्मिन् लोके ऽमृतत्वमाप्नोति । शां० अ० ५।२।) प्राणरूपी अर्क (प्राणो वै अर्कः शत० १०।४।१।२३) की रश्मियों से सर्वत्र प्रकाश का अनुभव होता है। ऐसे वरिष्ठ, श्रेष्ठ, ओजिष्ट, मंहिष्ठ देव की उपासना से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। प्राण ही सब अंगों के रस हैं। प्राण के न रहने से जीवन नीरस, शुष्क हो जाता है। इसलिए अयुष्यवृद्धि के लिए अथर्ववेद के प्राण सूक्त (११।४), ब्रह्मचर्य सूक्त (११।५), स्कम्भ सूत्र (१०।७) और केन पार्ष्णी सूक्त (१०।२) का पारायण करने का विधान ऋषियों ने बताया है।

(६६) असुरक्षयणम्

१ ब्रह्मा । जातवेदाः सूर्यो वज्रश्च । अतिजगती ।

अयोजाला असुरामायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामिहरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिसपत्नान्प्रमृणन्पाहिवज्रः ॥१॥

(६७) दीर्घायुत्वम्

१-८ ब्रह्मा । सूर्यः । प्राजापत्या-गायत्री ।

पश्येमशरदः शतम् ॥१॥ जीवेमशरदः शतम् ॥२॥ बुध्येमशरदःशतम् ॥३॥
रोहेम शरदः शतम् ॥४॥ पूषेमशरदः शतम् ॥५॥ भवेमशरदः शतम् ॥६॥
भूयेमशरदः शतम् ॥७॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥८॥

(६८) वेदोक्तं कर्म ।

१ ब्रह्मा । कर्म । अनुष्टुप् ।

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१॥

(६९) आपः

१-४ ब्रह्मा । आपः । १ आसुर्यनुष्टुप्; २ साम्न्यनुष्टुप्: ३ आसुरीगायत्री; ४ साम्न्युष्णिक् (१-४ एकावसाना)

जीवास्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२॥
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३॥
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वं मायु र्जीव्यासम् ॥४॥

(७०) पूर्णायुः

१ ब्रह्मा । इन्द्र सूर्यादयः । त्रिपदागायत्री ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥

(७१) वेदमाता

१ ब्रह्मा । गायत्री । त्र्यवसाना पञ्चपदाऽतिजगती ।

मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तांपावमानी द्विजानाम् ।

प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।

(७२) परमात्मा

१ भृग्वङ्गिराः ब्रह्मा । परमात्मादेवाश्च । त्रिष्टुप्

स्तुता यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
आयुः कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१॥

प्रपाठक ३५ अनुवाक् ७ ॥ (अ० का १६, सू० ७२ मं० १)

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्य दवाधमे विमध्यम ठं० श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाय
ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये ॥ ॐ अग्नयेस्विष्ट कृतेस्वाहा
इदमग्नये स्विष्टकृते ॥

अथ वलिदानम् ॥

ॐ अद्यकृतस्य कर्मणः सांगता सिद्धयर्थे दिक्पाल पूर्वकं आदित्यादि ग्रहमण्डल स्थापित देवताभ्यो वलिदानञ्च करिष्ये ॥ पूर्वे ॥ ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रठं० हवे हवे सुहवठं० शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रंपुरहूतमिन्द्रठं० स्वस्तिनोमघवाध्धात्विन्द्रः ॥ इन्द्रायनमः सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पादिना सम्पूज्य सर्वत्र ॥ ॐ इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्त वलिं समर्पयामि ॥ भो इन्द्रदिशंरक्ष बलिभुङ्क्ष्वमम सकुटुम्बस्य अभ्युदयं कुरुआयुःकर्त्ता क्षेमकर्त्ता शान्तिकर्त्ता पुष्टिकर्त्ता तुष्टि कर्त्ता निर्विघ्नकर्त्ता वरदोभव ॥ अनेन वलिदानेन इन्द्रः प्रीयताम् ॥ अग्निकोणे ॥ ॐ त्वन्नोऽअग्ने तवदेवपायुभिर्मघोनो रक्षतन्वश्चवन्द्य । त्राता तोकस्य तनयेगवामस्यनिमेषठं० रक्षमाणस्तवव्रते ॥ अग्नये नमः ॥ अग्नये सा० ॥ भोअग्ने दिशं० दक्षिणेयमम् ॥ ॐ यमाय त्वांगिरस्वतेपितृमते स्वाहा । स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे ॥ यमायनमः । भोयम० ॥ नैऋत्यां ॥ ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छ सातऽइत्या नमोदेविनिऋते तुभ्यमस्तु ॥ निऋतयेनमः ॥ पश्चिमे ॥ ॐ तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ॥ अहेडमानो वरुणेहवोध्युरुशठं० समानऽआयुः प्रमोषीः ॥ वरुणायनमः ॥ वायव्यां ॥ ॐ आनोनियुद्भिः शतिनीभिरध्वरठं० सहस्त्रिणीभिरुपयाहियज्ञम् ॥ वायोऽअस्मिन्त्सवनेमादयस्वंयूयं पातस्वस्तिभिः सदानः ॥ वायवे० ॥ उत्तरे ॥ ॐ वयठं० सोमव्रतेतवमनस्तनूषुविभ्रतः ॥ प्रजावन्तः सचेमहि ॥ सोमाय ॥ ईशान्यां ॥ ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियं जिन्वमवसेहूमहेवयम् पूषानो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षितापायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ईश्वराय० ॥ पूर्वेशानयोर्मध्ये ॥ उर्ध्वे ॥ ॐ अस्मेरुद्रामेहनापर्वता सोवृत्रहत्येभरहूतौसजोषाः ॥ य; शठं० सतेस्तुवतेधायिवज्र इन्द्रो ज्येष्ठाऽअस्मांऽअवन्तुदेवाः ॥ व्रह्मणे० निऋति पश्चिमयोर्मध्ये अधोभागे ॥ ॐ स्योना पृथिविनो भवान्नृक्षरानिवेशनी ॥

यच्छानः शर्मसप्रथाः ।। अनन्ताय० ।। ततोग्रहवेदिसमीपे सूर्यादिग्रहाणांवलिः ।। ॐ आकृष्णेन रजसा० ।। सूर्यादिग्रहेभ्यः अधिदेवता, प्रत्यधिदेवतासहितेभ्यः साङ्गेभ्यसप० सश० इमंसदीपदधिभाषभक्त वलिं समर्पयामि ।। भोभोसूर्यादिदेवता दिशः रक्षत वलिभक्षतदीपं पश्यत ।। मम (यजमानस्य) सकुटुम्बस्याभ्युदयं कुरुत ।। आयुः कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारः निर्विघ्नकर्त्तारः वरदाभवत ।। अनेन वलिदानेन सूर्यादिग्रहाः प्रीयन्ताम् ।। ततो १६ मातृणामेकवलिं दद्यात् ।। ॐ समख्येदे व्याधिवासं दक्षिणयोरुचक्षसा ।। मामऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहन्तववीरम्बि देयतवदेविसंदृशि ।। गौर्यादिमातृभ्य इमं वलिं गृहीत मम (यजमानस्य) सकुटुम्बस्याभ्युदयंकुरुत आयुःकर्त्र्यः क्षेमकर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यः पुष्टिकर्त्र्यः निर्विघ्न कर्त्र्यः वरदाभवन्तु ।। वलिदानेनानेन गौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्ताम् ।।

अथ क्षेत्रपाल वलिदानविधिः ।।

एकस्मिन्वंश पात्रे कुशानास्तीर्य तदुपरिआहार चतुर्गुणं द्विगुणं दधिमाषभक्तं दध्योदनं जलपात्रं च निधाय हरिद्रा सिन्दूर कज्जल द्रव्य पताका दीपयुतं कृत्वा ।। ॐ अद्येत्यादि० सकलारिष्ट शान्तिपूर्वकं प्रारिप्सितस्य कर्मणः सांगतासिद्धचर्थं क्षेत्रपाल वलिदानं च करिष्ये ।। इति प्रतिज्ञा ।। अक्षतान्ग्रहीत्वा ।। ॐ नहि स्पृशमविदस्यन्यमस्माद्वैश्वानरापुर एतारमग्नेः ।। एमेनवृधन्नमृताऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्यायदेवाः । ॐ ह्रीं (क्षं) क्षेत्रपालायनमः ।। इति मंत्रेण यथोपचारैः सम्पूज्यध्यायेत् । ॐ नीलाञ्जनाद्रि निभमूर्ध्व पिशंगकेशम् । वृत्तोग्रलोचन मुदान्तगदाकपालम् ।। आशाम्वरभुजगभूषणमुग्र दंष्ट्रं । क्षेत्रेशमद्भुत तनुं प्रणमामिदेवम् ।।

प्रार्थना ।।

ॐ नमोक्षेत्रपालस्त्वंभूतप्रेतगणैः सह । पूजा वलिंगृहाणेमं सौम्योभवतुसर्वदा ।।
आयुरारोग्यं मे देहि निर्विघ्नं कुरु सर्वदा । अनेनपूजनेनक्षेत्रपालः प्रीयताम् ।।

ततो वलिदानम् ।।

ॐ क्षेत्रपाल महावाहो महाबलपराक्रम । क्षेत्राणांरक्षणार्थाय वलिंगृह्णनमोऽस्तुते ।। क्षं क्षेत्रपालाय साङ्गायभूतप्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी वेतालादिपरिवारयुतायसायुधाय सशक्तिकाय सवाहनायइमं सदीपदधिमाषभक्तवलिं समर्पयामि नमः भोभोक्षेत्रपालसर्वतो दिशं रक्षवलिंभक्षदीपंपश्यमम (यजमानस्य वा) सकुटुम्बस्यअभ्युदयं कुरु आयुः कर्त्ताक्षेम कर्त्ताशान्ति कर्त्तापुष्टिकर्त्तातुष्टिकर्त्तानिर्विघ्नकर्त्ता शुभदोवरदोभव । वलिदानेनानेन क्षेत्रपः प्रीयताम् । इदं वलिं अनवेक्षमाणेनदुर्ब्राह्मणेन नीत्वा चतुष्पथे निक्षिपेत् सयजमानो अपि तस्यपृष्ठतो द्वारपर्यन्तं जलंक्षिपेत् ।। इतिक्षेत्रपालवलिदानविधिः ।। हस्तौपादौप्रक्षाल्य आचम्य आसन उपविशेत् । वलिदानानन्तरं गणेशादीनां उत्तरपूजनं कुर्यात् ।।

अथ छायापात्र दानविधिः ।।

कांस्य पात्रे स्थितमाज्यं च आत्मरूपं निरीक्ष्यतु । ससुवर्णन्तुयोदद्यात्सर्वविघ्नो पशान्तये ।। मन्त्रः । ॐ रूपर्ठं० रूपं प्रतिरूपो वभूवतदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपऽएते युक्ताह्यस्य हरयः शतादोशात्यं वै हरयो यं दश च सहस्राणि वहूनिच

नन्तातदेतद्ब्रह्मपूर्वमनवाह्य जमनुः सर्वानुशासनम् ।। इत्याज्ये मुखमवलोक्य ।। संकल्पः ।। अद्येत्यादि० ।। ममैतच्छरीरावच्छिन्न समस्तपापक्षय सर्वग्रहपीड़ाशान्ति शरीरोत्थार्तिनाशाय प्रासाद वांछायुरारोग्यादि सर्वसौभाग्य प्राप्तयेच इदंस्वदेह छायावीक्षिताज्यपूरितकांस्यपात्रं ससुवर्ण (सदक्षिणाकं) विष्णु दैवतं अमुक गोत्राय अमुमशर्मणे ब्राह्मणायसुपूजिताय तुभ्यमहं संप्रददेनमम ।।

मन्त्रौ ।

ॐ या लक्ष्मीर्यच्चमेदौस्थ्य सर्वाङ्ग समुपस्थितम् ।
तत्सर्वं नाशयाज्यत्वं श्रियमायुश्च वर्द्धय ।।१।।
ॐ आज्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ।
आज्यपात्रप्रदानेन शान्तिरस्तुसदामम ।।२।।

रुद्रकल्पे वरण द्रव्याणि ।।

भोजनं भोजनाधारश्छत्रोपानत्कमण्डलुम् ।
आसनं वसनं मुद्रा कर्णभूषोपवीतकम् ।।
एतद्दशविधं देयं पदं वरण सिद्ध ये ।
पदाभावे त्रयं देयं पात्र वस्त्रांगुलीयकम् ।।१।।

अथकाम्य प्रयोगेषु शुभाऽशुभ ज्ञानार्थं शिवावलि विधानमाह ।।

ततः सायं समये देवतां सम्पूज्य आमिषान्नयथोपपन्नद्रव्य जलसहितपक्वान्नंपूजासामिग्रीञ्च श्मशानादिनिर्जने नीत्वा उदङ्मुखोभूत्वाप्राणानायम्यषडङ्गन्यासंकृत्वार्घं संस्थाप्यअर्घोदकं-गृहीत्वा ।। अद्येहे त्यादि० अमुकगोत्रोमुकराशि अमुकशर्माऽहं श्रीमच्चण्डिकाप्रीतयेशिवायाः पूजनंवलिदानञ्च करिष्ये ।। इति संकल्प्यः ।। मुक्तचिकुरउत्थायकालिकालीतिशिवाआहूयइष्ट देवतात्वेनभावयेत् ।। ॐ शिवायै नम इति सम्पूज्य ।। विन्दुत्रिकोणवृत्तचतुरस्थमण्डले वलिपात्रं निधायाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां धृत्वा ।। ॐ गृह्णदेवि ? महाभागे शिवे ? कालाग्निरूपिणि! ।। शुभाशुभफलोव्यक्तं ब्रूहि गृह्णवलिमम ।। इति ।। तद्देशात्किञ्चिदुपसृत्यतासुभोक्त्रीषुतिष्ठन्तीषु पुष्पचन्दन सहित पुष्पाञ्जलिमादायोत्थायस्वेष्टदेवताधियाप्रणम्यस्तोत्रंपठेत् ।। ॐ शिवारूपधरे देवि ? कालिकालि नमोऽस्तुते ।। उल्कामुखि ? ज्वलज्जिह्वे घोररूपेभृगालिनि ? । श्मशान वासिनि ? प्रेतशवमासप्रिये अनघे ? ।। श्मशानचारिणि ? शिवेफेरुजंम्बुकरूपिणी ? ।।२।। नमोऽस्तुतेमहामाये ? जगत्तारिणिकालिके ? ।। मातंगी कुक्कुटे ? रौद्रिकालि ? कालि ? नमोऽस्तुते ।।३।। सर्वसिद्धिप्रदेभीमेभयंकरिभयावहे ? प्रसन्नाभवदेवेशि ? ममभक्तस्य-कालिके ? ।।४।। संसारतारिणि ! जये ? जय सर्वसुखङ्करि ? विस्तृताविकरे ? चण्डि ? चामुण्डे ! मुण्डमालिनि ! ।।५।। संसारकारिणि ! शिवे सर्वसिद्धिप्रक्षच्छमे ।। दुर्गे ! किराति शवरि प्रेतासनगतेऽनघे ।।६।। अनुग्रहंकुरुसदाकृपयामांविलोकय ।। राज्यंप्रयच्छतिकरेवित्तमायुः

स्त्रियं शिवम् ।। शिवावलिविधानेनप्रसन्नाभवफेरवे ।। नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमोनमः ॥८॥ इति ततः तदुच्छिष्टंयथाकाकखराश्वप्रभृतयो दुष्टजनाभुजीरन् तथा रात्रावेवभूमौ निखन्य गृहमागत्य पुनर्देवतायै चन्दनपुष्पादीनिनिवेद्यविहितान्नजलंचद्वात्रिंशद्वारममिमंत्र्य देवतायै निवेद्य भोजनपानादि कुर्यादिति शिवावलिसमाप्तम् ।।

पूर्णाहुति होममन्त्राः

आहुति, तर्पण, मार्जन, क्षेत्रपाल वलिदान के उपरान्त सपत्नीक यजमान देशकालौ स्मृत्वा कृतस्य कर्मणः सांगतासिद्धयर्थं वसोर्धारासमन्वितं पूर्णाहुति होमं करिष्ये । संकल्प कर घी आज्याधिश्रयणमाज्योद्वासनमवेक्षणमुत्पवनं स्रुक्, स्रुवप्रतपनं सूत्रेण वेष्ठनं चतुर्गृहीतेनाज्यग्रहणं तदुपरिघृतप्लुत नारिकेलस्यनिधानं तस्यपूजनं च कृत्वा सपत्नीको यजमानगुरो र्दक्षिण स्कन्धं स्पृशन् जुहुयात् ।

ॐ समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ २ उदारदुपा, ᳪशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नामगुह्यं यदस्तिजिह्वादेवा नाममृतस्य नाभिः ॥१
वयन्नामप्रब्रवामघृतस्या स्मिन्यज्ञेधारयामानमोभिः ।
उपब्रह्माशृणवच्छस्यमानञ्चतुः शृंगोऽवमीद्गौर ऽएतत् ॥२
त्रिधाहितम्पणिभिर्गुह्यमानं गविदेवासोघृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्रऽएकꣳसूर्य ऽएकञ्जन व्वेनादेकꣳस्वधयानिष्टतक्षुः ॥३
चत्वारि शृंगात्रयो ऽअस्यपादा द्वेशीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य ।
त्रिधाबद्धोवृषभोरोरवीतिमहोदेवोमर्त्याँ आविवेश ॥४॥
एता ऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजारि पुणावचक्षे ।
घृतस्यधाराऽअभिचाकशीमिहिरण्ययोव्वेतसोमध्यऽआसाम् ॥५
सम्यक्स्रवन्तिसरितोनधेनाऽअन्तर्हृदामनसा पूयमानाः ।
एतेऽअर्षन्त्यूर्म्मयो घृतस्यमृगाऽइवक्षिपणोरीयमाणाः ॥६
सिन्धोरिव प्राध्वनेशूघनास्सो व्वातप्रमियऽपतयन्तिजिह्वाः ।
घृतस्यधाराऽअरुणो नव्वाजी काष्ठांभिन्दन्नूर्मिभिःपिन्वमानः ॥७
अभिप्रवन्त समनेव्वयोषाः कल्याण्यऽस्मयमानासोऽअग्निम् ।
घृतस्यधाराः समिधोनसन्तताजुषाणोहर्य्यति जातवेदाः ॥८

कन्याऽइवव्वहतुमेतवाऽउऽअञ्जाञ्जानाऽअभिचाकशीमि ।
यत्र सोम÷ सूयते यत्रयज्ञोघृतस्यधाराऽअभितत्पवन्ते ॥९
अभ्यर्षतसुष्टुतिङ्गव्यमाजिमस्मासुभद्राद्रविणा निधत्त ।
इमं यज्ञ न्नयतदेवतानोघृतस्यधारामधुमत्पवन्ते ॥१०
धामन्ते विश्वम्भुवनमधिश्रित मन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथेयऽआमृतस्तमस्याममधुमन्तं तऽऊर्म्मिम् ॥११
पुनस्त्वादित्या रुद्राव्वसवः समिन्धतामपुनर्ब्रह्माणोव्वसुनीथयज्ञैः ।
घृतेनत्वन्तन्वँ व्वर्धयस्वसत्याः संन्तुयजमानस्य कामा÷ ॥१२
सप्त तेऽअग्नेसमिध÷सप्तजिह्वाः सप्तऽऋषयः सप्तधामप्प्रियाणि ।
सप्तहोत्रा÷सप्तधात्वायजन्ति सप्तयोनी राप्टणस्वाघृतेनस्वाहा ॥१३
ॐ यस्योरुषु त्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षियान्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो विक्रमस्योरु क्षयायनस्कृधि ।
घृतंघृतयोनेपिवप्रप्रयज्ञपतिंतिर ॥७।२६।२७-३
पूर्णादर्व्विपरापतसुपूर्णापुनरापत ।
वस्नेवव्विक्रीणावहाऽइषमूर्ज्जᳬ शतक्रतो स्वाहा ॥१४

इदमग्ने वैश्वानरायवसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवेसप्तवतेऽग्नये अद्भ्यश्च नमम ।

॥ इति पूर्णाहुति मन्त्राः ॥

(शौनकीय) वसोर्धारामन्त्राः

अस्य कां० ५ सू० १५ विश्वामित्रः । ऋषिः । मधुलावनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ पुरस्ताद्बृहती, ५-७-८-९ भुरिकछन्दांसि ।

एकाचमे दशचमेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥१
द्वे चविंशतिश्चमे ऽपवक्तार ओषधे । ऋतजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥२
तिस्रश्च मेत्रिंशच्चमे ऽपवक्तार ओषधे । ऋतजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥३
चतस्रश्चमे चत्वारिंशच्चमे ऽपवक्तार ओषधे । ऋतजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥४

पञ्चचमेपञ्चाशच्चमे ऽपवुक्तारं ओषधे। ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥५
षट्चमेषष्टिश्चमे ऽपवुक्तारं ओषधे। ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥६
सप्तचमेसप्ततिश्चमे ऽपवुक्तारं ओषधे। ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥७
अष्टचमे ऽशीतिश्चमे ऽपवुक्तारं ओषधे। ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥८
नवचमेनवतिश्चमे ऽपवुक्तारं ओषधे। ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥९
दशचमेशतंचमे ऽपवुक्तारं ओषधे। ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥१०
शतंचमेसहस्रंचापवुक्तारं ओषधे। ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥११

वसोर्धारा में वंश द्वारा यज्ञ में घृत छोड़ते रहें इनसे उपस्थान करते रहे।

वसोर्द्धारामन्त्राणि

ॐ सप्ततें ऽअग्ने समिधं÷ सप्तजिह्वाः सप्तऽऋषंऽय सप्तधामंप्रियाणि।
सप्तहोत्राः÷ सप्तधात्वायजन्ति सप्तयोनीरापृणस्वघृतेन स्वाहा ॥१
शुक्र ज्योतिश्चचित्र ज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्चशक्रश्चऽऋतपाश्चात्यंठं० हाः ॥२
ईदृङ्चान्या दृङ्चसदृङ्चप्रति सदृङ्चमितश्चसम्मितश्चसभराः ॥३
ऋतश्चसत्यश्च ध्रुवश्चधरुणश्चधर्त्ताच विधर्ताचविधारयः ॥४
ऋतजिच्चसत्य जिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च अंतिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्चगुणः ॥५
ईदृक्षासऽएता दृक्षासऽऊषुणं÷ सदृक्षासः प्रति सदृक्षासऽएतनमितासश्चसम्मिता-
सोनोऽअद्यसभरसोमरुतोयज्ञेऽअस्मिन् ॥६
स्वतवांश्चप्रघासीचसान्तपनश्च गृहमेधीचक्रीडीचशाकीचोज्जेषी ॥७
इन्द्रन्दैवीर्विशोमरुतोनुवर्त्मानोभवन्यथेन्द्रन्दैवीर्विशोमरुतोनुवर्त्मानो
भवन् एवमिमं यजमानन्दैवीश्चविशोमानुषीश्चानुवर्त्मानोभवन्तु ॥८
इमठं० स्तनमूर्ज्जं स्वन्तन्धयापाम्प्रपीनमग्नेसरिरस्यमध्ये ॥
उत्सञ्जुषस्वमधुमन्तमन्र्वन्त्समुद्रियठं ऽसदनमाविशस्व ॥९
घृतम्मिमिक्षेघृतमस्ययोनि घृतेश्रितो घृतम्वस्यधाम।
अनुष्वधमावह मादयसस्व स्वाहा कृतं व्वृषभव्वक्षि हव्व्यम् ॥१०

॥ इति वसोर्धारा ॥

श्रद्धां मेधां यशः विद्यां पुष्टिं श्रियं बलम् ।
तेज आयुष्यमारोग्यं देहि मे हव्य वाहन ॥१॥
ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेरितिललाटे ॥ कश्यपस्यत्र्यायुषमितिग्रीवायाम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणांसे ॥ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषमिति हृदि ॥

संस्रवप्राशनम् । पवित्राभ्यां मार्ज्जनम् अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः ।

ब्रह्मणेपूर्णपात्रदानम् । तद्यथा-अद्यकृतैदमुकजपदशांशहोम कर्मप्रतिष्ठायांमिदंपूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणेतुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वतीतिप्रति वचनम् । ततो ब्रह्मग्रन्थि विमोकः । ततः प्रणीतोदकेन ।

ॐ सुमित्रियानऽआपऽओषधयः संत्विति ।

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तुभेषजमिति चयजमानमू । र्द्धानमभिषिञ्चति ।

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयंद्विष्म ।

इतिईशान्यां प्रणीतां न्युब्जी कुर्यात् । ततः आस्तरण क्रमेण वर्हिरुत्थाप्याज्येनाभिधार्य

ॐ देवागातु विदोगातुम्वित्वागातुमितमनसस्पतऽइमं देवयज्ञꣳ स्वाहावातेधाः स्वाहा ।

इतिमंत्रेणहस्तेनैव जुहुयात् । इस होम को पूर्णकर जल में जल देवता की पूजाकर होम के १/१० दशवें भाग के मंत्रसे दूध और जलमिला-मंत्र से ॥ ॐ अमुकं देवतां तर्पयामि । तर्पण करें। तर्पण के दशांश से मूलमंत्र से ॥ आत्मानमभिषिञ्चामि नमः, तदनन्तर पुत्र कामना वाले, समस्त रोग, उन्मादादि उत्पातों से संतप्त जनों के शिरपर अभिषेक करें तत्पश्चात् ग्रह देवताओं के कलशों के जलों को किसी पात्र में मिला दूव, पञ्चपल्लव, यव, कुशा से उत्तर को मुंह कर आचार्य बैठकर जापक, ऋत्विज, सपत्नीक यजमानादि को पूर्वाभि मुख विठाकर छींटे दें । अभिषेक में स्त्री वायें बैठे ।

यजमान का अभिषेक

ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्तानऽऊर्जेदधातनमहेरणाय चक्षसे ॥१॥
यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजय तेहनः उशतीरिवमातरः ॥२
तस्माऽअरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपोजनयथा चनः ॥३

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ठं० हवेहवेसुहव ठं० शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामिशक्रम्पुरुहूतमिन्द्र ठं० स्वस्तिनोमघवाधात्विन्द्रः ॥४
ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कंभसर्ज्जनीस्थो वरुणस्यऽऋतसदन्न्यसि
वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥५
भगप्प्रणेतर्ब्भग सत्यराधो भगमान्धियमुदव्वाददन्नः ।
भगप्प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भगप्प्रनृभिन्नृवन्त ÷ स्याम् ॥६
इदमापः प्रवहता वद्यञ्च मलञ्च यत्यच्चाभिदुद्रोहानृतय्यच्च शेपेऽअभीरुणम् ।
आपोमातस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु पुनंतुमादेवजनाः पुनन्तु मनसाधिय ÷ ॥
पुनंतुविश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहिमा ॥८
आप्यायस्वसमेतुते विश्वत ÷ सोमव्वृष्ण्यम् । भवावाजस्य सङ्गथे ॥९
पय ÷ पृथिव्याम्पयऽओषधीषुपयोदिव्यन्तरिक्षेपयोधाः ।
पयस्वतीऽप्रदिश ÷ सन्तु मह्यम् ॥१०
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनो र्बाहुभ्यांपूष्णो हस्ताभ्याम् ॥११
अश्विनोर्भैषज्ज्येनतेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि ॥१२
सरस्वत्यैभैषज्येन वीर्य्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्र
स्येन्द्रियेणवलायश्रियैयशसेभिषिञ्चामि ॥१३
पालाशंभवति तेन ब्राह्मणेभिषिञ्चति ब्रह्मवैपालाशोब्रह्मणैवैनमेतदभिषिञ्चति ॥१४
सर्वेषांवाऽएष वेदानाठंरसोयत्सामसर्वेषामेवैनमेतद्वेदानाठंरसेनाभिषिञ्चति॥१५
यद्वेकल्या अहोतिप्राणा वैकल्पाऽअमृतमुपवैप्राणऽअमृतेनैवैनमेतदभिषिञ्चति ॥१६
दीर्घायुत्वाय बलायवर्चसे सुप्रजास्त्वायसहसाऽअथोजीवशरदः शतम् ॥१७
द्यौःशान्तिरन्तरिक्षठं० शान्ति ÷ पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयःशान्ति ÷
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाःशान्तिः सर्वठं० शान्तिः शान्तिरेवशान्ति ÷
सामाशान्तिरेधि ॥१८

पौराणिक मन्त्राः

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथस्तथासंकर्षणोविभुः ॥१
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयायते। आखण्डलोग्निभगवान्यमो वैनिऋृतिस्तथा ॥२
वरुणः पवनश्चैवधनाध्यक्षस्तथाशिवः। ब्रह्मणासहितासर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥३
कीर्तिलक्ष्मीर्धृतिर्मेधापुष्टि श्रद्धाक्रियामतिः। बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिस्तु मातर ॥४
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तुदेवपत्न्यः समागताः। आदित्यश्चन्द्रमाभौमो बुध जीवसितार्कजाः॥५
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्चतर्पिताः। देवदानवगन्धर्वाः यक्षराक्षसपन्नगाः ॥६
ऋषयोमुनयोगावोदेवमातरएवच। देवपत्न्यो द्रुमानागा दैत्याश्चाप्सरसांगणाः ॥७
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानोवाहनानि च। औषधानि चरत्नानिकालस्यावयवाश्च ये ॥८
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः। एते त्वामभिषिञ्चन्तुसर्वकामार्थसिद्धये ॥६
आदित्या वसवोरुद्राविश्वेदेवामरुद्गणाः। अभिषिञ्चन्तुतेसर्वेधर्मकामार्थ सिद्धये ॥१०
अमृताभिषेकोऽस्तु ॥

अवभृथस्नानम्

अभिषेक के उपरान्त सर्वौषधि सुगन्धित इत्र तैल के साथ; स्त्री-पुरुष शरीर पर मलें शुद्ध जल से स्नान करें, अपने स्नान के समस्त वस्त्रों को त्याग कर श्वेतवस्त्रमाला चन्दन आदि धारण कर सपत्नीक यजमान अपने आसनों पर बैठें आचमन करें घी में मुंह की छाया को देखें। मंत्र—

ॐ रूपेणवो रूपमभ्यागान्तुथोवौ विश्ववेदाविभजतु ऋतस्यपथाप्रेतश्चन्द्र दक्षिणा विस्वऽपश्यव्यन्तरिक्षं यतस्वसदस्यैः ॥१॥ रूपठं० रूपम्प्रतिरूपो बभूवतदस्यरूपम्प्रति चक्षणाय इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपं ईयतेयुक्ताह्यस्य हरयःशतादशेत्यय वैहरयौयं वे दशचसहस्राणिबहूनिचनन्तातद् तद्ब्रह्म पूर्वमनमवाह्यजमनुः सर्वानुशासनम् ॥२॥

देशकाल का स्मरण कर-ममायुरारोग्यप्राप्तये स सुवर्णमिदमाज्यपात्रममुक गोत्राय अमुक शर्मणे ब्राह्मणायतुभ्यमहं संप्रददे। किसी ब्राह्मण को दान कर दें।

ब्राह्मण भोजन संकल्प

कृतस्य कर्मण, साङ्गतासिद्धयर्थममुक संख्याकब्राह्मणान् भोजयिष्ये।

समस्त-ऋत्विजों, ब्राह्मण आचार्य को दक्षिणा दें। आचार्य को दुगुण दें। सब आशीर्वाद दें।

आशीर्वाद

ॐ श्रीवर्चस्यमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानम्महीयतेधान्यंधनंपशुंवहुपुत्र लाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥१॥

पुन स्त्वादित्यारुद्रावसवऽ समिन्धताम्पुनब्र्ह्माणो वसुनीथयज्ञैः । घृतेनत्वन्तन्वं वर्द्धयस्वसत्याः संन्तुयजमानस्य कामाः ॥२॥

ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः स्वस्तिनस्ताःक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥३॥

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथा । शत्रूणांबुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणा-मुदयस्तव ॥४॥

पूर्णाहुतिः प्रायश्चित होम के उपरान्त आवाहित समस्त पीठस्थ देवों, ऋषियों, पितृगणों, तथा यज्ञपति, यज्ञ अग्निदेव आदि की उत्तर पूजा, आर्ती ।

आत्मसमर्पण

कां० ५ सूक्त २६ ब्रह्मा ऋषि-वास्तोष्पति देवता-द्विपदार्षी उष्णिक छन्दः यज्ञकर्मान्ते यज्ञादिदेवपूजने-आत्मसमर्पणे च विनियोगः ।

यजूंषियज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिहवोयुनक्तु ॥१॥

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन्यज्ञेमहिषः स्वाहा ॥२॥

इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन्यज्ञेप्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३॥

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नी भिर्वहतेह युक्ताः ॥४॥

छन्दांसि यज्ञेमरुतः स्वाहामातेवपुत्रंपिपृतेह युक्ताः ॥५॥

एयमगन्बर्हिषा प्रोक्षणी भिर्यज्ञंतन्वानादितिः स्वाहा ॥६॥

विष्णुर्युनक्तु बहुधातपांस्य स्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥७॥

भगो युनक्त्वाशिषो न्व१ स्मा अस्मिन्यज्ञेप्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥८॥

सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥९॥

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥१०॥

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ बषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ॥११॥

बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयंस्वऽरिदं यजमानाय स्वाहा ॥१२॥

पत्रपुष्पादि से पूजन आर्ती करके वर की निम्नप्रकार याचना करें और तदुपरान्त देव विसर्जन करें ।

वरयाचना

कां० ७ सू० ९७ अथर्वा ऋषिः। इन्द्राग्निः। देवते। त्रिष्टुपादि छन्दांसि यज्ञान्ते वर अभियाचने देवविसर्जने च विनियोगः।

यदुद्य त्वांप्रयुति युज्ञे अुस्मिन्होतांश्चिकित्वुन्नवृंणीमहीह।
ध्रुवमयो ध्रुवमुताशंविष्ठ प्रविद्वान्युज्ञमुपंयाहि सोमंम् ॥१॥
समिन्द्र नो मनंसानेषुगोभिः सं सूरिभिर्हरिवुन्त्सं स्वुस्त्या।
सं ब्रह्मणादेवहितुं यदस्तिसं देवानां सुमुतौयुज्ञियांनाम् ॥२॥
यानावह उशुतोदेवदेवांस्तान्प्रेरंयु स्वे अंग्ने सुधस्थे।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धंत्त वसवो वसूंनि ॥३॥

इस भाँति वर याचना कर विसर्जन करें।

विसर्जन

सुगावो देवाः सदंना अकर्मु य आंजुग्मसवंनेमा जुषाणाः।
वहंमाना भरंमाणाः स्वा वसूंनि वसुं घर्मंदिवुमारोहतानु ॥४॥
यज्ञं युज्ञंगच्छ युज्ञपतिंगच्छ। स्वांयोनिं गच्छ स्वाहा ॥५॥
एष ते युज्ञो यंज्ञपते सहसूक्तवाकः। सुवीर्युः स्वाहा ॥६॥
वषंड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः। देवांगातुविदोगातुं वित्त्वागातुमित ॥७॥

यज्ञमान द्वारा (आचार्य-ऋत्विजों के प्रति विनम्र।

आत्म समर्पण

मनंसस्पत इमं नो दिवि देवेषु युज्ञम्।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वातेंधां स्वाहा ॥८॥

यज्ञान्त चरु पुरोडाश (अवशेष) अभिमन्त्रित कर प्रथम आचार्य ऋत्विज लें, यजमान को तदभीष्टकामनार्थं अभिमन्त्रित कर दें। यजमान स्वयं भक्षणकर पत्नि को दें, वह बिना किसी अन्य के दृष्टिपात से सुरक्षित प्रणाम कर पान (भक्षण) करें।

तत्पश्चाद्देवताग्निविसर्जन करें।

यान्तु देवगणाः सर्वेस्वशक्त्या पूजितामया। इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥१
ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पतेदेवयन्तंस्त्वेमहेउपप्रयंन्तुमुरुतः सुदानवऽइन्द्रप्राशूर्भवासचा ॥२
उमान्तिकेगणपतिर्ब्रह्माण्डे ब्रह्मगच्छतु। वैकुण्ठेभगवान्विष्णुः कैलाशे च महेश्वर ॥३

लक्ष्मीर्विष्णुसमीपेच कलशश्चै वसागरे । पन्नगायान्तुपातालेकाश्मीरे च सरस्वती ।।४
स्वात्मपीठेषुयोगिन्यः क्षेत्रपालोमहावलः । वेदाश्चब्रह्मणः पार्श्वेमातरोमातृमण्डले ।।५
रविकलिङ्गं यमुनां च चन्द्रमा भौमोह्यवन्तींशशिजश्च कोशलान् । सिन्धुंगुरुर्भोजकटं भृगुश्चमन्दसुराष्ट्रंपवनं चराहुः । केतुर्गिरींशक्रमुखाश्च देवाः स्वांस्वांपुरीं यान्तु यथाक्रमेण ।।६

ब्रह्मोर्द्धतां नागपतिस्तथाऽधोयाम्यामगस्त्योध्रुवउत्तरां च । सप्तर्षयो राशिमयोगपक्ष गन्धर्वायक्षा गिरयो नदाश्च । स्थानानिगच्छन्तुयथासमायुर्ह्याशीश्च सन्तानसुखं प्रदद्यु ।।७

गच्छगच्छसुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर । यत्रब्रह्मादयोदेवास्तत्रगच्छ हुताशनः ।।१
ॐ यज्ञंयज्ञंगच्छयज्ञपतिंगच्छ स्वांयोनिंगच्छ स्वाहा । एषत यज्ञोयज्ञपते सहसूक्त वाकुऽ सर्व्व वीरस्तज्जु षस्व स्वाहा ।।२

यज्ञ नारायण स्वस्थाने गच्छ । आवाहितदेवताः स्वस्वस्थानानि गच्छत ।।३

देवताओं को विदाकर यज्ञ के उपकरण ऋत्विजों को दान दें गुरु, आचार्य, कुल, ग्राम वृद्धों की पूजाकर अञ्जलि बना प्रार्थना करें।

प्रार्थना

मैंने अमुक देवता मन्त्रपुरश्चरणनाम यज्ञ कर्म, जो काल, भक्ति, श्रद्धा, द्रव्य भाव निष्ठा-विनय हीन किया, अथवा ज्ञात, अज्ञात, मुझसे, मेरे प्रियजन, शुभचिन्तक आदि से अपराध इस यज्ञ में हुए हों वे सब, आपब्राह्मणों, गुरुजनों के आशीर्वादों से श्री सूर्यादि आवाहित देवताओं की कृपा से सर्वप्रकार पूर्ण हो । ब्राह्मण आशीर्वाद दें ।

"अस्तु परिपूर्णम्" तीनवार ब्राह्मण कहैं। मार्जन मंत्र के दशांश या यथाशक्ति ब्राह्मणों को रुचिकर पवित्र प्रसाद से भोजन करा, दक्षिणा आदि दें । निम्न आशीर्वाद कर्म के प्रारम्भ व अन्त का है।*

ॐ धर्मतपाम्यमृतस्य धारयादेवेभ्यो हव्यं परिदां सवित्रे ।
शुक्रं देवाः शृतम् अदन्तु हव्यम्, आसञ्जुह्वानम् अमृतस्ययोनौ ।।१।।
ॐ देवानाम् अधिपा एति धर्म ऋतेन भ्राजन्नमृतं विचष्टे ।
हिरण्य वर्णो नभसोदेव सूर्यो धर्मो भ्राजन् दिवो अन्ताम् पर्येषि विद्युता ।।२।।
ॐ वैश्वानरः समुद्रं पर्येति शुक्रो धर्मो भ्राजन् तेजसा रोचमानः ।
नुदञ्ा छत्रून् प्रदहन् मे सपत्नान् आदित्यो द्याम अध्यरुक्षद् विपश्चित् ।।३।।

ॐ विद्योततेद्योतत् आचद्योतत् अप्स्वन्तरममृतो धर्म उद्यन् ।
हन्तावृत्रस्य हरिताम् अनीकम् अनाधृष्टास्तन्वः सूर्यस्व ॥४॥

ॐ धर्मपश्चाद् उत्धर्म पुरस्तात् अयो दंष्ट्राय द्विषतोऽपि दध्मः ।
वैश्वानरः शीतरूरे वसानः सपत्नान् मे द्विषतो हन्तु सर्वान् ॥५॥

ॐ ऋतून ऋतुभिः श्रपयति ब्रह्मणैक वीरोधर्मः शुचानः समिधा समिद्धः ।
ब्रह्मत्वा तपतिब्रह्मणा तेजसा च धर्मः साहस्रः समिधा समिद्धः
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु ॥६॥

ॐ सपत्नान् सर्वान् मे सूर्यो हन्तु वैश्वानरो हरिः ।
धर्मस्तप्तप्रदहतु भ्रातृव्यान् द्विषतो वृषा उद्यन् शुक्र आदित्योविमृधोहन्तु सूर्यः ॥७॥

ॐ इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावा पृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशोमेभवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु (१९।१४-१ अथर्व)

ॐ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । पितृ कृतस्य मनुष्य कृतस्य आत्म कृतस्या ऽऽना ज्ञाता ज्ञातकृतस्य यद्वो देवाश्चकृम जिह्वयागुरुमनसो वा प्रयुतीति देवहेडनम् । अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्स्तदेनो वसवो निधेतन ।*

ॐ यस्य स्मृत्या चनामोक्त्या तपः पूजा क्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतांयाति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१॥ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषुयत् । स्मरणादेव तद्विष्णो सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥२॥ ॐ विष्णवे नमो विष्णवे नमः ।

ऐसी प्रार्थना कर परिवारी-प्रियजनों के साथ स्वयं भी भोजन करें। मङ्गलगान, वाजे आदि के साथ सभी मङ्गलध्वनि के साथ यज्ञ भगवान को अपनी श्रद्धा भक्ति समर्पित कर कृपापात्र बनें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तुमाकश्चिद्दुःख भाग्भवेत ॥

पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः ।
पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपाप हरोहरिः ॥१॥

न त्वहं कामये राज्यं न चापि पुनर्भवम् ।
कामये दुःख तप्तानां, केवलमार्ति नाशनम् ॥२॥

अनायासेनमरणं विनादैन्येन जीवनम् ।
देहान्तेतवसान्निध्यं देहिमे परमेश्वर ॥३॥

समर्पणं तवचरणाम्भोजे समर्पणंमातुरनीश्वरी
समर्पणंजगतां तात मात भ्रात पितुष्पिता ।

---

* टिप्पणी :—१ यहां से २ पर्यन्त सभी यज्ञों तथा पुत्रेष्टि में अनिवार्यतः प्रारम्भ में अपराध जनित पापावमोचनार्थस्तुत्य है।

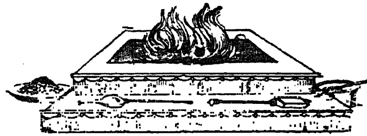
समर्पणं जगदाधारं समर्पणं गुरु धर्मेरितान्
सर्मपितं स्वीकुर्युः जगदानन्द कर प्रभो ।।४।।

इति श्री आनन्दकन्द मुकुन्दपदरज मण्डित ब्रजमण्डलान्तर्गत लोहई निकाय वास्तव्यानां शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनशाखाध्यायिनां कातीय सूत्रीयत्रिप्रवरीय वशिष्ठ गोत्रोद्भवानां ब्रह्मवर्चस्विनाम् श्रीमदारामीरामशर्मणाम् प्रपौत्रेण गोकलविन्दोपासकानां शान्तदानाद्विज वराणां श्रीमद्धूरेलालशर्मणामात्मजेन विविध विद्याविद्योति तनाः करणानां पदवाक्य प्रमाण तत्त्वज्ञानांवेद विद्या ज्ञानप्रदायिनां श्रीमच्छंकरचरणचञ्चरीकानां गुरुवर्याणाम् श्रीमद्विजय प्रकाशाचार्याणाम् श्रीमद्भीष्मदत्तवेदपाठिनाञ्चान्तेवासिना सर्वतंत्र स्वतंत्रेण वृन्दावन विहारिणांपादाम्बुज समुपासकेन श्रीमद्राधागोपाल विद्वद्वराणांचरणचञ्चरीकेन श्रीकेशवदेव शास्त्रिणा विरचितः कर्मजव्याधि भैषज्यविज्ञानस्य तृतीयोऽध्यायः ।। (सम्पादक)

।। पूर्णमिदम् ।।

इति श्री कर्मज-व्याधिनिरोध-ग्रन्थस्य त्रतीयोऽध्याय ।

नोट :—यह यज्ञीय विधि आगे के सभी कार्यों में विहित है आगे के पृथक् २ प्रकरणों या कार्यों के प्रधान देवताओं का आवाहनादि तथा तत्कर्मों के अभीष्टफल के विनियोगों में ही अन्तर होगा । जहाँ अवमार्जन होगा वहाँ आज्यतन्त्र नहीं, जहाँ आज्यतन्त्र होगा वहाँ अवमार्जन (झाड़ा) नहीं होगा ।



जल अभिमन्त्रणादि प्रथमखण्ड

चतुर्थ अध्याय

जलाभिमन्त्रण प्रकरण

वेदों में सिद्धि-साधना संबंधी चमत्कार सूचक अनेक साधन और प्रयोग मिलते हैं, किन्तु अथर्ववेद तो सिद्धि चमत्कार विषय से परिपूर्ण वेद है। इसमें विविध प्रकार के आश्चर्यजनक विधान मिलते हैं। जैसे—हाथ से स्पर्श करने मात्र से भयंकर असाध्य रोगों का निवारण (४–१३), विष निवारण करना (४.७, ७.५६), दिव्य दृष्टिप्राप्त करना (४.२०), सर्पविष निवारण (५.१३, ६.१२, १०.४), मारण प्रयोगों का निवारण (५.१४, ५.३१), शाप देनेवाले के विनाश के लिए (६.३७), प्रतिसरणमणि धारण करने मात्र से कार्य सिद्धि (१०.६), कृत्या प्रयोगों के निवारण के लिए (१०.१)।

अथर्ववेद के एकादश काण्ड के चौथे सूक्त में प्राणविद्या अथवा प्राणायाम विद्या की महिमा बताई गई है और दशवें काण्ड में प्राण-साधना और उसकी सिद्धि बतलाई गई है।

अथर्वसंहिता के मंत्रों की अनुक्रमणी बनाने के लिए कौशिकसूत्र में गणपद्धति अपनाई गई है। इन्हीं गणों के आधार पर आचार्य केशवदेवजी ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना बहुजनहिताय की है संक्षेपत: विषय क्रम इस प्रकार है—

१—भूतावेश को दूर करने के लिए और व्याधियों के विनाश के लिए भैषज्य प्रकरण है। इस प्रकरण में भारत की प्राचीन औषधी पद्धति पूर्णतया प्रस्तुत हुई है। व्याधियों की चिकित्सा के लिए साधर्म्य सिद्धान्त और संसर्ग सिद्धान्त दोनों के प्रयोग दिए गए हैं। जैसे **प्रतीकात्मक प्रयोग, जलप्रयोग,** औषधिप्रयोग, **रक्षाकरण्ड प्रयोग।**

प्रतीकात्मक प्रयोग में पाण्डुरोग दूरकरने के लिए उसका हरितवर्ण के जन्तुओं में और सूर्य में समावेश कराया जाता है। औषधि प्रयोग विभिन्न रोगों के दूरकरने में किया गया है। जैसे तक्मज्वर (१,२५, ५-४, ६-२०, ७-११६, १९-३६), जलोदर (१-१०, ६-२४, ७-८३), आस्राव (१-२, २-३, ६-४४), क्षेत्रिय रोग (२-८, १०, ३-७), विष (५-१३, १६, ६-१२, ७-५६, ८८) कृमि (२, ३१, ३२, ५-३३), उन्माद (६-१११), व्रण, अस्थिभंग आदि (४-१२, ५-५) आदि रोगों की चिकित्सा के लिए औषधियाँ बताई गई हैं। कहीं कहीं सभी प्रकार के रोगों के शमन के लिए विशिष्ट पदार्थों का निर्देश किया गया है जैसे जल और वनस्पति (६-२५, ६-९१, ६-९५, १९-४४) इन मंत्रों में वरणवृक्ष, अश्वत्थवृक्ष का तथा यव और जल का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार की औषधियों को पहले देवताओं का आवाहन किया जाता है, रोग निवारण के लिए प्रार्थना की जाती है तब उनका प्रयोग किया जाता है।

२–आयुष्य प्रयोग दीर्घायुष्य के लिए, सुस्वास्थ्य के लिए जो आथर्वण मंत्र है उनको आयुष्यगण के अन्तर्गत रखागया है कौशिक सूत्र में इन मंत्रों के प्रयोग चूडाकर्म, गोदान, उपनयन आदि विभिन्न पवित्र संस्कारों के लिए भी किए गए हैं। आयु, बल, वीर्य, वर्चस्व, यश, कीर्ति को बढ़ाने वाले मंत्र (२-२८, ३-११, ४-६-१०, ५-३०, ७-५३, ८-१, १६-२६) मिलते हैं। इन्हीं मंत्रों की प्रयोग विधि इस ग्रन्थ में विभिन्न गणों और प्रयोजनों में दी गई है।

वेद मंत्र में अग्निप्रधान देवता है। वह आयुस्वरूप है। आरोग्य वृद्धि और मृत्यु निवारण के लिए रक्षासूत्रों का महत्त्व अथर्व वेद में वर्णित है। जैसे–दाक्षायणः सुवर्णस्य रक्षासूत्रं शतानीकं प्रत्यबन्धात् (१, ३५), अञ्जनमणे ! प्रयोगः (४-६, १६-४४-४५) मौक्तिकस्य शुक्तेश्च सम्प्रयोगः (४-१०)।

३–भूत, प्रेत, पिशाच और शत्रु के विरुद्ध किये जाने वाले प्रयोग अभिचारिक या कृत्याप्रतिहारक कहे जाते हैं। इस वर्ग में वे सभी मंत्र अन्तर्भूत हैं जो प्रति द्वन्दिता-सूचक हैं। जैसे—दैत्यैर्ग्रहणम् (वर्ग १), राजकर्माणि (वर्ग ६), स्वसन्तापकं प्रति ब्राह्मणानामभिशापः (वर्ग ७), स्त्रीणां प्रतिद्वन्दिता (वर्ग ४) तथा महोच्चैः पदस्य प्राप्तिः (वर्ग ५)।

अभिचार विषयक मंत्रों में देवी, देवताओं का आवाहन किया जाता है जिससे वे भूतों, प्रेतों और शत्रुओं का संहार कर सकें। २-१४, ३-६, ५-७-८–२८-२६, ६-२-३४, ७-११०)। ऐसे प्रयोगों में रक्षासूत्र और वनस्पत्तियाँ अभीष्ट सिद्धि प्रदान करती हैं।

४–स्त्रीवशीकरण–'स्त्रीकर्माणि' गण में स्त्रीवशीकरण प्रयोग बताए गए हैं। स्त्रीवशीकरण के विविध प्रयोग अथर्ववेद में जितने हैं, उतने किसी और वेद में नहीं हैं। स्त्रीवशीकरण प्रयोग दो प्रकार के होते हैं। पहला तो विवाह से लेकर गर्भधारण और प्रसव से सम्बद्ध। दूसरा सौतों को वश करने, उन्हें नष्ट करने से संबंधित है। और प्रेमी-प्रेमिकाओं को सम्मोहित करने से सम्बन्धित है। इस गण में ऐसे भी प्रयोग हैं जिनके कारण पुरुषों को नपुंसक और स्त्रियों को दुर्भगा बनाया जा सकता है (६-१३, ७-६०, १-१४)।

५–सौमनस्यानि—सौमनस्य प्रकरण के अन्तर्गत चित्त, हृदय और मनको अपने अधीन करने, अपने प्रभाव में रखने के मंत्र प्रयोग हैं। किन्तु इस प्रकार के मंत्रों को चौथे वर्ग के प्रयोगों से भिन्न नहीं समझा जा सकता है। जैसे १–३४ मन्त्र का प्रयोग स्त्री-पुरुष में परस्पर अनुराग बढ़ाने के लिए सभी प्रभाव कायम करने के लिए किया जाता है। ऋग्विधान में तो १-२-५, २-३५-२, १,६,३; २१-४ स्थलों में 'हृद्यसंवननवशीकरण' शब्दों के प्रयोग उभयविध मन्त्रों के लिए हैं। ये मंत्र किसी परिवार के सदस्यों में सुमति कायम करने के लिए (३–३०), क्रोध शान्त करने के लिए, दुर्भाव और कलह दूर करने के लिए (६–४२–४३; ६४,७३,७४; ७,५२) सभा में धाक जमाने के लिए (७-१२), शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करने के लिए (२-२७), किसी को अपनी इच्छा के अधीन करने के लिए (६-६४) प्रयुक्त होते हैं।

६–राजकर्माणि गण में राज्य से सम्बन्धित क्रिया विधिओं का उल्लेख है। इस गण में निम्नांकित विषयों का समावेश है—राज्याभिषेक (४–८), राजा का निर्वाचन (३–४)। निर्वासित राजा को पुनः सिंहासनारूढ़ करना (३-३), अन्य राजाओं के ऊपर आधिपत्य

स्थापित करना (४-२२), राज्यशक्ति को सुदृढ़ करना (३-५) ओज और प्रभाव को बढ़ाना (६-३८), यशवृद्धि (६-३९), संग्राम में विजय प्राप्त करना (१-१९, ३-१, ३-२, ५-२०-२१, ६-९७,९९, ८-८; ११,९,१०)।

७-ब्राह्मणों के हित के लिए प्रार्थना और अभिशाप-इस गण में जो प्रार्थना मंत्र हैं वे सब श्रुतशास्त्र को धारण करने के लिए हैं (१-१)। और प्रायश्चित्त के लिए हैं।

८-शान्ति कर्म-ऐश्वर्य प्राप्त करने तथा विपत्ति निवारण के लिए इस गण में मंत्र प्रयोग हैं। जैसे ऐश्वर्यप्राप्ति, सन्ततिलाभ, पशुप्राप्ति, गृह, क्षेत्र, नदी, वर्षा, वार्ता, व्यापार, यात्रा, सर्पभयनिवृत्ति, बाधाप्रशमन, दुर्दृष्टि आदि। इस प्रकार के मन्त्रों में अभिलषित वस्तु की प्राप्ति, सर्पों से, विपत्तियों से रक्षार्थ प्रार्थना है समृद्धि के लिए देवताओं का आवाहन और दुर्वृष्टि-निवारण के लिए, यहीं पर जल के लिए भी मन्त्र हैं।

९-प्रायश्चित्तानि-इस गण में निहित मंत्र कृत्या को दूर करने के लिए, पापनिवारण के लिए, मलिन बनाने वाले कृत्या-प्रयोगों के विशोधन के लिए हैं। इस गण में यज्ञ में होने वाली त्रुटियों, मानसिक अपराधों, दुष्कृत्यों, दुःस्वप्नों दुराचरणों के विषय में शान्ति विधान है। ६-११४-४५, ११५,२६,२७,११२,४६; ७-११५)

१०-सृष्टिक्रम, अध्यात्म-इस वर्ग में सृष्टिक्रम बताने वाले तथा अध्यात्म संबंधी मंत्र हैं।

इनके अतिरिक्त वर्ग ११,१२,१३,१४ में क्रम से संस्कार सम्बन्धी, व्यक्तिगत उद्देश्य तथा कुन्ताप मंत्र हैं।

इस चतुर्थ अध्याय के प्रथमखण्ड में अम्बादिगण, अपांगण और पिप्पलादिगण में पठित सर्वकामार्थ परिभाषा का विवेचन किया गया है। इस विवेचन में कर्मजव्याधियों को दूर करने के लिए १ निशाकर्म, २ बाजीकरण, ३ भैषज्य, ४ कार्यसिद्धि विधान, ५ शान्तिवारि विधान, ६ कार्यसिद्धि परीक्षा ७ वन्ध्या प्रजनन, ८ क्षेत्रियदोष निवारण, ९ मृत अपत्यदोष, निवारण, १० शत्रुविनाशन, ११ अभय प्राप्ति, १२ प्रतिवेदन, १३ पतिवरण, १४ पत्नी प्राप्ति, १५ ईर्ष्या विनाशन, १६ अलक्ष्मी विनाशन के प्रयोग और उनके विधान बताए गए हैं।

अथर्ववेद में कर्मजव्याधि को दूर करने के लिए जो कृत्य बताए गए हैं उनके मूल में अभिचार कर्म और कृत्या निवारण ही है। क्योंकि कर्मजव्याधियाँ टोना, टोटका, अभिचार कर्मों तथा भूतों, प्रेतों, पिशाचों के प्रभाव और शाप आदि से ही उत्पन्न हुआ करता है। ऐसी व्याधियों के निवारण के लिए चिकित्सकों की अपेक्षा आथर्वण विद्वान् ही उपयुक्त होते हैं। रोगों के निवारण के लिए देवों का आवाहन किया जाता है। विभिन्न व्याधियों के शमन के लिए विभिन्न देवों का आवाहन किया जाता है। जैसे तक्मन (ज्वर) को दूर करने के लिए अग्नि, सोम, वरुण और आदित्य का आवाहन किया जाता है। इसके उपचार में पीतल के बरतन में रखे हुए काले धान के लाजा (लावा) को रोगी के सिर से अग्नि में हवन किया जाता है। (कौ० सूत्र २९,१८)। क्षत्र, कुष्ठ आदि क्षेत्रिय रोगों को दूर करने के लिए जो प्रयोग किया जाता है उसमें अथर्ववेद (२,१०) के सूक्त का पाठ करते हुए रोगी के

रोगग्रस्त अंग को काम्पील (लकड़ी) के खण्डों से बांधकर और उसे चौराहे पर लाकर दूर्वा के गुच्छे से उसके शरीर का मार्जन जल से किया जाता है। क्षेत्रिय रोग तभी उत्पन्न होते हैं जब पाप देवता निर्ऋति का प्रकोप होता है या बहिनशाप देती है या गुरुद्रोह किया जाता है अथवा वरुणदेव का प्रकोप होता है।

अथर्ववेद में अभिचार या यातुविद्या का जो वर्णन है उसके प्रवर्त्तक अङ्गिरस ऋषि हैं। भूतों, प्रेतों, शत्रुओं और अभिचार कर्म करने वाले लोगों के विरुद्ध अभिचार कृत्य किए जाते हैं। अभिचार कृत्य करने वाले मनुष्यों और राक्षसों में कोई अन्तर नहीं समझा जाता है। अथर्ववेद में भ्रातृव्य (शत्रु), सपत्न, अराय, पिशाच और दानव को एक अर्थ में लिया गया है। अभिचार में जिन कृत्यों का उल्लेख किया जा सकता है वे सपत्नबाधन, नैरबाध, विनाशन, पीडन, मारण, वशीकरण, विद्वेषण, मोहन, उच्चाटन, चातन, स्तम्भन आदि है।

अभिचारकर्मद्वारा राक्षसों को भगाने के कृत्य में इन्द्र देवता को सोम रस चढ़ाने का विधान है। कौशिक (६।२, २।६, २, ३।२६, २७) ने बताया है कि भूतों, प्रेतों, राक्षसों को भगाने के लिए किए जाने वाले अभिचार कृत्य में चावल को पक्षियों के घोंसलों की लकड़ियों से पकाना चाहिए।

अथर्ववेद (२,१४,३) में भूतों, प्रेतों को भगाने के अतिरिक्त गृह, पशु और मनुष्यों की सुरक्षा के लिए और अन्यसूक्त (३,९,४) में विष्कन्ध तथा कबव (घोरराक्ष) के विरुद्ध मन्त्रोच्चारण द्वारा विधान बताया गया है अभिचार कृत्यों में औषधियों का भी प्रयोग किया जाता है। मंत्र सिद्ध सदम्पुष्पा पौधा अभिचारकों (यातुधानों) और शत्रुओं द्वारा दिये जाने वाले कष्टों का निवारण करता है। अपामार्ग (चिचिड़ा) भूख मारने वाले, प्यास मारने वाले और अन्यान्य कष्टकारक अभिचारों को दूर करता है। अपामार्ग औषधि दुष्कर्म, शाप और पाप कृत्यों के फल को नष्ट करती है। कच्चे मांस पर किये जाने वाले कृत्या प्रयोग भी अपामार्ग से दूर किए जाते हैं।

कौशिक सूत्र में कृत्याप्रतिहरण के लिए एक सूक्त का उल्लेख है—

दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि। ५,१४,१ कौशिक सू० ३९,७ इस औषधि का नाम कृतव्यधनि है। कौशिक सूत्र० (५,३१,१। ५,३१,३) में पात्र, मांस, पशु, गर्दभ, क्षेत्र, अग्नि, शाला, द्यूत, सभा, सेना, कूप और श्मशान में की गई कृत्या के अवसारण के लिए चारों वरणों द्वारा किए जाने वाला विधान बताया है।

इस अध्याय में पतिवेदन का प्रयोग अथर्ववेद (२।३६।६,६०) के दो सूत्रों से सम्बन्ध रखता है। कौशिक सूत्र (३४, १२-१६) में कहा गया है कि पति-प्राप्ति (पति वेदन) के लिए प्रयोग करने से पहले कुमारी को धान और तिल चबाने के लिए देना चाहिए तत्पश्चात् उससे हवन कराना चाहिए। पतिवेदन (पतिप्राप्ति) से सम्बन्धित अथर्ववेद (६,६०) में एक और सूक्त है। जिसके प्रयोग का विधान बतलाते हुए कौशिक ने लिखा है कि इस प्रयोग में प्रातः जागरण के पूर्व अग्नि में घी की आहुति और घर के चारों कोने में कौओं के लिए बलिदान करनी चाहिए। पुरुष में स्त्री के प्रति प्रेम उत्पन्न करने से सम्बन्धित अभिचार में अथर्ववेद

(६,१३३) सूक्त का प्रयोग किया गया है। इस सूक्त को पढ़ते हुए स्त्री को पुरुष के मार्ग में उड़द (माष) बिखेरना चाहिए। और स्त्री-प्रेम प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद (१,३४। २,३०। ६,८९। ६,१०२। ३,२५। ६,१३९) के छह सूक्तों का प्रयोग किया है। इन सूक्तों का पाठ करते हुए वृक्ष की छाल, बाण का टुकड़ा, तगर, अञ्जन और कुष्ठ को पीसकर स्त्री के अंग में लगाने से स्त्री पुरुष पर आसक्त हो जाती है।

स्त्रियाँ अपनी सपत्नियों (सौतों के विरुद्ध अनेक कृत्य करती कराती है। अथर्ववेद (३,१८,१) के एक सूक्त सपत्नियों को वश में करने का विधान है।

दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए पुंसवन (पुत्र प्राप्ति) के लिए (३।२३) बाँझ बनाने के लिए (७।३५), गर्भ दृढ़ करने के लिए (६,१७) तथा सुख प्रसव के लिए (१,१११) विभिन्न प्रकार के तंत्र और मंत्र बताए गए हैं।

स्त्री जब गर्भ धारण कर लेती है तो कभी कभी रोग, व्याधि और पापों के कारण गर्भपात हो जाया करता है। अथर्ववेद (८।६) के एक सूक्त में गर्भ रक्षण के लिए औषधियों का सेवन और प्रार्थना की गई है। इस सूक्त में २६ मंत्र हैं। कौशिक (८,२४) इस सूक्त के साथ २,२, और ६,१११ इन और दो सूक्तों को इसी प्रयोजन के लिए उद्धृत करते हैं। राक्षसों और दानवों से गर्भ की रक्षा करना ही इस विधान का मुख्य प्रयोजन है। गर्भ धारण के बाद गर्भ में तरह तरह के रोग कीटाणु पहुँच कर हानि पहुँचाते हैं, उनसे गर्भ की रक्षा करने के लिए औषधियों का प्रयोग बताया गया है। गर्भ को रक्षा करने वाली औषधि का नाम 'बज' है—

कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ।। ८,६'३

यह औषधि स्त्री के नीचे पहनने वाले वस्त्र में बाँध दी जाती है।

कीटाणुओं के अतिरिक्त पिशाचों प्रेतों से गर्भ की रक्षा करने के लिए अथर्ववेद (८,६,२३), (८,६,१३) मंत्रों से अभिमंत्रित गर्भवती की कमर में पिंग (सफेद या पीली सरसों) बाँध दी जाती है। पीली सरसों गर्भस्थ शिशु की रक्षा करती है और गर्भ को कन्या नहीं बनाने देती है। सन्तानहीनता, बाँझपन दूर करने में पीली सरसों का प्रयोग किया जाता है। कौशिक ने इसे मातृकानामानि मातृकागण कहा है और धर्मशास्त्रकारों ने सीमन्तोन्नयन संस्कार कहा है।

भाष्यकार सायण ने अथर्ववेद (८,६,१८) पर भाष्य करते हुए इस सूक्त (८,६) की भूमिका में कौशिक (३५,२०) को उद्धृत करते हुए अपना मतव्यक्त किया है कि सीमन्तोन्नयन कर्म में श्वेत और पीत सर्षप को गर्भिणी के हाथ में बाँध देना चाहिए। "यौ ते माता इति मन्त्रोक्तौ बन्धाति" (कौ० सू० ३५,२०)

इस अध्याय में निशाकर्म तन्त्र का विधान बताया गया है। यह शान्तिक कर्म है। अथर्ववेद में शान्तिक, पौष्टिक, अभिचारिक और अद्भुतभेद से चार प्रकार के कर्मों का विधान है। सभी प्रकार की व्याधियों को शमन करने के लिए भैषज्य कर्म विधान है, ग्रहदोष

निवारण के लिए यज्ञादिकर्म हैं और अद्भुतों के निवारण के लिए शान्ति कर्म किए जाते हैं। 'मा नो विदन्' (अथर्व० १।४।३) इस सूक्त के अन्तर्गत बताया गया है कि ब्राह्मण का आयुध धारण करना, देवप्रतिमा का हँसना, नाचना आदि अद्भुत कर्म हैं इनकी शान्ति के लिए आज्यहोम में विनियोग है अथर्ववेद के सम्पूर्ण त्रयोदश अध्याय में अद्भुत कर्मों के वर्णन और उनकी शान्ति के उपाय वर्णित है।

मेधाजनन, चित्राकर्म, लक्ष्मीकर्म, अलक्ष्मी विनाश, कृषिनिष्पत्ति आदि पौष्टिक कर्म हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी आथर्वणकर्म 'पाकयज्ञ' कहे जाते हैं। आज्य तंत्र और पाकतंत्र भेद से पाकयज्ञ दो प्रकार के होते हैं। आज्यतंत्र के हविष्य में आज्य की प्रधानता रहती है और पाकतंप्र में हविष्य बनाने में पुरोडाश आदि प्रमुख होते हैं। यद्यपि यहाँ पर तंत्र शब्द से आज्यप्रधानता और पाक प्रधानता ही अभीष्ट है तथापि आथर्वण कौशिक सूत्र (१५।२।१३८) में बताया गया है कि—

न दर्पिहोमे न हस्तहोमे न पूर्णहोमे तन्त्रं क्रियेत्ये के।
तन्त्र सूक्तं पच्छः स्नानेन यौ ते पक्षौं यदतिष्ठः॥ (२५।६८)

इत्यादि की टोकाम में दारिल केशव का मत है कि—

सर्वत्र स्त्रुवहोमे नित्यं तन्त्रं हस्तहोमे विकल्पेन तंत्रम्। (कण्डिका ६)
येषुनिशा कर्मसु तन्त्रं तेष्वयं धर्मः। (कण्किा ८)

आथर्वण कौशिकसूत्र में निशाकर्म का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

येषुनिशाकर्मस्तु तंत्रं तेषु अयंधर्मः। केचित्स्नातोऽहत वसनः प्रभुक्ते।
सः कर्मणि एते रसा प्रत्येतव्याः समुच्चयेन।

तात्पर्य यह कि निशाकर्म तंत्रविधान में स्नानकर, शुद्ध वस्त्रधारण, यज्ञोपवीत धारण कर सम्पूर्ण कृत्य करना चाहिए।

निशाकर्म तंत्र विधान करते समय व्याधिपीडित व्यक्ति को अपने सामने बैठाकर पहले उसकी भूतशुद्धि और तत्त्वशुद्धि करे। पश्चात् जौ की ढेरी में से एक मुठी जौ लेकर ओखली में बिना घुमाए हुए उन यवों को पीसना चाहिए। फिर व्याधिपीडित व्यक्ति पर शक्तिसंपातकरके शणसूत्रेण (पटसन से) जिह्वा की सफाई करे। यही निशाकर्म तंत्र है। इस तंत्र को करने के बाद अथववेद के "वरणोवारयता" इत्यादि मंत्र से व्याधिपीड़ित व्यक्ति को वरणवृक्ष की मणि बाँध देनी चाहिए। इस तंत्र में हवन की अग्नि दावाग्नि होनी चाहिए घरमें जली हुई आग नहीं और वेतसपत्र (ताड़पत्र) से हवा देनी चाहिए।

दारिल केशव का सुझाव है कि निशाकर्म तंत्र तेरह दिनों तक होना चाहिए। तेरहवें दिन पाकयज्ञिक तंत्र की पूर्णाहुति करके मरुद्गणों की पूजा करनी चाहिए। उनका कहना है कि एक ही विषय के अनेक विधि विधान हैं, उनमें से किसी एक को करना चाहिए।

अभिचार कर्म १६ प्रकार के होते हैं—

कृकलासकर्म, शरमृष्टिकर्म, सपत्नीक्षयणीयकर्म, छह प्रकार के गांव में जाकर किए जाने वाले कर्म, छह प्रकार के मणिकर्म, पाशकर्म, तीन प्रकार के विकङ्कत स्रुवकर्म। और सव यज्ञ बाइस प्रकार के होते हैं। स्वर्गौदनतंत्र से सभी कर्म करने चाहिए अथवा स्वर्गौदन तंत्र, ब्रह्मौदन तंत्र दोनों से करना चाहिए। वस्तुतः तन्त्र शब्द क्रिया कलापपरक, प्रयोगपरक और प्रकरणपरक है।

श्री केशवदेव शास्त्रि ने इसी अध्याय में जलाभिमंत्रण और शान्तिजलाविधान नाम के दो प्रकरणों में तंत्र भूतजलों द्वारा शान्तिकर्म विधान प्रस्तुत किया है। तंत्रभूत महाशान्ति कर्म के लिए पुण्य जल का विधान आथर्वणिक शान्तिकल्प (२०।१।२) में इस प्रकार बताया गया है—

तन्त्रभूतां महाशान्तिं प्रवक्ष्यामो यथाविधिः।
अन्यासां सर्वशान्तीनाममृतां विश्वभेषजीम्।
नदीभ्यो व ह्रदेभ्यो वा जलं पुण्यं समाहरेत्।
सं सं स्रवन्तु तद्विद्वानभिमन्त्रयते जनः॥

सभी प्रकार की व्याधियों को दूर करने में अमोघ अमृत रूप विश्व भेषज जल है। शान्ति पुष्टि कर्मों के लिए किसी नदी या सरोवर से पवित्र जल लाकर उसे मंत्राभिषिक्त कर प्रयुक्त करना चाहिए। अथर्ववेद की "शं त आपो हैमवतीः" ऋचा के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है कि तन्त्रभूत महाशान्ति कर्म के लिए "शं त आपः इस सूक्त से नदी या सरोवर से जल लाकर अभिमंत्रित करना चाहिए और फिर तंत्र करके इसी सूक्त से मूँज के पाश को पर शक्ति संपात कर, मंत्र से उसे अभिमंत्रित कर आक्रमणकारी सेना में छोड़ देने से शत्रु सेना का नाश हो जाता है।

निशाकर्म विधान में दारिल; केशव ने व्याधि पीड़ित व्यक्ति को वरण-वृक्ष की मणि बांधने का निर्देश दिया है। अथर्ववेद में यंत्र (तावीज) शब्द का प्रयोग मणि शब्द से किया गया हैं। कौशिक सूत्र में 'दर्भमणिबन्धने विनियोगः', प्राजापत्याख्यायां सुवर्णरजत लोह मय मणि बन्धनं कुर्यात्' जङ्गिड (अर्जुन) वृक्ष निर्मित मणि बन्धने पूर्व सूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ! बताया गया है।

इस अध्याय में कार्यसिद्धि विज्ञान पर आचार्य केशवदेव जी ने विवरण प्रस्तुत किया है। अथर्ववेद (१,३,५,१०) में निर्देश किया गया है कि अग्न्याधान के समय अभीष्ट सिद्धि के लिए 'सप्तदश सामिधेनी' मंत्रों का पाठ करना चाहिए। यदि कोई रोहिणी नक्षत्र में अग्न्याधान करे तो वह पशु, धन, अन्न और सन्तति से सम्पन्न होता है। वेदी में अग्न्याधान करने के बाद शमी, वैकन्तक (शमी के वृक्ष पर जब पीपल का वृक्ष पैदा होकर शमी के साथ संयुक्त हो जाता है तो उसे वैकन्तक कहा जाता है) और उदुम्बर (गूलर) की लकड़ियां रख दी जाएँ। पश्चात्—"**तां सवितुर्वरेण्य] चित्रामहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वोऽदुहत्प्रपीना ७ सहस्र धारां पयसा महीं गाम्।**" वह मंत्र पढ़ कर पहले शमी की लकड़ी।

फिर वैकन्तक की लकड़ी इसके बाद गूलर की लकड़ी छोड़े। वेदी में जब अग्नि पूर्णता को प्राप्त कर ले तब उसका संस्कार करे। यह संस्कार वसोर्धारा से किया जाता है। अग्नि को वसोर्धारा से अभिषिक्त कर अभोष्ट सिद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है।

इस अध्याय में शान्ति कर्म प्रमुख है किन्तु पुष्टि और शान्ति कर्मों का मिश्रण भी कतिपय विधानों में निहित है। अथर्ववेद सूक्त (१।१४) में एक स्त्री को उसकी प्रतिस्पर्द्धिनी स्त्री द्वारा चिरकुमारी रहने का शाप देने का उल्लेख है। कौ० सू० (३६,१५-१८) में यह सूक्त स्त्री के विरुद्ध शाप रूप से ग्रहण किया गया है। सायण ने उसे किसी भी स्त्री वा पुरुष के लिए दुर्भाग्यकारक माना है। सायण ने किसी स्त्री को चिरकुमारी रहने का शाप देने की क्रिया बताई है—

"किसी वृक्ष से फूलों का गुच्छा तोड़ लेने की भांति मैं अमुक स्त्री के ऐश्वर्य और वर्चस्व को ग्रहण करता हूं। वह स्त्री किसी महाघोर पर्वत की भांति सदा अपने पिता के घर में ही रहे। हे यम, यह कन्या तुम्हारी पत्नी हो और यह अपनी माता के घर पर ही रहे। और अन्त में जैसे स्त्रियां पिटारी में वस्तुएँ बन्द करती हैं उसी प्रकार इस शाप लक्ष्यभूता स्त्री का सौभाग्य असितकश्यपमय मंत्रों से ढक जाए।

अथर्ववेद (१.३४) में अनेक प्रकार के विनियोग हैं। कौ० सू० इन हर प्रकार के वाद-विवाद में विजय प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाने का निर्देश करता है और सायण इस सूक्त का प्रयोग केवल अश्वमेध यज्ञ में शास्त्रार्थ करने के लिए कहता है। किन्तु कौशिक सूत्र और सायण के मत से इन सूक्तों की विषय-वस्तु से सामञ्जस्य नहीं रखते हैं यह सूक्त केवल प्रेम विषयक वस्तु है। किसी को अपने प्रेम जाल में फँसा कर उसे अपने अधीन बनाने में यह सूक्त जादू का-सा काम करता है।

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका का हृदय अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए एकान्त में जाकर मधु (मुलहटी) औषधि को अभिमन्त्रित कर उखाड़ते हुए अपनी यह कामना प्रकट करता है—"सानो मधुमतस्कृधि।" तथा "जिह्वायाः अग्रे मधुमे जिह्वामूले मधूलकम्। ममदेह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि। इन दो मंत्रों को पढ़ने के बाद अभिचार कर्म करने वाला वह प्रेमी पुरुष मधूक औषधि से भी अधिक मधुर हो जाने का आत्म विश्वास रख कहता है—"त्वम् मधुयुक्त शाखावद्मां प्रति स्नेहं कुरू। मधुरोस्मि मदुघान्मधुमत्तरः मामित्किल त्वं बनाः शाखां मधुमतीम्। अहं त्वां अभितः चतुर्षु दिक्षुइक्षुभिः! परिवेष्टयामितथा त्वामभितः चलामि येन पारस्परिकी घृणा न भवेत् त्वं मां प्रति स्नेहं कुरु तथा मत्तो दूरं न याहि। (मंत्र ४।५)। यह प्रयोग स्त्री वशीकरण में प्रयुक्त होता है। और अपनी सौत को वश में करने के लिए कोई स्त्री अथर्ववेद के (३,१८) सूक्त का प्रयोग करे। अपनी सौत और पति को पूर्ण रूप से अपने अधीन बनाने के लिए मंत्र का उच्चारण और वनिता औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। इसकी विधि इस प्रकार है—जिस रविवार को पुष्य नक्षत्र हो उस दिन वनिता औषधि (यह समशीतोष्ण जलवायु में उत्पन्न होने वाला क्षुप पौधा है। दलदार चार पत्तियां इसमें होती हैं, और आसानी से उखड़ जाता है। जड़ में जड़ तन्तुओं का

गुच्छा होता है) को निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए उखाड़े—

इमां खनाम्योषधिं* वीरुधाँबलवत्तमाम्।
यया सपत्नीं बाधतेयया संविन्दते पतिम्॥

इसके बाद घर लाकर अथवा अन्यत्र एकान्त पवित्र स्थान में अथर्ववेद (३/१८) के ६ मन्त्रों द्वारा औषधि को अभिमंत्रित करके निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए सौत की शैय्या के नीचे औषधि को रख दे।

मंत्र—

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वतीभूत्वा सपत्नीं मे सहायहै॥

कौशिक सूत्र ने इसी पर दूसरी क्रिया बताई है, जिसका समर्थन सायण ने अपने भाष्य में किया है।"जो स्त्री अपनी सौत पर विजय प्राप्त करना चाहे, और उसे तथा अपने पति को वश में करना चाहिए वह वाणापर्णी के पत्तों का चूर्ण और लाल रंग वाली जाया (बकरी) की दही के पानी में मिला कर अथर्ववेद के काण्ड ३ सूक्त अठारह के दूसरे, तीसरे मंत्र से अभिमंत्रित कर सौत के बिस्तरे में फेंक दे। और "अभितेऽधां सहमानाम्" पढ़ कर उस पात्र को अभिमंत्रित कर चारपाई के नीचे रख दे तथा "उपतेऽधां सहीयसीम" पढ़कर चारपाई के ऊपर छोड़ दे।

इसके अतिरिक्त आथर्वण–प्रयोग परंपरानुसार उपर्युक्त सूक्त को पढ़ते हुए स्त्री के शिर में बाणभङ्ग क्रिया भी की जाती है।

अथर्ववेद में (३,२५ और ४,५) सूक्त स्त्री वशीकरण प्रयोग में अमोघ सिद्ध हुए हैं। यदि कोई स्त्री अनेकधा प्रयत्न करने पर भी आकृष्ट न होती हो, घृणा भाव प्रकट करती हो उसे वश में करने के लिए ३।२५ सूक्त से अभिचार प्रयोग करना चाहिए। जिस स्त्री को वश में करना हो, उसके नाम और रूप का स्मरण कर रात ११ वजे के बाद ३।२५ सूक्त का पाठ करते हुए उस स्त्री की प्रतिमा को हृदय में बाण चुभाये। बाण यहाँ पर काम का प्रतीक है। और यह लाक्षणिक प्रयोग है। इस लाक्षणिक क्रिया से प्रेमिका के हृदय में उसका प्रेमी प्रवेश कर जाता है। अभीष्ट स्त्री की प्रतिमा केवल प्रतिमा ही नहीं है अपितु शरीर और आत्मा के साथ वह साक्षात् अभीष्ट स्त्री ही है प्रतिमा में प्रायः, जीव, इन्द्रियों की प्रतिष्ठा कर लें। स्त्री की प्रतिमा के हृदय में बाण चुभाते हूए यह मंत्र पढ़ना चाहिए—

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु माधृथाःशयने स्वे।
इषुःकामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वाहृदि॥

इस वशीकरण प्रयोग से स्त्री व्याकुल होकर प्रयोग करने वाले व्यक्ति से मिलने के लिए छटपटाने लगती है। आथर्वण लोग इसे यातुकर्म कहते हैं। इस यातु क्रिया (जादू) के

* **टिप्पणी :—** शँखपुष्पी; अन्धपुष्पी, (सौवर्चल) हुलहुल

प्रयोग के बाद प्रयोग कर्त्ता मित्र तथा वरुण से यह प्रार्थना करे कि मेरी प्रेयसी के हृदय से मेरे प्रति घृणा, आक्रोश की भावना हटाकर उसे विवश और विनम्र बनाएँ, जिस से वह मेरे वशीभूत हो जाए (मंत्र ३–४)।

अथर्ववेद (४,५) का यह स्वापन सूक्त भी यातु क्रिया (जादूगरी) के लिए प्रसिद्ध है। कौशिकसूत्र का कहना है, कि यदि कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका के पास तक जाने में असमर्थ हो तो सात परदे में रहने वाली प्रेमिका के पास इस यातु क्रिया द्वारा वह आसानी से जा सकता है।

इस सूक्त के तीसरे मंत्र को पढ़कर जल छिड़कने से प्रेयसी के घरमें रहने वाली सारी स्त्रियाँ घोर निद्रा में लीन हो जाएँगी। और छठे मंत्र को पढ़कर जल छिड़कने से घर के बाहर रहने वाले कुत्तों, नौकरों से लेकर पिता, भाई जो भी ग्रह रक्षक होंगे सभी निद्रा मग्न हो जाएँगे।

इसकी सामान्य विधि यह है कि प्रयोग कर्त्ता आधीरात में यह संकल्प करे कि मेरी प्रेयसी के घर, बाहर जोभी गतिशीलता है, उसे मैं स्तब्ध करता हूँ। जो कोई उस घर में चलता है, खड़ा है, बैठा है, देख रहा है, बोल रहा है, सबको मैं सुला रहा हूँ। यह संकल्प करके स्वापन सूक्त का उच्चारण करे। इसके बाद निद्रा से प्रार्थन करे कि हे निद्रादेवि, तुम इन सबको तब तक सुलाए रखो जबतक सूर्योदय न हो।

निद्रा से प्रार्थना करने का मंत्र यह है—

स्वप्न स्वप्नाभि करणेन सर्वं निष्वापया जनम्।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः॥

वन्ध्या स्त्री में पुत्र उत्पन्न करने का एक सांकेतिक अनुष्ठान अथर्ववेद में बहुत ही अमोघ है। इस प्रयोग में शमी को स्त्री और अश्वत्थ को पुरुष मानकर पुंसवन कर्म का विधान बताया गया है सामान्य विधि यह है—

जिस शमी वृक्ष में पीपल का पेड़ भी हो अथवा उसके समीप उगाहुआ हो उस शमी अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठकर ४१ दिन तक निम्नांकित मंत्रों का ११०० बार जप करने या कराने से निश्चय ही वन्ध्या पुत्रवती होती है—

मंत्र—

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वाभरामसि॥
पुंसिवैरेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत्॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यऽचीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमुदधदिह॥

—देवदत्त शास्त्री

सर्व कर्मार्थ परिभाषा
(कौशिक सूत्र कण्डिक ८)

निशाकर्म :—निशाकर्म के तन्त्र का अभिप्राय यह है कि स्नान सन्ध्या तर्पणादि नित्य नैमित्तिक कर्म के उपरान्त, यज्ञोपवीती, वद्धशिख (अहृतवस्त्र) बिना धोबी के धुले, बिना फटे एक ही वस्त्र धारण कर शिर पर शान्ति औषधियों की पोटली रखकर, उसे काले वस्त्र से शिर पर ढाँक कर शान्ति औषधियों के बने ऊपर बंधे तोरण के ही नीचे, ढाक के पत्ते को "दीर्घायु त्वाय" अ० वे० का० २१४ से अभिमन्त्रित कर; उसके ऊपर सैमर (शाल्मलि) की लकड़ी को "इन्द्र जुषष्व" कां २१५ से अभिमन्त्रित कर, रखकर उसी पर रोगी को बिठायें यह निशाकर्म, ब्रह्महत्या-कृत्या नैर्ऋति; प्रेताग्नि जनित (क्रव्याज्जनित) वालों, कुमारों, युवाओं की वृद्धों से पूर्व एक के पश्चात् एक लगातार मृत्युयें; आठों प्रकार के स्त्रियों के वन्ध्यापन, पति-पुत्रों के सुखों के अभाव, कुमार-युवा-वाल वैधव्य, गर्भस्राव रक्तस्राव रजस्राव; अभिचार जनित; शाप जनित, विषचिड़िया, उलूक, काक, कपोत, स्पर्शादि; मृत्यु सूचक अपशकुन; कान बन्द करने पर भी कर्णनाद का सुनाई न देने के अन्तिम मृत्यु सूचक लक्षण निवारणार्थ प्रायः सायं सन्ध्या से महा निशा काल में कृष्ण पक्ष में सारी तन्त्र क्रिया की जाती है।

अ० वे० का २।१ "वेनस्तत्; (२।२)" दिव्योगन्धर्वो "से प्रत्येक स्वस्त्ययन कर्म में प्रत्येक दिशा में बलिदान दें। कां ३।२६ "येऽस्यांस्थ" भी इसी वलिदान में विहित है। "प्राचीदिगग्नि" ३।२७ से (वृषभ) वत्स कुशनिर्मित यामृत्तिका से निर्मित की रुद्र रूप में प्राण-प्रतिष्ठा पूजा, उपस्थान, वलिदान कर, शत्रु संहार में होम करने के उपरान्त शत्रु सेना की ओर छोड़ें।

सर्वार्था से—कर्त्ता को दक्षिणा वस्त्रालङ्कार, गौ आदि दें; यदि यज्ञ का अवशेष पात्र वस्त्र घी आदि सामिग्रियां भी शेष हों तो उस सभी को मण्डपादि; शान्ति जल के पात्र यज्ञिय-पात्र चरुस्थाली आज्यस्थाली आदि सभी को कर्त्ता को ही दान दें। परन्तु अन्य की मांगी वस्तु न दें स्वयं की ही हों तो दे दें। यह नित्य कर्म में भी लागू नहीं है।

अ० वे० (२।८) "उद्गातां" क्षेत्रियव्याधि; मूलादिनक्षत्रजनित व्याधियां स्थूल, सूक्ष्म, प्राण तथा वासना देहों की ही भेषज सापेक्ष्य है महाप्राण शरीर अधिव्याधियों से परे है। इन पूर्व ४ के शरीरों के लिये मानुषी दैवी आथर्वणी एवं आङ्गिरसी भेषजों का वेद मन्त्रों में ही प्राविधान है उनमें से आथर्वणी-शान्ति कार्यो में शान्तिसामिग्री, दाभ समिधादि, शान्ति वैश्वानर जातवेदाग्निग्राह्य हैं। अभिचारिक कर्मों में रौद्री चाण्डाल अग्नि, दक्षिण के जल व सामिग्रियां, श्मशान या युद्धभूमि आङ्गिरसीभेषज में ग्राह्य हैं।

दैवी—से योग, वेदान्त, तन्त्र, मणिबन्धन, समझें अ वे २।६ ।। दशवृक्ष ।। स्रुक्, स्रुव समिधा काष्ठादि; अन्य समिग्री जो पृथक दी है तथा दुग्ध-भात, खिलाना-समझें। कां २।१० ।। क्षेत्रियात्त्वा ।। की विधि तथा ऋचाओं से कर्म करायें।

कौ कां २ सूत्र १२—उलूखल (मुसलकाष्ठ) ओखली धनकुट मूसल, ईंधन काटने, फाड़ने का हथियार समझें।

कां० २ सूत्र १५ शान्तवृक्षा—स्रक् (मालवा में प्रसिध), वन्घ–कान्यकुब्जे प्रसिद्धः। शिरीषः (भोजपुरे प्रसिद्धः) शिरष; शाल्मलि शमी भाषा में स्रक्त्यः=तिलकः; वरणो—विल्वः; जङ्गिडो=अर्जुन; कुडक् (मालवके) कुदड्ड भाषा में; गर्ह्योहिमवति=गलावल (इन्द्रजौ) स्पन्दन=हिमवति नर्मदायां प्रसिद्धः; अरणिका=अरणी (नर्मदातटे प्रसिद्धः। अश्मयोक्त=अशमन्तको भृगु कच्छे प्रसिद्धः। तुन्युः तैन्दू। पूतु=देवदारु। ये शान्ति वृक्ष हैं। भाषा ढाक, पीपल, गूलर, आम, जामुन, बट, पिलखन, अशोक तथा उपरोक्त

शान्ति औषधियाँः—कां २ सूत्र १६—चित्ति=चीता तीन पर्वोंवाला शमका (सवाँ) सर्वशा—धर्मोलिका; साम्यवाक-यह अपामार्ग के बराबर बड़ी ऐसे ही प्रायः पत्तों की वासकृति की आकृतिक की, छोटी वाल तथा सफेद फूल नाक की बूंद जैसे गुथे हुए—रामकृष्णापुर सैक्टर ३ (नई दिल्ली) की पहाड़ी तथा मंदानों में होती है। काकजंघा; तलाश (ताड़) वेतस (वात्सक) वनखड़ (वेंत जैसी) पटेर भी; आटडूषक, अडूषा। सीसपात्र—शाल्मली। सिपुनांकुरी-सिपुन अंकुरी (हिरनखुरी)। आकृतिलोष्ठ=क्षेत्रीय मृत्तिका (तलाव के अन्दर की मिट्टी)। वामी की रज। ये शान्तिघट में डालें-वैसे इनके भाषा के नाम आगे दिये जा चुके है।

पैठीनसी परिभाषा के अनुसार इन्द्रजौ के स्थान पर जैसे जौ ग्राह्य हैं वैसे ही यथार्थ वस्तु न मिलने पर तद्गुणवाली अन्य औषधियाँ ग्राह्य हैं।

कां २ सूत्र १७—प्रमंदोशीर शलल्पुपधानं-शकधूमाचरन्तः:—उपधान-यज्ञकर्म के वरण में वस्त्रालङ्कार लें। परन्तु अनावृष्टि निवारण तन्त्र में पुराना जूता या उसका चरम (अभिचार में) समझें। शकधूमा-वृद्ध, अनुभवी, कर्मकाण्डी याज्ञिक ब्राह्मण। चरन्तं (जरन्तं)=वृद्ध, जीर्ण-विद्यावान ही शान्ति यज्ञ में लें।

कां २ सूत्र १८—**सीसानि**—लोहकिष्ट (किर्च; छोटे टुकड़े) नदीसीस-नदीफेन

कौ० कां २ सूत्र १९—रसा—इन्द्र जौ; प्रियङ्गु; कंगुनी तथा गोघृत, गोदुग्ध, गोदधि समझें। "रस कर्मणि एते रसा प्रत्येतव्या; समुच्चयेन"

शान्ति औषधियों का सार:—प्रायश्चित्ति=सिद्धपीठरजें; शमीका—शमीकाँटेदार (छोंकरा) हरियाना में जाटी या रैंमजा। शमी-रैंमजा के पत्ते, फली समान; कांटों में छोटे बड़े का भेद होता है। सर्वशा—शृंगालवंशक; तलाश, ताड़; मालिका कांगनी; पलाश–ढाक। वासा (पियावास) अड़ूसा।

गोपथ ब्रह्मण के मत से आथर्वणी कौशिकसूत्रोक्त; आङ्गिरसी—वैतानसूत्रोक्त ही विधियाँ समझें।

प्रमन्द—प्रियङ्गु। वालाउशीर–खसखस। शलली–श्वावित (शलाका) उपधानं=उपधानकं (जरदुपानह)। शकधूमा ब्राह्मणा–चारों वेदों के सूर्यपाठ करने वाले ब्राह्मण। लोहकिष्ट—कृकलास-प्राणी का शिर यह पञ्च पटिलिका में सविस्तर देखें।

ये अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त ३ ऋचा १ के सन्दर्भ में समझें।

"**पिप्पलादि शान्तिगणाः**" शं नो देवी, शं न इन्द्राग्नो, शंनोवातो, शान्ता द्यौः, पिप्पलादि शान्तिगणाः (कां १।६।१) (१६।१०।१ (७ः६६।१) (१६।६।१)

शांन्तातीयेनतिलाञ्जुहोति । शान्तियुक्तानि ।

"**वास्तुगणः**" आशानामाशापालेभ्यः इहैवध्रुवांमृधङ्गन्त्रो, योनिमृत पुत्रः (१।३१।१) (३।१२।१) (५।६-१-५)

पितरमिन्द्रस्यगृहोऽसीति, चतस्त्रो दिवेस्वाहा, शर्मवर्ममेपृथिव्यै (५।१०।१)

श्रोत्रायाति धन्वानीति, द्वेऊर्ज विभ्रदिति, (७।४१।१) (८।६०।१)

"**मातृनामा (मातृगणाः)**" दिव्योगन्धर्व, आपश्यतीमंमेअग्ने, यौते माता (२।२।१) (४।२०-१) (६।१११।१) (८।६।१)

चातनगणाः (अथर्व) **कां० सू०** (१।१६।१) (१।२८।१) (६।३२-१) (६।३४।१)

कण्डिका १० सारिका जिह्वां बध्नाति-सारिका, कंटारिका प्रसिद्धाः, कुशो-भारद्वाज कर्कन्धू-वृहद्वदरी-"येत्रिषप्ताः, (१।१।१) क्षीरौदनं संपात्याभिमंत्र्य भक्षयति। पुरोडाशं भक्षयति, रसान्भक्षयति,

शंखपुष्पिका, अन्धपुष्पिका (वर्चस्काम मेधाकाम, आयुष्कामोऽपि मेधाकाम-आदित्यमुपतिष्ठेत् (निद्रां त्यक्त्वामुखप्रक्षालनं वर्चस्कामो अपि करोति ।)

अथर्व का ४ सू० ४ "वाजीकरणम्,, ऋचा २—"वृषा,,

वृषमेधा मुस्ता, ऋषभ, ऐन्द्रीं दधिपुष्पी, वला, मूसा,कन्नया, आखुपर्णी धान्यमास, विदारिका, वलिका, तामलकी, कही हैं, मतान्तर में वाराहीकन्द शिवलिङ्गी, (नैपाली), शंखपुष्पी, के उल्लेख हैं।

कौ०गृ० सूत्र क० **मृगाखर मृत्तिकाया वेदिं कृत्वा-हिरण्यालंकारान्गुग्गुल मौषधं च यथोक्तान्सम्पात्य-वन्धनं, घूपनं, प्रलेपनं कुर्यात् ।**

"**आवपेत्सुरभिर्गन्धान् क्षीरे सर्पिस्तथोदके**

एतदायनमित्याहुरौक्षं तु मधुना सह ।।

स्वर्ण गुग्गुल को स्त्री पुरुष, प्रजनन इन्द्रियों में धूप-लेप, मर्दन, तथा पीली बछड़े की गौ के धारोष्ण दूध, गोघृत, मधु के साथ सेवन करै।

यजु० वे० सायणभाष्ये—सोमलता के रस का पान करें।

महीधराचार्य—सर्ज की छाल, त्रिफला, सौंठ, पुनर्नवा (श्वेत) पीपल गजपीपल, जौ, इन्द्रजौ धान की खील मिलाकर कूटकर ३ दिन कलश में बन्द करें तब कम्बल के टुकड़े में छानै, उसे स्वशक्ति, अनुकूल, छोटी मक्खी के बसन्त के मधु गोघृत धारोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करने को वृषा मानते हैं इसे यजु० मंत्रों में दिये सोम मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके लें।

सर्वप्रथम आचमन प्राणायाम भूशुद्धि आदि अध्याय ३ के पूर्वतन्त्र उत्तरतन्त्र के कर्मों से करै। तदनन्तर सर्व प्रथम समस्त कार्यों में निम्न प्रकार से ध्यान करें। तब कार्य प्रारम्भ "जो भी जब भी हो करै

अस्य "ये त्रिषप्ता" अथर्व कां १ सू०(१ ऋ० १ से ४)सूक्तस्य अथर्वा ऋषि वाचस्पतिः देवता। अनुष्टुप्; ४ चतुष्पदा विराडुरोवृहती छन्दांसि सर्व कर्मारम्भे ध्याने जपे अवसेचने स्नाने यज्ञादिषु विनियोगः।

ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥
उपहूतो वाचस्पति रुपास्मा न्वाचस्पतिं ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमे महि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

अस्य सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। कर्म देवता। अनुष्टुप्छन्द भगवति श्रुति (ब्रह्मवेद) अनुमन्त्रणे जपे ध्याने होमादिषु विनियोगः।

ॐ अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया।
ताभ्या मुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥२॥

अस्य सूक्तस्य ब्रह्मा, ऋषिः। गायत्री देवता। त्र्यवसानापञ्च पदातिजगती छन्द-पूर्वोक्त समस्त कर्मणि गायत्री अनुमन्त्रणे विनियोगः।

मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्म लोकम् ॥१॥

अस्य सूक्तस्य भृग्वाङ्गिरा ब्रह्मा ऋषयः। परमात्मादेवाश्च। त्रिष्टुप् छन्द उपर्युक्त कर्मषु ब्रह्म अनुमन्त्रणे विनियोगः।

स्तुता यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
आयुः कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥
ॐ भूर्भुवः स्वर्जनदोऽम्।

अध्याय ४ की विशेष प्रक्रिया

जलाभिमन्त्रण

ग्रन्थ के पूर्व प्रथम अध्याय में "अथर्व शरीर" शीर्षक में शरीर ५ प्रकार का अर्थात् (स्थूल, सूक्ष्म, प्राण महाप्राण तथा वासना देह) वर्णित हैं। इसमें स्थूल तथा सूक्ष्म देहों की मरण कालीन दूषित वासनाओं से दूषित जीवात्मायें वासना देहों के कष्ट भोगती हैं, वे सूक्ष्म होने से वैर या भोग भोगने को आतुर हो प्राणियों को प्रभावित करती हैं गन्धर्व अप्सरा तथा पिशाच व पितरों में भी ऐसी भोग भोगने की प्रवृत्तियां सामने आई है। इनके अतिरिक्त सभी प्रकार की कृत्यायें (घातक-तन्त्र-मन्त्र-यन्त्रों से युक्त क्रियायें) भी प्राणियों को आघात पहुँचाती हैं। मारण, उच्चाटन सम्मोहन-वशीकरण कर्मों की प्रयोग विधियां जो अभिचार कहलाती हैं प्रभावित करती हैं। अवैध यज्ञादि के दोष, देवदोष विविध शाप तथा आनुवंशिक दोष यथा पूर्वजों द्वारा किसी का धनापहरण की गई हत्या आदि··· भी पुत्र-पौत्र-धेवते को प्रभावित करती हैं। भूमि के (मकानादि के निर्माण कालीन) वास्तुदोष भी बाधक होते हैं। इनका विस्तृत विवरण पूर्व "ग्रन्थप्रसङ्ग" में; प्रथम अध्याय में तथा पृथक् २ तत्सम्बन्धी प्रकरणों में वर्णित है इन सभी के परिहारार्थ अथर्ववेद की यह शौनकीय विधि ही है। परिशिष्ट (५।३) में वर्णित "**सप्तरात्रंधृताशो वाततो होमं प्रयोजयेत्। गव्येनपयसा कुर्यात्सौवर्णेनस्रु वेनतु ॥ वेदानामादिमैमन्त्रैर्महाव्याहृतिपूर्वकैः**" आदि आदि—·········इस प्रकार व्रत के उपरान्त होमादि करें। अथर्व मन्त्र सिद्ध मन्त्र होने से अपरिमित, अप्रत्याशित अकल्प्य शक्तिप्रद सिद्ध हुए हैं। और ये वास्तव में हैं भी इसी से प्रथम काण्ड के प्रथम सूक्त "ये त्रिषप्ता" को सूत्रकार कौशिक तथा वैतान श्रौत सूत्र एवं गोपथ ब्राह्मण ने समस्त अभिलषित कर्मों में सर्व प्रथम विनियोग किया है। तदन्तर-भगवतिश्रुति-वेदमाता परब्रह्म का अनुमन्त्रण कर-समस्त कर्मों के प्रारम्भ और समापन कालों में गायत्री तथा शन्नो देवी मंत्रों के प्रयोग का निर्देश किया है। अथर्व परिशिष्ट (५।२)

हेमरत्नौषधिविल्व पुष्पगन्धाधिवासितान्। आच्छादितान्सि तैर्वस्त्रैरभिमन्त्र्यपुरोहितः। सावित्र्युभयतः कुर्याच्छन्नोदेवीतथैवच।

सारांश

शान्ति कर्मों की दो विधियां हैं[1] आज्यतन्त्र, पाकतन्त्र अवसेचनादि। प्रथम में होम-तत्तद्देवता के लक्ष्य से किया जाता है जिसकी चर्चा अध्याय ३ में है।

दूसरी विधि—में[1] अवसेचन (मार्जन)[2] स्नानादि[3], उपस्थान[4], जप[5], हस्ताभिमर्शन[6] नेत्र से कल्याणात्मक निरीक्षण[7] मन्त्रों द्वारा आशीर्वचन[8] मणिधारण तथा अभिमंत्रित चरु भक्षण। इनमें से ये सभी कर्म भी आज्यतन्त्र में होते हैं। परन्तु जहाँ होम है वहां अवसेचन नहीं होता यह अध्याय २ में वर्णित है।

जलाभिमन्त्रण

सर्वप्रथम ब्रह्मा (आचार्य) इस प्रकार जप करें।

ॐ नमो सर्वात्मने गुरवेनमः ॐ नमो शास्त्र प्रवर्तनाय; ॐ नमो ब्रह्मवेदाय; ॐ नमो

अथर्व वेदाय ॐ भूर्भुवः स्वर्जनदोऽम्। पृथ्वी का पूजन "विमग्वरीं पृथिवीं" अध्याय ३ में निर्दिष्ट से करें। काण्ड २ सूक्त ४ मंत्र ५ "शणश्चमा" से आसन बिछायें। आसन को अध्याय ३ में निर्दिष्ट मंत्र से पवित्र करें। तदनन्तर चतुर्थ अध्याय के मन्त्रों से सर्व प्रथम "येत्रिषप्ता" (१।१); "ब्रह्मजज्ञानम्" (४।१) अव्यसश्च (१९।६८) "मया वरदा" (१९।७१) तथा स्तुता (१९।७२) से। गुरु शास्त्र रचयिता ब्रह्मा एवं ब्रह्म का अनुमन्त्रण करें। स्वस्तिवाचन कर सङ्कल्प करें, नवीन ताम्र घट अभाव में मृत्तिका का घट लें उसमें पूर्वोल्लिखित शान्ति औषधियां यज्ञिय शान्ति वृक्षों की हरी पल्लवों युक्त टहनियां-दूब-दाभ-पवित्र नदी-नद स्रोतों तीर्थों के जल, तीर्थों की रजें, यज्ञियभस्म, वामी की रज, सुगन्धित पुष्प डालें स्वस्तिक बनायें, कलावा बाँधें, मालादि से अलंकृत कर, रेशमी श्वेत पीत या रक्त वस्त्रों से आच्छादित करें। शान्ति कार्यों में प्रातःकाल; वृक्ष के उत्तर पूर्व की टहनियां तथा इसी दिशा के जल लें। अभिचार कार्यों में सायंकाल में; दक्षिण पच्छिम की टहनियां तथा जल लें। साधारण गणाधिपति का पूजन कर ब्रह्म वरण करें अर्थात् यजमान पुरोहितादि को विधिवत वरण करे। वरण के समय अध्याय ३ में वर्णित "ॐ भूपते-भुवनपते" यजमान जपें, प्रार्थना करें। वरण काल में ब्रह्मा पुरोहित "अहंभूपति" आदि को जपें। तब ब्रह्मा (पुरोहित से प्रार्थना करें

"बृहन्नपः प्रणेष्यामि" ब्रह्मा आदेश (स्वीकृति दें "तव प्रणय" पुनः यजमान प्रार्थना करे "यज्ञं देवता वर्धयत्वम्" आदि अध्याय ३ में निर्दिष्ट है। पुरोहित यजमान तथा तत्पत्नी का ग्रन्थिबन्धन तथा इसी से वेदी व पात्र को छींटें भी दें।

आशासाना सौमनसंप्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रताभूत्वा संनह्यस्वामृतायकम् ॥१४।१।४२

तदन्तर अम्बादिगण (जल सूक्तों से) जल को अभिमन्त्रित करें। इन जल सूक्तों में पूर्वोक्त गायत्री आदि जप के उपरान्त प्रथम कां १९ सू० २ के जप से प्रारम्भ करें।

अस्य सूक्तस्य सिन्धु द्वीप ऋषिः। आपः देवता। अनुष्टुप्छन्द जलाभिमन्त्रणे "अमृतानाम" विश्व भेषजी शान्तये च विनियोग

शंत आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याऽः।
शंते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याऽः ॥१
शं तु आपो धन्वन्या३ः शंते सन्त्वनूप्याऽः।
शंतेखनित्रिमा आपः शंयाः कुम्भेभिराभृताः ॥२
अनभ्रयः खनमाना विप्रागम्भीरेअपसः।
भिषग्भ्यो भिषक्तराआपोअच्छा वदामसि ॥३
अपामहंदिव्याऽनामपांस्रोतस्याऽनाम्।
अपामहम्प्रणेजनेऽश्वाभवथवाजिनः ॥४

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मं करणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आदत्तभेषजीः ॥५

"आपश्च विश्वभेषजी" ऋग्वेद १।२३;२० "तथा" अप्सुमे सोमोअब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा" ऋ० वे० १०।६।६ पावन स्रोत, नदी, नद, आकाश जल सभी विश्व भेषज ऋग्वेद में भी स्वीकृत हैं। इन समस्त सूक्तों के अतिरिक्त वृहच्छन्तिगण—अद्भुद्दर्शन के दुर्दिन निवारण प्रकरण तथा अर्थोत्थापन प्रकरणों में निर्दिष्ट जलसूक्त जल अभिमन्त्रण (अम्बादिगण कार्यों) तथा स्वस्तिवाचन में ग्राह्य सूत्रकार ने माने हैं। "अभिमन्त्रण विधि" कौ० १।६

मन्त्रमुच्चारयन्नेवमन्त्रार्थत्वेन संस्मरेत् । शेषिणंतन्मनाभूत्वास्यादेतदनुमन्त्रणम् ।
एतदेवाभिमन्त्रस्य लक्षणं चेक्षणाधिकम् ॥

मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुए; तन्मना होकर, कर्ता को अनुमन्त्रणीय पदार्थ पर दृष्टिपात् करते हुए मन्त्रोच्चारण के साथ अनुमन्त्रित करने का निर्देश है।

यह दर्वि होम, हस्त होम और पूर्ण होमों में तन्त्र न करें। **"न दर्विहोमे न हस्तहोमे न पूर्णहोमे तन्त्रं क्रियेत्** (कौ० १४।२७ यहां दधि-मधु घृत-को रस माना है इस गण को सलिल गण भी कहा है "सलिलैः सर्वकामः" (कौ० ३।७ यह गण सभी कार्यों में विहित माना है। यह गण "आदित्य नाम्नी शान्ति" में विशेष ग्राह्य है, "सलिलगण आदित्यायाम्" न० क० १८। इसके प्रयोगों के फल इस प्रकार हैं।

"आदित्यां श्री तेजो धनायुष्कामस्य" (न० कं० १७) श्री तेज-धन-आयुप्रद यह शान्ति है। इस अभिमन्त्रित जल से यज्ञीय सभी कर्म होंगे विशेष कर ये हैं।

चातनानामपनोदनेन व्याख्यातम्" कौ० ४।१ चातनगण कर्म में (अपनोदन) जल से झाडे का उल्लेख है। शा० क० १६ में निर्दिष्ट है कि

"आविष्टभूत पिशाचाद्युच्चाटनार्थं फलीकरण तुषावतक्षण होमादीनिआरेऽसौ०" (१।२६) इत्यपनोदन सूक्त कर्त्तव्यानि। यही गण अम्बादिगण कहलाता है, यह ३० प्रकार की शान्ति विधियों के तन्त्र भूत महाशान्ति में होम के उपरान्त इसी शान्ति घट के जल से छींटे देने में निर्दिष्ट है। न० क० २३

चातनोमातृनामाच वास्तोष्पत्योऽथपाप्महा" अश्वमेधयाग में विशेषकर इसका उल्लेख है। **"उषा वा अश्वस्यमेध्यस्य"** (वै० ७।१) वृहदारण्यक (१।१।१) यह सम्पत्काम, भूतादि उन्माद, चोरभय निवारण; भयङ्कर संवत्सर की शान्ति-अग्नि-चयन प्राजापत्यव्रत; पशुयाग; अग्नि भय निवारणादि समस्त कामनाओं में विहित है प्रमाण न० क० १७ वै० श्रौ० (५।१) कौ० १३।१

शान्तिजल विधान

कौशिक सूत्र कण्डिका ७ सूत्र १४

"उत्तरत उदकान्ते प्रयुज्य कर्मण्यपां सूक्तैराप्लुत्य प्रदक्षिणमावृत्याप उपस्पृश्यान वेक्षमाणाग्राममुदा व्रजन्ति ॥१४ वर्तिकाकार :—**सर्वकर्माणि उदकस्योत्तरे कार्याणि।"**

अर्थात् जो भी कर्म यज्ञान्त हो उसके लिये सपत्नीक यजमानस्नानान्तनवीन सुसज्जित घटों में प्रदक्षिणा क्रम से यज्ञमण्डप में लायें उसे विद्वान आचार्य निम्न सूक्तों से अभिमन्त्रित करके उसी जल से यावत्कर्म सम्पादन करें।

यह जल सूर्योदयकाल ही में निवास स्थान से पूर्व या उत्तर की दशा से लाया जावे।

कार्यसिद्धिविज्ञान

१ "अम्बयोयान्ति" इन तीनों (१।४; ५; ६) का प्रातः स्तवन, होम आदि में विनियोग है बै० (३।६) ये लघु तथा वृहच्छान्तिगण कर्मों में हैं। इन्ही से गौओं के रोगशमन में पुष्टि प्रजननादि में लवण, जल आदि अभिमन्त्रित कर दें। पिलायें। कौ० ३।२ समस्तरोगों के भैषज्यकर्म में, पलाश, उदुम्बरादिशान्त वृक्षों की समिधाओं से होम करें। कौ० ४।१

अर्थोत्थापन विघ्नशमन में मरुद्गण के निमित्त होम करें और एक जलमयघट में—कांस०, नागर मोथा, अञ्जन घास, वेत (वासकृति) आदि अन्य शान्ति औषधि डालें, अभिमन्त्रित कर; उसे जलके वीच नीचे को मुखकर उडेलें, उन वेत बनखड़ पटेर आदि की मुष्टि को जल में वहा दें। स्वशिरस्थ पोटली (शान्ति औषधियों की) तथा घट के ऊपर की मालादि अभिमन्त्रित कर जल में फैंके वहा दे। और मनुष्य के वाल तथा पुरानी जूती दोनों वांस के ऊपर बाँधकर-धानादि से युक्त मिट्टी के पात्र को जल से, दूब-दाभादि से सम्प्रोक्षण कर तीन पैर के छींके (सीके) पर रखकर जल में फैंक दें। यही अभिवर्षण अनावृष्टि में वृष्टि क्रिया कर्म में करें पुनः उस अभिमन्त्रित घट के जल से स्नान, छीटे, आचमन कर्त्ता करे। "अम्बयो से प्रारम्भ कर "अ मूर्या" पर समापन करें। यहसलिलगण कर्मविधि में भो है।

अपांभेषजम् (कां १ सू ४)

१-४ सिन्धुद्वीपः ऋषिः। (अपांनपात्, सोमः।) आपः देवते। गायत्री, ४ पुरस्ताद्वृहतीं छन्दांसि उपर्युक्त प्रयोजने विनियोगः।

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुनापयः ॥१॥

अमूर्याउप सूर्ये याभिर्वासूर्यः सह। तानो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्रगावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥३॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सुभेषजम्। अपामतप्रशस्तिभिरश्वाभवथवाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥४॥

अपांभेषजम्। (कां १ सू ५)

१-४ सिन्धुद्वीपः (अपांनपात, सोमः) आपः। गायत्री, ४ वर्धमाना। : छन्दांसि उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः।

आपो हिष्ठामयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातनः। महेरणाय चक्षसे ॥१

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४

अपांभेषजम् (कां० १ सू ६)

१-४ सिन्धुद्वीपः । (अथर्वा कृतिर्वा) (अपांनपात्) । आपः, २ आपः सामोऽग्निश्च । देवते गायत्री, ४ पथ्यापङ्क्तिः पिप्पलादिगण । अम्बादिगण, सलिलगण, कार्येषु विनियोगः ।

शंनो देवीरभिष्टय आपो भवन्तुपीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१॥
अप्सुमे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं चविश्वशंभुवम् ॥२॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३॥
शं न आपोधन्वन्या३ः शमुसन्त्वनूप्याऽः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवानः सन्तु वार्षिकीः ॥४॥

२ "हिरण्य वर्णाः" (१।३३) भी उपरोक्तगणकर्मविधियों में है विशेष मुण्डन कर्म कराकर वाल को स्नान करायें । मधुपर्क, पाद्य, अर्घ्य भी इसी से किया जाता है । कौ० १२।१ मरुस्थल में जल की उत्पत्ति (अद्भुत कर्मजनितानिष्टफलनिवृत्ति) में इसीसे होम करें । यज्ञ में अभिमन्त्रित जलपूर्णघट फूटने के दोष शमनार्थ नवीन कलश लाकर जलपूर्ण इसी से करें । कौ० १३।४४ । अभिषेकादि के कलशाभिमन्त्रण में यही है परिशिष्ट (५।२) (वायोः पूतः) (६।५१) इसी प्रकार है ।

आपः (कां १ सू० ३३)

१-४ शान्तातिः । (चन्द्रमाः) आपः (च) । त्रिष्टुप् छन्दः । उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः ।

हिरण्य वर्णाःशुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निंगर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥१॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निंगर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥२॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥३॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥४॥

"कृष्णंनियानम्" (६।२२) इन तीन ऋचाओं से पेट के तुण्डादि वृद्धि घुटने के डमरू, के रोग भैषज्य कर्म में शान्ति औषधियों से युक्त घट के जल को अभिमन्त्रित कर रोगी को छींटे सन्ध्याकालों में दें। मरुद्गण का होम करें। उपरोक्त विधि सभी करें। जो (१।१४) "अम्बयो" में है।

भैषज्यम्। (कां ६ सू०२२)

१-३ शान्तातिः। अदित्यरश्मिः, २-३ मरुतः। त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदाभुरिग्जगती। छन्दांसि उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवीं व्यूऽदुः ॥१॥
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवायदेजथाः मरुतोरुक्मवक्षसः।
ऊर्जं चतत्र सुमतिं चपिन्वत यत्रानरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥२॥
उदप्रुतो मरुतस्ताँइयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति।
एजाति ग्लहा कन्येऽव तुन्नैरुतुन्दुानापत्येव जाया ॥३॥

"सस्रुषी" (६।२३) भी इसी तथा उपरोक्त समस्तगण कर्मविधियों में है। कौ० ४।६

अपांभैषज्यम्। (कां ६ सू० २३)

१-३ शान्तातिः। आपः। १ अनुष्टुप्, २ त्रिपदागायत्री, ३ परोष्णिक्। छन्दांसि उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः।

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः। वरेण्यक्रतुरहमपोदेवीरुप ह्वये ॥१॥
ओता आपः कर्मण्याऽमुञ्चन्त्वितः प्रणीतये। सद्यःकृण्वन्त्वेतवे ॥२॥
देवस्यसवितुः सवे कर्म कृण्वन्तुमानुषाः। शंनो भवन्त्वपओषधीः शिवाः ॥३॥

"हिमवतः प्रस्रवन्ति" (६।२४) उपर्युक्त समस्तगण कर्म विधियों में है। विशेष— हृदय सम्बन्धि समस्तरोग, कामलारोग, जलोदररोग निवारण भैषज्य कर्म में नदीजल प्रवाह के अनुकूल जलका उसमें अपामार्ग, पृश्निपर्णी, कास दूब-दाभ डालें, अभिमन्त्रितकरें इन तीनो ऋचाओं से जलको आलोडितकर रोगी को इन तीनों ऋचाओं से, छींटे दें, स्नान-आचमन करायें। कौ० ।४।६ इससे हृदय का दाह-नेत्र दाह भी दूर हो जाता है। अनुभूत।

अपां भैषज्यम्॥ (६।२४)

१-३ शान्तातिः। आपः। अनुष्टुप्

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः।
आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन् हृद्द्योत भेषजम् ॥१॥

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२॥
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वायानद्य१ स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

एनोनाशनम् (कां० ६ सू० ५१)

१-३ शान्तातिः । आपः, ३ वरुणः । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप् ३ जगती ।

वायोपूतः पवित्रेणप्रत्यङसोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्ययुज्यः सखा ॥१॥
आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हिरिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२॥
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३ श्चरन्ति ।
अचित्या चेत्तवधर्मा युयोपिममा नस्तस्मा देनसोदेवरीरिषः ॥३॥

शान्तिः शब्द या शान्तिगण या महाशान्ति "सर्व पाप प्रशमन योजनत्वात शान्ति शब्द प्रयोगः संव्यवहाराभावात् । एतानि युक्तानि महाशान्ति संज्ञाभवतीति वाक्य विशेषः । (केशव) इह शान्ति उदके सर्वेषां सूक्तानां समुच्चयः; अन्यत्र सर्वत्र यथोक्तेनन्यायेन विकल्पः । स ॥ उभयतः शान्तिगणस्य प्रारम्भे समाप्तौ च पिप्पलादि गणशान्तिः (अ० प० ३४।१) कौ० कं ८।१६

गंगादि सर्वाभिरद्भि, आनीतोदकं (अ० वे० ६।१०-१) ॥ पृथिव्यै श्रोत्राय न (बृहच्छान्तिगण के अन्त में उल्लिखित) ॥ इति तृचेन शान्त्युदक मध्ये शान्ति जलं प्रक्षिपतिपुनः "पृथिव्यै श्रोत्राय" इति तृचेन अग्नि प्रर्युक्षति ।

(शान्तिगणाः) (७।६९।७२)

१ शान्तातिः । सुखम् । पथ्यापङ्क्तिः । अम्बादिगण, अपांगण, पिप्पलादिगण कार्येषु विनियोगः ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रतिधीयतांशमुषानोव्युऽच्छतु ॥१॥

शान्तिः । (१९।९-१) (१९।१०-१)*

॥ जलसूक्त (सलिलगण, पिप्पलादिगण ॥

अस्य ७।६४। सूक्तस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप्; ४ त्रिपदानिवृत्

*** टिप्पणी :—अद्भुच्छान्ति प्रकरण म दख ।**

परोष्णिक् छन्दांसि अम्बादिगण, सलिलगण, पिप्पलादिगणकार्येषु तथा अद्भुतमहाकार्ये, धूम्रकेतु दर्शनदोष परिहरणे कण्ठमाला (कैन्सर) जलोदर भैषज्ये तथा अन्त्येष्टि स्वस्त्ययन विधौ विनियोगः।

अपांदिव्या अचायिषं रसेनसमपृक्ष्महि।
पयस्वानग्नआगमं तंमा संसृज वर्चसा ॥१

सं माग्ने वर्चसासृजसंप्रजयासमायुषा।
विद्युर्मे अस्यदेवाइन्द्रोविद्यात्सहऋषिभिः ॥२

इदमापः प्रवहतावद्यं चमलं चयत्।
यच्चाभिदुद्रोहा नृतं यच्चशेपे अभीरुणम् ॥३

एधोऽस्येधिषीयसमिदसिसमेधिषीय। तेजोऽसि तेजोमयि धेहि ॥४

मंत्र ३ (अभिदुद्रोह, अनृतं, अभीरुणं तथा अवद्यंमलंप्रवहत) क्रमशः अन्य से कपट, घात पात, छल करना; असत्य भाषण; अकारण निर्भीकता से गालियां आदि देना, मन, वाणी, इन्द्रियों से अन्तकरणादि से किये द्रोह जनित वरुणशाप से उत्पन्न रोग-जलोदरादि के निवारणार्थ आकाश या झरना या नदी; नदजल कार्य में लें, नदीतीर में मण्डप बना, रोगी को उपरोक्त जल के प्रवाहोन्मुख बिठायें इन सूक्तों से छींटे दें, स्नान करने योग्य हो स्नान करायें। इसके साथ "इन्द्रेमं प्रतरं कृधि" ६।५-२ से इन्द्र तथा "अप्सु मे राजन्" (७।८८) से वरुण की शान्ति की जाती है। (कौ० १३।३५) न० क० (१४)

अस्य ६।५-२ मंत्रस्य अथर्वाऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक छन्द उपर्युक्त प्रयोजने इन्द्र स्तवने होमे च विनियोगः।

इन्द्रेमं प्रतरं कृधिसजातानामसद्वशी।
रायस्पोषेण सं सृजजीवातवे जरसे नय ॥६।५-२)

न० क० १४ "अथातोद्भुतमहाशान्तौ दिशोयजते" इतिप्रक्रम्य "इन्द्रेमंप्रतरं कृधि" अस्य (७।८८) सूक्तस्य शुनः शेषः ऋषिः। वरुणोदेवता। अनुष्टुप् २ पथ्यापंक्तिः ३ त्रिष्टुप् ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् छन्दांसि। जलोदरादिभैषज्ये, वारुणहोमे जपे एवं च तृतीयमन्त्रस्य दाहसंस्करान्ते जपे स्वस्त्ययने च विनियोगः।

अप्सु तेराजन्वरुणगृहोहिरण्ययोमिथः। ततोधृतव्रतोराजासर्वाधामानि मुञ्चतु ॥१

धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुणमुञ्चनः।
यदापो अघ्न्याइति वरुणेति यदूचिमततो वरुण मुञ्चनः ॥२

उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रतेतवानागसो अदितये स्याम ॥३

प्रास्मत्पाशान्वरुणमुञ्च सर्वान्य उत्तमा अधमावारुणाये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वास्मदथगच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४

यह प्रथम अध्याय में निर्दिष्ट (आकाशीजल) के विषैले जल से गिरने से उत्पन्न वरुणदोषी की चिकित्सा तथा यमपाश से मुक्ति के हेतु ही है, जो स्थूल से परे सूक्ष्मशरीर, मन वाणी, अन्तकरण की निर्दोषता से ही स्वस्त्ययन, तेज, दीर्घायु प्रदायक है। यह रोग जल से उत्पन्न तथा आकाशी; पावन जलों से ही निवृत होते हैं।

अस्य ६।६१ सूक्तस्यभृग्वंगिरा: ऋषयः। यक्ष्मनाशनं ३ आपः देवता। अनुष्टुप् छन्द सर्वरोगभैषज्ये, जपे, होमे, अर्घ्यप्रदाने, यव मणि अनुमन्त्रणे, अवसेचने च विनियोगः।

इमं यवमष्टायोगैः षडयोगेभिरचर्कृषुः ।
तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये ॥१

न्य१ ग्वातो वातिन्यऽक्तपतिसूर्यः ।
नीचीनमघ्न्यादुहे न्यऽग्भवतुते रपः ॥२

आप इद्वा उंभेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजी स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३

यव के भूषा या यवभुषी डालकर जलतप्तकर अभिमन्त्रितकर रोगी को स्नान उषा काल में कराये जल से सेकदे। चिकित्सार्थ ऊपर से नीचे ही शरीर पर ढाले। जैसे अपान वायु नीचे जाता है सूर्य किरणें नीचे आती हैं, गौ नीचे भाग से दूध देती है वैसे तेरा रोगनीचे के मार्ग से जल से जावे (आपः अमीवचातनीः) (आपः विष्वस्य भेषजीः) (आपः इत् वैउ भेषजीः) इन उपर्युक्त समस्तरोगों की भेषज निस्सन्देह जल है। कौ० ४।४; ६।५७ इसकी आधी आधी ऋचाओं से ही वरुणदेव को आहुति दें। तीन; जौ की भूषी से युक्त, जौ के भूसे से ही तप्त पात्रों के जल को अभिमन्त्रितकर २ से अर्घ्य दे; तीसरे में तीर्थरज, वामी की रज, यज्ञीयभस्म डालकर रोगी को ऊपर से नीचे की ओर झाड़ा दे मणि-बन्धन में निर्दिष्ट मणिधारण भी करायें।

अस्य ६।५७ सूक्तस्य शंतातिः ऋषिः। रुद्रः देवता। १।२ अनुष्टुप्; पथ्यावृहती छन्दांसि मुखरहित समस्तव्रण (अदृष्ट कालावैंकरादि) कण्ठमाला, गण्डमाला (कैन्सर) जलोदरादि भैषज्ये विनियोगः। कौ० ४।७

इदमिद्वा उंभेषजमिदंरुद्रस्यंभेषजम्। येनेषुमेकतेजनांशतशल्यामपब्रवत् ॥१

जालाषेणाभिषिञ्चत जालाषेणोपसिञ्चत । जालाषमुग्रंभेषजं तेन नोमृड जीवसे ॥२
शं च नो मयश्च नो मा चनः किं चनाममत् ।
क्षमारपोविश्वं नोअस्तुभेषजंसर्वंनो अस्तुभेषजम् ॥३

इस जल के साथ गोमूत्र से भी सेकदे। जलों के झाग, नदीफेन, समुद्रफेन तथा दन्तमल में से कोई भी अभिमन्त्रितकर प्रयोग उपरोक्त व्रणादि चिकित्सा में करें।

ये जलनिम्न प्रकार के मन्त्रों में कहे हैं।

(१) दैवीः (दिव्यऽ) आपः (४।३) आकाशो वार्षिकी जल। (२) वार्षिकीः आपः (६।४) (३) सिन्धुः (४।३) नदी तथा समुद्रो से प्राप्त। (४) अनूप्याः आपः (६।४)। (५) धन्वन्याः आपः (६।४) स्रोतों के। मरुभूमि, रेतीलीभूमि-वालुकामयप्रदेश के जल। (६) खनित्रिमाः आपः (६।४) कुए वावली नलों के जल।

जल में औषध

(१) **अप्सु अमृतम्** (४।४) (२) **अप्सुभेजषम्** (४।४) (३) **शिवतमः रसः** (५।२) (४) **आपः मयोभुवः** (५।१)। (५) **अप्सुविश्वानि भेषजानि** (६।२) (६) **आपः पृणीतभेषजम्** (५।४)

जल में समता विषमता है। शं से समता यो से विषमता निर्दिष्ट की है। जल वल, वीर्य, रमणीयता, पुष्टि, सुस्थिति, स्वीकार्य करने योग्य समस्तगुणों से युक्त, दीर्घायु प्रद है।

जल में वीर्य है (५।३) **आपोजनयथाचनः**। (४।४) **अपामुतप्रशस्तिभि रश्वाभवथ. वाजिनो गावोभवथ वाजिनीः**। (४।१) **अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो**" आदि २ जल में प्रजनन शक्ति के द्योतक हैं।

मेघों में विद्युत, अग्नि है, मेघों के वनने के कारण तथाविधि सू० ६।२२ में वर्णित है मेघों में जलों में वरुण का घर है। मेघों के राजा देवराज इन्द्र हैं।

अग्नि, इन्द्र, वरुण, सभी को नैरुज्य, दीर्घायुष्य यज्ञों से प्रदान करते हैं इस प्रकार अम्बादिगण, (सलिलगण) अपांगण का वर्णन किया है।

इतिश्री सलिलगण, अम्बादिगण, अपांगण, पिप्पलादिगण।

"वन्ध्यादिका यज्ञमण्डप प्रवेश"

"प्रश्न विज्ञान—तथा कार्यसिद्धि परीक्षा"

'**वेनस्तत्**" (२।१) इससे कार्य सिद्ध होगा या नहीं इसकी परीक्षा करें। इसीसे वस्तु अभिमन्त्रित करें।

१) पाँच ग्रन्थियों (गाठों) से युक्त बांस की दण्डी; काम्पील वृक्ष की शाखा, पृथक-पृथक या दोनों ही अभिमन्त्रित करें—अपने अभीष्ट कर्म के चिन्तवन के साथ समतल भूमि

में ऊपर की ओर करके धरैं-गाड़ें। यदि उपरोक्त दण्डादि अपनी निश्चित चिन्तित दिशा की ओर गिरें तो कार्य सफल समझें। विपरीत दशा में गिरे तो असफल।

२) वाण को धनुष पर चढ़ा अभिमन्त्रित कर निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर फेंकै यदि निर्दिष्ट लक्ष्य पर गिरे तो कार्य सिद्धि।

३) उत्पादक के घटपूर्णजल में या कमण्डल-लोटा में जल भरें उसे अलग पात्र में डाल दें। पुन: दूध उत्पादक से लेकर उसी लोटा, कमण्डल में भरें कम रहे-या अधिक रहे (एक से दूसरी वस्तु) और जैसा चिन्तवन किया हो उसके अनुसार अर्थसिद्धि कार्यसिद्धि समझें।

४) विनापूर्व गिने दाभों की मुट्ठी भर लैं, अभिमन्त्रित कर कार्यका चिन्तवन कर गिनें-सम संख्या में हों तो अभीष्ट सिद्धि, विषम हो तो असिद्धि समझें।

५) समिधायें अभिमन्त्रित कर अग्नि में डाल दें यदि वे परिक्रमा क्रम से स्वत: जलें तो अभीष्ट सिद्धि।

६) खेलने की गोटें विना गिने अभिमन्त्रित कर फेंकै। अपनी अभीष्ट संख्या के गिरें तो सिद्धि।

७) हाथ की दो अंगुलियों को अभिमन्त्रित करें-कार्य का चिन्तवन कर अन्य वोधशून्य वालसे स्पर्श करायें, यदि अपनी निश्चित अंगुलि का स्पर्श करे तो सिद्धि।

८) २१ वार शर्करा अभिमन्त्रित कर लैं-कार्य का चिन्तवन कर दो भागों में वांटैं अपने उद्देश्यानुसार सम या विषम–जो भी दोनों भागों में से अपने निर्धारित हो; अर्थ सिद्धि:।

९) नष्टधन, चोरीगयेधन, पशु आदि के ज्ञानार्थ जलपूर्णघट हल या पाशे (गोट) कोई भी या सभी नवीन वस्त्र से ढकै, इसीसे अभिमन्त्रित करें, और जिस कन्या को अभीऋतु प्रारम्भ न हुआ हो उनसे कहैं उठाकर ले जाओ? वे जिस दिशा में लेकर चलें उधर ही नष्टधन, चोरी की वस्तु, भागा पशु या व्यक्ति है। यह समझें।

१०) विवाह से पूर्व क्वारी कन्या के सौभाग्यादि के लक्षण ज्ञान के लिए, पैरों की (उसीके) मिट्टी, वामी की मिट्टी, चौरास्ता की मिट्टी और श्मशान की मिट्टी चारों को इसीसे अभिमन्त्रित कर कन्या से कहे–इनमें से एक को उठाओ? आकृति (पैर) या वामी में से किसी को स्पर्श करे या उठाये तो कल्याण (आकृतिलोष्ठ–क्षेत्रमृत्तिका)।

"वेनस्तत" (२।१) यदि चौरास्ता की मिट्टी स्पर्श करे तो मरण, श्मशान की स्पर्श करे तो मरण, वैधव्य, समझै।

(११) कुमारी की अञ्जलि में जलपूर्णतयाभर-इसीसे अभिमन्त्रित करें, उससे कहैं इसे फेंक दो। यदि पूर्व को फेंके तो कल्याण। कौ० ५।१

"सन: पिता" (२।१-३) इस ऋचा से अग्नि चयन में षोडशगृहीतोत्तराधाज्य से वैश्व कर्मण होम करें। इससे पूर्व **"यो विश्वचर्षणि:"** (१३।२-२६) से पूर्व प्रारम्भ कर। उपरोक्त **"सन: पिता"** (२।१-३) से उत्तर होम करें। वै० ५।२।

वन्ध्या प्रजनन करणादि

कौशिकसूत्र कण्डिका ३४ के निर्देश से वन्ध्या को पश्चिमद्वार से मण्डप में प्रवेश करना और पूर्व अभिमन्त्रित जल से छीटें देना, शान्ति औषधियां शिरपर रखवाना, पत्ते अर्जुन याढाक के व; शाल्मली की लकड़ी की पटली को अभिमन्त्रित करना।

प्रवेश समय का सूक्त

परमधाम। (अ० वे० कां० २ सू० १)

१-५ वेनः। ब्रह्म-आत्मा (त्रिष्टुप्)। ३ जगती छन्दः मण्डपद्वार, देहली परमधाम अनुमन्त्रणे, उपस्थाने, होमे, अम्बादिगणकार्ये, मेधाजननकर्मषु विनियोगः।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यऽनूषत व्राः ॥१

प्रतद् वेचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वोधाम परमं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहितागुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२

सनः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधएकं एवतं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३

परि द्यावा पृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३ षो अग्निः ॥४

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्यतन्तुं विततं दृशेकम्।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५

इससे आसन के नीचे; शिर पर शान्त्योषधिरखवा कर; शान्ति औषधियों को तोरणवत लटका कर उसके नीचे आसन पर बैठायें तव छिड़कें।

इससे पुरोडाश बनायें अभिमन्त्रित करें। इसीसे वन्ध्या को दें।

त्रिभुवनपति सूक्तम् (कां २ सू २)

१-५ मातृनामा। गन्धर्वाप्सरसः। त्रिष्टुप्, १ विराड जगती, ४ त्रिपाद्विराण्णाम् गायत्री ५ भुरिगनुष्टुप्। छन्दासि, त्रिभुवनाधिपति उपस्थाने, उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेकएव नमस्योऽविक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्यदेव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥१

दिविस्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यऽः सशेवाः ॥२

अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सुरास्वपिगन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनम आहुर्यतः सद्यआ चपरा च यन्ति ॥३

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४

याः क्लन्दास्त मिषी चयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५

कौ० सू० कं० ३४ सूत्र २ "आवृजितायै" मृतवत्सा, गर्भस्राविणी या होते ही सन्तति नष्ट होने वाली, या एक सन्तति होकर सन्तति न होने वाली अथवा केवल कन्या ही जिसके होती हों। अ० वे० कां २ सू० ३ से ३ मण्डप पूर्वद्वार वाले बनायें। जिनमें प्रथम का एक द्वार पश्चिम को भी रक्खे।

"दीर्घायुत्वाय" (२।४) से कृत्यादूषण निवारणार्थ, आत्मरक्षार्थ, समस्त विघ्न शमनार्थ-जङ्गिणमणि (अर्जुन) को भाषा में शण के सूत्र में पुरोकर, पूजाकर, अभिमन्त्रितकर धारण करें। कौ० ५।६ (जङ्गिण अर्जुन वृक्षविशेष है वाराणसी में प्रसिद्ध है।

आस्रावस्यभेषजम् ॥ कां २ सू० ३ ॥ सूत्र परिशिष्ट में दिया है। अ० कां २ सू० ४— **दीर्घायुः प्राप्तिः** में अर्जुनअभाव में पलाश के पत्ते को अभिमन्त्रित करें।

१-६ अथर्वा:। (चन्द्रमाः) जङ्गिडः। अनुष्टुप् १ विराट् प्रस्तारपङ्क्ति ।

दीर्घायुत्वाय बृहतेरणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥१॥

जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः ॥२॥

अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥३॥

देवदत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४॥

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥५॥

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्रण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

इससे अर्जुन या पलाशपत्र पर शाल्मलि की लकड़ी कां २ सू० ५ से अभिमन्त्रित कर रक्खें । स्त्री को उसपर इसी सूक्त से विठाये । पश्चिम द्वार से शिरपर काले वस्त्र धारण कर स्त्री इसमें प्रवेश करती है । उपरोक्त पलाश के पत्तों को एक मण्डप पर तोरण की भांति लटकाये भी । यही शान्ति औषधि शिरपर रखवाकर छीटे दें ।

"इन्द्र जुषस्वः" (२।५) इससे वल वृद्धि के लिये इन्द्रदेव का उपस्थान, जप, होम करें । कौ० ८।१० । षोडशग्रह, तथा इन्द्रोपस्थान में भी यह है (वैतान) ४।१ "ऐन्द्रीं" शान्ति-विजय-बल, पुष्टि, पशुप्राप्ति, पशुवृद्धि में, परचक्र के आनेपर उससे उत्पन्न विपरीत समस्या समाधान में उपरोक्त शान्ति करें । नं० क० १८ । (कोषीत कोपनिषद ३।१) । इन्द्रवाक्य—"**विशीर्षाणं त्वाष्ट्रं अहनम् अरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छन्**" ,,**समास्त्वाग्ने**" (२।६)

"**समास्त्वग्ने**" (२।६); "अभ्यर्चत" (७।८२) से सम्पत प्राप्ति हेतुहोमव अग्नि का उपस्थान करें । कौ ७।१० इसीसे भूत, चोर, तथा भयङ्कर वर्षों के भय दूर होते हैं । कौ० १३।१० न० क० १८। वै० श्रौ० ५।१ राजारात्रि के "आरात्रिक विधान" में अतिनिहः" (२।६-५) से दीप प्रज्वलित करे । परिशिष्ट ।७।२ इसीके साथ "प्रान्यान्" सूक्त भी है । इससे शूकर आदि योनि प्राप्तिपाप; अशोभनबुद्धि, देहशोषक रोग, शत्रु नष्ट हो, पुत्र-पौत्र, धन-धान्य-धर्म-धरा, कीर्ति-वल वृद्धि होती है ।

यह तृतीय अध्याय में दीपस्थापन तथा अद्भुद्दर्शन दोष निवारण में मन्त्र हैं ।

इन्द्रस्य वीर्याणि (कां २ सू० ५)

१-७ भृगुराथर्वणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ उपरिष्टानिचृद् वृहती, २ उपरिष्ठाद्विराड् वृहती, ३ विराट् पथ्या वृहती, ४ जगतीपुरोविराट् । उपर्युक्त प्रयोजने विनियोगः ।

इन्द्र जुषस्वप्र वहा याहिशूर हरिभ्याम् ।
पिवा सुतस्यमतेरिहमधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥

इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्व१र्णोप त्वामदाः सुवाचो अगुः ॥२॥

इन्द्र स्तुराषाण्मित्रोवृत्रं यो जघान यतीर्न ।
विभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रूनमदे सोमस्य ॥३॥

आत्वा विशन्तु सुतास इन्द्रपृणस्व कुक्षी विड्ढिशक्रधियेह्यानः ।
श्रुधीहव गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥४॥
इन्द्रस्य नु प्रावोचं वीर्याऽणि यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥५॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यऽततक्ष ।
वाश्राइव धेनवः स्यन्दमानाअञ्जः समुद्र मव जग्मुरापः ॥६॥
वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिवत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥७॥

इस सूक्त से छीटें दें। तदनन्तर पूर्व और पश्चिम द्वारोंपर तोरण की भांति उस अर्जुन पलाशपत्र को जिसपर लकड़ी रक्खी थी लटका दें। और पश्चिम द्वार के मण्डप का कार्य सम्पादन कर पूर्व द्वार से दूसरे मण्डप में प्रवेश करे।

क्षेत्रीय दोष निवारण

"**क्षेत्रियात् त्वा**" (२।१०) इस सूक्त से "**उद्गातां भगवतो**" (२।८) में वर्णित पितृ परम्परागत कुष्ठ-क्षय-अपस्मार श्वांस आदि रोग, तथा निर्ऋति दोष तथा वरुण शापजनित रोग निवारण में अभिमन्त्रित जल से निवासगृह के बाहर छीटें दें। तथा "**अपेयम्**" ऋ० २ से ऊषाकाल में गर्म जल की वाष्प से सेकें-जल में पड़ी गर्मपत्तियों से सेक दें। ऋ० ३ ॥ बभ्रोः से अर्जुनवृक्ष की छाल, जौ की भूसी या भूसा, तिलों को सूखो मञ्जरी (फली) मिला पीसकर, अभिमन्त्रितकर बांधें। इसी ऋचा ३ से शूकर की खोदी जंगल की मिट्टी या गेंहू के क्षेत्र की मिट्टी या वामी की मिट्टी को कच्चे पशुचर्म में लपेट कर बाँधें। "**नमस्ते लाङ्गलेभ्य**" ऋ० ४ से बैल से युक्त हलके जुआ के नीचे रोगी को बिठा अभिमन्त्रित जलसे छींटे दें। "**नमः सहस्रसाक्षेभ्यः**" ऋ० ५ से शून्यगृह में उसकी खोतर में या उसमें गड्ढाकरके उसीमें मकान का फूस (तृण) बिछाये, उसपर रोगी को विठाये अभिमन्त्रित जल से छींटे दें, स्नान करायें। यह उषाकाल में ही उत्तम है। कौ० ४।३। "**विचृतौ**" (मूल नक्षत्र जनित दोष निवारण पृथक् वर्णित है। इस क्षेत्रिय व्याधि के निवारणार्थ, अभिमन्त्रित जल से रोगी "उपरोक्त जैसा भी हो" को चौरास्ता पर बिठाकर, रोगी की गांठों को (काम्पील) कहत या कत्था की छाल से बाँधें, कूर्च के साथ रोगी को छींटे दें, स्नान करायें। कौ० ४।३ इससे नैर्ऋति (पिशाची) ब्रह्मराक्षसादि पिशाचगण, तथा राहुग्रह से उत्पन्न समस्त व्याधियों को मन्त्रबल से दूर करें।

अ० कां २ सू १०, वरुणादि पाशमोचनन्।

१-८ भृग्वङ्गिराः। १-८ द्यावापृथिवी, ब्रह्म; २ अग्निः, आपः, औषधयः, सोमः, ३ वातः दिशः, ४-८ वातपत्नीः, सूर्यः, यक्ष्मं, निर्ऋतिः,। १ त्रिष्टुप्; २ सप्तपदाष्टिः, ३-५, ७, ८ सप्तपदाधृतिः, ६ सप्तपदात्यष्टिः, ८ (२,३) द्वौपादौ उष्णिग हौ।

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१॥
शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥२॥
शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥३॥
इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥४॥
तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥५॥
अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥६॥
अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥७॥
सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशान् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥८॥

तदनन्तर अ० का० २ सू० १४ निःसाला से गूलर की समिधाओं से मृतापत्यादिदोषी होम करें ।

क्षेत्रिय रोग निवारण भैषज्य

अ० वे० कां० २ सू ८ ऋचा १ से ५; भृग्वङ्गिरा ऋषी बनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् । देवते; अनुष्टुप् ३ पथ्यापंक्तिः, ४ विराट् ५ निचृत्पथ्यापंक्तिच्छन्दांसि पारम्परिक क्षेत्रियरोग निवारणे मूल जनितदोष भैषज्ये, स्नाने, अवमार्जने, होमे च विनियोगः ।

उद्गातां भगवतीविचृतौ नाम तारके । विक्षेत्रियस्यमुञ्चतामधमंपाशमुत्तमम् ॥१

अपेयंरात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः । वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपक्षेत्रियमुच्छतु ॥२

वभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्यते पलाल्यातिलस्य तिलपिञ्ज्या ।

वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नमईषायुगेभ्यः । वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपक्षेत्रियमुच्छतु ॥४

नमः सनिस्रसाक्षेभ्योनमः संदेश्येऽभ्यः ।

नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपक्षेत्रियमुच्छतु ॥५

इसी के सन्दर्भ में निम्न सूक्त भी इन्हीं आधिव्याधि निवारण में विहित हैं । जो उपर्युक्त वर्णित हैं । ये यम; वरुण; अग्निः आदि देवपाशवन्धनों से मुक्ति प्रदायक हैं ।

कां ७ सू ८३ ऋचा १ से ४; शुनः शेपः ऋषिः । वरुणो देवता । अनुष्टुप् २ पथ्या पंक्तिः ३ त्रिष्टुप् ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् छन्दांसि, उपर्युक्त प्रयोजने विनियोगः ।

अप्सु तेराजन्वरुण गृहोहिरण्ययोमिथः । ततोधृतव्रतोराजासर्वाधामानि मुञ्चतु ॥१

धाम्नोधाम्नोराजन्नितो वरुणमुञ्चनः ।

यदापो अघ्न्याइतिवरुणेतियदूचिमततो वरुणमुञ्चनः ॥२

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।

अधावयमादित्यव्रतेतवानागसो अदितये स्याम् ॥३

प्रास्मत्पाशान्वरुण मुञ्चसर्वान्य उत्तमा अधमा वारुणाये ।

दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वास्मदथ गच्छेमसुकृतस्यलोकम् ॥४

ये जन्मान्तरीयपाप या प्रेत योनियों के बन्धनों से, मूल; गण्डान्तमूल; तिथि गण्डान्त; युगलजन्मजातारिष्ट तथा भवव्याधि वन्धनों से मुक्त प्रद हैं ।

"मृतापत्यादि दोषनिवारण विधि"

"निःस्सात्नां" (२।१४) इस सूक्त से मृतापत्या की सन्तति नष्ट हो जाते रहने के (बन्ध्यात्व) दोषपरिहार के लिये तीन पृथक् २ मण्डपों में स्त्री क्रमशः सैमर-शिरस, छौंकर

(शमी अपामार्ग आदि के तोरणबाँधैं, उनके नीचे जङ्गिड) के अ० का० २।४ से अभिमन्त्रित, कर उनके ऊपर कां २।५ से अभिमन्त्रित सेंमर की लकड़ी रख उसपरमृतापत्या को बिठायें काला वस्त्र पहिनायें या उढायें। उसके नीचे अभिमन्त्रित शान्ति औषधियों की पोटली रक्खें, उसे पति द्वारा अभिमन्त्रित जल से अभिमन्त्रित मुष्ठि से छींटे दिलायें। कालेवस्त्र पोटली आदि का वहीं परित्याग करादें। इस मण्डप में पश्चिम द्वार से घुसायें और पूर्व द्वार से निकालें उसी पूर्व द्वार से दूसरे मण्डप में घुसायें वहाँ भी तोरण के नीचे पत्ते के ऊपर लकड़ी तथा पोटली शिरपर पूर्ववत रखवाकर स्नान (४।३३) से करा दें। उनवस्त्रों को परित्यागकर स्त्री धौतवस्त्र (बिना धोवी के धुले) कां २।१३ में निर्दिष्टरीति से अभिमन्त्रितकरा धारण करे। कां २।३६ से अनुलेपादिकर उस मण्डप के पूर्वद्वार में होकर तीसरे मण्डप में जहाँ अग्नि स्थापित है, पूर्वद्वार से प्रविष्ट हो स्वकीय आसनपर बैठ गूलर की समिधाओं से आहुतियां दे। यज्ञ समापनकर पुरोडाश आचार्य उसके पति को दें वे पत्नी को दें-पुत्रेष्टि विधि देखें। कौ० ४।१०

यदि उस घर की गौ आदि भी वन्ध्या ही हो जाती हैं या बाग में फल न आते हों या घोड़ी, महिषी भी गर्भ धारण न करती हों या एक बार फल आकर या बच्चे एक ही के उपरान्त प्रजनन बन्द हो गया हो या स्वकोयकूप सूख गया हो तो उसे दैवहत समझें, इसीसे वशाशमनयाग करें। "यः आत्मदा" सूक्त भी इसी में है। कौ० ५।८ यह चातनगण कर्मविधि में भी है। शा० क० १५

१-६, चातनः। शालाग्नि दैवत्यम् अनुष्टुप्, भुरिक्, ४ उपरिष्ठा द्विराड् बृहती, वन्ध्यात्वाद्युपर्युक्त व्याधि भैषज्ये विनियोगः।

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वऽम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्योऽ नाशयामः सदान्वाः ॥१॥

निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातया महे ॥२॥

असौयो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यऽः ।
तत्र सेदिन्र्युऽच्यत सर्वाश्च यातुधान्यऽः ॥३॥

भूतपति निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न असीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥

यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५॥

परि धामा न्यासामाशुर्गाष्ठामि वासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन्वो नश्यंतेतः सदान्वाः ॥६॥

(६) विषघ्नम् । (अ० कां ४ सू० ६ मं० ४ प्र० ७ अनुवाक् १)

अभिचारकर्म दीक्षा

"द्यावापृथिवी" (२।१२) से अभिचारकर्म दीक्षा के निमित्त वेणु (वांस) का दण्डपूर्व प्रार्थना कर दूसरे दिन पूजा के उपरान्त काटकर लायें और द्वेष कर्त्ता प्रतिपक्षि के स्तम्भनादि विनियोगकर्म साफल्यार्थ-दक्षिणाभिमुख भागते हुए शत्रु के पैरों में बांस के लाये पत्तों को फेंकें, उपरोक्त दण्ड निर्मितपरशु (फरसा) की नोक से पत्तों को छेदें। उन पत्तों व शत्रु को पांसुरज दोनों को (वधकपात्र) ऐरण्ड या पलाश, वट या पिपल के निर्मित दोनों में डाले और ले आये, उन्हें भारपर भूने। कौ० ६।१

कर्त्ता उपवासादि समस्त अनुष्ठानीय नियमों का पूर्णतया पालन करें। इससे सन्मार्ग गामी के अभीष्ट चिन्तनादि कार्यों में बाधक वाह्याभ्यन्तर शत्रु नष्ट हो जाते हैं इसकी ऋ० ४ "अशीतिभि" के तृचाशीतभि के विषय में ऐ० आ० १।४।३

"गायत्री तृचाशीतिः औष्णिही तृचाशीतिः बार्हती तृचाशीतिः। तथा इष्टापूर्तम श्रुति विहितं यागादि। पूर्तं-स्मृत्युक्तं कूपाराम तटाकादि। इस या सभी अभिचारकर्मों में अपने अनिष्ट कर्त्ता प्रतिपक्षी का नाम इस प्रकार जोड़ें—अमुम् अपकर्त्तारम् अमुकनाम्ने शत्रु देवसंम्बन्धिना-मत्कृपाभिचार जनितकृत्यारूप देवताकतेन निगृह्णामि।"

शत्रुनाशनम् (कां० २ सू० १२ मन वशीकरण पतिलाभार्थ

१–८ भरद्वाजः। १ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, २ देवाः; ३ इन्द्रः, ४ आदित्या वसवो आङ्गिरसः, पितरः, ५ सोम्यासः, पितरः, ६ मरुतः, ७ यमसादनम्, ब्रह्म, ८ अग्निः त्रिष्टुप्, २ जगती, ७–८ अनुष्टुप्। मनवशीकरणे, स्थिरीकरणे, मनोविकार निराकरणे, उपर्युक्तेकर्मणि-उपस्थाने होमेवि नियोगः

द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्यपत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१

इदं देवाः शृणुत येयज्ञियास्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरितेनि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२

इदमिन्द्र शृणुहि सोमपयत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षंयो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिराङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४

द्यावापृथिवी अनुमा दीधीथां विश्वे देवासो अनुमारभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५

अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ॥६

सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ॥७

आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८

"आयुर्दाअग्ने" (२।१३) से गोदान नामक संस्कार में ब्रह्मचारी की दीर्घायु हेतु-होमान्त शिर का अभिमर्शन, अवसेचन-अवमार्जन करें। इसकी (२-३) ऋचा "परिधत्त:" इन दो से अभिमन्त्रित कर नवीन वस्त्र दें। ऋचा ४ ॥ "एह्यश्मानम्" से दक्षिण पाद से पासाण पर विठाये। "यस्य ते वासः" (५) इस ऋचा से पूर्व के त्यक्त वस्त्र कर्त्तालिले। इन्हीं २ ऋचाओं से प्रातः काल में पुरोहित राजा को अभिमन्त्रित कर वस्त्र दे। आरात्रिकविधान में ४ शर्करा इसी सूक्त से चार दिशाओं में छोड़े पाँचवीं "एह्यश्मानम्" से राजा को स्थापित करे अ० प० (४।४) ।कुमारी को वस्त्र तथा वन्ध्यात्य दोष निवारणार्थ स्त्री की भी यही उपर्युक्त विधि है।

इस सूक्त से ये स्त्रियें उस पुरोडाश को इस सूक्त पाठ के साथ भक्षण करे पूर्व पति उसकी पूजा, नमस्कार कर खाये, उस उच्छिष्ट को पत्नी पतिदोनों ही परमेश्वर का पूजन कर उसे खाना चाहिये।

दीर्घायुः प्राप्तिः। (कां० २ सू० १३)

१-५ अथर्वा। अग्निः, २-३ बृहस्पतिः, ४-५ विश्वेदेवा। त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ५ विराड् जगती। उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥ १

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥२

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवाआयुष्टे शरदः शतम् ॥४
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥५

इससे परिक्रमा दे।

'यथा द्यौश्चपृथिवीच" (२।१५) तथा **"मनसे चेतसे धिये"** (६।४१) से इन्द्र जौ-(महाव्रीहि) साठी चावल के मिश्रित खिचड़ी को शान्ति जल से छींटे देकर अभिमन्त्रित कर होमान्त दीर्घायु की कामना से खायें। इससे जीवन के आगमिष्यमाणभय की शङ्का सर्वदा के लिये जाती रहती है। कौ० ७।५।

इस मन्त्र वल से द्यौ० पृथिवी के तुल्य चिरकाल निर्भयता रहती है।

अभयप्राप्तिः। कां २ सू० १५

१–६ ब्रह्मा। प्राणः, अपानः, आयुः। त्रिपाद्गायत्री छन्दः अभयार्थे उपस्थाने विनियोगः

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः। एवामेंप्राणमाबिभेः ॥१
यथाहश्चरात्री चनबिभी तोनरिष्यतः। एवामें प्राणमा बिभेः ॥२
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः। एवामें प्राणमाबिभेः ॥३
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः। एवामें प्राणमाबिभेः ॥४
यथासत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः। एवामें प्राण माबिभेः ॥५
यथाभूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः। एवामें प्राण माबिभेः ॥६

पति प्राप्ति विज्ञान

"आनो अग्ने" (२।३६) इस सूक्त से पति प्राप्ति कामना वाली कुमारी या जिसे स्वीकार करने के उपरान्त-अनिच्छा प्रगट करने वाला योग्यवर या कन्या (योग्यपत्नी) का इच्छुकवर-पूर्ण गुण युक्त सद्भावना से युक्त प्राप्त हो सके। इसके निमित्त क्षीरवना अभिमन्त्रित कर हवन के उपरान्त खिलायें। इसी कार्य में मधु-घृत, युक्त दुग्ध अभिमन्त्रित कर पिलायें। अभिमन्त्रित गुग्गुल-योनि को धूप देने के उपरान्त गोघृत मिला लेप करायें। इसीसे योनि को धूप दें। रात्रि में उषाकाल में काक बोलने से पूर्व ही धानों से होम करा, अग्नि की परिक्रमा करायें। इसी सूक्त से अभिमन्त्रित नाव पर कन्या को बिठायें-पांचवीं ऋचा **"भगस्य नावम्"** को जपते हुए उतारें। **पतिप्राप्ति विज्ञान कर्म साधन में** सात तांतों की पूजा कर, अभिमन्त्रित कर सात वछड़ों को बाँधे कुमारी से खुलवायें यदि वह स्वतः ही बिना समझाये प्रदक्षिण क्रम से खोले तो पति लाभ शीघ्र हो, समझें। इसी विज्ञान में एक वस्त्र से ढके हुए

वृषभ को छुड़वायें। कौ० १०।१। यह कन्या का चतुर्थ पति है **"सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरी यस्ते मनुष्यजाः"** (ऋ० वे० १०।८१।४०)

कुमारी को अपामार्ग की दन्तधान करायें, अपामार्ग युक्त जल से पाप-दुर्दैव, दुर्भाग्य शमनार्थ स्नान करायें, और पुनः धौत वस्त्रों को अपामार्ग से मार्जन करें, शरीर के अङ्गों का भी अवमार्जन करें, गुग्गुल धूप दें, लेप-चन्दन-रोली आदि का करायें तदनन्तर (२।३६) की विधि से कार्य करें। तो सुख-समृद्धि सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, ब्रह्मवर्च युक्त सौम्य-सदाचारी योग्य पति शीघ्र प्राप्त हो।

इस सूक्त की ऋचा ७ के निर्देश से हिरण्य गुग्गुल (स्वर्णगुग्गुल) को दूध (गौ बछड़े की समान लालरंग की) घी, शहद (ज्येष्ठी) मिला अभिमन्त्रित करै खिलायें। और इन्द्रियों से लेप करें। धूप दें यह भी प्रजनन इन्द्रिय को दें। इस प्रकार इन्द्रिय दोष दूर होते हैं वन्ध्यात्व नपुंसकत्व नहीं रहता, शुक्र-शोणित दोष दूर होते हैं यह सूत्र एवं-वर्तिकाकार दारिल (केशव) का अभिप्राय है। ऋचा ५ कुमारी को अनुकूल वर प्राप्ति का प्रतीक है।

कौ० सू० कं० ३४ सूत्र १२ **"पतिवेदनानि"** अं० कां० २ सू० १२ से पतिलाभार्थ अभिमन्त्रित करे। सूत्र १३ **"आनो अग्ने इत्यागमकृशरमाशयती"** ॥१३॥ अं० कां० २ सूक्त ३६ पतिवेदनन्।। से तिल-तण्डुल की खिचड़ी बनायें अभिमन्त्रित करें। अं० कां २ सू० १४ से वेदी को अभिमन्त्रित करले। हवन कर यज्ञावशेष को कन्या को दे कां० २ सू० १३ से कन्या उसे स्वयं सम्पूर्ण को सेवन करे यह पति प्राप्ति हेतु आचार्य द्वारा दिया जाना चाहिये।

कौ० सू० १४ **'मृगाखराद्वेद्यां मन्त्रोक्तानि संपातवन्ति द्वारे प्रयच्छति** ॥१४॥ अ० कां २ सू० ३६ ऋचा ७ के अनुसार हिरण्य गुग्गुल, एकरङ्ग की बछड़े की गौ के धारोष्ण दुग्ध में गोघृत, ज्येष्ठी (वसन्त) का शहद डालकर स्त्रीको पिलाये। उसी को स्त्री पुरुष प्रजनन इन्द्रियों में लेप करें, धूनी दें। कां २ सू० ३६ ऋचा ५ से कन्या भ्राता कुमारी को दक्षिणाभि मुखी करके घट की परिक्रमा कराये।

पतिवेदनम् (कां० २ सू० ३६)

१-८ पतिवेदनः। १ अग्निः, २ सोमः, अर्यमाः, धाता, ३ अग्नीषोमौ, ४ इन्द्रः ५ सूर्यः, ६ धनपतिः, ७ भगः, ८ औषधिः। त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, २-५-७ अनुष्टुप् ८ निचृत्पुर उष्णिक्। उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः

आनो अग्नेसुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सहनो भगेन।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ॥१
सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णासंभृतं भगम्।
धातु र्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥२

इयमग्ने नारीपतिं विदेष्ट सोमोहिराजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवातिगत्वापतिं सुभगा विराजतु ॥३

यथाखरो मघव॑श्चारुरे॑ष प्रियोमृगाणां सुषदा बभूव ।
एवाभगस्य जष्टेयमस्तु नारीसंप्रियापत्या विराधयन्ती ॥४

भगस्य नावमा रोहपूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोप प्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यऽः ॥५

आक्रन्दय धनपते वरमा मनसं कृणु ।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रति काम्यऽः ॥६

इदं हिरण्यं गुल्गुल्व यमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥७

आते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रति काम्यऽः ।
त्वमस्यै धेह्योषधे ॥८

कन्या को पतिलाभ

कन्या जिसको योग्य अनुकूलवर मिलने में विवषता हो उनके पिता-अभिभावुक प्रातः उषाकाल में कौओं के बोलने से पूर्व होम करे। होमान्त दशदिशाओं में वलिदान करें। यह ६।६० अयमायाति से कौ० ४।१० के निर्देश हैं।

अस्य सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। अर्यमादेवता। अनुष्टुप् छन्द पतिलाभार्थे जपे होमे उपस्थाने विनियोगः।

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद्विषितस्तुपः ।
अस्याइच्छन्नग्रुवै पतिमुतजायामजानये ॥१

अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनंयती ।
अङ्गोन्वऽर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ॥२

धातादाधार पृथिवीं धाताद्यामुतसूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातुप्रतिकाम्यऽम् ॥३

यदि कन्या मंगली हो या गुरुदोष हो यथा "नष्टात्मजाः" या ऐसे ही अन्य दुष्ट, त्रिकस्थान में पाप ग्रहों का दोष हो तो उसके निवारणार्थ निम्न २०।१३३ "विततौ किरणौ" का जप होम करायें।

विततौकिरणौ द्वौ तावा पिनष्टिपूरुषः। नवै कुमारितत्तथायथा कुमारि मन्यसे ॥१
मातुष्टे किरणौद्वौनिवृत्तः पुरुषानृते। नवै कुमारितत्तथायथाकुमारि मन्यसे ॥२
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसिमध्यमे। नवै कुमारितत्तथायथाकुमारि मन्यसे ॥३
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्तीवावगूहसि। नवै कुमारितत्तथायथाकुमारि मन्यसे ॥४
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमे वावगूहसि।
नवै कुमारितत्तथायथाकुमारि मन्यसे ॥५
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममतिह्रदे। नवै कुमारितत्तथायथाकुमारि मन्यसे ॥६

कुटिला पत्नि वशीकरण

यदि स्त्री कर्कशा हो, कलह प्रिया, निष्ठुर भाषिणी होतो कां० ६।८; ९, तथा १०२ वें सूक्तों से कौ० ४।११ में निर्दिष्ट विधि से वृक्षों की छाल-अगर तगर, चन्दनचूरा, शरखण्डा, आञ्जन घास, कूठ, लोध, श्वेत घास पीसकर घी में मिला अभिमन्त्रित कर लेपे और इन सूक्तों से जप होम करे।

अस्य ६।८ सूक्तस्य जमदग्निः ऋषिः। कामात्मा, २ सुपर्ण ३ द्यावापृथिवी, सूर्य देवते पथ्यापंक्तिः छन्द स्त्री वशीकरणे विनियोगः।

यथा वृक्षं लिबुजासमन्तंपरिषस्वजे।
एवा परिष्वजस्वमां यथामां कामिन्यसोयथामन्नापगा असः ॥१
यथा सुपर्णः प्रपतन्पक्षौनिहन्तिभूम्याम्।
एवानिहन्मितेमनो यथामां कामिन्यसोयथामन्नापगा असः ॥२
यथे मेद्यावापृथिवीसद्यः पर्येतिसूर्यः।
एवापर्यैमितेमनोयथामां कामिन्यसोयथामन्नपगा असः ॥३

अस्य ६।९ सूक्तस्य जमदग्निः। कामात्मा ३ गावः। अनुष्टुप्-उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः।

वाञ्छमेतन्वं१ पादौ वाञ्छाक्ष्यौ३ वाञ्छसक्थ्यौऽ।
अक्ष्यौऽवृषण्यन्त्याः केशामांते कामेन शुष्यन्तु ॥१

ममत्वादोषणिश्रिषं कृणोमिहृदयुश्रिषम् ।
यथा ममक्रतावसोमम चित्तमुपायसि ॥२
यासां नाभिरारेहणं हृदिसंवननं कृतम् ।
गावोघृतस्यमातरोऽमूंसं वानयन्तु मे ॥३

अस्य ६।१०२ सू० जमदग्निः । अश्विनौ । अनुष्टुप्-उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः ।

यथायं वाहो अश्विना समैतिसं चवर्तते ।
एवा मामभिते मनः समैतुसंच वर्तताम् ॥१
आहं खिदामि ते मनोराजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतांमनः ॥२
आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३

पत्नी की प्राप्ति

योग्य पत्नि की प्राप्ति की कामना वाले वर; इन्द्रदेव का जप होम करे। कौ० ७।१०

अस्य ३।८२ सूक्तस्य भगः ऋषिः । इन्द्रः देवता । अनुष्टुप् छन्द, पत्नि प्राप्तये इन्द्रदेव उपस्थाने जपे होमे विनियोगः ।

आगच्छत आगतस्य नामगृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्यवृत्रघ्नोवन्वेवासवस्यशतक्रतोः ॥१
येनसूर्यासावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेनमामब्रवीद्भगो जायामावहतादिति ॥२
यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायांमह्यंधेहिशचीपते ॥३

इनको सूर्योन्मुख अश्वत्थ के निकट वर, कन्यायें अपने योग्य पत्नि व पति की प्राप्ति हेतु जपें।

पति पत्नि की ईर्ष्या निवारण अथवा परकीया से अनुचित सम्बन्ध हो जाने से पति पत्नि से ईर्ष्या करे तो उसकी ईर्ष्या निवारणार्थ विधि गर्भाधान प्रकरण में निर्दिष्ट है। समझ करें। लाभ होता है।

ईर्ष्याविनाशनम्

कां ७ (४५।४६-४७) १-२ प्रस्कण्वः, २ अथर्वा। ईर्षापनयनं, भेषजम्। (अ० मं १)। अनुष्टुप्। पति पत्नी ईर्ष्यापनयने विनियोगः

जनाद् विश्वजनीनाद् सिन्धुतस्पर्याभृतम्।

दूरात्त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥१

अग्ने रिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक्।

एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥२

(अ० का० ६ सू १८ प्र० १३ अनु० २ मं ४)। १-३ अथर्वा। ईर्ष्याविनाशनम्। अनुष्टुप्। उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम्।

अग्निं हृदय्यं१ शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥१

यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृत मनस्तरा। यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥२

अदोयत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम्।

ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥३

(अ० कां १ सू० १८ प्र० २ अनु० ४ म० २)

कां० १। (१८) अलक्ष्मीनाशनम्

१-४ द्रविणोदाः। विनायकः (२ सविता; वरुणः, मित्रः, अर्यमा; देवाः, ३ सविता)

१ विराडुपरिष्ठाद्बृहती, २ निचृञ्जगतीः, ३ विराडास्तारपङ्क्ति स्त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्। छन्द विष कन्या आदि दौर्भाग्य लक्षण जनितारिष्ट निवारणे उपस्थाने विनियोगः।

निर्लक्ष्म्यंऽ ललाम्यं१ निररातिं सुवामसि।

अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥१

निररणिं सविता साविषक् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।

निरस्मभ्यमनुमती रराणाप्रेमां देवा असाविषः सौभगाय ॥२

यत्त आत्मनितन्वांऽघोरमस्ति यद्वा केशेषुप्रतिचक्षणे वा।

सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयंदेवस्त्वा सवितासूदयतु ॥३

रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत।

विलीढ्यंऽ ललाम्यं १ ता अस्मन्नाशयामसि ॥४

इससे विषकन्या, वैधव्य, वन्ध्यात्व तथा पतिपत्नि दौर्भाग्य दोष शान्त करे।

चतुर्थ अध्याय (द्वितीय खण्ड)

रक्षोघ्नम्

इस खण्ड के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं—

भूतोन्माद, आगन्तुक उन्माद, यातुधान,नाशन, रक्षोघ्न, पाशमोचन, कृत्या परिहरण, कृत्या दूषण।

उन्माद दो तरह के होते हैं—एक आन्तरिक दोषों के कारण और दूसरा वाह्यसूक्ष्म प्राणियों के आक्रमण के कारण। वाह्यसूक्ष्म प्राणियों के कारण उत्पन्न उन्माद को भूतग्रह या भूतोन्माद कहते हैं। भूत का अर्थ कीटाणु भी होता है किन्तु साधारण तया लोग भूत प्रेत, पिशाच अर्थ लगाते हैं। अथर्ववेद में बहुत स्पष्ट ढंग से भूतों और उनसे उत्पन्न रोगों की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि सूक्ष्म कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न भूतरोग से ग्रस्त प्राणी उसी प्रकार की हरकतें करता है जैसे पिशाच ग्रस्त प्राणी करता है। अथर्ववेद (४।३७) में भूतोन्माद की औषधि चिकित्सा का विधान बताया गया है। साथ ही रक्षः (राक्षस) अप्सरस् (अप्सरा) और गन्धर्व, पिशाच के आक्रमणों से उत्पन्न उन्माद की चिकित्सा औषधियों के सेवन, हवन द्वारा बताई गई है। आचार्य केशवदेव जी ने उन्हीं आथर्वणिक उपचारों और प्रयोगों को भूतोन्माद के विनाश के लिए प्रस्तुत किया है।

यातुधान—अथर्ववेद तथा ऋग्, यजु, सामवेद में 'यातुः' और 'यातुधानः' की चर्चा है सामान्यतया लोग यही विश्वास रखते आरहे हैं कि भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि से जो मानवीय सम्बन्ध होता है, वह 'यातु' है और उनके निवारण के लिए जो उपाय किया जाता, है, वह यातुकर्म है।

वस्तुतः चारों वेदों में 'यातु' शब्द 'इन्द्रजाल' अर्थ का बोधक है। और ऐन्द्रजालिक को यातुधान कहा जाता है। गमनार्थक, आक्रमणार्थक 'या' धातु से 'यातु' शब्द निष्पन्न होता है। पारसियों के धर्म ग्रन्थ ज्न्दावेस्ता में 'यातु' शब्द जादू करने वाले ऐन्द्रजालिक का वाचक है। किन्तु भारत में जादू शब्द यातु शब्दार्थ के रूप में व्यवहृत हुआ है।

अथर्व संहिता (१।१६।२) में आए हुए 'यातुचातनम्' पद का अनुवाद डब्ल्यू डी० ह्विटनीने दानव अर्थ में (डेमन) किया है। ऋग्वेद संहिता (७।१०४।१५) में यातुधान शब्द ऐन्द्रजालिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और अथर्व संहिता (१।७।१) में भी यातुधान शब्द ऐन्द्रजालिक अर्थ रखता है। अतएव अथर्व संहिता (१,८,३) में प्रार्थना की गई है कि हे वृहस्पति यातुधानवंश का उच्छेद करो? और फिर 'यातुधान' के साथ रक्षस् शब्द का

प्रयोग इस एक मंत्र में मिलता है—

अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद् देवः
प्रतिदोषं गृणानः। (ऋ० सं० १, ३५, १०)

स्पष्ट है कि यातुधान और राक्षस शब्द अलग-अलग हैं और दोनों में भेद है। ऋग्वेद संहिता (७, १०, १५) में यातुधान शब्द मायावी ऐन्द्रजालिक के रूप में और रक्षस्शब्द दानवरूप अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं—

अघा मुरीय यदि यातुधाने अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा सा वीरैर्दशभिर्वियूयायो मा मोघं यातुधानेत्याह॥

मंत्र में कहा गया है कि "यदि मैं यातुधान होऊँ तो तत्काल मेरी मृत्यु हो जाए। यहाँ प्रयुक्त यातुधान शब्द स्पष्ट मायावी ऐन्द्रजालिक के इन्द्रजाल करने के अर्थ में है।

इसलिए यातुधान को राक्षस समझना भूल है। यातुधान ऐन्द्रजालिक, जादूगर या अभिचारक का अर्थ रखता है।

कृत्या—अथर्व संहिता में कृत्या शब्द का प्रयोग अत्यधिक मिलता है। करणार्थक 'कृ' धातु से कृत्या शब्द निष्पन्न है। कृत्या शब्द प्रधानतया किसी कृत्य या कार्यव्यापार से सम्बद्ध है और गौणरूप से यातु (इन्द्रजाल से भी सम्बन्ध रखता है। अथर्व संहिता (१०-१-१) में जिस प्रकार का वर्णन मिलता है उससे 'कृत्या' शब्द का अर्थ हाथों द्वारा बनाई जाने वाली कृति का बोध होता है। इसी सूक्त के दूसरे मंत्र से जान पड़ता है कि कृत्या शिर, नाक और कान वाली होती है और इसे कुश में, खेत में, श्मसान भूमि में, घरकी आग में फेंका जाता है। इसके अतिरिक्त पाँचवें काण्ड के ३१वें सूक्त के वर्णन से जान पड़ता है कि कृत्या का निक्षेप, उसकी स्थापना मिट्टि की कच्ची हाँड़ी में सात प्रकार के अनाज में, कच्चे मांस में, मनुष्य में, अवि में, चलने वाले पदार्थों में, सभा मण्डप में, पाँसा, कौड़ी में, सेना में, वाण में, दुन्दुभि में, कुएँ में, मनुष्य की हड्डी में और चिता भस्म में होता है।

आथर्वणिक प्रयोगों से ज्ञात है कि कृत्या एक यातुकर्म है। यह किसी के नाश के लिए पीड़ित करने के लिए अथवा नष्ट प्रायः करने के लिए की जाती है। अथर्व संहिता (१०-१-३) से ज्ञात है कि कृत्या का प्रयोग ब्राह्मण, स्त्री, शूद्र आदि द्वारा किया जाता है। किसी के द्वारा की गई कृत्या के निवारण के लिए की गई प्रतिक्रिया को अथर्व संहिता में प्रत्यभिचरण, प्रतिहरण, प्रतिसार, प्रत्यज्य और प्रतीची कहा गया है।

मनुस्मृति (९।२९०) में कृत्या के निरोध का उल्लेख है—

अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो दिशतो दमः
मूलकर्मणि चानाप्तैः कृत्यासु विविधासुच॥

कृत्या प्रतिहरण सम्बन्धी अमोघ कृत्यों का प्रतिपादन आचार्य केशवजी ने इस खण्ड में किया है।

—देवदत्त शास्त्रीजी

"उन्मादपरीक्षण"

१. **भूतों से उत्पन्न उन्माद** :—जिस रोगी की वाणी पराक्रम और चेष्टा अमानुषिक हो, जो ज्ञान, विज्ञान बल आदि में भी अमानुषी हो, उन्माद का काल नियत न हो, उसे भूतोन्माद समझें।

२. **देवोन्मत्त** :—जो उन्माद का रोगी, सौम्यदृष्टि, गम्भीर—जिसे पराभूत न कर सकें, अक्रोधी, निद्राहीन, भोजन में अधिक अभिलाषा न रखने वाला, जिसमें पसीना, मूत्र, मल (टट्टी) और अपानवायु अल्प हो देह से शुभ गन्ध आती हो, जो खिले कमल के समान प्रसन्नचित्त प्रतीत हो उसे देवोन्माद का रोगी समझें।

३. **गुरु आदि का उन्माद** :—जो गुरु वृद्धपुरुष, (ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध वयोवृद्ध) सिद्धपुरुष और ऋषियों के अभिशाप, अभिचार या चिन्ता से उन्मत्त होते हैं, उनके आहार-चेष्टा और वाणी अदिशाप अभिचार कर्म या उनके लिये जैसी चिन्ता की हो वैसे ही लक्षण होते हैं।

४. **पितरों के उन्माद** :—जिसके नेत्रों से अप्रसन्नता टपके, जो किसीकी ओर देखे नहीं, निद्रालु हो, जिसकी वाणी रुके, अहार में अभिरुचि न हो, अरुचि और अपचन से आक्रान्त हो उसे पितरों द्वारा उन्मत्त समझें।

५ .**गन्धर्वोन्मत्त** :—जो क्रूर हो, उपसाहसी, तीक्ष्ण, गम्भीर, (जिसका बल सहा न जा सके) जो मुख से बजाये, धूप गन्ध से प्रेम हो, लाल वस्त्र बलिकर्म, हास्य, कथा, अनुयोग (पूछताछ) में जिसे अनुराग हो, जिसकी देह से सुगन्ध आती हो, उसे गन्धर्वोन्मत्त समझें।

६. **यक्षोन्मत्त** :—जो रोगी बार २ सोये, बार २ रोये या बार २ हँसे, जिसे नृत्य, गीत, बाजा, पढ़ना, कथा, अन्नपान, स्नान, मालाधारण, धूप गन्ध आदि में रुचि हो, जिसकी आँखें लाल, तथा अश्रुपूर्ण हों, जो ब्राह्मण वैद्य आदि की निन्दा करे, बुरा भला कहे, जो गोपनीय बात को कहे उसे यक्षोन्माद समझें।

७. **राक्षसोन्माद** :—जिसकी निद्रा नष्ट हो गई हो, अन्नपान में अभिलाषा न हो जो आहार न खाये, अतुल बलशाली हो, दूसरों को धमकाये उसे राक्षसोन्मत्त समझें।

८. **ब्रह्मराक्षसोन्मत्त** :—हँसी मखौल की बात कहने वाले, झूठ बोलने वाले, देवता वृद्ध, ब्राह्मण, वैद्यादि के निन्दक, उनका तिरस्कार करने वाले, स्तुति-वेद मन्त्र तथा शास्त्रों के वाक्यों को पढ़ने वाले, लकड़ी, दण्ड आदि से अपने को ही मारने वाले, ब्रह्मराक्षस से उन्मत्त समझें।

९. **पिशाचोन्मत्त** :—चित्त अस्वस्थ रहता हो, जिसे बैठने को कोई भी जगह पसन्द न हो, नृत्य, गान, और हँसाने तथा बेतुकी असम्बद्ध बातें करने वाला, भीड़ वाली जगह या जहाँ बहुत सी वस्तुयें इकट्ठी हों, ऊँची जगह, पर्वत की चोटी, या गृह अथवा ढेर, मलिन सड़क, वस्त्र, तृणों के ढेर, पत्थर, लकड़ी आदि पर चढ़ने की चाहना हो, वर्ण और स्वर-रूक्ष तथा भिन्न हो स्वर फूटे बर्तन की आवाज के तुल्य हो, वर्ण रूखा सा एक सा न रहने वाला

हो, दौड़ने या जगह-जगह डोलने में रुचि हो, स्मृति रहित हो, अपने दुख को सबसे कहता हो उसे भूतोन्मत्त समझें।

भूतों के आवेशकाल

१. **भूतों के आवेशकाल—और गम्यपुरुष :**—देवग्रह छिद्र पाकर पवित्र आचार वाले तप और स्वाध्याय के पण्डित पुरुष या स्त्री में प्राय शुक्ल प्रतिपदा और त्रयोदशी में अविष्ट होते हैं।

२. **ऋषिगण :**—छिद्र पाकर, स्नान परायण शुद्धाचार सेवी, एकान्त प्रेमी, धर्म शास्त्र-स्मृति, श्रुति एवं काव्य में कुशल व्यक्ति को प्राय षष्ठी (छट/-नवमी) तिथियों में आक्रान्त करते हैं।

३. **पितृग्रह :**—छिद्र पाकर माता-पिता-गुरु-वृद्ध एवं आचार्य के सत्सङ्गी व्यक्ति को दशमी और अमावास्या को आक्रान्त करते हैं।

४. **गन्धर्वग्रह :**—छिद्र पाकर स्तुति-गाना-बजाना, नाचना आदि में रत स्त्री-पुरुषों, जिन्हें परस्त्री, परपुरुष, इत्र-फुलेल, गन्ध, पुष्पमालायें प्रिय हों, ऐसे शुद्धाचरण जनों को द्वादशी और चतुर्दशी में आविष्ट होते हैं।

५. **यक्ष :**—छिद्रपाकर सत्त्व-बल रूप, गर्व एवं शूरता युक्त-माला धारण चन्दनादि का लेप, हास्य प्रिय, बहुभाषी प्राणियों को शुक्ला एकादशी और सप्तमी तिथि में अविष्ट करते हैं।

६. **ब्रह्मराक्षस :**—छिद्रपा, स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रताचरण, देवपूजा, यतिपूजा तथा गुरुपूजा में रत पवित्राचार रहित ब्रह्मवादी अपने को शूर मानने वाले, देवालय और जलक्रीड़ा के प्रिय पुरुष व स्त्रियों में प्रायः शुक्ला पञ्चमी और पूर्णमासी तिथियों में आविष्ट होते हैं।

७. **रक्षोगण और ८. पिशाचगण-ग्रह :**—हीन सत्त्व, पिशुन (चुगला) स्त्रियों या स्त्रियों जैसे जनानिहा पुरुष, लोभी को छिद्र पाकर प्रायः द्वितीया और तृतीया व अष्टमी तिथियों में पराभूत करते हैं।

इनमें असाध्य उन्मत्त

इन आठों में जो उन्मत्त हाथ उठाकर क्रोध से भरा हुआ, संज्ञा रहित होकर अपने को या औरों को मारता हो वह असाध्य होता है—अथवा नेत्रों में अश्रु हों, मूत्रेन्द्रिय से रक्त आता हो, जिह्वा पर दाँत से घाव हो, नाक से जल बहे, हृदय में छेदने की सी पीड़ा हो, वाणी अस्पष्ट हो रुकावट होती हो, लगातार अव्यक्त बोले, अशुभ वर्ण का हो, प्यास से पीड़ित हो, जिससे दुर्गन्ध आती हो, जो हिंसा के लिये उद्यत हो, उसे असाध्य समझें। इनमें **हिंसार्थ उन्मत्त असाध्य होता है,** शेष **रति और अभ्यर्चना वाले उन्मत्त साध्य हैं।**

साध्य :—भूत व ग्रह रति कामना से जिस पर आक्रमण करते हैं, अथवा पूजा की कामना से जिन पर आक्रमण करते हैं इन दोनों प्रकार के उन्मादियों को अभिचार या

अभिशाप से उन्मत्त समझ, कामना व पूजा के पूर्त्यर्थ तदर्थ वस्तुएँ बलिदान करें। यह बलि **प्रकरण में देखें। मन्त्र परिशिष्ट के मन्त्रों से पूजा, हवन, कुशा से अथवा मोर पंखों से झाड़ा दें।**

यहाँ कुछ औषधियों का दिग्दर्शन किया जाता है परन्तु भगवान अश्विनी कुमार के प्रतिनिधि आचार्य वैद्यों की पूजा के साथ सफलता निश्चय होगी।

आगन्तुक उन्माद चिकित्सा

१-वातज उन्माद में– घृतपान, हल्का वमनविरेचन करायें।

२-पित्तज और कफज में– स्नेहन, स्वेदन, के उपरान्त वमन और विरेचन के उपरान्त शुद्ध होने पर संसर्जनक्रम करायें संसर्जनक्रम से पुष्ट रोगी को, दोष के अनुसार (अनुवासन) व वमन, विरेचन और निरूह स्नेहवस्ति बार २ करायें।

इस क्रम से हृदय, इन्द्रिय, शिर और कोष्ठ तथा मनप्रसन्न व निर्मल होकर स्मृति और संज्ञा प्राप्त होगी।

३-आचारभ्रंश में उपरोक्त क्रियाओं के उपरान्त तीक्ष्णनस्य तीक्ष्ण अञ्जन करायें, ताड़ना तथा मन, बुद्धि एवं देह को दुःखी या खिन्न भी कराना हितकर है, परन्तु नं० २ से उन्माद नष्ट न होने पर ही करें।

४-जो विनय में समर्थ हो अर्थात् आचारभ्रष्ट नं० ३ नहीं, अच्छेदृढ़, सुख कर वस्त्रों के पाटों से बाँधकर, स्वच्छ अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दें।

५-मन को प्रकृति में लाने के हेतु धमकाना, दान, सान्त्वना, मनमें हर्षोत्पन्न कराना चाहिये। भय और विस्मय मनकी विस्मृति को स्वभाव की ओर स्वस्थावस्था में ले आते हैं।

६-मन-बुद्धि, स्मृति और संज्ञा को जगाने वाले प्रदेह-उबटन, अभ्यङ्ग धूम्रपान, और घृतपान से लाभ होता है।

७-घृत-१ कि० गौ के घी का चौगुना गोमूत्र मिला लें, उसमें हीरा हींग, सौचर नमक (सांवर) कालीमिर्च, सौंठ, पिप्पली प्रत्येक २ पल लेकर कूटकर डालें और उपलों की मन्द मन्द अग्नि से मूत्र को जला दें। इसीमें स्वर्ण व चाँदी के आभूषण डालें। जब घी शेष रह जाये तो आभूषण निकाल लें। मात्रा ३ माशा से १ तोला, ही एक बार में प्रातः सायं सेवन करायें।

८-महा पैशाचिक घृतः—घी २ प्रस्थ,

१. अटामांसी, छोटी हरड़, भूतकेशी, ब्राह्मी कौच के बीज, बच त्रायमाणा, जयन्ती, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कटुकी, छोटी इलायची, वाराहीकन्द, सौंफ, सोया, गुग्गुल·········
······························और

(१) (कौन्ती) रेणुका, दारु, देवदारु, मृगादनी, इन्द्रवारुणी। (२) (पूतन)-**गन्धमांसी। (३) केश—केशिनी-(शंखपुष्पी) शतावरी।** (४) चारटी- **(कुम्भारु या पद्मचारिणी)**। (५) जय

(अपराजिता-खरैटी)। (६) वीरा (पृश्निपर्णी) या काकोली। (७) चोरक (ब्राह्मी-गुडुची)। (८) कायस्था-(आमलकी-हरीतकी)। (९) छत्रा-(कुतुम्बकया धान्यक)। (१०) अतिच्छत्रा (शतपुष्पी)। (११) पलङ्कषा (गोखुरू लाक्षा)। (१२) महा पुरुषदन्ता (शतावरी)। (१३) वयःस्था (हरीतकी)। (१४) वृश्चिकाली उष्ट्रधूमक और विष्णुक्रान्ता, गिलोय, रास्ना, गन्धरास्ना मालकंगनी, विछाटी-शालपर्णी (इन सबको कल्कार्थ) १ शराब (परिमाण में) लें, ८ प्रस्थ जल लें, इसी में स्वर्ण व चांदी के टुकड़े डाल दें यथा विधि मन्द अग्नि से मन्त्रों के पाठ, पिशाचमोचन, कृत्यापरिहरण यातुधानक्षयण, राक्षसक्षयण, रक्षोघ्नसूक्त, शापविमोचन पाप विमोचन, तथा औषधिसूक्त, क्षेत्रीयरोग नाशन, सूक्तों के पाठ व ऋषिन्यास, देवन्यास, तथा मुद्राओं के साथ सिद्ध करें। सिद्ध होनेपर घी को कलई किये या कांच के पात्र में रख लें, स्वर्ण, चाँदी निकाल लें।

मात्रा एक—आधा तोला, सायं प्रातः लें।

इससे सभी ज्वर-उन्माद-ग्रह-अपस्मार, नष्ट होंगे, बुद्धि स्मृति, बल, वीर्य, ओज, रूप-स्वर की वृद्धि, आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविक सभी कर्मज-कालज, आहारज विकारों की शान्ति होगी। यह वस्तुतः अमृत तुल्य है। इसका पुत्र प्रद होना तो स्वाभाविक है।

९-सौ वर्ष पुराना घृत यदि प्रारब्ध से उपलब्ध हो सके तो अकेला ही प्रशंसनीय लाभप्रद है।

नस्य व अञ्जन

१-सिरस के बीज, मुलहठी-हींग-लहसन-तगर, वचा-कूठ ये समभाग लेकर बकरी के मूत्र में भलीप्रकार पीस लें, गाढ़ा हो जाय तब इसीका नस्य दें और नेत्रों में अञ्जन लगा दें।

२-कालीमिर्च, पिप्पली-सौंठ-हल्दी, दारु हल्दी, मजीठ, हींग, सरसों सिरस के बीज, इनको समभाग ले चूर्ण बना लें, और नस्य तथा अञ्जन में प्रयोग करें।

उन्माद नाशक वर्ति

मन्त्र परिशिष्ट में दिये अपामार्ग-"प्रतीचीनफलोहित्वं" सूक्त से गुरु पुष्य में पूजाकर अपामार्ग ले आयें। धूप-गन्ध से पूजन कर-उसके बीजों को संग्रह करें उसमें हींग, हरिताल, हिंगुपत्री (हिरणखुरी) प्रत्येक १ भाग, कालीमिर्च ½ भाग, इन्हें गोपित्त और गीदड़ के पित्त में पीसकर वर्ति बनायें। इस वर्ति को घिसकर, मृगी-भूतोन्माद, भूतज्वर-भूत और देवपीड़ित रोगियों को तथा सभी प्रकार के नेत्र रोगों में नेत्रों में आँजें इससे सभी को लाभ होता है और रोगी को वैकृतरूपों का दीखना बन्द हो जाता है। परन्तु इसे जब सिद्ध करें तो नेत्रोपनिषद् तथा दुःस्वप्ननाशन सूक्तों का ऋषिन्यास, देवन्यास तथा मुद्राओं के साथ जप करना चमत्कारिक अचिन्त्य लाभप्रद होगा।

उन्माद नाशक अगद

१-श्वेत सरसों, वच, हींग, करञ्जबीज, देवदारु-मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सफेद खरैठी, कण्टकिशिरीष की छाल, काली मिर्च, सौंठ, छोटी जवा पीपलें प्रियङ्गु सरस की

छाल हल्दी, दारुहल्दी, इन १८ सभी को समभाग लेकर बकरी के मूत्र में पीसें यह अगद है।

इसे पान-अञ्जन, नस्य-लेप-स्नान-उबटन आदिद्वारा प्रयोग कराया जावे। यह सभी उन्माद, वातज, पित्तज, कफज तथा आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक उन्मादों, मृगी हिस्ट्रिया, विषः (गैस आदि) कृत्यादोष, अलक्ष्मी, ज्वर भूत-पिशाचादि के भय को नष्ट करने वाला, न्यायालय राजद्वार-सभा, शास्त्रीयवाद-विवाद में विजयप्रद सिद्ध हुआ है।

परन्तु अष्टधातु का पुरुष बनाकर जलमें डालें जब जल १/१६ भाग शेष रहे, पुरुष को बाहर निकाल लें। इसे उपरोक्त अगद के साथ मिलाकर खरल में ७२ घण्टे घोटें और उपरोक्त विधि से ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के सूक्तों का पाठ करते रहें।

यह अमृत तुल्य, नवजीवनप्रद, आश्चर्यप्रद विजय तथा कौतुहलों का दाता सिद्ध हुआ है। कृपया आचार्य तथा वैद्यगण, इष्टदेव, ऋषियों, एवं अश्विनी कुमार तथा धन्वन्तरि भगवान का विधिवत पूजन करें और करायें उन्हें इस भारतीयगौरव की निश्चय सफलता प्राप्त होगी। मन्त्र

ब्रह्मदक्षाश्वि रुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्का ऽनिलानलाः। ऋषयश्चौषधिग्रामाः भूतसङ्घाश्च पान्तु मे ॥१॥ इन दो से पूजाकर भेषज निर्माण करें।

रसायनमिवर्षीणांदेवानाममृतंयथा। सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥२॥ "ॐ ह्रूं सः" इस बीज मन्त्र से अभिमन्त्रितकर सेवन करें।

उन्माद विनाशक-वेदोक्तभैषज्य समीक्षा (शौनकीयशाखोक्त)

प्राप्तव्य जानकारी :—समस्त उन्माद-हिस्ट्रिया, मृगी-प्रलाप, गर्भस्राव, मृताऽपत्य शापजनितदोष, नैऋति, प्रज्ञानष्ट, अज्ञानगृहीत, कृत्या, अभिचारजनित दोष, हृदयरोग, मूर्च्छा, अतिक्षुधा, क्षुधाहीन, पाप, शापजन्य व्याधियों का उपचार—

उपचार।

वेदोक्तभेषज नाम :—(१) पृश्निपर्णी (२) अजश्रृङ्गी (३) अराटकी (४) गुग्गुल (५) औक्षगन्धी (६) प्रमन्दनी (७) नलदा (८) पीलू (९) न्यग्रोध (१०) अश्वत्थ (११) अर्जुन (१२) कर्कर्य (१३) तीक्ष्ण श्रृङ्गी (१४) अपामार्ग (१५) सहदेवी (१६) आञ्जन (१७) दर्भ (१८) सीस (१९) शमी (२०) **सदंपुष्पा** (२१) पिप्पली (२२) वरण (२३) चित्ति (२४) प्रायश्चित्ति (२५) शमका (२६) सर्वशा (२७) धर्मोलिक (२८) पलाश (२९) वेतस (३०) आकृतिलोष्ठ (३१) इन्द्र जौ (३२) पीतसर्षप।

शास्त्रीय नाम :—(१) वीरा (२) काकोली (रा० नि० व ९) (३) वाणापर्णी (न० क० १७ (४) देव धूप भूतहा; यातुघ्न; रक्षोहा। रानि० व० १२)। ५) जीवक-ऋषभक (चरक जीवनीयगण) (रा० नि० व० ५)। (६) घातकी वृक्ष (रा० नि० व० ६) भावप्रकाश

(७) जटामांसी (रा० नि० व० १२) (८) पीलू (भा० व; पा० व्या०)। (९) चरक-न्यग्रोधादिगण "न्यग्रोधोदुम्बरश्वत्थ प्लक्षयष्टीकपीतना" (रा० नि० व० १२)। (१०) शुन्द्रिम (रा० नि० व० ११) (१२) कांकडी-कटेहरी (१३) कहू-कौह (रा० नि० व० ९) भा० पू० १ भु० वट-वचादि)। (१४) काकोली (१५) मैढासींगी (१६) हिंगु (१७) प्रियङ्गु (१८) गुग्गुल (१९) इन्दुक (वालाउशीर) (२०) वन्रा २१) चीता (२२) तुलसी, शंखपुष्पी, अन्धपुष्पी, मछेछी (२३) भिलावा (२४) हिंगु (हिंगोटा) बिल्व (२५) श्वेत सरसो (सीता सरसों) (२६) पीत सरसों।

मूलपाठ—अथर्ववेद ६।४ "प्राग्नये"; ७।११९ "प्रेत"; ११६ "ये भावास्यायाम्" कां० १।७ "स्तुवानम्"; (१।८) "इदं हवि"; (२।१४) "निः सालाम्"; (२।१५) अरायक्षयणम्" (२।१८-३-५) "शंनो देवी पृश्निपर्णी (२।२५) आपश्यति (४।२०) तान् सत्यौजा (४।३६) "त्वयापूर्वम्" (४।३७) पुरस्ताद्युक्त (५।२९) रक्षोहणम् (इत्यनुवाक्) (८।३-४) पर्यन्त (११२६) आरेऽसौ (२।११) दूष्या दूषिरसि (४।४०) येपुरस्तात् (४।१७) ईशानांत्वा (४।१८) समं ज्योतिः (४।१९) उतोऽस्य वन्धुकृत (५।१४) सुपर्णस्त्वा (५।३०) यां ते चक्रे (८।५) अयंप्रतिसर (१०।१) यां कल्पयन्ति (तै० सं० ३।४।८।४) न्यग्रोधश्रौदुम्बर अश्वत्थप्लक्ष इतीघ्नो भवत्ये ते वैगन्धर्वाप्सरसां गृहाः। (८।६।१६) (अ० वे०) पर्यस्ताक्षा "(८।६-१८) यस्तेगर्भम् (१०।३) अयंमे वरणः (१०।६) अरातीयो (७।६५) प्रतीचीनफलो (८।६) यौ ते मातोन्ममार्ज (८।७) यावभ्रवो (८।७।९) तीक्ष्ण शृङ्गयदुरितं व्यूषन्तु (८।७-१३) सहस्रपर्ण्योमृत्योर्मुञ्च न्त्वंहसः। ६।१०९) पिप्पली क्षिप्त भेषजी (६।३०-२-३) "यस्तेमदो" (वृहत्पलाशो (७।१०७) अवदिवः (२।४-२) जङ्गिडो (४।९-४) यस्याञ्जन"

कौ० सू० १।८; तै० सं ६।१।४।६; २।६ ६-१- आपस्तम्भध० १।३१ न० क० २३ (कौ०सू० ४।२ शा० क० १६; न०क० १७; तै० सं० ३।४।८।४; ऋग्वेद २।२७-८; ७।८७-५; कौ० सू० ५।३ न० क० २३; शा० क० १६। न० क० १७ परिशिष्ट ६।१ वै० श्रौ० सू० २।६। कौ० ३।२; न० क०; ऋग्वेद (४।४-५) "जामिम् अजामिंप्रमृणीहिशत्रून्" कौ० १३।२; ८; २।१५; २।१६; २।१७; २।१८ २।१९ कौ० ३४; ३।६; प० ५।२; कौ० ४।६ वै० ५।२। वै० श्रौ० सू० ५।१; न० क० १८। कौ ४।१२; ५।८ शा० क० १५; ऐ० आ० १।४।३; कौ० ६।१७ अ० प० ४।४।

रोगी की वाणी—हृष्टात्मापुलिन वनान्तरोपसेवी। स्वाचार प्रियगीतगन्धमाल्यः। नृत्यन्वै प्रहसति चारुचाल्प शब्दम् "गन्धर्वग्रहपीड़ितो मनुष्य। भा० नि०" उद्धस्तः कृशपरुषोऽचिरप्रलायी दुर्गन्धो भ्रंशमशुचिस्तथातिलोमः। वह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी। व्याचेष्ट न भ्रमतिरुदन् पिशाचजुष्टः कौ० सू० वृद्ध वालयुव स्त्रीपुरुषाणामकस्मादुद्वेगः। प्रलापो वा भवेत् "लौकिके आक्रोशे वैदिके च ब्राह्मणस्य शापे चाक्रोशे च क्रूरं चक्षुर्दृष्टि निपाते च पिशाच रक्षसादिभये-पापगृहीते च स्त्रीगर्भस्रावे च मृतापत्यायां च क्रव्यादगृहीते च पिशाच गृहीते च रक्षोभये, सर्वभूतग्रहे प्रज्ञानष्टे अज्ञानगृहीते अधर्मगृहीते त्रिवर्गे च विनिष्टे द्यूत क्रोडाद्यति प्रवृत्त कुबुद्धिभैषेज्ये च।

टिप्पणी—उन्मादविनाशक-वेदोक्त भैषज्य समीक्षा

वनस्पति शास्त्रीय नाम—पूर्वोक्त संख्या १२ से आगे—

(१३) ताड़ वृक्ष अथवा ऊंटकटेरा (भाषा) (१४) रा० नि० व० ५; भाव प्र० पू० ४।१; मद, क० १ वै० नि० (१५) पार्वतेयं यामुनं अञ्जनं कृष्णं आदि। रा० नि० व १३ तथा वै० नि० (१६) कौ० सू० १८ नदीसीसं-नदीफेन (७) कौ० सू० २५ शमीपर्णं चूर्णं शमीफले कृत्वा (१८) कौ० २५; ४।४ तथा ४।१ "त्रिसन्ध्या (१६) चरक चि० १ तथा भा० प्र० १ एवं रा० नि० व० ६ (२०) कौ० ८।१५; बरणो-वरुणकः आनन्दपुरे प्रसिद्धः (२१) चीता (२२) सिद्धपीठर ज (२३) शमी (जाटी छौंकर) (२४) शाम्यवाक् (भाषा) रेमजाश्वेत कीकर (२५) काक जंघा के तुल्य (२६) पलाश (२७) वात्सक (आटडूषक) (२८) शीसपात्र-शीशपा (शाल्मली) (२६) क्षेत्र मृत्तिका-वल्मीकरज।

प्रयोग—न० क० १७ "शिग्रुं हुत्वा जलं चैव गुल्गुलं विषमेव च पिप्पली कृष्णलीं चैव जुहुयाच्चातनेनतु। औषधिं सहमा नां तुपृश्निपर्णी तथापराम् अजश्रृङ्गीं समस्यैताम् अमन्त्रं जुहुयात् सकृत्। अर्थात् इन की धूप दें।

सदंपुष्या—इसके पंख के तुल्य शोभायमान पत्ते गरुण की भाँति कनिष्टिका अंगुलि जैसी-कृष्ण मण्डल वाली औषधि को-अथवा आञ्जनबूटी को या वरण-(वन्ना) वृक्ष निर्मित मणि को धारण करायें।

प्रमाण—अ०वे० ८।४ "परः सोऽस्तु" कीसम्पुष्टि ऋग्वेद २।२७-८ "तिस्त्रोंभूमिर्धारयन्" तथा ऋ० वे० ७।८७-५ "तिस्त्रोद्या वो निहिता" तथा प्रमाणभूत "अत्र ऋक्सहिता या वृहद्देव तानुक्रमणी" संवत्सरं तुमण्डूकात् ऐन्द्रा सोमा "तथा अ० वे० ८।४-२२ में ऋक्सं हिता वृहद्देवता अनुक्रमणिका" उलूक यातुं जह्येतान् नानारूपान् निशाचरान्। स्त्री पुंरूषंश्च जह्येतान् जिघांसून् इन्द्रमे जहि"। अर्थात् मणि के रूप में सदंपुष्या; तिलक वृक्ष, वरण, वृक्षों में से किसी या सभी की भी मणि वनाकर अभिमन्त्रितकर त्रयोदशी को दधि मधु में विठा दें तीन रात्रि व्यतीत होने पर अभिमन्त्रित कर दायें बाहु में धारण करें-दधि मधु को सेवन करलें।

अन्य विधि पद्धति में वर्णित है।

कौ० सू० क० ३४ (दारिल) आवपेत्सुरभिर्गन्धान्क्षीरे सर्पिस्तथोदके। एतदायन मित्याहुरौक्षं तु मधुना सहः। अर्थात् स्वर्णगुग्गुल घी में मिला प्रजननेन्द्रिय से मलै, स्त्री लेप करे, उसी से इन्द्रिय धूप दें। और उपरोक्त सुरभिगन्धयुक्त (घृत) को गोदुग्ध व शहद मिला सेवन करें।

सुरभिगन्धयुक्त घृत—पुरानाधी, जटामांसी, छोटी हरड. भूतकेशी, ब्राह्मी, कोंच के बीज, वच, खरैटी, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी (अन्धपुष्पी) कटुको, छोटी इलायची वराही कन्द सौंफ, सोया, गुग्गुल, रेणुका, देवदारु, इन्द्रवारुणी, गन्धमासी, केशिनी (शंखपुष्पी) नीमगिलोय रास्ना, मालकांगनी, विछाटी, शालपर्णी-ये सभी समभाग लें जलमें डालें, उसी में सोने, चाँदी,

तावे के टुकड़े डालैं, धीरे २ क्वाथ करें १/८ भाग रहे छान लैं उस छने जल में घी डालैं, धीरे २ पानी जला दै, घी शेष को कांचपात्र में रखलैं १/२ तो० सायं प्रातः सेवन करें। (चरक-तथा पंचपा टीलिका) सोते समय कहत की जड़ १ तो० पीसकर उपरोक्त औक्ष के साथ पिलायें।

कौ० सू० कं० २५; ४।४ "अथ सर्व व्याधि भैषज्यम्" सर्वभूतग्रह भैषज्य मुच्चते" शमी-पर्ण चूर्ण शमीफले कृत्वा अलङ्कारे "उपरोक्त"। ददाति। प्रज्ञानष्टे अज्ञानगृहीते अधर्मगृहीते त्रिवर्ग च विनिष्टे द्यूत क्रीडाघाति प्रवृत्ते कुबुद्धि भैषज्यम्। दारिल पृश्निपर्णी, सहदेवी, शंखपुष्पी अजश्रृंगी, समभाग लैं चूर्ण करें या पृथक् २ औक्ष के साथ सेवन करायें। उपरोक्त धूप २४ बार निवास व शयन गृह में दें।

प्रमाण—आप० स्तम्भ० ध० १।३१ दिवादित्यः सत्त्वानि गोपायति नक्तं चन्द्रमा स्तस्माद् अमावास्यायां निशायां स्वाधीनाऽऽत्मनो गुप्तिम् इच्छेत् "तथा" "अग्निः खलुवै रक्षोहा" तै० सं० ६।१।४।६। अ० वे० १।२९ उपप्राग्रात् "कौ० ४।२। न० क० २३" भीष्मस्माद् वातः पवते "तै० ब्रा० ८।८-१ इत्यादि त्रय्यन्त प्रसिद्ध नियमन् शक्तियुक्तं परं ब्रह्मप्राप्य संतप्ता भवन्तु" महद्भयं वज्रं उद्युतम् "एतान् रक्षा कर्मणा प्रतीचीनं हन्मि"।

उन्माद रोगशमन

कामोन्माद में—प्रेमिका के प्रेम (विरह) से उत्पन्न कामोन्माद निवारणार्थ मृत व्यक्ति को समाधि स्मारक पर लगे तिथि के संगमरमर पर पत्थर पीसें, जल में मिला अभिमन्त्रित कर प्रेमी-प्रेमिकाओं को पिलादें परन्तु उन दोनों से गुप्त रक्खें-उन्माद शमन हो।

हृदय परिवर्तन—प्रेमिका के शिर के बालों को मिटी के पात्र में जलाकर फैंक दें, उसी पात्र में पानी भरकर प्रेमी को पिलायें तो पारस्परिक उनके प्रेम में परिवर्तन हो जाता है।

उन्माद—भौमवार में ही ग्यारह (कोंच) वानरी के बीजों को बासी जल में पीसें, उन्माद ग्रसित के सम्पूर्ण शरीर पर लेपें या उवटन लगवादें, धूप में लेप के उपरान्त ११ बार घुमायें ३ भौमवार ऐसा करें।

भूतोन्मादः—हिंगोटा (इंगुदी) वृक्ष के वीजों के तेल को आवेश आते समय उस तेल के धीरे २ क्रमशः ७ फाये नाक के दोनों छिद्रों में लगायें, सुघायें, तेल सूखने पर फायों को उसकी पीठ की ओर चुपके से फैंक दें। तेल चातनगण मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर लें।

उन्माद-(मृगी) (हिस्ट्रिया):—ऊंट के चर्म के ताबीज में कछुए और श्वान के नख विच्छू के डंकरख, अभिमन्त्रित कर गले में धारण करायें। या सावित जायफल को लाल वस्त्र या धागे में मढ़कर (गूंथकर) अभिमन्त्रित कर गले में बाँध दें या भेड़िये के दाँतों के उपर्युक्ततावीज; या भेड़िये की हड्डी के बने तावोज को उपर्युक्तगण से अभिमन्त्रित कर गले में धारण करायें, तो उन्माद, हौलदिली अपस्मार, हिस्ट्रिया का वेग, रोग शमन हो।

शनिवार में ही घुड़वच के ग्यारह टुकड़ों को काले धागे में गूंथकर या माला बनायें उल्लूक के पंख एक एक जलालें, उसके धुवाँ को श्वेत वस्त्र में जमाकरें, उसकी बत्ती बनाकर अभिमन्त्रितकर गले में, या पुरुष के दायें स्त्री के बायें बाजू में धारण करायें, हौल दिली, हिस्ट्रिया, मृगी, उन्माद शमन होते हैं।

भौमवार को ही "चोरक" जड़ी (महाराष्ट्र) गठिवना (नैपाली) भंटेउर पर्यायवाची को कच्चे बकरी के दूध में पीसें, उसमें श्वेत वस्त्र तरकर सुखालें, उसे तावीज की भांति उपर्युक्त प्रकार, बाजुओं में बाँधें। या ताजी ब्राह्मी की माला गले में धारण करायें। या निर्गुण्डी के वन्दे को रविवार में श्वेत कन्या के कत्ते धागे में लपेट बाजू में बाँधें। या सहजने की जड़की छाल के रस में, रोगी के हाथ से नपे सवावालिश्त श्वेतवस्त्र को तरकर, छाया में सुखाकर, रोगी के सोजाने पर मुख को २१ निद ढँकदें। उपरोक्त उन्मादों का शमन होता है। अथवा गौ के वायें सींग (स्वयंपतित) की अंगूठी बनवाकर वायें स्त्री, दायें पुरुष के हाथ में अभिमन्त्रितकर धारण करायें।

योषापस्मार (हिस्ट्रिरिया):—गोरखमुंडी के लाल रंग के ११ या २१ फूलों का रस क्रमशः सुघायें और एक के उपरान्त एक उसकी पीठ की ओर उन्है फेंकते जावे तो व्याधिशमन हो जाती है।

उन्माद रोग नाशनम्

सहदेवी की जड़ को श्वेत धागे में "कन्या से कते हुए" में गूंथे; कन्या के द्वारा ही दायें हाथ में धारण करायें भूतोन्माद तथा भूतज्वर शमन होते हैं वाँझ ककोड़े की जड़ को उपरोक्त धागे में गूंथ कर कमर में धारण करादें भूतोन्मादी के शिरपर मैनशिल को चन्दन की भाँति लेप करें जल में डूबे-उन्मादादिके रोगी को जो मृतप्राय हो, इम्ली के पत्तों के रस में खूबतर करें-तेज धूप में सुलायें तो जीवन प्राप्त करता है।

यदि उन्माद से निद्रा भंग हो तो नींद लाने के लिये कृष्णपक्ष की केवल अष्टमी की अर्द्धनिशा में तालाब में विकसित कमल के फूल व जल के मध्य के "कमलकन्द" लेकर रखें, रात्रि में ही वारीक पीस लें, नेत्रों में सायंकाल में अञ्जन लगादें। इन सभी को चातनगण से अभिमन्त्रित करना अनिवार्य है। अथवा सन्ध्याकाल में शिर पर पोईलता को धारण कर सोये। या-"काचीमाचो" की जड़ को शिर पर धारण करे।

मन्त्रशक्ति अथवा क्रूर दृष्टिपात से उत्पन्न व्याधि के शमनार्थ पपीते के बीजों का तावीज अभिमन्त्रितकर धारण करे।

मनवशीकरण:—यदि किसी प्रेतात्मा का या किसी अन्य के मन को वशीकरण करना हो तो रविवार में जब पुष्प नक्षत्र आये, उसमें प्रार्थना कर काले धतूरे के पुष्प ले आये; उसमें शुद्ध केशर; १० बूंद गो का ही घृत तथा दो बूंद स्वकीय रक्त मिला पीसें, चन्दनसा बनाकर-स्नान के उपरान्त उसका मस्तिष्क पर टीका लगाते रहें। तो दृष्टा का मन चन्दन टीका वाले की ओर आकर्षित हो जाता है।

वालग्रह और सुखण्डी दृष्टिपातः—व्याधि शमनार्थ करञ्ज के फल को काले धागे में गूँथकर गले में धारण करायें। अथवा काले धागे में अतिवला (कंघी) वृक्ष के फल पिरोकर कंठ में; घुड़वचशिर में; नीम की जड़ और छाल दाहिने हाथ में और इन्द्रायण की जड़ कमर में बाँधे; ये जड़ियाँ निरन्तरधारण करें तो आधिदैविक-भौतिक-आध्यात्मिक सूक्ष तथा प्राण देहों की व्याधियाँ-शाप, क्रूरदृष्टि; आक्रोश दोष शमन होते हैं।

वाल-वमनः—शिशु के मां के दूधपान के उपरान्त दूधपट के तो तत्काल ही उसके पास कांस्यपात्र बजायें। उसकी माता अपने मुख की वायु को पुत्र के मुख में छोड़े।

वाल-ग्रहशान्तिः—बड़े (साड़) विजार के पैरों में लगी मृत्तिका लें, गोरोचन मिलायें उसका मस्तिष्क पर तिलक लगायें :—

वालग्रह (स्कन्दग्रह):—गले में गुडक्च; सफेद कौरैय्या की छाल, बेल वृक्ष के ऊपर उगने वाला वन्दा; शमी, (छोंकर-जाटी) की डाल के टुकड़े इन्द्रायण की जड़ इनको सम्मिलित काले धागे में गूंथे, अभिमन्त्रित कराकर गले में धारण करायें। अथवा जवासा का पौधा, सैंमल (शाल्मली) की जड़, कुँदड़ की जड़; कौंच की जड़; की सम्मिलित माला धारण करायें वच्चे को चौरास्तापर अभिमन्त्रित जल से स्नान करायें।

सकुनीग्रहः—में शिशु को शितावर के ७ टुकड़े कर श्वेत धागे में अलग २ सात गांठों में बाँध माला बना धारण करायें—अथवा लक्ष्मणकन्द को श्वेत सूत्र में बाँधकर गले में धारण करायें, या इन्द्रायण की जड़ धारण करायें बड़ी कटेरी के सात टुकड़ों को श्वेत धागे की ७ गाठ लगा माला धारण करायें।

नेगमेह ग्रह में :—भूई आवले की जड़ को श्वेत धागे की ७ गाठों में बाँधें गले में धारण करायें। अथवा बालछड़ की माला धारण करायें वाल को गूलर या महुए या अन्य दूध के वृक्ष के नीचे अभिमन्त्रित जल से स्नान करायें। अथवा हाथी के दाँत की मिट्टी लें उसमें गोरोचन मिला उसका त्रिपुण्ड मस्तिष्कपर लगाया करें।

हिचकी :—शिशु के शिर व हृदय पर तेल मलें, पश्चात् तृण का टुकड़ा कर शिर से पैर तक उतारा करके पोछे फेंक दें उधरवाल न देखे।

समस्त वाल ग्रहों में :—शिशु की गर्दन में काले भांगरे की माला धारण करायें वालकों के दन्त रोग में सूर्यास्तपर केवल निर्गुण्डी की जड़ को काले धागे में मढ़कर गले में बाँधें, अथवा पुष्य नक्षत्र में लाई शंख पुष्पी की जड़ दायें वाजू में बाँधें अथवा जवासे की जड़ की वनी तावीज धारण करायें—अथवा खिरनी के बीज की तावीज धारण करायें अथवा कड़वी तुंवी के बीजों की तावीज धारण करायें इनको अभिमन्त्रित करना अनिवार्य है।

बुहारी स्पर्श से उत्पन्न शिशुरोग :—में स्वर्णपात्र या ताम्रपात्र में जल लें उसपर घी का दीप जलायें, बच्चे के शिर से स्पर्श करा के हटा दें। व्याधि शान्त होती है।

वच्चा के वार २ गोद से गिरने में :—माता गिरने के स्थान की मिट्टी लेकर तीन भागकर, तीन बार शिर से उतारकर चारों ओर फिराकर, शिर से स्पर्श कराकर फेंक दे।

नकार जाने से उत्पन्न शिशु के कष्ट के निवारणार्थ :—नकार जाते समय ही तुरन्त माता अपने शिर के वाल के गुच्छे से उसवाल के मुखपर हवा करे।

शिशु के अनामक रोग शमनार्थ :—वाल को स्नान गृह में विठाकर शिरपर चलनी के द्वारा गो मूत्र की मन्द धारा छोड़े, पुनः धोवी वाले रेह के क्षार जल से इसी छलनी द्वारा मन्द जल छोड़े। धूर्त साधु वेशो से कौड़ी खरीद ले, उसमें पारा डाले मुंह को मोम से वन्द कर दे उसे काले धागे में गूंथ कर गले में बाँध दें।

अभिमन्त्रित करना सभी का अनिवार्य है। अथवा कमलपत्र हरित पर वाल को एक सप्ताह सुलाये। अथवा गौ की लौनी शिशु के शरीर में मलकर कालेश्वान से चटवायें।

भूतोन्माद निवारण विधि

वैद्यक ग्रन्थों में वर्णित विविध प्रकार के भूतोन्माद-देवोन्माद-ऋष्यादि उन्माद-पितरोन्माद-गन्धर्वोन्माद-अप्सरसोन्माद-यक्षोन्माद-राक्षसोन्माद-पिशाचोन्माद-शापोन्माद आदि के लक्षणों से तथा उनके प्रवेश (आवेश) को तिथियों व उनमें वर्णित गतिविधियों से निश्चय करके-योग्यवैद्यो से चिकित्सा करायें।

कुछ अनुभूत आयुर्वैदिक-पेय नस्य-अञ्जन, वर्ति तथा लेप विधियों को जो पूर्व वर्णित हैं। सेवन करें।

यदि इनसे पूर्ण लाभ न हो तो अथर्व वेद में वर्णित चातनगण, अम्बादिगण, वास्तुगण-अभयगणों में वर्णित विधि से अवमार्जन स्नान, उपस्थान' होम एवं रक्षातन्त्र करे।

यह लौकिक-वैदिक शापों में, स्त्री पुरुषों के आक्रोश (कोसने में) क्रूर दृष्टि ब्राह्मण-शाप, पिशाच, राक्षसादि ग्रह एवं पापगृहीत, स्त्रीगर्भस्राव मृतापत्यदोष, 'क्रव्या गृहीतदोष, तथा समस्त अभिचारजनित दोष-कृत्याजनित दूषणों की शान्ति विधि है।

सर्व प्रथम—शान्तिघट में पूर्व वर्णित शान्ति औषधियाँ व १० शान्ति वृक्षों को टहनियाँ, तीर्थों की पावन रज, तीर्थों के जल डाले और अम्बादिगण के शान्ति सूक्तों से जल अभिमन्त्रित करे।

चातनगण—कां ६ सू ३२ "अन्तर्यावे" की ३ ऋचाओं से पूर्व स्थापित वैदिक अग्नि की ३ प्रदक्षिणा कर पुरोडाश से होम करे।

कां ६ सू ३४ "प्राग्नये" (७।११९-२) 'प्रेतः" इन ५ ऋचाओं से (शमी-वेल-आदि कांटेदार यज्ञिय वृक्षों की समिधाओं में घो आदि १३ द्रव्यों से होम करे।

टिप्पणी—(१) कच्चामांस खाने वाले (प्रेताग्निः)।

कां १ सू० १६ "ये मावास्यांरात्रिम्" इस सूक्त से द्वेषकर्त्ता राक्षसादि के मारणार्थ अभिमन्त्रित सीसचूर्ण (सीससे—सीसनदीसीसे अयोरजांसि "कृकलाशशिरः सीसानि" (नदीसीसं=नदीफेनं) उच्यते। सीसचूर्ण मिश्रित अन्न दें; उसके शरीर के आभरणों या अंगों को स्वयं काटी हुई वांस की छड़ी से ताडन करे। (कौ० १।८) यह अमावास्या में या तारकादि युक्त निशा में संचरणशील निशाचरों को निमित्तकर "राक्षोघ्नोष्टि" करे "अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशम् अष्टाकपालम् अमावास्यायां निशायां निर्वपेत्। इति। तथैव तेषां संचरणमेव निमित्ती कृत्यतस्यां रात्रौ आत्मरक्षाकर्त्तव्येतितेनैव आपस्तम्बेनोक्तम्।" दिवादित्यः सत्वानिगोपायति नक्तं चन्द्रमास्तस्माद् अमावास्यायां निशायांस्वाधीन आत्मनो गुप्तिम् इच्छेत्। इति। (आप० ध० १;३१ (अग्निः तुरीयः (चतुर्थ "पूर्वं देवानां हव्यवाह-कास्त्रयः अग्नयोमृताः। तदपेक्षया अस्य वर्तमानस्य अग्नेस्तुरीयत्वम्। श्रूयतेहि तैत्तिरीयके।

अग्नेस्त्रयो ज्यायांसोभ्रातर आसन् ते देवेभ्यो हव्यं वहन्तः प्रामीयन्तः" (तै० सं० २;६;६;१ इति। यद्वा वैतानाग्नयस्त्रयः; तदपेक्षया गार्ह्योग्निश्चतुर्थः। अथवा **वैतानिकः गार्ह्यः सांग्रामिकश्चेति** त्रयः अग्नयः। तदपेक्षया आङ्गिरसो अग्निश्चतुर्थः। सोग्निः यातुहा-यातूनां रक्षसां हन्ता। "अग्निः खलुवै रक्षोहा" (तै० सं० ६: १: ४: ६) इति तैत्तिरीयकम्।

अथर्व कां १ सू० २८ "उपप्रागाद" से शुक्ल वीरिणेषीका कृतमणि बन्धन करे अर्थात् (शुक्लप्रसूतस्व चतसृणाम् इषीकाणाम् उभयतः) (कौ० ४।२) तथा दो उल्मुकों को अभिमन्त्रितकर घर्षण करे। परस्पर दोनों को घिसे।

नोट :—चातनगण—(१।७) "स्तुवानम्" (१।८) इदं हविः (२।१४) निः स्सालाम्) (२।१४) "अरायक्षणम्" (२।१८-३,५) शंनोदेवीपृश्निपर्णी (२।२५) "आपश्यति" (४।२०) "तान् सत्यौजाः" (४।३६) त्वयापूर्वम् (४।३७) पुरस्ता द्युक्तः (५।२६) "रक्षोहणम्" इत्यनुवाकः (८।३-४) चातनानि इन सूक्तों से अपनोदन अर्थात् छीटें दें, स्नान, उपस्थान करें। कौ० ४,१ परन्तु शान्तिकल्प १६ में (चातन तथा मातृनामागणों से होम करें। इन सूक्तों से भूत, पिशाचादि आविष्टप्राणी से उनके उच्चाटनार्थ फली करण-तुषावतक्षणानां होम" करे।

कां० १ सू० २६ "आरेऽसौ" मारने को उद्यतशत्रु को देखता हुआ जपे।

मातृनामागण—(२।२) **दिव्योगन्धर्वः**"[१] (६।१११) "इमं मे अग्ने" (८।६) "**यौतेमाता**" तथा

वास्तोस्पति (वास्तुगण) :—(३।१२) "इहैवध्रुवां" (६।७३) "एहयातु" (६।६३) "यमोमृत्यु" (१२।१) "सत्यं वृहत" तथा

कृत्यादूषणगण :—(२।११) "दूष्यादूषिरसि" (४।४०) येपुरस्तात् (४।१७) "**ईशानांत्वा**" (४।१८) "समं ज्योतिः" (४।१६) उतो अस्यवन्धुकृत (५।१४) "सुपर्णस्त्वा" (५।३१) "यां ते चक्रु" (८।५) "अयंप्रतिसर (१०।१) यां कल्पयन्ति।

टिप्पणी—(२) ऐरण्डकागुच्छा।

रक्षोहण अनुवाक् :—(१।७; ८) चातनगण में निर्दिष्ट (१।१६) "ये अमावास्याऽयां" (१।२८) "उपप्रागात्" (१।२६) "आरे असौ" (१।२७) "अमूः पारे" (६।३) पातं नः (६।७६) यएनंपरिषीदन्ति। (२।१४) ये निस्सालाम् (२।१८) ओजो असि (२।२५) शंनोदेवीपृश्निपर्ण्यशं (३।१) अग्निर्नः (३।२) अग्निर्नोदूत (४।२०) आपश्यति (४।३६) (४।३७) चातनगण में हैं। (५।२६)। (६।३२) अन्तर्दावे (६।३४) प्राग्नये (८।३) "तदग्ने चक्षुः" रक्षोहणंवाजिन ये सभी सूक्त पूर्वोक्त सभी प्रकार के या जो लिखने से शेष हैं, जैसे दैवी, आसुरी, मानवी-राजसी, कापालिकी आदि कृत्यायें, दैवोपहत-बाल, कुमारों की मृत्यु, पशु-स्त्री, धन हानि मिथ्यादूषण-राजनिग्रहादि।

इनके निराकरणार्थ घी युक्त सर्वौषधियों से होम करे (चौरास्तापरग्रहगृहीत रोगी को विठाये, दर्भसेवनी इण्डलीशिरपररख, उसके ऊपर मिट्टी के कपाल में अग्नि रखकर मातृनामा-गण से होम करे। हवन से शेष को चौरास्तापर लेप करे उस कपाल को पक्षी जिसपर बैठते या सोते हों, ऐसे वृक्ष से ३ पाद के छीकेपर लटका दें। यह पीपल के, जङ्गल के, वृक्षपर लटकाये।

जहाँ घी, मांस; मधु-स्वर्ण; रेत; आदि की अद्भुतवर्षा हो; बन्दर श्वापद-चौपाये यक्ष आदि का अद्भुत स्वरूप दिखाई दे शृगाल-मैंढक आदि प्रतीत हों, इन सभी अद्भुत वातों की शान्ति के लिए "दिव्योगन्धर्व" आदि से घी से होम करे।

"चातनोमातृनामा च वास्तोष्पत्योथपाप्महा (न० क० २३ इति)

स्त्रीशूद्र, राज, ब्राह्मण, कापालिक, अन्त्यज; शाकिनी; डाकिनी, आदि द्वारा किये गये घातक प्रयोगों से अपनी रक्षा के लिये, तथा कृत्या दोष निवारणार्थ (तिलक वृक्ष) की वनी मणि की प्राणप्रतिष्ठा, होमादिकर अभिमन्त्रितकर बाँधे। शान्ति जल से छींटे दे, स्नान कराये, होम-बलिदान करे।

"कृत्यादूषणएव च। चातनो मातृनामा च।" (न० क ०२३)

"अथशान्तैः कृत्यादूषणैश्चातनैः" (शा० क० १६)

कृत्या प्रतिहरणार्थ "दूष्यादूषिरसि" इन आद्यऋचाओं से सूक्त में वर्णित-"तिलकमणि दोष को निवारण करने से (दूष्या)-दूसरे से प्रेरित हेति (आयुध) तथा मेन्या (वज्र) या मन्त्रात्मक वाग्वज्र) परउच्चारित वाग्वज्र की (मेनि) निवारक, अर्थात् शत्रु कृत अभिचार आदि से उत्पन्न समस्त अरिष्ट निवारक (तिलक वृक्ष से वनी या प्रतिसर मणि रक्षासूत्र में "आपश्यति ४।२०)" "४।३६; ४।२५ पृश्निपार्णी" आदि सूक्तों से ब्रह्मग्रहादि जनित भय के निवारणार्थ-"सदंपुष्पा" नाम की मणि दक्षिण हाथ में अभिमन्त्रितकर धारण करे। यह त्रिसन्ध्यामणि मन्त्र सामर्थ्य से ब्रह्म एक्षसादि ग्रह, पिशाच, राक्षस, गन्धर्व-कृत्या आदि दूषणों के शान्त करने वाली है।

"त्वयापूर्वम्" (४।३७) से सर्वभूतग्रह निवारणार्थ (शमी) (छौंकर-जाटी) के पत्तों को पीसकर-शमी के फलों में मिलाकर-इस सूक्त से अभिमन्त्रितकर रोगी को खिलाये। और घी

के साथ शरीरपर मले। रोगी बाले घर में विखेर दे। तथा "गान्धर्वी अश्वक्षये" घोडों में मृत्यु रोग पड़ने में गान्धर्वी शान्ति करें। (न०क० १७) के अनुसार—

"शिग्रुंहुत्वा जलं चैवगुल्गुलुंविषमेव च।
पिप्पलीं कृष्णलीं चैव जुहुयाच्चा तनेनतु॥
औषधिं सहमानां तुपृश्निपर्णीं तथापराम्।
अजश्रृङ्गीं समस्यैताम अमन्त्रं जुहुयात्सकृत॥

राल-गुग्गुल-लोहवान-अपामार्ग-पिप्पली, पृश्निपर्णी-सहदेवी, तीक्ष्ण गन्धवाली अजश्रृङ्गी-अराटकी-मयूरपंखी (अश्वत्थ, वट, पिलखन, गूलर अर्जुनवृक्ष-ताडवृक्षों) की समिधाओं पर, उपरोक्त वस्तुओं से हवन करें।

"नैयग्रोध औदुम्बर आश्वत्थः प्लाक्षइतीध्मोभवत्येते वैगन्धर्वा-प्सरसां गृहाः" इति। तै० सं० ३: ४: ८: ४)। अजश्रृङ्गी (सींगकी आकृति के फलों वाली) मैंडासींगी बूटी।

इसमें आदि और अन्त-"राक्षघ्नोष्टि" के प्रथम गायत्री मंत्र जपै, तदनन्तर शन्नोदेवी मन्त्र जपैं। ऐसे ही कार्य की समाप्ति में जपना अति अनिवार्य है।

इन सभी में शान्ति कर्मों के प्रारम्भ और अन्त में पिप्पलादि शान्तिगण मन्त्रों को विधि अनिवार्य है।

"येऽमावास्यायांरात्रिम्" (१।१६) यह चातनगण कार्य विधि में है। तथापि इससे द्वेषी के मारण, उच्चाटनार्थ नदीफेन, लोह के टुकड़े, (भस्मादि) से युक्त सप्तधान्य अभिमन्त्रित कर दें। तथा उसकी प्राप्य पैरों को रज या वस्त्र, आभरण की प्राणप्रतिष्ठा पूजाकर, उसे स्पर्श करते हुए इसका जप करै और स्वयं तोड़ी हुई बांस की लकुडो (छड़ी) को अभिमन्त्रित कर उससे प्रतिकृति-वस्त्र, आभूषणों को ताडित करें। (कौ० ६।१।१।८) यह कार्य अमावास्या की रात्रि में विशेष फल प्रद है।

आपस्तम्भ ध० १।३१ "अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशम् अष्टा कपालम् अमावास्यायां निशायां निर्वपेत्। **अमावस्या की रात्रि में** ही राक्षोघ्नेष्टि उचित अनुकूल होती है। अमावस्या में राक्षसादि रात्रि में स्वच्छन्द विहरण करते हुए प्राणियों को आघात न पहुँचायें- इससे रक्षा करें "आप० ध०" दिवादित्यः सत्त्वानिगोपा यति नक्तं चन्द्रमास्तस्माद् **अमावास्यायां निशायां** स्वाधीन आत्मनोगुप्तिम् इच्छेत्" इस कार्य में चतुर्थ-आङ्गिरस अग्निः का आवाहन करें।

श्रुतिः "आग्नेस्त्रयो ज्यायांसोभ्रातर आसन् ते देवेभ्यो हव्यं वहन्तः प्रामीयन्त" (तै० सं० २।६। ६।१ अथवा ३ वैतानाग्नि चतुर्थ गार्हपत्याग्निः। अथवा वैतानिकः गार्ह्यः सांग्रामिक-ये तीन आङ्गिरस चतुर्थाग्निः। वह राक्षसों को भस्म करने वाली है "अग्निः खलुवै रक्षोहा" तै० सं० ६।१।४।६।

"उपप्रागात्" (१।२६) चातनगण कार्यों में है। राक्षसादि के उद्वेग निवारणार्थ श्वेत पुष्पवाली लता या वृक्ष अथवा बूटी-(शंखपुष्पी) सदंपुष्या (सन्ध्या) आदि को मणिरूप में धारण करायें या अर्जुन की लकड़ी से बनी। दो उल्मुक अभिमन्त्रित कर परस्पर एक दूसरे से घिसें। कौ० ४।२ इन सभी कार्यों में मार्जन, स्नान, उपस्थान होम कर्मार्थ निम्नगणों का विनियोग करें।

अथ चातनगण (अ० कां १।१६-१), १।२८-१ (६।३२-१) (६।३४-१)

चातनं शत्रुबाधनम्। (१।१६-१)

ऋषि १-४।१ अग्निः, २ इन्द्रः, वरुणः (२-४ दधत्यंसीसम्) अनुष्टुप् ४ ककुम्मती अनुष्टुप्।

ये॒ऽमा॒वा॒स्या॒३॑ं रात्रि॑मु॒दस्थु॑र्व्रा॒जम॒त्त्रिणः॑।
अ॒ग्निस्तु॒रीयो॑ यातु॒हा सो॑ अ॒स्मभ्य॒मधि॑ब्रवत् ॥१

सीसा॒याध्या॑ह॒ वरु॑णः सीसा॑या॒ग्निरुपा॑वति।
सीसं॑ म॒ इन्द्रः॒ प्राय॑च्छ॒त् तद॒ङ्ग या॑तु॒चात॑नम् ॥२

इ॒दं विष्क॑न्धं सहत इ॒दं बा॑धते अ॒त्त्रिणः॑।
अ॒नेन॒ विश्वा॑ ससहे॒ या जा॒तानि॑ पिशा॒च्याः ॥३

यदि॑ नो॒ गां हंसि॒ यद्यश्वं॒ यदि॒ पूरु॑षम्।
तं त्वा॒ सीसे॑न विध्यामो॒ यथा॒ नोऽसो॒ अवी॑रहा ॥४

"उपप्रागात्"; (६।३७) की ऋचा ३ "योनः शपात्" से ओलों से टूटी वृक्षों की समिधाओं से अभिचार कर्म में होम करें। अभिचार जनित समस्त दुरित निवारणार्थ इस सूक्त से अभिमन्त्रित श्वेत मिट्टी श्वान को दें। ढाक के पत्तों के पृष्ठपर सिन्दूर लगा अभिमन्त्रित कर होम करें इस प्रकार शाप देने बाला अभद्रपुरुष-दुर्वक्ता, निन्दक स्वयं नष्टभ्रष्ट हो जाता है। इसी कर्म में (१।२८) निम्न भी है।

१-४ चातनः। १-२ अग्निः, ३-४ यातुधानीः। अनुष्टुप्, ३ विराट्पथ्या वृहती ४ पथ्यापङ्क्तिः।

उप॒ प्रागा॑द् दे॒वो अ॒ग्नी र॑क्षो॒हामी॑व॒चात॑नः।
दह॒न्नप॑ द्वया॒विनो॑ यातु॒धाना॑न् किमी॒दिनः॑ ॥१

प्रति दह यातुधानान् प्रतिदेव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने संदह यातुधान्यऽः ॥२

याशशाप शपनेनयाधंमूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभेतोकमत्तुसा ॥३

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यऽम् ।
अधा मिथो विकेश्योऽ विघ्नतां यातुधान्योऽ वितृह्यन्तामराय्यऽः ॥४

"अन्तर्दावे" (६।३२;) "प्राग्नये" (६।३४) "तथाप्रेतः" (७।११६-२) ये चातनगण कर्म विधि में हैं। इनसे पूर्वोक्त (१।२६) ये अमावास्या को आङ्गिरस अग्निः की तीन परिक्रमा कर, पिशाच राक्षसादि से उत्पन्न भय-व्यथा के निवारणार्थ पूर्वोक्त वस्तुओं के पुरोडाश से होम करे। कौ० ४।७

नोट :—दिन के अहोरात्र रूप तीस मुहूर्त्त नामक धाम हैं, उनमें सूर्यविविध प्रकार से प्रतिक्षण दीप्यमान होते हैं। अतः श्रुति है "ऋग्भिः पूर्वाह्णेः दिविदेव ईयते। यजुर्वेदे तिष्ठति मध्येअह्नः। सामवेदेनास्तमये महीयते "तै० ब्रा० (३।१२।६।१)

३२ यातुधानक्षयणम् (६।३२-१)

(१-३) १-२ चातनः; ३ अथर्वा। १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ। त्रिष्टुप् २ प्रस्तारपङ्क्तिः।

अन्तर्दावे जुहुतास्वे३तद् यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उपयन्तु मृत्युम् ॥३

३४ शत्रुनाशनम् (६।३४-१)

१-५ चातनः। अग्निः। गायत्री

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम्। सनः पर्षदतिद्विषः ॥१
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा। सनः पर्षदति द्विषः ॥२

यः पर॑स्याः परा॒वत॑ स्ति॒रोधन्वा॑ति॒ रोच॑ते । सनः पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥३
यो विश्वा॒भि वि॒पश्य॑ति॒भुव॑ना॒सं च॒पश्य॑ति । सनः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥४
यो अ॒स्यपा॒रे रज॑सः शु॒क्रो अ॒ग्निरजा॑यत् । सनः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥५

(६।३७) शापनाशनम् (स्वस्त्ययनगण)

१-३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) चन्द्रमाः । अनुष्टुप् ।

उप॒प्रागा॑त् सहस्रा॒क्षोयु॒क्त्वा श॒पथो॒ रथ॑म् ।
श॒प्तार॑मन्वि॒च्छन् मम॒ वृक॑ इ॒वावि॑मतो गृ॒हम् ॥१

परि॑णो वृङ्धिशपथह्र॒दम॒ग्निरि॑वा दह॑न् ।
श॒प्तार॒मत्र॑ नो जहि दि॒वो वृ॒क्षमि॑वा॒शनिः॑ ॥२

यो न॒ः शपा॒दश॑पतः शप॑तो॒ यश्च॑ नः शपा॑त् ।
शुने॒ पेष्ट्र॑ मि॒वाव॑ क्षाम॒ तं प्रत्य॑स्यामि मृ॒त्यवे॑ ॥३

(६।४०) अभयम् ।

"भ्रातव्यक्षयणम्" (२।१८) ये चातनगण विधि में हैं। इस सूक्त से अभिचार कर्म में (सरपते) मुञ्चशर आदि की समिधायें, इन्द्र जौ, जौ, काले धान, काले तिल, कांगनी, कोदौं सवां, सत्तू मकरादि चूर्ण से होम करें। कौ० ६।२।

"शंनोदेवीपृश्निपर्णी" (२।२५) चातनगण कार्यो में है। तथापि कुष्ठ; सभोउन्माद, दाद, विसर्पक, शिरोरोग-मृगी, हिस्ट्रिया, ग्रहिणी (आंतों) के दोष, गर्भक्षय-गर्भ स्राव आदि, एवं पिशाच आदि से उत्पन्न समस्त दोषों में पृश्निपर्णी (चित्रपर्णी) औषधि को पीसकर गो घृत के साथ लेपें। दुग्ध-घृत, मधु के साथ सेवन करें। इसके साथ पिप्पली-वरण (बन्ना) भी मिलावें तो विशेष उपयुक्त होता है "अघद्विष्टा (२।७) "वरणः" (६।८५) पिप्पली (६।१०९) इन सूक्तों के साथ अभिमन्त्रितकर छींटे दें; धोयें, स्नान के जल में डाल गर्मकर स्नान करें लेपें। (कौ० ४।२)

बृहच्चातनगण (कौ० कं० ८ सू० २५)

अ० वे० (४।२०) (१।७;८) (२।१४; १८-३) २५; (४।३६; ३७) ५।२९ (८।३)। लघुचातन पूर्व लिखे हुए हैं।

शत्रु-नाशनम् (२।१८)

चातनः । अग्निः । द्वैपदम् । साम्नी बृहती ।

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनंमे दाः स्वाहा ॥१
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनंमेदाः स्वाहा ॥२
अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥३
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनंमे दाः स्वाहा ॥४
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनंमे दाः स्वाहा ॥५

पृश्निपर्णी (२।२५)

चातनः । पृश्निपर्णी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ भुरिक् ।

शंनोदेवीपृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्राहिकण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१
सहमानेयंप्रथमापृश्निपर्ण्यजायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरोवृश्चामि शकुनेरिव ॥२
अरायमसृक्पावानं यश्चस्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३
गिरिमेनाँ आवेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४
पराच एनान् प्रणुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसियत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥५

"तान्त्सत्यौजा" (४।३६) तथा "त्वयापूर्वम्" (४।३७) चातनगण कर्मविधि में है (४।१) "ये अमावास्यायाम्" (१।१६) में वर्णित अमावास्या की अर्द्धरात्रि में मांसाहारी पिशाचादि से रक्षा के विषय में श्रुतिः "निशितायां हि रक्षांसि प्रेरते सम्प्रेणन्त्येवैनानि हन्ति" तै० सं० २।२।२।३ । भूतग्रहादि भैषज्यार्थ (शमी) जाटी या छौंकरा वृजभाषा वृक्ष के पत्ते व फली मिला-गृहग्रहीत रोगी को खिलायें, बाँधें, सोने के स्थान; चारपाई के चारो ओर; छिड़कें। इसकी विशेष सामिग्री "त्वयापूर्वं" (४।३७) के साथ वर्णित है, वट-पीपल-पिलखुन-जामुन-गूलर-ढाक-अशोक-छौंकर (शमी) सैमर-वन्नाः अर्जुन-कत्था, रक्तचन्दन-श्वेतचन्दन देवदारु-चीड़बृक्ष-अश्वगन्ध-चित्रपर्णी-मांसपर्णी-मछेछो-अपामार्ग-ऊँटकटेरा-कटेहरी-नदीफेन-लोहफेन लोह भस्म-भैंसागूगल धतूरा-पिप्पली-अजश्रृङ्गी-वच-सहदेवी-आदि-उन्माद नाशक द्रव्य। से होम करें, इन्हीं से युक्त जल से इनका लेप, स्नान, छींटे, मर्दन आदि करें।

सत्यौजा अग्निः । (४।३६)

१-१० चातनः । सत्यौजा अग्निः । अनुष्टुप्, ६ भुरिक् ।

तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥१

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥३

स सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥६

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ॥९

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०

कृमि नाशनम् (५।३७)

१-१२ वादरायणिः । अजशृङ्गी १ अप्सरसः १-२,६,१० औषधीशृङ्गी ३-५ अप्सरसः,

७-१२ गन्धर्वाप्सरसः । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसानाषट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तार पङ्क्तिः, ७ परोष्णिक, ११ षट्पदा जगती, १२ निचृत् ।

त्वयापूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यप स्त्वया कण्वो अगस्त्यः १
त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे ।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान्गन्धेन नाशय ॥२
नदीं यन्त्वप्सरसोऽपांतारमवश्वसम् । गुल्गुलू पीला नलद्यौ३ क्षगन्धिः प्रमन्दुनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रति बुद्धा अभूतन ॥३
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४
यत्र वः प्रेङ्खाहरिता अर्जुना उतयत्राघाटाः कर्कर्यः सं वदन्ति ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५
एयमगन्नोषधीनांवीरुधां वीर्याऽवती । अजशृङ्ग्यऽराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥६
आनृत्यतः शिखण्डिनोगन्धर्वस्याप्सरापतेः । भिनद्मि मुष्कावपियामिशेपः ॥७
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥८
भीमा इन्द्रस्यहेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदानगन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥९
अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतयमामकान् ।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्रमृणीहि सहस्वच ॥१०
श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियोदृशइवभूत्वागन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितोनाशयामसि ब्रह्मणावीर्याऽवता ॥११
जायाइद् वो अप्सरसोगन्धर्वाः पतयोयूयम् ।
अपधावतामर्त्यामर्त्यान् मासचध्वम् ॥१२

पृष्ठ २४४ में उल्लिखित मन्त्र "दिव्योगन्धर्वो" काण्ड २ सूक्त २ मातृनामागण में होने से मातृनामागण के विहित समस्त कर्मों में, तथा गन्धर्व; राक्षस, अप्सरा, भूतग्रह, पिशाच; ब्रह्मराक्षस; यक्षादि समस्त के निवारण में; तथा जहाँ घी, मांस, मधु, हिरण्य, धूल, पाषाण विष्टा आदि या घोर वर्षा या अनावृष्टि हो या बन्दर, श्वान सर्प आदि के रूप में दृष्टिगोचर हों या मूर्ति रोयें, हसैं; यक्ष के अद्भुद्दर्शनादि दोष हों; मेढक आदि के समान शृगाल आदि के वदन दिखाई पड़ें। वा आकाश में धुंवा सा छाया रहे, ऐसी शाम्बरी माया हो दिशायें स्तब्ध हों, उलूक दिन में बोलें। सभी प्रकार के भयावह अनिष्टकारी अमाङ्गलिक अपशकुन हों इन सभी की शान्ति के लिये घी युक्त शान्ति औषधियों से (जो पूर्व वर्णित हैं) होम करें। उपर्युक्त ग्रहगृहीत के शिर पर दाभों की इण्डली रखकर उस पर नवीन मिट्टी का कपाल रक्खें; उसी कपाल में दक्षिणाग्नि में अभिचार कर्म में ग्राह्य-समिधाओं पर चौरास्ता पर या प्रधान देवता के समक्ष बिठाकर रात्रि (निशा) में हवन करें। उस कपाल को मूंज के छीकें पर रख कर जंगल के अश्वत्थ वृक्ष पर जहां गृद्ध, चील, बाज आदि पक्षी बैटते हों लटका दें। (कौ० सू० ४।२)

ग्रहयाग में प्रधान होम के उपरान्त इसी सूक्त से होम करें। शान्ति कल्प १६ :— यथाशान्ति-कृत्या दूषणैः (२।११); (४।४०); (४।१७); (४।१८) (१९); (५।१४;३१); (-।५); १०।१); चातनैः (१।८;८); (२।१४;१८; २५); (३।५); (८।२०;३६;३७); (५।२९); (८।३;४); मातृनामा (२।२); (६।१११); (८।६); वास्तोष्पत्यैः (३।१२); (६।३;९६); (१२।१) से होम करें। यह पूर्वोक्त ३० शान्तियों के तन्त्रभूत महाशान्ति में है इस सूक्त तथा इस गण; इन गणों से होम के उपरान्त पूर्व अभिमन्त्रित शान्ति घट; प्रणीता जल से कुशा; अपामार्ग से छींटे दें यथा

चातनो मातृनामा च वास्तोष्पत्योऽथ पाप्महा" न० क० २३

तथा च अश्वमेध याग में; ब्रह्मा; संवत्सरान्त में प्रयुज्यमान अश्व को; अनुमन्त्रित करें। वै० ७।१ तथा वृहदारण्यक (१।१।१)

"उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य— आदि"

यह मन्त्र "दिव्योगन्धर्वो" (२।२) के सन्दर्भ में अनिवार्य विनियोग है।

अभिभूत रुग्ण को मूज की रस्सियों के पाशों से ग्रन्थियों को बाँध लें और उपरोक्त गण की कार्यवाही के साथ "इमंमे अग्ने"* (६।१११) को पाठ कर खोलते जावें। यह समस्त उन्मादों में मृगी (हिस्ट्रिया) आदि कर्मजव्याधियों में सफलप्रद है। "यौते माता" (८।६) भी इसी प्रकार है ये तीनों (अर्थसूक्त) कहे गये हैं। कौ० ४।११ सीमन्तोन्नयन पुंसवन में श्वेत-पीत सरसों अभिमन्त्रित कर गर्भिणी के बाँधै।

मातृगण

(२ २—१) भुवनस्पति सूक्तम्।

* आँजनघास भाषा में

१—५ मातृनामा। गन्धर्वाप्सरसः। त्रिष्टुप्, १ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्वि राष्नाम् गायत्री, ५ भुरिगनुष्टुप्।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एवनमस्योऽविक्ष्वीड्यः।
तं त्वायौमि ब्रह्मणादिव्यदेव नमस्ते अस्तु दिविते सधस्थम् ॥१॥

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाताहरसो दैव्यस्य।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेकएव नमस्यऽः सुशेवाः ॥२॥

अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत्।
समुद्रआसां सदनंम आहुर्यतः सद्य आचपराच यन्ति ॥३॥

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४॥

याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्यो ऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५॥

उन्मत्ततामोचनम् (६।१११—१ मातृगण)

१—४ अथर्वा। अग्निः। अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्।

इममें अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥१॥

अग्निष्टे निशमय तुयदि ते मन उद्युतम्।
कृणोमि विद्वान् भेषजंयथानुन्मदितोऽससि ॥२॥

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवायथानुन्मदितोऽससि ॥४॥

गर्भदोष निवारणम् (८।६—१ मातृगणः) (गर्भाधानेनिर्दिष्टव्य।)

पिशाचक्षयणम् (४।२०—१) मातृनामा (पूर्वोल्लिखित)
इतिमातृगणः

(७) यातुधान नाशनम् (अ० कां० १ सू० ७)

१-७ चांतनः । अग्निः (जातवेदाः) ३ अग्नीन्द्रौ । अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥

वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥४॥

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७॥

१-४ चातनः । १ २ वृहस्पतिः अग्निषोमौच; ३-४ अग्निः (अ० कां० १ सू० ८)
(जातवेदाः) । १-३ अनुष्टुप्० ४ वार्हतगर्भा त्रिष्टुप ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत्
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥१॥

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२॥

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥३॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तां स्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येऽषां शत तर्हमग्ने ॥४॥

ब्रह्मराक्षसादि शान्ति

"आपश्यति" (४।२०) इससे ब्रह्मग्रह आदि से उत्पन्नभय-निवारणार्थ चातनगण में वर्णित कार्य करें-तथा "सदंपुष्पा" नाम की त्रिसन्ध्या मणि-अभिमन्त्रित कर धारण करायें। कौ० ४।८। तथा ४।१ इनके साथ ही 'शंनो देवी पृश्निपर्णी" (२।२५); "तान्त्सत्यौजा" (४।३६); भी हैं। त्रिसन्ध्यामणिधारण से-भूलोक-मध्यलोक अन्तरिक्ष-तीनों लोकस्थित प्राणिजात साक्षात् दिखाई देने लगने से, जागरूकता सर्वज्ञता आजाने से ब्रह्मग्रह आदि स्पर्श नहीं करते हैं। इसके शोभायमान पत्ते जैसे (गरुण पंख) की भाँति कनिष्ठिका अंगुलि जैसी कृष्णमण्डलवाली सदंपुष्पा नामक औषधि विशेष हैं सम्भवतया, मयूरपंख हो यह विचारणीय अनुसन्धानार्थ भी हैं। इसी सूक्त के उपस्थान करने से दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है।

इसमें मन्त्रसामर्थ्य-ऋषियों का तपोबल-देवबल, भेषजबल पूर्णरूपेण अव्यर्थ-अमोघ लाभप्रद कहा है।

(२०) पिशाचक्षयणम् (अ० कां० ४ सू० २०)

१-९ मातृनामा। मातृनामा। अनुष्टुप् १ स्वराट्, ९ भुरिक्।

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्त रिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥१॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२॥
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३॥
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४॥
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यऽः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥८॥

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥९॥

"देवा इमम्" (६।३०) से पौनसिरसवे पवालेने में मधु घृत, यव, हिरण्य, अभिमन्त्रित कर दें और इसीसे अभिमर्शन जप करें। कौ० ८।७। प्रथम हल प्रारम्भ में करें।

(६।३०) पापशमनम्

१-३ उपरिवभ्रवः। शमी। जगती। २ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पाच्छकुमत्यनुष्टुप्।

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥१॥

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥२॥

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥३॥

अ० का० ६। सू० ३०

"यस्येदमारजः। (६।३३) इन तीनों ऋचाओं से कृषि कर्मारम्भ में क्षेत्र में जायें दोनों जोतों को जुए में बाँधें और दक्षिण वैल को प्रथम जुए में लगायें इसे जपते जावें पुनः दूसरे को लगायें। कर्त्ता प्रथम इसे जपता हुआ जोते और हारी (हलवाहक) को हल दे। उनतीन बार जोती कुड़ी (सीता) के अन्तों की (छोर की) ओर अग्नि स्थापन करे-भोग (पुरोडाश) से इन्द्रदेव का तथा स्थालीपाक से अश्विनी कुमारों का होम करे, बैलों की पूजा कर कच्चा गोला फोड़ें गोले का प्रसाद सबको दें स्वयं भो लें। और उसीमें कुड़ी (सीता) में दबा दें। कौ० ३।६। सर्व कर्मफल लाभार्थ (६।३३) व "अथर्वाणम्" (७।२) अदिति द्यौरदिति (७।६) से इन्द्रदेव का जप-उपस्थान होम करे। कौ० ७।१०।

हलफटने या जुआ फटने के अशकुन शान्ति में इसीसे शान्ति जल से छीटें दें। कौ० १३।१४।

(३३) इन्द्रस्तवः। (६।३३)

१-३ जाटिकायनः। इन्द्रः। गायत्री, २ अनुष्टुप्। (चातनगण)

यस्ये॒दमा॒रजो॑ यु॒जस्तु॒जे जना॒ वन॒ꣳस्वः। इन्द्र॑स्य॒ रन्त्यं॒ बृहत् ॥१॥

नाधृ॒ष आद॑धृषते धृषा॒णो धृ॑षि॒तः शवः।

पु॒राय॒था व्य॒थिः श्रव॒ः इन्द्र॑स्य॒ नाधृ॒षे शवः ॥२॥

सनो॑ ददा॒तु तां॑र॒यिमु॒रुं पि॒शङ्ग॑ सं॒दृशम्।

इन्द्रः॒ पति॑स्तु॒ विष्ट॑मो जने॒ष्वा ॥३॥

(अ० का० ६ सू० ३३)

"रक्षोघ्नेष्टिः"

घर आदि के ऊपर ग्रह पिशाच आदि के खोटी खरी-भावना के जानने के लिये उपरोक्त अनुवाक से सरसों की लकड़ी तथा दाभमय (शरपते की वालें) अभिमन्त्रितकर स्थापित करे। यदि प्रातः काल में लकड़ी और दाभों में कोई विकार दिखाई दे तो ग्रह हैं; ऐसा समझें। वैश्रवणदेव को नमस्कार कर इसी अनुवाक से जल अभिमन्त्रित करके ग्रह गृहीत रोगी को पिलाये; छीटें दे, स्नान कराये, रात्रि में २ उल्मुक अभिमन्त्रितकर परस्पर उन्हें रगड़ा दे।

पहिले उल्मुक, कील, कपाल, कृत्या आदि में (का० २। सूक्त ३४ ऋचा ५ "प्रजानन्तः" से प्राण आस्थापित करे।

"ब्राह्मणाः स्वस्ति वाच्याथ प्राङ्मुखः संविशेत् ततः।
रक्षोहणम् अनुवाकं जपेत् कर्त्ताथ ऋत्विजः॥

"त्रिर्यातुधानः" (८।३) सूक्त रक्षोहण अनुवाक में है, उसी विधि से उन्हीं सभी कर्मों का विनियोग करे। इसकी ऋचा १५ से १८ तक "यः पौरुषेयेण" से ४ ऋचाओं से गौ-भैंस आदि के दूध का रक्त हो जावे, रक्त दुहन करै, दुर्गन्धियुक्त दूध हो जाय; दूध दुहने में मारपीट करै, दूध न दुहने दें, सूख जावै आदि २ दोष निवारणार्थ तिल तैल या घी से होम करे।

"तदग्ने चक्षुः" (८।३-२१) रक्षोहण अनुवाक से अग्नि रहित स्थान में अग्नि का दर्शन हो; अथवा अग्नि शब्द करे-इत्यादि अद्भुत वात के अरिष्ट निवारणार्थं हवन करे।

"परः सो अस्तु" (८।४) यह रक्षोहण अनुवाक है उसी भाँति विनियोग है। इसमें (तिस्रः पृथिवी) विश्व में व्याप्त ३ पृथिवी (द्युलोक-मध्यलोक-अधलोक (स्वर्ग-पृथिवी-नरक) की ऋ० वे २।२७-८ में "तिस्रोभूमीर्धारयन त्रीँरुत् द्यून"[१] तथा (ऋ० वे ७।८७-५) "तिस्रोद्यावो निहिताअन्तरस्मिन् तिस्रो भूमीरुपराःषड्विधानाः" सम्पुष्टि की है। अर्थात जो द्वेषकर्त्ता

दिन या रात्री में मेरे मारने या अनिष्ट की इच्छा करे या रात्रि में मारने की चेष्टा करै उस पापी के यश, अन्न और कीर्ति नष्ट हो जावें और नरक का वासी हों।

"इन्द्रसोमाः" (८।४) का रक्षोहण अनुवाक के साथ विनियोग करे। अत्रऋक्-संहिताया वृहद्देवतानुक्रमणी। संवत्सरं तुमण्डूकान् ऐन्द्रासोमंपरं तुयत्। ऋषिर्ददर्शराक्षोघ्नं पुत्रशोक परिप्लुतः। हतेपुत्रशतेक्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा। इति

"सुविज्ञानं" (८।४-२२) इन ३ सूक्तों का "इन्द्रसोमाः (८।४-१) की वृहद्देवतानुक्रमणि की समानता होने से उदाहरण दिया है।

हत्वा पुत्रशतंपूर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः। वसिष्ठं राक्षसोसि त्वंवासिष्ठं रूपम् आस्थितः। अहं वसिष्ठ इत्येवं जिघांसू राक्षसो ब्रवीत्। अत्रोत्तरा ऋचोदृष्टा वसिष्ठेनेतिनः श्रुतत्॥

"हमपर असत्य भूत आरोप कर्त्ता राक्षस को हे सोम तुम नष्ट करो।"

"इन्द्रो यातूनाम्" (८।४-२१) यह भी रक्षोहण अनुवाक है, उसी भाँति विनियोग है।

"उलूकयातुं" (८।४-२२) में ऋक्वसंहिता वृहद्देवतानु कमणिका—

उलूकयातुं जह्यतान् नानारूपान् निशाचरान्। स्त्री पुरूषांश्च जह्यतान् जिघांसून इन्द्रमेजहि।

(६।३२) यातुधानक्षयणम्। (चातनगण)

१-३, १-२ चातनः। ३ अथर्वा। १ अग्नि, २ रुद्र, ३ मित्रावरुणौ। त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारापंक्तिः।

अन्तर्दावे जुहुतास्वे३तद्यातुधानक्षयणं घृतेन।
अराद् रक्षांसि प्रतिदह त्वमग्ने ननोगृहाणामुप तीतपासि॥१॥
रुद्रो वोग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपिशृणातु यातुधानाः।
वीरुद्वो विश्वतोवीर्यायमेन समजीगमत्॥२॥
अभयं मित्रावरुणाविहास्तुनोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः।
माज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नना उप यन्तु मृत्युम्॥३॥

"रक्षोहणं वाजिनम्" (८।३) यह सारा ही अनुवाक चातनगणकर्म विधि में है। तथापि इससे पिशाचादि ग्रहग्रस्त से कहे। "एतदनुवाक विनियोजक सूत्रोक्त फल **कामोऽहं रक्षसामपहन्तारं वलं, तत्साधनम् अन्नं व तद्वन्तम् अग्निम् घृतं सर्वतः क्षारयामि जुहोमि॥**"

इसमें पूर्वोक्त "तान्त्सत्यौजा" (त्वयापूर्वम्) (४।३७) की समिधा-खदिर सरसों आदि को समिधा चील, गृद्धों के नीडों की समिधायें लें। कत्था लोह, ताम्रादि के विषम संख्या की कीलें, अभिमन्त्रित कर गाड़ें। तप्त शर्करा अभिमन्त्रितकर शयन कक्षादि में छिड़कें। जौ के

सक्तुओं से होम करें। तथा असाध्यग्रहवशीकरणार्थ–आक की बौंदी (वीरण) की या सैंमर की रूई इङ्गिड़ (ईगुर) व घी पलाश के पत्तों के पृष्ठपर लगाकर होम करें (सिन्दुर)॥ गृहादि में पिशाचादि है या नहीं? की शङ्का के समाधानार्थ इसी अनुवाक से सरसों की लकड़ी पत्तों युक्त मुंज का सरकण्डा अभिमन्त्रितकर गृह के ऊपर रात्रि में ही रख दें प्रातः देखें। यदि सरसों की समिधा और शरमय डरकण्डे में विकार हो तो उसकी उपस्थिति समझें। और उसी के निराकरणार्थ "वैश्रवणदेव" को नमस्कार कर, इस अनुवाक से अभिमन्त्रितकर ग्रहगृहीत को जल पिलायें। आचमन करायें, छींटे दें रात्रि में पूर्वोक्त दो उल्मुकों को अभिमन्त्रितकर परस्पर घिसें। कौ० ४।१ शान्ति जल अभिमन्त्रण में चातनगण मातृनामागण रक्षोहृणगण से होम (शा० क० १६) में वर्णित है।

घृत कम्बल-नामकीय महाभिषेक में अभिषेकानन्तर-इस अनुवाक को जपें। जपकाल में 'स्वस्ति वाचन कर्त्ता ब्राह्मणगण-उससे पूर्वाभिमुख बैठें और ऋत्विजः कर्त्ता-रक्षोहण अनुवाक का जप करें।

"रक्षोहणं वाजिनमा" (कां ८ सू० ३) इससे फली करण-सरसों की समिधा, काँटेदार वृक्षों की समिधा-खदिर आदि की छाल से होम करे, उपरोक्त सामिग्री में मिलाले, इन्हीं से धूप दे। इसी अनुवाक से-पिशाच आदि से पीड़ित प्राणी को सम्बोधित कर पढ़े।

इसी अनुवाक से-कत्था की- या लोहे-या तांबे की विषम संख्या की कीलें अभिमन्त्रित कर गाड़ दे। शक्कर गर्मकर शयन स्थान के चारों ओर, शय्या के चारों ओर छिड़क दे जौ-इन्द्र जौ के चूर्ण से होम करे।

असाध्यग्रह हो तो उसको वशीभूत करने के लिये-**वीरणतूल-इङ्गिडाज्य** और ढाक के उलटे पत्तों से होम करे।

बृहच्चातन गण

(शत्रुनाशनम्) ८।३

१-२६ चातनः। अग्निः। त्रिष्टुप्, ७;१२;१४-१५,१७,२१ भुरिक्; २५ पञ्चपदा बृहती गर्भा जगती २२-२३ अनुष्टुप् २६ गायत्री।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः सनोदिवा सरिषः पातु नक्तम् ॥१

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृशजातवेदः समिद्धः।
आजिह्वयामूरदेवान् रभस्वक्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२

उभोभयाविन्नुप धेहिदंष्ट्रौहिंस्रः शिशानोऽवरं परं च।
उतान्तरिक्षेपरि याह्यग्ने जम्भैः संधेह्यभियातुधानान् ॥३

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥४
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५
यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६
उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥९
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०[६]
त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ॥११
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१२
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥१३
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१४
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५

विषंगवां यातुधाना भरन्तामाॠश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु पराभागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६
संवत्सरीणं पयं उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्नेयतमस्तितृप्सात् तंप्रत्यञ्चं मर्चिषा विध्यमर्मणि ॥१७
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् नत्वा रक्षांसिपृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानतु दह क्रव्यादोमा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुतरक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसंशोशुचतो दहन्तु ॥१९
पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येनपरिपाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्नेमर्ती अमर्त्य स्त्वं नः ॥२०[७]
तदग्ने चक्षुः प्रतिधेहिरेभेशफारुजो येनपश्यसियातुधानान् ।
अथर्व व ज्योतिषादैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योऽष ॥२१
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवेहन्तारं भङ्गुरावतः ॥२२
विषेण भङ्गुरावतः प्रतिस्म रक्षसो जहि ।
अग्नेतिग्मे नशोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥२३
वि ज्योतिषा वृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥२४
ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मशंसिते ।
ताभ्यां दुर्हादमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषाजातवेदो विनिक्ष्व ॥२५
अग्नी रक्षांसि सेधतिशुक्र शोचिरमर्त्यः ।
शुचिः पावक ईड्यः ॥२६[८]

शेष सूक्त मंत्रपृष्ठ में हैं ।

इति वृहच्चातनगण

अथ रक्षोहण अनुवाक्

(१।७-१; ८-१; १६-१; २८-१; २६-१;) २।१४-१; १८-१; २५-१;) (३।१; २) (४।२०-२; ३६; ३७;) (५।२६) (६।३२; ३४) (८।३) ये सूत्र इस गण में हैं।

"अग्निर्नः" (३।१) "अग्निर्नो दूतः" (३।२) इनसे शत्रु सेना या पक्ष के सम्मोहन के लिये-व्याकुलचित्त, आवश्यक विषय में कार्याकार्य ज्ञानभ्रम कराने हेतु हाथ के समस्त कार्य आयुध आदि फेंकने के कार्यों से रहित, कुण्ठित करने हेतु नेत्रज्ञान, कर्म रहित बनाने हेतु, पलायनपर बनाने हेतु दक्षिणाग्नि, सेना अग्नि, पूर्वोक्त स्थापित कर-पूर्व वर्णित (शत्रुदमन) विधि से अप्वा देवी को आहुतियाँ दें। २१ बार शर्करा शूर्प में रख अभिमन्त्रित कर विपक्षी-शत्रुदल की ओर फैकें फटक दें। कौ० ।२५ ।।

शत्रुसेनासंम्मोहनम् (३।१)

१-६ अथर्वा। सेना सम्मोहनम्। १ अग्निः, २ मरुतः, ३ इन्द्रः। त्रिष्टुप् २ विराट् गर्भाभुरिक्, ३-६ अनुष्टुप्, ५ विराट्पुर उष्णिक्।

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२
अमित्रसेनां मघवन्नस्मान् छत्रूयतीमभि। युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्। अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो विनाशय ॥५
इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा। चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६

शत्रुसेना सम्मोहनम्। (३।२)

१-६ अथर्वा। सेनासम्मोहनम्, १-२ अग्निः, ३-४ इन्द्रः, ५ द्यौः, ६ मरुतः। त्रिष्टुप् २-४ अनुष्टुप्।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१
अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि। वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२

इन्द्र चित्तानिमोहयन्नर्वाङाकूत्याचर। अग्नेर्वातस्यध्राज्याताना् विषूचो विनाशय ॥३
व्याऽकूत यएषामिताथो चित्तानि मुह्यत। अथोयदद्यैषांहृदितदेषांपरि निर्जहि ॥४
अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहिनिर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्यशत्रून् ॥५
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेनयथैषामन्योअन्यं न जानात् ॥६

"प्राग्नये" (६।३४) इन पाँच ऋचाओं से राक्षसादि ग्रह पीड़ा निवारणार्थ होम करें साथ में "प्रेत:" (७।११६-२) का भी विनियोग करें। कौ० ४।७।

शत्रुनाशनम्। (६।३४)

१-५ चातनः। अग्निः। गायत्री

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम्। सनः पर्षदति द्विषः ॥१
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेनशोचिषा। सनः पर्षदति द्विषः ॥२
यः परस्याः परावतस्तिरोधन्वा तिरोचते। सनः पर्षदति द्विषः ॥३
यो विश्वाभिः विपश्यति भुवनासं चपश्यति। सनः पर्षदति द्विषः ॥४
यो अस्यपारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत। सनः पर्षदति द्विषः ॥५

शेषसूक्त पूर्व चातनगण, रक्षोघ्न, तथा तक्म नाशनगण में है।

इति रक्षोहण अनुवाक्।

रक्षोघ्नेष्टिः समीक्षा

अङ्गिरा महर्षि द्वारा प्रयुक्त कृत्या (आङ्गिरसकल्पाख्य सूत्र निर्माण) आसुरी कृत्या; स्वयं कृता "यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोपराधात्" (शि० १०) में ख्यात। या अन्य ईर्ष्यालुद्वारा प्रयुक्त कृत्या-के निवारणार्थ। (८।५)

"अयं प्रतिसर:" (१०।१) "यां कल्पयन्ति" से अभिमन्त्रित शान्ति जल से छींटे, स्नान होम करे। (कौ० ५।३) "यां कल्पयन्ति कृत्या दूषणैश्चातनैर्मातृनामभिः" इति (शा० क० १६) "कृत्या दूषण एव च। चातनोमातृनामा च। (न० क० २३)। तथा "रौद्रीं रोगार्तस्य" (न० क० १७) के अनुसार उपरोक्त गणों में वर्णित शान्ति करके तिलक (वृक्ष निर्मितमणि) बन्धन करे। "अयं प्रतिसर:" इति मन्त्रोक्तम्।

रौद्रचाम् । (न० क० १९) । "**अयं प्रतिसरः इति प्रतिसरमूआवध्य" इति द० ६।१)** तिलक वृक्ष निर्मित मणि को ही प्रतिसर यास्रात्त्यमणि कहा है । यह रोगों के, शत्रुओं के भय, को दूर करनेवाली राक्षसादि के भय से, संग्राम में विजय देनेवाली तेज वर्च से युक्त होती है । कृत्या आदि को दूर करने में समर्थ है ।

"**अयं प्रतिसरः**" (८।५); "**आयमगन्**" (३।५); "**अयंमे वरणः**" (१०।३) "**अरातीयोः**"

(१०।६) सूक्तों के मन्त्रों में वर्णित दही, मधु में बैठी (अन्दर रक्खी) तिलक मणि को ३ दिन रखकर, प्राणप्रतिष्ठा व पूजाकर, अभिमन्त्रित कर बाँधे ।

यह समस्त अभिलषित कार्यों को पूर्ण करती हुई, समस्त विघ्नों को जो उपरोक्त कहे या जो कहने में भी नहीं आसके (ज्ञात-अज्ञात) सभी को दूरकर ब्रह्म वर्च, मेधा, शक्ति एवं पराक्रम बढ़ाने में समर्थ है । "अयं प्रतिसरः" (८।५) के दोनों सूक्त अर्थ सूक्त माने हैं । जो अभीष्ट प्रद हैं ।

"**उत्तमो असि**" (८।५-११) इस सूक्त का पूर्व सूक्त की भांति विनियोग है । इस अपरिमित वीर्य सामर्थ्य वाली (स्रात्त्य) मणि को कवच की भाँति रक्षा के लिये देवताओं ने पूर्वकाल में धारण किया था ।

"**य आत्मानमतिमात्र**" (८।६-१३) **से गर्भवती स्त्री के** कटिप्रदेश को पीड़ित करने वाले पिशाचादि के नाश करने हेतु-उपरोक्त कर्म करें । जो मातृनामा-चातनगण के कहे हैं । **सरसों से कील दें** । तथा लकवा आदि रोग में आक (मदार) की लकड़ी के वक्कल को उपर से हटाकर चिक्कण पदार्थ जो लकड़ी पर प्राकृतिक है; उसे रोगी की रीढ़ की हड्डी से सटाकर बांधे तो हड्डी ठीक नीरोग हो जाती है; हृदयगतिरोध में नागफनी के फूल को गोदुग्ध मधु के साथ दें हृदय की दौर्बल्यता दूर हो जाती है । उपरोक्त सूक्तो (८।५;६) से अभिमन्त्रित कर दें ।

"**पर्यस्ताक्षा**" (**८।६-१६**) से अकेली (पति रहित) सोई स्त्री से सम्भोग की कामना वाले; राक्षसों को दूर करे ।

"**यस्तेगर्भम्**" (**८।६-१८**) से गर्भ को नष्ट करने वाले; उत्पन्न वाल को मारने वाले राक्षसों के विनाशार्थ "**श्वेतपीत सर्षपौ सम्पात्य** अभिमन्त्र्थ, वस्त्राञ्चलेन वघ्नीयात्" । विनियोग किया जाता है ।

श्वेत-पीली सरसों अभिमन्त्रित कर गर्भिणी के वस्त्र के ठोक में बाँध दें । कोई राक्षस विशेष पुरुष गर्भ को स्त्री भी बना देते हैं । वे भी इसीसे नष्ट होते हैं । जो स्त्री के रज का पान करके, रजोदर्शन में वाधा या अनियमितता या तज्जन्य दोष गर्भाशय में उत्पन्नकर पीड़ित करते हैं; जो सर्प या स्त्री के रूप में निशा में अन्धेरे में, एकान्त या अरण्य में भयभीत करते हैं उन सभी का शमन करे ।

पूर्वोक्त समस्तः दैवी, आसुरी, मानवी, स्वकृत, अन्यकृत, कृत्या, अभिचार कर्म राक्षसादि उन्मादों से उत्पन्नभय, पीड़ा, विघ्नों के निवारणार्थ तथा शत्रुपराज्य राज

वशीकरणार्थ, समस्तग्रभीष्टसिद्धचर्थं, ब्रह्मतेज, जल, ऐश्वर्य, सम्पदा तथा मेधा प्राप्ति के हेतु पूर्व वर्णित "आयमगन्" (३।५) "अयं प्रतिसर: (८।५) "अयं मे वरण:" (१०।३) "अरातीयो" (१०।६) इनमें वर्णित त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या (पूर्णिमा) तिथियों में ३ दिन दही और मधु में कत्था की लकड़ी को दबाये टेडी करके, तीनवट करे (तीनों को भान ले) स्वर्णसे मढ़कर। धारण करे। इस कां १० सू ६ की ऋचा ३१ "एतमिध्मम्" से (खदिरकाष्ठ) ले। "तमिमं देवता" ऋचा २९ से दही, मधु में ३ दिन डुबाये रक्खे। उसीको चन्दन लेपकर "अरातीयो:" इन अर्थ सूक्तों से प्राणप्रतिष्ठा पुजा होम कर अभिमन्त्रित करे "ब्रह्मणा तेजसा" (१०।६-३०) इस ऋचा से शिर से बाँधें। कौ० (३।२) ऐसा ही दारिल का मत है। तथा वै० सू २।६) "अरातीयो रिति यूपं वृश्च्यमानम् अनुमन्त्रयते" इति। तथा "पार्थिवीं भूमिकामस्य" (न० क० १७) **भूमि प्राप्ति की कामना वाले** इसीसे पार्थिवेष्टि में भी मणि वन्धन का विधान किया है। "अरातीयोरितिफलं पार्थिव्याम्" इति (न० क० १९)

इस प्रकार उपरोक्त विघ्नों के शमन तथा अभीष्ट सिद्धि का विधान है। इन्हीं उपर्युक्त उन्माद, कृत्या शाप, क्रूरदृष्टि, अभिचार जनित विविध व्याधियों के ज्वरों के निराकरणार्थ पूर्वोक्त कृत्या प्रति हरणगण की वर्णित औषधियों दाभ अपामार्ग सहदेवी, पृश्निपर्णी, ऊंटकटेरा (भाषा) भृङ्गराज, हरिद्रा इन्द्र वारुणी नीलिका शान्ति जल के घट में डालकर निम्न सूक्तों से अभिमन्त्रित करे (४।१७) ईशानात्वां" (४।१८) समं ज्योति:" (४।१९) उतो अस्य वन्धुकृत्" से कृत्या प्रति हरणगण के साथ महाशान्ति करे यह मूर्च्छा; आन्त्रिक; त्प्लूरसि; हृदय रोग, हिस्ट्रिया, अपस्मार-मृगी (कुष्ठादिक्षेत्रिय व्याधि, सूखारोग, अत्यन्तभूख या प्यास, दुष्वप्न, छेदन-भेदन, मारण-उच्चाटन कच्चे मिट्टि के पात्र में की गई अग्नि में नीले स्वरूप उत्पन्न कर देने वाली अन्न या मक्ष्य, पेय, चोस्यपदार्थों में, पान आदि में प्रयुक्त, अस्थि, मज्जा, रक्त, चर्म रस, त्वचा, रूप, गन्ध में प्रयुक्त, मन्त्रौषधि रूप से अनिष्ट करने वाली वाल को माता से पृथक कर देने वाली, स्तन पान न करने देने वाली, रुलाने वाली तन्द्रावाली, अनर्गल अलाप स्वरूपिणि, कुक्कुट, वाज, कबूतर, श्वान को अभिमन्त्रितकर समास्थल, द्यूतस्थल, युद्धभूमि में प्रयुक्त भूमि में गाड़ी हुई आकाश में (ऊपर घर आदि के) प्रयुक्त, दौर्भाग्यकरिणी-समस्त कृत्यादि व्याधियाँ निश्चय ही शमन होती हैं। "जामिम् अजामिं प्रमृणीहिशत्रून् (ऋ० क० ४।४५)।

गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा-भूतग्रह, पिशाच, कृत्या, शाप, आक्रोश, क्रूरदृष्टि अभिचार आदि की पीड़ा के निवारणार्थ निम्न ऋचाओं से पूर्व विधि से घृतयुक्त सर्वौषधि जो पूर्वोक्त हैं, से ग्रह गृहीत के शिर पर मिट्टि का कपाल रखकर चौरास्तापर विठाकर या देव-घट आदि की सन्निध में विठाकर होम करे होमान्त, सहदेवी, पृश्निपर्णी, चित्रपर्णी, शमीपत्र, अपामार्ग आदि को कटु तैल या गोघृत में मिला नित्य लेप करें, पिप्पली को पूर्व विधि से चटायें अन्नवन्द करा, गाजर-गृञ्जन का, कूष्माण्ड का सेवन करें, कूष्माण्ड का सेवन करें; कूष्माण्ड या दूध का खोवा शिर से बँधवा दें। कौ० १३।२। अभिमन्त्रित जल से छीटे दें, आचमन स्नान करायें। पितृमेध की पूर्वोक्त ऋचाओं से आवेशक आत्मा का मिट्टि के पात्र में अभिमन्त्रित जल कुशा, दूव, पुष्प, डाल, कुशाओं में आवाहन कर लै। यज्ञान्त उसे मूंज के

छींके पर रख या तिपाई पर रख रात्रि में पक्षियों के बैठने के वृक्ष से जङ्गल में लटका दे या उसे जलधारा में नाभि से ऊपर जल में जाकर प्रवाहित कर दे। कौ० (४।२)

ऋचा "इमं मे अग्ने" (६।१११) ये ४ ऋचायें मातृनामागण में भी हैं मातृनामागण में निर्दिष्ट समस्त कर्मों में उपयोग का विधान है। तथा च तै० सं० ३।४, ,४) "गन्धर्वाप्सरसो वाएतम् उन्मादयंति य उन्माद्यति" इतिहि तैत्तिरीयकम्। यह गन्धर्वादि का उपलक्षण है।

पाशमोचन

"परिवित्ति, परिवेतृ-(माता-पिता-भ्राता तथा पुत्र) में से बड़े को मारने या भ्रूणघ्नि (गर्भपात करने वाली-हत्यारी) "गर्भो-भ्रूण इमौ-समौ" अथवा "कल्प प्रवचनाध्यायीभ्रूणः" अर्थात् साङ्गवेदाध्यायी–भ्रूण-अर्थात् साङ्गा वेदाध्ययन में प्रमाद करने वाले, भ्रूणाघ्नि-दोषों पापों के कारण उत्पन्न पापों से पीड़ित, उपरोक्त आत्माओं के अङ्ग अङ्ग, अवयवों में बंधेपाप रञ्जु पाशों से दुःखियों द्वारा उत्क्रान्त-पाशवन्धकी के पाशों के उन्मोचनार्थ तथा तद्ग्रहगृहीत के कल्याणार्थ—"माज्येष्ठम्" (६।११२) "त्रितेदेवाः" (६।११३) की ३ ऋचाओं से उपरोक्त घट में (१८।३-४४, ४५।४६; ६८) तथा (१८।४, ५२, ५३, ५४, ५७, ५८) से आवाहित कर प्राणप्रतिष्ठा पूजाकर अभिमन्त्रित करे उनकी पर्वों (पार्श्वों, ग्रन्थियों) को मूंज के पाशों से बाँधे, छींटें दें और स्नान करायें और पुनः जल में प्रविष्ट हों और उनपाश आदि को बहा दें इस प्रकार माता-पिता, पुत्रादि ३; उनके पूर्वोक्त ३, पुरुषा, तथा भ्रूणघ्नि दोष जनित पापों के पाशों से जल, सूर्य, अग्नि के प्रति ज्ञात, अज्ञात पापों के पाश जिनमें देवताओं के पाश एक ३–ऋषिपाश; सूर्यादि के ८ पाशों को १२ स्थानों में स्थापित करे, उसी क्रम से प्रथम देवकृत, पुनः ३ ऋषिकृत पुनः ८ सूर्यादिजनितसभीको फैंक दे। इस प्रकार अबतक के पापबन्धनों से मुक्ति करें।

उपपातकेषु सर्वेषु पातकेषु महत्सुच। प्रविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेतत्॥

"कृत्यापरिहरणगण"

'ये पुरस्तात्" (४।४०) तथा ईशानात्वा" (४।१७) तथा दूष्या दूषिरसि" (२।११) आदि कृत्याप्रतिहरणगण के कार्यों में "तथा स्त्री, शूद्र, राज, ब्राह्मण कापालिक, अन्त्यज, शाकिनी, डाकिनी आदि द्वारा किये गये समस्त प्रकार के अभिचार कर्मों से स्वयं की रक्षा, तथा अभिचार करने-कराने वाले के स्वयं के ही विनाश कार्यों में समन्त्रक-अमन्त्रक, अस्त्र-शस्त्रादि भेदों के अभिचारों वाल-काटने, व बस्त्रादि चुराकर विनाशकारी अभिचार करने भोगादि के रूप में खिलाने, रक्त, मांस आदि के रूप में गाड़ने, विविध अन्न, सिन्दूर आदि युक्त पदार्थों से अलङ्कृत प्रतिकृति के चतुष्पाथपर रखने आदि सभी से रक्षार्थ राज्यश्री, ब्रह्मवर्च, सकाम किये गये, किये जानेवाले शास्त्र सम्मतकार्यों के साफल्यार्थ "वार्हस्पति" नामकी नक्षत्र कल्प १९ में वर्णित महाशान्ति में, होम करें शान्ति जल से दर्भ मुष्ठि से गुल्फों (ग्रन्थियों) पर छींटे दें। "तिलक" नामक वृक्ष विशेष को मणि अभिमन्त्रित कर बाँधें। कौ० ५।३ न० क० २३। यज्ञ की (सूक्तों) के अन्त में यह प्रयोग करें (क० व० ६२)

टिप्पणी :—कृत्या कहाँ कहाँ प्रयुक्त होती हैं या की जाती है अध्याय २ में है।

"भीषास्माद्वातात्पवते" (तै० ब्रा० ८।८।१) इत्यादि "त्र्यन्त प्रसिद्ध नियमन शक्ति युक्तं परं ब्रह्मप्राप्य संतप्ता भवन्तु "महद्भूयं वज्रं उद्यतम्" एनान् रक्षा कर्मणा प्रतीचीनं हन्मि" कर्त्ता—कृत्यापरिहरणगण के प्रारम्भ में तथा अन्त में इस भांति तारस्वर से सम्बोधित करे। शान्ति जल के कलश में पूर्वोक्त समस्त सामग्री तथा दर्भ, अपामार्ग, सहदेवी पृश्निपर्णी शमीपत्र-शमीफल शान्ति घट में लें। (अ०वे० का० १ सू० २८ मं० ३ प्र० २ अनु० ५)

(२६) रक्षोघ्नम्। (अ० कां० ५ सू० २६ मं० २ प्रपाठक १२ अनु० ६)

१-१५ चातनः। जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः। त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदाविराण्नामगायत्री ५ पुरोऽतिजगती, विराड्जगती, १२-१५ अनुष्टुप् (१२ भुरिक् १-४ चतुष्पदापराबृहती ककुम्मती।)

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम्।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥१॥

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥२॥

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥३॥

अक्ष्यौ३ निविध्य हृदयं निविध्य जिह्वां नितृन्द्धि प्रदतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रतितं शृणीहि ॥४॥

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः।
तदग्ने विद्वान् पुनराभर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥५॥

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वियातयन्तामगदो३ यमस्तु ॥६॥

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः।
तदात्मना प्रजया पिशाचावि यातयन्तामगदो३ यमस्तु ॥७॥

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचावि यातयन्ता मगदो३ यमस्तु ॥८॥

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्यात्यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वियातयन्तामगदो३ यमस्तु ॥९॥

क्रव्याद॑मग्ने रुधि॒रं पि॑शा॒चं म॑नो॒हनं॑ जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो॑ वा॒जी वज्रे॑ण हन्तु च्छि॒नत्तु॒ सोमः॒ शिरो॑ अस्य धृ॒ष्णुः ॥१०॥

स॒नाद॑ग्ने मृणसि यातु॒धाना॒न् नत्वा॒ रक्षां॑सि॒ पृत॑नासु जिग्युः ।
स॒हमू॑रा॒नतु॑ दह क्र॒व्या दो॑मा ते॑ हे॒त्यामु॑क्षत दैव्या॑याः ॥११॥

स॒माह॑र जातवे॑दो यद्धृ॒तं यत् परा॑भृतम् ।
गात्रा॑ण्यस्य वर्धन्ताम॒ंशुरि॒वा प्या॑यताम॒यम् ॥१२॥

सोम॑स्ये व जातवेदो अ॒ंशुराप्या॑यताम॒यम् ।
अग्ने॑ विर॒प्शिन॑ मेध्य॑मय॒क्ष्मं कृ॒णु जीव॑तु ॥१३॥

ए॒तास्ते॑ अग्ने स॒मिधः॑ पिशाच॒ जम्भ॑नीः ।
तास्त्वं जु॑षस्व॒प्रति॑ चैना गृहाण जातवेदः ॥१४॥

ता॒र्ष्टा घीर॑ग्ने स॒मिधः॒ प्रति॑ गृह्णाह्य॒र्चिषा॑ ।
जहा॑तु क्र॒व्याद् रू॒पं यो अ॑स्य मां॒सं जिही॑र्षति ॥१५॥

(२४) कृत्यापरिहरणम् । (अ० कां ५ सू १४)

१-१३ शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् । अनुष्टुप्, ३, ५, १२ भुरिक्, ८ त्रिपदाविराट् १० निचृद् बृहती, ११ त्रिपदासाम्नी त्रिष्टुप्; १३ स्वराट् । छन्दांसि कृत्यादूषण परिहरणे विनियोगः ।

सु॒प॒र्णस्त्वान्व॑विन्दत् सू॒क॒रस्त्वा॑ खन॒नसा ।
दिप्सौ॑षधे॒ त्वं दिप्स॑न्त॒मव॑ कृत्या॒कृतं॑ जहि ॥१॥

अव॑ जहि यातु॒धाना॒नव॑ कृत्या॒कृतं॑ जहि ।
अथो॒ यो अ॒स्मान् दिप्स॑ति त॒मु॒ त्वं ज॑ह्योषधे ॥२॥

रिश्य॑स्येव परीशा॒सं प॑रि॒कृत्य॒ परि॑ त्व॒चः ।
कृ॒त्यां कृ॑त्या॒कृते॑ देवा नि॒ष्कमि॑व॒प्रति॑मुञ्चत ॥३॥

पुन॑ः कृ॒त्यांकृ॑त्या॒कृते॑हस्त॒गृह्य॒ परा॑ णय ।
स॒म॒क्षम॑स्मा॒ आधे॑हि॒ यथा॑ कृत्या॒कृतं॑ हनत् ॥४॥

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृत पुनः ॥५॥
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६॥
यदि वासि देवकृतायदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७॥
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८॥
कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९॥
पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभितिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्या कृत पुनः ॥१०॥
उदेणीव वारण्यऽभिस्कन्दं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥११॥
इष्वा ऋजीयः पततुद्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्या कृत पुनः ॥१२॥
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूल मिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्या कृत पुनः ॥१३॥

(३१) कृत्यापरिहरणम्

(अ० कां ५ । सू० ३१ प्र० १२ अनु० ६)

१-१२ शुक्र । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप् ११ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् १२ पथ्या बृहती । उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः ।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुःपुनः प्रति हरामि ताम् ॥१॥
यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२॥

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३॥

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥४॥

यां ते चक्रु गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५॥

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६॥

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुपुनः प्रति हरामि ताम् ॥७॥

यां ते कृत्यां कूपे ऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥८॥

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
म्रोकं नि दाहं क्रव्याद पुनः प्रति हरामि ताम् ॥९॥

अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्या ॥१०॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रेपादमङ्गुरिम ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११॥

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यऽम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महतावधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२॥

(१) कृत्यादूषणम्

(अ० कां १० सू १ मं० १ प्र० २२ अनु० १)

१-३२ प्रत्यङ्गिरसः । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप्; १ महाबृहती; २ विराण्नामगायत्री; ९ पथ्यापङ्क्ति १२ पङ्क्तिः, १३ उरोबृहती; १५ चतुष्पदाविराड्जगती; १७,२०,२४ प्रस्तार पङ्क्ति (२० विराट), १६, १८ त्रिष्टुप्; १९ चतुष्पदा जगती; २२ एकावसाना द्विपदार्ची

उष्णिक्; २३ त्रिपदाभुरिक् विषमा गायत्री; २८ त्रिपदागायत्री, २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती, ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदाति जगती । छन्दांसि उपर्युक्ते कर्मणि विनियोगः ।

यां कुल्पयन्ति वहुतौ वुधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
सारादेत्वपं नुदाम एनाम् ॥१॥

शीर्षण्वतीं नस्वतीं कर्णिनीं कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सारा देत्वपं नुदाम एनाम् ॥२॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्यां नुत्तेव कर्तारं वन्ध्वृच्छतु ॥३॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥४॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मोयथा कृत्याकृतं हनत् ॥५॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥६॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलं मुदाय्यऽम् ।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥७॥

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुधिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥८॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वी ३ दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनः सुरंतेन त्वास्नपयामसि ॥९॥

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सरमुपेयिम ।
अपैतुसर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

यत् तेपितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्या ३ त् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११॥

दे॒वै॒न॒सात् पित्र्या॑न्नामग्राहात् सं॑दे॒श्या॒ऽदभि॒निष्कृ॑तात् ।
मुञ्चन्तु॑ त्वा वी॒रुधो॑ वी॒र्ये॑ऽण॒ ब्रह्म॑ण ऋ॒ग्भिः पय॑स॒ ऋषी॑णाम् ॥१२॥
यथा॒ वात॑श्च्या॒वय॑ति॒भूम्या॑ रे॒णुम॒न्तरि॑क्षाच्चा॒भ्रम् ।
ए॒वा मत् सर्वं॑ दुर्भू॒तं ब्रह्म॑नुत्त॒मपा॑यति ॥१३॥
अप॑ क्राम॒ नान॑दती॒ विन॑द्धा गर्द॒भीव॑ ।
कर्तॄ॒न् नक्षस्वे॒तो नु॒त्ता ब्रह्म॑णा वी॒र्या॑ऽवता ॥१४॥
अ॒यं पन्था॑: कृ॒त्येति॑ त्वा नयामो॑ऽभि॒ प्रहि॑त॒ां प्रति॑ त्वा प्रहि॑ण्मः ।
तेना॒भि या॑हि भञ्ज॒त्यन॑स्वतीव वा॒हिनी॑ वि॒श्वरूपा कुरू॒टिनी॑ ॥१५॥
परा॑कृते॒ ज्योति॑र॒पथं॑ ते अ॒र्वाग॒न्यत्रा॒स्मद॑यना कृणुष्व ।
परे॑णेहि नव॒तिं ना॒व्या॒३॒॑ अति॑ दु॒र्गाः स्रो॒त्यामा क्ष॑णिष्ठाः परे॑हि ॥१६॥
वात॑ इव वृ॒क्षान् नि मृ॑णीहि पा॒दय॒मा गामश्वं॒ पुरु॑ष॒मुच्छि॑ष एषाम् ।
कर्तॄ॒न् नि॒वृत्ये॒तः कृ॑त्ये ऽप्रजा॒स्त्वाय॑ बोधय ॥१७॥
यां ते॑ ब॒र्हिषि॒ यां श्म॒शाने॒ क्षेत्रे॑ कृ॒त्यां व॑ल॒गं वा॑ निच॒ख्नुः ।
अ॒ग्नौ वा॑ त्वा॒ गार्ह॑पत्ये ऽभिचे॒रुः पाकं॒ सन्तं॒ धीर॑तरा अ॒नागसम् ॥१८॥
उ॒पाहृ॑त॒मनु॑ बु॒द्धं॒ निखा॑तं॒ वैरं॑ त्सा॒र्यन्व॑ विदा॒म कर्त्र॑म् ।
तदे॑तु॒ यत॒ आभृ॑तं॒ तत्राश्व॑ इव॒विव॑र्तता॑ं हन्तु॑ कृत्या॒कृतः॑ प्र॒जाम् ॥१९॥
स्वा॒य॒सा अ॒सयः॑ सन्तिनो गृ॒हेवि॒द्मा ते॑ कृत्ये यति॒धाप॑रूं॒षि ।
उत्ति॑ष्ठै॒व परे॑ही॒तोऽ ज्ञा॑ते॒ किमि॒हेच्छ॑सि ॥२०॥
ग्रीवा॑स्ते॑ कृत्ये॒ पादौ॒ चापि॑कर्त्स्यामि॒ निर्द्र॑व ।
इ॒न्द्रा॒ग्नी अ॒स्मान् र॑क्षतां॒ यौ प्र॒जानां॑ प्र॒जाव॑ती ॥२१॥
सोमो॒ राजा॑धि॒पा मृ॑डि॒ता च॑ भू॒तस्य॑ नः॒ पत॑यो मृडयन्तु ॥२२॥
भ॒वा॒श॒र्वाव॑स्यतां पाप॒कृते॑ कृत्या॒कृते॑ । दु॒ष्कृते॑ वि॒द्युतं॑ देवहे॒तिम् ॥२३॥
यद्ये॒यथ॑ द्वि॒पदी॒ चतु॑ष्पदी कृत्या॒कृता॒ संभृ॑ता वि॒श्वरू॑पा ।
सेतो॒३॒॑ष्टाप॑दी भू॒त्वा पु॒नः परे॑हि दुच्छुने ॥२४॥

अभ्य१क्ता स्वऽरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेवपितरं स्वम् ॥२५॥

परेहिकृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येवपदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥२६॥

उत हन्तिपूर्वासिनं प्रत्या दायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७॥

एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ । यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८॥

अनागो हत्या वैभीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्र यत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसीभव ॥२९॥

यदिस्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०॥

कृत्या कृतो बलगिनो ऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषो ऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१॥

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परिरात्रिं जहात्युषसश्च केतून ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीवरजो दुरितं जहामि ॥३२॥

अथकृत्यागण ।

(२।११) (४।४०; १७,१८,१९)(५।१४; ३१;(८।५)(१०।१)(७।६५)

शत्रुनाशनम् । (४।४०)

१-८ शुक्रः । ब्रह्म, १ अग्निः, २ यमः, ३ वरुणः, ४ सोमः, ५ भूमिः, ६ वायुः, ७ सूर्यः, ८ दिशः । २ जगती, ८ पुरोऽतिशक्वरी पादयुग्जगती । त्रिष्टुप् छन्दांसि कृत्यादूषण परिहरणे विनियोगः ।

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा तेपराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१॥

ये दक्षिणतोजुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
यममृत्वाते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२॥

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३॥
य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्यादिशोऽऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥
य ३ धस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवायां दिशोऽऽभिदास न्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा तेपराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥५॥
य ३ न्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वायांदिशोऽऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥६॥
यउपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वायां दिशोऽऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥७॥
ये दिशामन्त र्दे शेभ्योजुह्वति जातवेदः सर्वाभ्योदिग्भ्योऽऽभिदासान्त्यस्मान् ।
ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥८॥

अपामार्गः । (४।१७)

१-८ शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतीः । अनुष्टुप् छन्द उपर्युक्ते कर्मणि विनियोगः ।

ईशानां त्वाभेषजानामुज्जेष आरभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्य सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥१
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ॥२॥
याशशापशपनेन याधंमूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभेतोकमत्त सा ॥३॥
यां ते चक्रुरामेपात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमेमांसे कृत्यांयांचक्रुस्तयाकृत्याकृतोंजहि ॥४॥
दौष्वं प्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षोअभ्वऽमराय्यऽः ।
दुर्णाम्नीः सर्वादुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् । अपामार्ग त्वयावयंसर्वं तदपमृज्महे ॥६॥

तृष्णामारं क्षुधामारमथोअक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७॥

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेकइद्वशी ।
तेनते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८॥

अपामार्गः । (४।१८)

१-८ शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतीः । अनुष्टुप्, ६ वृहतीगर्भा । छन्दांसि उपर्युक्ते कर्मणि विनियोगः ।

समं ज्योतिः सूर्येणाह्नारात्रीसमावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥१॥

यो देवाः कृत्यां कृत्वाहरादविदुषोगृहम् ।
वत्सोधारुरिवमातरं तंप्रत्यगुप पद्यताम् ॥२॥

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट्करिक्रति ॥३॥

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवां छाययात्वम् ।
प्रतिस्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥

अनयाहमोषध्यासर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषुयां वा ते पुरुषेषु ॥५॥

यश्चकार नशशाककर्तुं शश्रेपादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनंतु सः ॥६॥

अपामार्गोऽप मार्ष्टुक्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाहयातुधानीरप सर्वां अराय्यः ॥७॥

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥८॥

अपामार्गः (४।१९)

१-८ शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ पथ्यापङ्क्तिः । कृत्यादि दूषणपरिहरणे विनियोग ।

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असिनु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजांनडमिवाछिन्धि वार्षिकम् ॥१॥
ब्राह्मणेनपर्युक्तासिकण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषित्विषीमती न तत्रभयमस्तियत्रप्राप्नोष्योषधे ॥२॥
अग्र मेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उतत्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥३॥
यददोदेवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥
विभिन्दतीशतशाखा विभिन्दन् नामते पिता ।
प्रत्यग् विभिन्धित्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५॥
असद्भूम्याः समभवत् तद्यामेतिमहद् व्यचः ।
तद्वै ततोविधूपायत् प्रत्यक् कर्त्तारं मृच्छतु ॥६॥
प्रत्यङ् हिसंबभूविथ प्रतीचीनं फलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधिवरीयो यावया वधम् ॥७॥
शतेनमा परिपाहिसहस्रेणाभिरक्षमा ।
इन्द्रस्ते वीरुधांपतउग्र ओज्मानमा दधत् ॥८॥

"प्रतीचीन फलः" (७।६७) कृत्यागण के समस्त कार्यों में तथा "इदंयत्कृष्णः" (७।६६) में वर्णितदोष निवारण में तथा विवाह में क्वारी कन्या के स्नानान्त अङ्ग तथा वस्त्रों से अपामार्ग मञ्जरी के लेप में, कुण्ठित बुद्धि को कुशाग्रवनाने दन्तविकार, मुखविकार, कैन्सरादिशमन कार्यों में, समस्त विषों को शरीर से निकालने में, दन्तधावन, फक्की, समिधादान, लेपादि में लें। निरन्तर बहने वाले या विषैले, विनामुख के उल्टे फोड़ों में लेपें। कालावेकर "अदृष्ट" आदि फोड़ों पर अभिमन्त्रित कर लेपें। कौ० १०।२। अपामार्ग की विशेष व्याख्या-औषधि वर्ग के प्रकरण में ग्रन्थ में है।

दुरितनाशनम् । [७।६५ (६७)]

१-३ शुक्रः । अपामार्गवीरुत् । अनुष्टुप् । अपामार्ग उपस्थाने, अर्चने, उत्पाटने, उपर्युक्त समस्त दूषण निवारण भैषज्ये विनियोग ।

प्रतीचीनफलो हित्वमपामार्गरुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधिवरीयो यावया इतः ॥१॥
यद्दुष्कृतं यच्छमलं यद् वाचेरिम पापया ।
त्वयातद् विश्वतोमुखापामार्गापं मृज्महे ॥२॥
श्यावदता कुनखिना बण्डेनयत् सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयंसर्वं तदप मृज्महे ॥३॥

इति कृत्यागणाः

अपामार्गभेषज के गुण पूर्वोल्लिखित हैं । कुछ आगे भी अनुभूत प्रयोग मिलेंगे ।

"अभयं द्यावा" (६।४०) इन तीन ऋचाओं से ग्रामादि के अभय कराने हेतु उस ग्राम की प्रत्येक दिशाओं, सीमाओं में सप्त ऋषियों का जप-उपस्थान होम करें । इसी के साथ "श्येनोऽसि" (६।४८) है कौ० ७।१० । इसी से सेना तथा स्वपक्षीय दल के अभयार्थ मनोर्वल वृद्धि हेतु; प्रतिदिशाओं में सप्त ऋषियों का जप होम उपस्थान करें । कौ० २।७ । इसी से "अभिजित" श्रावणी कर्म-उपाकर्म में आज्य होम करें । कौ० १४।३ । सप्त ऋषि—

विश्वामित्रो जामदग्निर्भारद्वाजोऽथ गौतमः
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यपः (आश्व० प० १)

अथर्वा ६।४० ऋषिः; द्यावापृथिवी सोम, सविता, इन्द्रः अन्तरिक्ष, सप्तऋषयः सविता देवते । जगती त्रिष्टुप् छन्द अभयार्थे विनियोगः

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नोऽस्तूर्व१ न्तरिक्षं सप्तऋषीणां यं हविषाभय नो अस्तु ॥१॥
अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सवितानः कृणोतु ।
अशत्रिवन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥२॥
अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३॥

मनसेचेतसे धिये" (६।४१) इन तीन ऋचाओं से गोदान (मुण्डन) कम म इन्द्र जा स युक्त मिष्ठान्न-शान्ति जल प्रोक्षणान्त अभिमन्त्रित कर ब्रह्मचारी कुमार की दीर्घायु के लिये खिलायें। साथ में "यथा द्यौः" (२।१५) भी है। कौ० ७।५

(६।४१) दीर्घायुः प्राप्तिः ।

१-३ ब्रह्मा। १ चन्द्रमाः, २ सरस्वती, ३ दैव्या ऋषयः । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप् ३ त्रिष्टुप् ।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥१॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरि धायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥२॥

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपाये नस्तन्वऽस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यॉं अभिनः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥३॥

"अवज्या" (६।४२) की तीन ऋचाओं से **स्त्री पुरुष के पारस्परिक क्रोध** शान्ति के लिये रुष्ट पुरुष या स्त्री जो भी हो—को देखकर पत्थर (ढेला) अभिमन्त्रित कर हाथ में लें। "सखाया विव" ऋचा २ को जपे पत्थर या ढेले को पृथ्वी पर फेंक दे। "अभितिष्ठामि" तीसरी ऋचा को जपकर उस पत्थर या ढेलेपर थूक दे। और कुपित पुरुष या स्त्री की छाया में इन्ही तीन ऋचाओं को जपकर धनुष को अभिमन्त्रित कर ताने-सीधा करे। कौ० ४।१२।

(६।४२) परस्परचित्तैकीकरणम्

१-३ भृग्वाङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः)। मन्युः। १-२ भुरिक्, ३ अनुष्टुप्।

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वासखायाविव सचावहै ॥१॥

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥२॥

अभि तिष्ठामिते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशोन वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

यज्ञादि दीक्षा में यजमानः के क्रोध की शान्ति में भी इसे जपें (वै० ३।२), 'अयं दर्भऽ" (६।४३) से सभी प्रकार के क्रोध के शमनार्थ दाभ की जड़ को पूर्वदिननिमन्त्रित कर औषधियों की भाँति दूसरे दिन जपकर खोदें। अभिमन्त्रित कर बाँधें कौ० ४।१२

(६।४३) मन्युशमनम् ।

१-३ भृग्वङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । क्रोधशान्ति देवता मन्युशमनम् अनुष्टुप् । देवत छन्द, क्रोध निवारणे विनियोग ।

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥१॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥२॥

वि ते हनव्यांऽशरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथा वशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

इति श्रीभूतोन्मादकृत्यापरिहरणनाम चतुर्थेऽध्याये द्वितीयो खण्ड ।

अथ वास्तुगण (संप्रोक्षणगण) कर्मविधि समीक्षा

वास्तुगणः—"आशानामाशापाल" (१।३१); "दिव्योगन्धर्वो" (२।२) "इहैवध्रुवा" (३।१२) "दिवेस्वाहा" (५।६) 'अश्मवर्म" (५।१०) "तेऽवदन" (५।१७) "पातं नः" (६।३) "एहयातु" (६।७३) "यमोमृत्यु" (६।६३) "आवृषायस्व" (६।१०१) "अति धन्वान्य" (७।४२) अर्जं विभ्र द्वसुनिः" (७।६२) "यौते मातो" (८।६) "सत्य वृहत्" (१२।१) "यजूंषियज्ञे" (५।२६) "इहैवस्त" (६।७३-३) "इन्द्रावरुणा" (७।६०) उपरोक्त वास्तुगण या वास्तोष्पतिगण तथा संम्प्रोक्षणगण के प्रतीक है ।

शिलेष्टकादि विन्यासं मन्त्रैः प्राच्यै सुराश्चरेत् ।
नन्दे ? नन्दय वासिष्ठे ? वसुभिः प्रजयासह ॥१६॥

जये ? भार्गवदायादे ? कुरुभद्रांमतिंमम ।
सर्ववीज समायुक्ते ? सर्वौषधैर्वृते ॥१७॥

भद्रे ? काश्यपदायादे ? प्रजानां जयमावह ।
पूर्णेऽङ्गिरसंदायादे ? पूर्णकांमं कुरुष्वमाम् ॥१८॥

रुचिरे ? नन्दने ? नन्दे वासिष्ठे ? रम्यतामिह ।
प्रजापतिसुते ? देवि ? चतुरस्त्रे ? महीमये ॥१९॥

सुभगे ? सुव्रते ? भद्रे ? गृहे काश्यपि ? रम्यताम् ।
पूजिते ? परमाचार्य्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते ? ॥२०॥

भवभूतिकरे ? देवि ? गृहेभार्गवि ? रम्यताम् ।
अव्यङ्ग्ये ? चाक्षते ? पूर्णे ? मुनेरङ्गि रसासुते ॥२१॥
इष्टके ? त्वंप्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ।
देशस्वामि पुरस्वामि गृहस्वामि परिग्रहे ॥२२॥
मनुष्यधन हस्त्यश्व पशुवृद्धिकरीभव ? ।
गृहप्रवेशेऽपितथा शिलान्यासं समाचरेत् ॥२३॥

इनसे गृह निर्माण, गृहभूमि शोधन, शिलान्यास, गृहप्रवेश, गृहसमृद्धि, पशुसमृद्धि, वंशवृद्धि-धन-धान्य समृद्धि, चिरस्वास्थ्य, नैर्ऋज्युता (नीरोगता) सभी प्रकार के उत्पातों का शमन, धीवान-धैर्यवानों का वास आदि की कामना से नूतन गृह के या प्राचीन गृह के प्रवेश अथवा विदेश यात्रा से स्वगृह प्रवेश कार्यों को निम्नप्रकार करे। ग्राम बसाने या यज्ञकुण्ड मंडप, देवालय, ग्रहनिर्माण से पूर्व ग्राम को देखे, दिशा, भूमि, मास, नक्षत्र, शुद्धि, लाभ-व्यय लग्न, अंश, ग्रहबल, द्वारशुद्धि, ग्रामानुकूलता, गृह जातक, वर्ग स्वामी, काकिणी, आयादि, क्षेत्रफल आयादि का नाम-गृहराशी, गृहनाम, अंशग्रहण वास्तुचक्र, मांसफल, वृषभचक्र, शिलान्यास, शेष का मुखादि योग, कूर्मचक्र, स्तम्भचक्र, अग्निचक्र गृहाहुतिक्रम, गृहप्रवेश, कलशचक्र, वामार्कलक्षण, लग्नशुद्धि गृह आयुष्य, शल्यशोधन (अर्थात् भूमिनिर्माण या ग्राम बसाने आदि के स्थान में हड्डी, भूसा, राख, कपाल, लोह आदि तो नीचे नहीं दबे हैं यदि हों तो निकाले या शान्ति करे। भूमिरज आदि का योग्य विद्वान ज्योतिषी से विचार करना आवश्यक है धूम्रकेतु आदि अद्भुतदर्शन आदि में दिग्देवता का बहुभांति से, चरु से, प्रति ऋचा से सप्त ऋषियों का होम-जप उपस्थान करें। कौ० १३-३५। इसी भाँति

उपरोक्त "आशानामाशापाल" (१।३१) से ग्राम-नगर, देश, घर की दीवार, सीमादि के निर्माण में "अश्वामस्त्वा" इस तीसरी ऋचा को छोड़ अन्य ऋचाओं से शिला के पाषाण आदि अभिमन्त्रित कर गाड़े पुरोडाश (भोगादि) लगाये। इन्द्रादि ४ देवों के ४ स्थूण गाड़े। $1\frac{1}{4} \times 1\frac{1}{4} \times 1\frac{1}{4}$ धन हाथ का गड़ा खोदे, उसे "विमृग्वरीं" ऋ० भूमिसूक्त से पूजन कर ले। नवीन कलशों में शान्ति औषधियाँ, शान्तिवृक्ष की टहनियाँ डालें, सौभाग्यवती स्त्रियों से उत्तर की ओर से जल मगवाकर पूर्ण भर दे, ४ शराव (मिट्टी के सकोरों) में दूध, जल, पुष्प, अक्षत, सुपाड़ी डाल चारों कोनों पर रख दे। यह प्रथम दिन मुहूर्त्त के सायं करे, मुहूर्त्त के दिन प्रातः उषाकाल में जब तारागण भी कुछ हों, इन्है देखे कि जल है या सूख गया, गड्ढे में दरारें हों तो अशुभ है शान्ति करें। उपरोक्त वास्तुगण की ऋचाओं से नूतन निर्माण भूमि (वास्तु भूमि) के संस्कार के लिये हल से जोते या खोदे। चारोंओर दिशाओं के उपरोक्त ४ जलपूर्ण पात्रों के पास वाले गड्ढों में ऊँचे, पुष्ट, लेख, स्वस्तिक आदि से यूक्त ४ स्थूण (शिला) अभिमन्त्रित करे। "इहैवध्रुवा" (३।१२) की २ प्रथम ऋचाओं से भूमि को दृढ़करे। "ऋतेन स्थूणाम" (६) छटी ऋचा से घृतयुक्त ऊचे बांस या शिला को गाड़े। ग्रह प्रवेश काल में "पूर्णंनारी"(८) ऋचा से अभिमन्त्रित जल पूर्ण पात्र के साथ सपत्नीक प्रवेश करे। कौ० (५।७)

इससे निर्मितशाला, पुत्र, पौत्र, गुण, बल, वीर्य, स्वास्थ्य, गौ-बाहन-धन-धान्य विद्वानों दया, धर्म, सत्य, अहिंसापरक प्राणियों के अक्षय-चिरनिवास की आश्रयदाता हो। जिसमें बहु-घृत, दुग्ध देने वाली गौओं का वास होता है। नित्य होम, पूजा-जप उपस्थान आदि माङ्गलिक कार्य होते रहते हैं। जिसमें अपमृत्यु-अकालमृत्यु, निरन्तर दीर्घकालीन राजरोग व्याधियों का प्रवेश नहीं हो सकता, जिसमें चौर, कृत्या, अभिचारिक कर्म-यातुधानादि परास्त हो जाते हैं। रत्नादि बहुभोगों, सुगन्धित, पुष्ट, वीर्य-बल वर्धक पदार्थों से पूर्ण रहती है। जहां निरन्तर दानादि कर्म होते रहते हैं। रत्न-स्वर्ण-धान्यादि अतुल अक्षयरूप से रहते हैं। जिसमें सविता, प्रजापति, वायु, इन्द्र, वृहस्पति का निरन्तर वास रहता है। इसमें राग द्वेष, दम्भ, छद्म आदि का प्रवेश नहीं हो सकता ऐसी वास्तु देव की पत्नी स्वरूपशाला उपरोक्त होती है। वंश (स्थूण यापाषाण) मध्य में गाड़े। जो समस्त विघ्नों का शमन करने वाला होता है। रक्षोघ्न अनुवाक से रक्षा कार्य (कील ८ गाड़ें, सर्षप, शर्करा, अपामार्ग मञ्जरी, पुष्प, तुलसी पत्र, सुपाड़ी, रत्न, दक्षिणा, दूब, दाभ, रख चारोंगड्ढों में नीचे स्तम्भों के गाड़ दे।

प्रवेशकाल—गृह प्रवेश के समय कुमार, सुन्दर वस्त्र माला चन्दन से युक्त प्रवेश करें, जलकुम्भ, घी, गौ, शहद, दही, दुग्ध से पूर्णपात्रों सहित प्रवेश करे। सौभाग्यवती स्त्री जल से चारों ओर शाला के धार देती, मंगलगान करती हुई आयें तब प्रवेश करें तदनन्तर होमादि करें।

"अश्मवर्म" (५।१०) से ६ पत्थर अभिमन्त्रित कर, प्राणप्रतिष्ठा, पूजाकर घर-ग्राम, नगर के ४ कोणों में १।१ गाड़ें, एक मध्य में गाड़ें, १ शाला के ऊपर दबायें। इस कार्य में "यो मा दिशाम्" इस ७ वी ऋचा से पूर्व दिशा से छओं को गाड़ें। (कौ० ७।२)। 'तेऽवदन" (५।१७) से गौ आदि के चोरों अभिचार (हत्यादि कर्म कर्त्ता आततायियों) के निरोध के लिये नियन्त्रितकर जपे, होम करे, "यजूंषि यज्ञे" (५।२६) से प्रथम "दोषो गाय" (६।१) से द्वितीय, पुन: दोनों से ही तृतीया वृत्ति घी-मधु से आहुति दे। (कौ० ३।६)

"एहयातु" (६।७३) आदि वास्तुगण से गणदेवताओं का सांमनस्यार्थ होम करे। **"गणदेवता"**—(अग्निर्वसुभि: सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुणः आदित्यै र्वृहस्पति विश्वेदेवैः। इति तै० सं० ६।२।२।१ से अष्टवसु-गणदेवताओं का निर्देश है। "इहैवस्त" (६।७३-३) ऋचा से जलधार (६।७३) से दे और इस तीसरी (६।७३-३) ऋचापर पूर्ण करे। यह प्रवेशकाल में शाला की परिक्रमा के समय जलधार से प्रयोजन है।

"अतिधन्वन" (७।४२) आदि २ ऋचाओं से नवगृह निर्माण से पूर्व भूमि के नीचे उपरोक्त "शल्यशोधन" कर्म में हड्डी, भस्म, कपाल, लोहा, भूसा आदि से उत्पन्न अचिन्त्य भावी अनिष्ट के निवारणार्थ गृह निर्माण स्थान में सूर्य **"श्येनदेवता"** के निमित्त होम करे। कौ० (५।७) **इससे चोर आदि का चुराकर लाया गड़ाधन**, अथवा वसु आदि पितरों का हाथ **से लाया गड़ा (लुप्त) या सुप्तप्रेत धन**, भी प्राप्त होता है। तथा उस धन के चोरी आदि का प्राप्त; कर्त्ता को सारांश चोरीकर गाड़ा किसी ने; मिलजाय किसी अन्य को जिसकी चोरी हुई थी उसका शापादिजनित अनिष्टकारी फल नहो उसकी भी शान्ति होती है।

दूर देशान्तर के चिरवास से ग्राम या घर पुरातन के प्रवेशकाल में, अथवा जीर्णगृह प्रवेशकाल में भी "ऊर्जं विभ्रद्" (७।६२) सूक्त प्रथम ६ ऋचाओं को जपता हुआ समिधायें ले, घर में आ; वाम हाथ में उन्हें धारण करे और सीधे (दक्षिण) हाथ से छपरी का तृणों का स्पर्श करता हुआ ६ ऋचाओं को जपता हुआ घर में प्रवेश कर पुनः ६ ऋचाओं से आहिताग्नि (गृहाग्नि) में चढ़ायें। (कौ० ३।७) होम करे, इसमें अग्नि स्थापन विधि आवश्यक नहीं है।

वर्तमान सभी की पारस्परिक प्रीति, पुष्टि, स्वास्थ्य, सौभाग्य आदि के निमित्त भी इन्हीं उपरोक्त ६ ऋचाओं से होम करे, ६ समिधादान करे। (कौ० ५।६)

"इन्द्रा वरुणा" (७।६०) **"वृहस्पतिर्नः"** (७।५३) **"उभा जिग्यथुः"** (७।४५) से अपने पुरातन ग्राम या घर के प्रवेश कर्म में होमादि के साथ भोग्य पदार्थों से आहुति दे प्रसाद सभी गोष्ठी के रूप में लें। (वै० ४।१) (कौ० ५।६)

"यौते मातो" (८।६) तथा **"सत्यं वृहत्"** (१२।१) से वास्तुगण में वर्णित वस्तु कर्म नवनिर्माण, गृहप्रवेश, ग्राम, पुर, नगर निर्माण आदि में शान्ति होम करे। कौ० ५।७

"उपमिता" (९।३) से स्वर्ग कामी नवीन शाला निर्माण कर होमादि से शान्ति करने के उपरान्त दाता; प्रतिगृहीता से उद्घाटन करा; दान दे। कौ० ८।७

"विशेष"

१—अग्नि पुराण वास्तु अध्याय २४७ कुशा, शरकण्ड, दूर्वा, पुष्पादि से युक्त प्राची दिशा में खात (गड्ढा) शिलान्यासादि से प्रारम्भ कर वास्तु पूजा करें।

२—गृह (शाला) के पूर्वभाग में वट उत्तर में प्लक्ष (पिलखन) दक्षिण में गूलर पश्चिम में अश्वत्थ के वृक्ष शुभ हैं—एवं शाला के वाम भाग में वाटिका होना शुभप्रद है। शिलान्यास और गृहप्रवेश की समान विधि है।

विशेष अनुभूत :—निवास हेतु शाला निर्माण में पंच कोणादि का होना नेष्ट होता है आगे की चौड़ाई नेष्ट है पीछे की चौड़ाई श्रेष्ठ होती है, प्रथम सामने का द्वार प्रारम्भ करना भी अशुभ है।

कड़ी मकान में डालने से पूर्व राज, इन्द्र, यम तीनों को लक्ष्यकर प्रारम्भ करे; तीन संख्या की कड़ी से गणना प्रारम्भ करे, प्रथम ३ कड़ीवाला अंक राज की, चौथी इन्द्र की ५ वीं यम की समझे इसी क्रम से ६ वीं राज ७ वीं इन्द्र ८ वीं यम की, ऐसे ही गणना करे इनमें प्रथम दो श्रेष्ठ हैं यम की नेष्ट समझकर त्याग दे, बढ़ाये या घटाये।

वास्तुशान्ति प्रकरण (नवशाला निर्माण)

पूर्वोक्त वास्तुप्रकरण में वर्णित विघ्नों के निराकरणार्थ तथा नूतन या पुरातन गृह के सुखदवास से पूर्व वास्तुशान्ति अनिवार्य तथा श्रेयस्कर है जो इसकी प्राविधि "वास्तुगण"

(संम्प्रोक्षणगण) कर्म विधि में दी गई है। सर्वप्रथम गुरु इष्टदेव की मानसिक उपासना करें, आचमन, प्राणायामकर स्वस्तिवाचन, दीपस्थापनकर संकल्प करें।

भूमि सम्प्रोक्षण

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामिक्षमांभूमिं ब्रह्मणा वा वृधानाम्।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभिनिषीदेम भूमे ॥१२।१।२९)

भूमि में हलादि चला। समतल करें, नीम आदि खोदें, "इहैवध्रुवां" (३।१२) आगे देखें।

कभी भी किसी प्रकार के भूमि खनन में या हल आदि चलाने से उत्पन्न राष्ट्रीय देवी भूमि के आघातजन्य अपराध तथा अगिनत जीवहिंसा से उत्पन्न पापों; से रक्षार्थ तथा निष्पाप होने के लिये, तथा घृत, तैल, मधु, अन्न आदि के सहसा वृद्धि या सहसा क्षय अर्थात् भण्डारों से अदृश्य हो जाने या भण्डारों में अभाव होते हुए अक्षय (अपार) भण्डार-द्रौपदीचीरकी भाँति की अद्भुत घटनायें घटित होने से उत्पन्न भावी भङ्कर परिणाम से रक्षार्थ अथर्व काण्ड ६ सूक्त ११४ तीनों ही ऋचाओं से समभाग घी, तेल, मधु तथा आज्य से होम करे—इसी विनियोग का कौशिकसूत्र १३।४० निर्देश करता है। सब यज्ञ में इन्हीं तीनों से पूर्णाहुति दें। कौ० ८।८, एवं अग्निष्टोम के तृतीय सवन में आदित्य होम करें। वै० ३।१२। अग्निष्टोम में प्रायश्चित होम का भी इन्हीं से प्राविधान है। वै० ३।१३

"वास्तुकर्म में खननादि दोषपरिहारार्थ"

जाटिकायनः। विवस्वान्। जगतीछन्द, भेषजउत्पाटन गृहनिर्माणादिषु भूखननादि; अद्भुदर्शनादि जनित दूषण परिहरणे विनियोगः।

यद् यामंचक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया।
वैवस्वते राजनि तञ्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥१॥

उपरोक्त समतल भूमि को दृढ़ करें "इहैवध्रुवां" (३।१२) की ऋ० १ व २। वांसपर घी चुपड़ें, अनुमन्त्रित करें और "इहैवध्रुवां" (३।१२) की ऋचा ६ "ऋतेन स्थूणाम्" से गाड़ दें इसीसे गड्ढा खोदें।

इससे नवनिर्मितशाला, चिरस्थाई, अग्निदाह, विषैली दुर्घटना, अन्य उत्पात रोगआदि व्याधियों से रहित, कल्याणकारी, सुन्दर, स्वस्थ, प्रियभाषी, सौभाग्यशाली, दीर्घायु, पुत्र-पौत्रादि, धन-धान्य, पशु, भोग्य पदार्थों से परिपूर्ण सज्जनों के वास, अल्पायु-अपमृत्यु, वैधव्य, वन्ध्यात्वादि दुर्गुणों से रहित होती है। उपरोक्त की ऋचा ५ "मानस्यपत्नि" में शालावास्तु पति की पत्नि के रूप में देवों द्वारा उत्पादित है।

ऋचा ६ से वांस या धातुस्तम्भ गाड़े; लम्बे स्थाई बाँस या स्तम्भ समस्त वाह्याभ्यान्तर जीवों को पीड़ित करनेवाले समस्त विघ्नों को दूर करने में ऋषिबल, मंत्रबल तथा देवबल से पूर्ण समर्थ है। इसे प्राण प्रतिष्ठा-पूजाकर गाड़ें।

इस शाला में इष्टापूर्त श्रौतस्मार्त समस्त कर्म निरन्तर हों और उनमें विघ्न करने वाले समस्त बाधक तथा चोर, वधिक, अग्नि आदि सभी परास्त हों इस कारण शान्ति आवश्यक कही है।

उपरोक्त वास्तुप्रकरण के शल्य शोधन आदि के समस्त दोष शमनार्थ नवनिर्माण से पूर्व ही "अतिधन्वन" (४।४२) से श्नेनदेवता के लिये आज्याहुति दें, वलिदानकर शान्ति करें इसीसे प्रस्तावना में लिखित धनलाभ भी सम्भव होता है। इससे निर्ऋति (दौर्भाग्य), पिशाचिनी (दरिद्रता) द्वारा घर में या गृह में निवास करने वालों के विविध विचित्र रोगादि शान्त होंगे, चोरों या पूर्वजों का गड़ा, भूला हुआ धन प्राप्त होगा।

"**अश्मवर्म**" (५।१०) से ग्राम, गृह, शहर, राज्यादि के स्वस्त्ययनार्थ ६ पाषाण अभिमन्त्रितः प्राणप्रतिष्ठा पूजाकर चारों कोणों में एक एक, एक मध्य में तथा एक शाला या गाम के ऊपर के भाग में गाड़ें, ऊपर वाले एक को ऊपर रखदें। "योमा दिशाम्" (५।१०।७) से एक से दूसरे को पूजा, प्रतिष्ठा, वलिदान करें। कीलें भी गाड़ें।

"**अश्मवर्म**" (५।१०) ब्रह्माऋषिः। वास्तोष्पति देवता। यव मध्या निचृद्गायत्री छन्दः शाला निर्माणे, ग्रामवासे, पत्तनादि स्थापने, निर्माणे, पाषाण, अनुमन्त्रणे, स्थापनें, रक्षोहणे च विनियोगः।

अश्मवर्ममेऽसि योमा प्राच्यांदिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्सऋच्छात् ॥१॥

अश्मवर्ममेऽसि योमा दक्षिणाया दिशो ऽघायुरभि दासात्। एतत्सऋच्छात् ॥२॥

अश्मवर्ममेऽसि योमा प्रतीच्यांदिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्सऋच्छात् ॥३॥

अश्मवर्ममेऽसि योमोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्सऋच्छात् ॥४॥

अश्मवर्ममेऽसि योमा ध्रुवायां दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्सऋच्छात् ॥५॥

अश्मवर्ममेऽसियोमोर्ध्वायांदिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्सऋच्छात् ॥६॥

अश्मवर्ममेऽसियोमा दिशामन्तर्देशेभ्यो घायुरभिदासात्। एतत्सऋच्छात् ॥७॥

बृहतामनउपं ह्वयेमातुरिश्वना प्राणापानौ। सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम्। सरस्वत्या वाचमुपं ह्वयामहेमनो युजां ॥८॥

शाला निर्माण से पूर्व ग्राम-नगर-देश परिखा, परिधि के पत्थर गाड़कर पुनः निम्न से धूम्रकेतु, अद्भुतजनितानिष्टफलदायक घटनाओं के घटित होने आदि; अनिष्ट से रक्षार्थ; पाषाणों को गाड़ें और पूजाकर सभीपर पृथक् २ बलिदान करें।

"आशानाम" (१।३१) से इन्द्र, धनद, आदि दिक्पालों को दूध-भात पत्र-पुष्प धूप-चन्दनादि से पूजा करे।

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।

इदंभूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेमहविषा वयम् ॥१॥

य आशानामाशापालाश्चत्वारस्थन देवाः ।

ते नोनिर्ऋत्याः पाशेभ्योमुञ्चतांहसो अंहसः ॥२॥

अस्रामस्त्वा हविषायजाम्यश्लोणस्त्वाघृतेनजुहोमि ।

य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः सनः सुभूतमेह वक्षत् ॥३॥

स्वस्तिमात्र उतपित्रेनो अस्तुस्वस्तिगोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः

विश्वं सुभूतंसुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥४॥

इनसे ४ स्थूण (पाषाण) गाड़ें, उपरोक्त कर्म करें। चारों कोणों में ४ शराब (सकोरों में) चावल-जौ, इन्द्रजौ, रोली, पुष्प डाल, जलभरकर रखदें। और इसीसे शान्ति हेतु छींटें दें। "पृथिव्यै श्रोत्राय" (६।१०) संलग्न देखें इसीसे अभिमन्त्रित गृहस्वामी सदम्पति तथा सकुटुम्ब मन्त्रोक्त इन्द्रियों का स्पर्श करें प्रथम गृहस्वामिनी सौभाग्यवतियों, कुमारों को साथ ले पूर्वोक्त शान्ति जल से पूर्ण कलश को शिरपर रख मङ्गल गीतों के साथ प्रवेश करे। शाला की परिक्रमा करे और "एहयातु" (६।७३) की ऋचा से जल की धार प्रारम्भकर "इहैवास्तमाप" (६।७३-३) पर जलधार पूर्ण करे। तथा उत्तरतन्त्र की वेदी की कुशकण्डिका अग्नि स्थापनादि तथा नवग्रहादि होम करके इसी सूक्त से तथा "यजूंषियज्ञे" (५।२६) "दोषोगाय" (६।१); "ऊर्जंविभ्रत" (७।६२); "यौते माता" (८।६) "सत्यं बृहत्"(१२।१) से वास्तुगण देवताओं का होम करें। यह भूखलन-भूचालादि भौमग्रह जनित उत्पातों की शान्ति में भी है। विवरण सत्यं बृहत् (१२।१) में देखें।

यदि पुरातन गृह-ग्राम-नगर, पत्तन होतो "इन्द्रा वरुणा" (७।६०) "बृहस्पतिर्नः" (७।५३); तथा "ऊर्जंविभ्रत्" (७।६२) से ही होम करें।

वास्तुगणाः (३।१२-१)

(५।६-१,५) (५।१०-१) (७।४१-१) (७।६०-१) नवशाला निर्माणम् (अ० वे० कां ३ सू १२)

(३।१२) १-९ ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पतिः। त्रिष्टुप् २ विराड् जगती। ३ बृहती, ६ शाक्वरी गर्भा जगती, ७ आर्षी अनुष्टुप्, ८ भुरिक् ९ अनुष्टुप्। पूर्वक्तकर्मषु विनियोगः

इहैवध्रुवां नि मिनोमिशालां क्षेमें तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्व वीराः सुवीरा अरिष्ट वीराउप सं चरेम् ॥१॥

इहैवध्रुवाप्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्ज स्वती घृतवती पर्यस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

धरुण्यऽसिशाले बृहच्छन्दाः पूर्तिधान्या ।
आत्वा वत्सो गमे दा कुमार आधे नवः सायमास्पन्दमानाः ॥३॥

इमांशालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतुप्रजानन् ।
उक्ष न्तूद्रा मरुतो घृतेनभगो नो राजा निकृषिं तनोतु ॥४॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

ऋतेन स्थूणामधिरोह वंशोग्रोविराजन्नप वृङ्क्ष्वशत्रून् ।
मातेरिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शालेशतं जीवेम शरदः सर्व वीराः ॥६॥

एमां कुमारस्तरुण आवत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भआ दध्नः कलशैरगुः ॥७॥

पूर्णं नारि प्रभर कुम्भमे तं घृतस्य धारामृतेनसंभृताम् ।
इमां पातृनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभिरक्षात्येनाम् ॥८॥

इमा आपः प्रभराम्ययक्ष्मायक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुपप्रसीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९॥

सरस्वान् (७।४१) (वास्तुगण)

१-२ प्रस्कन्धः। सरस्वान्। १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप्

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतउपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्नि विष्टस्तं सरस्व न्तमवसे हवामहे ॥१॥

आग्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्व न्तंपुष्टपतिंरयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥२॥

सुपर्णः (वास्तुगण) [७।४२]

१-२ प्रस्कण्वः। श्येनः। १ जगती, २ त्रिष्टुप् उपर्युक्तकर्मषु विनियोगः

अतिधन्वान्यत्यपस्ततर्दश्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्याशिवआ जगम्यात् ॥१॥
श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद् वसुयत् पराभृतमस्मा कमस्तुपितृषु स्वधावत् ॥२॥

अथर्व परिशिष्ट में निर्दिष्ट (३४।५) द्वितीय वास्तुगण अ० वे० (१।३१-१) (३।१२-१) (५।६-१ से ५), (५।१०-१७) (६।१०-१) (७।४१-१) (७।६०-) (१२।१-१) (२।२-१) (६।३-१) हैं। परन्तु कौ० सू० कं ८।२३ में (३।१२-१) (६।७३-१) (६।६३-१) (१२।१-१) हैं। इन निम्न सूक्तों के अतिरिक्त अन्य पूर्व लिखे जा चुके हैं।

संप्रोक्षणम् (६।१०)

शान्तातिः। १ पृथिवी, श्रोत्रं, वनस्पतिः, अग्निः। २ प्राणः, अन्तरिक्षं, वयः, वायुः ३ द्यौः, चक्षुः; नक्षत्राणि, सूर्यः, द्वैपदम्, १ साम्नी त्रिष्टुप्, २ प्राजापत्या बृहती ३ साम्नो बृहती।

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥१॥
प्राणा यान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२॥
दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३॥

सांमनस्यम् (६।७३)

अथर्वा। सांमनस्यम्, वरुणसोमाग्नि बृहस्पति वसवः, ३ वास्तोष्पतिः। १, ३ भुरिक् २ त्रिष्टुप्।

एहयातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेहयातु ।
अस्यश्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥१॥
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्यावो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामिहविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२॥

इहैवस्त माप यातोध्यस्मत् पूषापरस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जो हवीतुमयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३॥

ये दोनों वास्तुगण ही वास्तु शान्तिगण कहे गये हैं पूर्व वास्तुगण कौशिकसूत्रोक्त हैं, द्वितीय वास्तुगण, अथर्वपरिशिष्ट निर्दिष्ट है।

वास्तुशान्तिगण

नवनिर्माण में "**यजूंषियज्ञे**" (५।२६) ऋ० १२–ब्रह्मा। ऋषिः। वास्तोष्पतिः १ अग्निः; २ सविता, ३, ११ इन्द्रः; ४ निषिद्; ५ मरुतः; ६ अदितिः; ७ विष्णुः; ८ त्वष्टा; ९ भगः; १० सोमः; १२ अश्विनौ; बृहस्पतिः। देवते, द्विपदार्षी (१;५) उष्णिक्, २,४,६,७,८, १०,११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती। ३ त्रिपदा विराड् गायत्रीः ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक्। (१-११ एकावसाना)

१२ परातिशाक्वरी चतुष्पदा गायत्री। छन्दांसि नवशालायां घृत होमे प्रोक्षणे च विनियोग।

यजूंषि यज्ञेसमिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिहवो युनक्तु ॥१॥
युनक्तु देवः सविताप्रजानन्नस्मिन्यज्ञेमहिषः स्वाहा ॥२॥
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन्यज्ञेप्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥४॥
छन्दांन्सि यज्ञेमरुतः स्वाहामातेव पुत्रंपिपृतेह युक्ताः ॥५॥
एयमगन्बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥६॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मि न्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥७॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधानुरूपा अस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥८॥
भगोयुनक्त्वाशिषो न्व१स्मा अस्मिन्यज्ञेप्रविद्वान्युनक्तुसुयुजः स्वाहा ॥९॥
सोमोयुनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन्यज्ञेसुयुजः स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रोयुनक्तु बहुधा वीर्याऽण्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥११॥
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ बषट्कारेण यज्ञं बर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयंस्वऽरिदं यजमानायस्वाहा ॥१२॥

"**दोषोगाय**" (६।१) अथर्वा। सविता। उष्णिक्, १ त्रिपदापिपीलिकमध्यासाम्नी जगती। २,३ पिपीलिकमध्यापुर उष्णिक्। छन्दासि शालायां होमे विनीयोग।

दोषो गाय बृहद्गायद्युमद्धेहि । आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥१॥
तमु ष्टुहि योअन्तः सिन्धौ सूनुः । सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥२॥
स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि । उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३॥

"ऊर्जंबिभ्रत्" (७।६०) ऋ० १७ ब्रह्मा, गृहाः । वास्तोष्पति । अनुष्टुप् १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् । छन्दासि शाला होमे विनियोग ।

ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥१॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥२॥
येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥३॥
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्यास्त गृहा मास्मद्बिभीतन ॥४॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥५॥
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्यास्त गृहा मास्मद्बिभीतन ॥६॥
इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥७॥

"यौतेमाता" (८।६) पुत्रेष्टि में देखें ।

वास्तुशान्तिगण

पुरातन गृह-नगर-ग्राम-पत्तन, पर्णशाला में पुनः प्रवेश अथवा दीर्घकालीन विदेश यात्रा से आगमन कालीन प्रवेश में होम करें ।

"बृहस्पतिर्नः" (७।५३) अङ्गिराः । इन्द्रा बृहस्पति । देवता, त्रिष्टुप् छन्द उपर्युक्त वास्तुहोमे विनियोगः

बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखाः सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥१॥

"संज्ञानं" (७।५४) अथर्वा । सांमनस्यं, अश्विनौ देवते । ककुम्मत्यनुष्टुप् २ जगती-छन्दांसि, सामनस्ये-वास्तुहोमे विनियोग ।

संज्ञानं नः स्वेभिः सं ज्ञानमरणेभिः ।
सं ज्ञानमश्विनायुवमिहास्मासुनि यच्छतम् ॥१॥
सं जानामहै मनसा संचिकित्वामायुष्महिमनसा दैव्येन ।
माघोषा उत्स्थु बहुलेविनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२॥

"इन्द्रावरुणा" (७।६०) कौरुपथिः । ऋषिः । इन्द्रावरुणौ देवते । जगती २ त्रिष्टुपे छन्दांसि जीर्णगृह प्रवेशे वास्तुहोमे विनियोगः ।

इन्द्रा वरुणा सुतपाविमंसुतं सोमं पिबतं मद्यं घृतव्रतौ ।
युवोरथो अध्वरो दे ववीतये प्रतिस्वसरमुपयातुपीतये ॥१॥
इन्द्रा वरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् वर्हिषिमादयेथाम् ॥२॥

"वाजसनेयश्रुति (श० ब्रा० २.४, २.२०) वामयुवयोरर्थाय इदम् अन्धः अन्नं सोम-लक्षणं परिषिक्तम् ।

इनसे होम करें और यथा स्थान, अन्न, घृत, दुग्ध, दधि, मधु, मिष्ठान, वस्त्र, आभूषण, लक्ष्मी, गौ, अश्व आदि एवं पूज्य इष्ट की प्रवेशकाल में स्थापना करें ।

"उपमिताम्" (९।३) भृग्वङ्गिराः । ऋषिः । शाला देवता । ६ पथ्यापंक्ति ७ परोष्णिक् १५ त्र्यवसाना पञ्चपदातिकरी, १७ प्रस्तारपंक्तिः, २५, २६ त्रिपदा प्राजापत्या वृहती २६ साम्नोत्रिष्टुप्, २७, ३० प्रतिष्ठानाम गायत्री, त्रिष्टुप् छन्दांसि नवशाला (गृहम्) निर्मिते–होमान्ते, स्वर्गकामो (दाता) उद्वाह्य प्रतिग्रहीत्रे समर्पणे, प्रतिग्रहीतु स्वीकुर्वणे, च विनीयोगः ।

उपमितांप्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया न द्धानिवि चृतामसि ॥१॥
यत्ते नद्धं विश्ववारे पाशोग्रन्थिश्चयः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं बलंवाचाविस्रंसयामि तत् ॥२॥

आयंयाम सं बंवहंग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।
परूंषिविद्वांछस्तु वेन्द्रेण विचृतामसि ॥३॥

वंशानां ते नहनानांप्राणाहस्य तृणस्य च ।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानिविचृतामसि ॥४॥

सुदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥५॥

यानि तेऽन्तः शिक्याऽन्याबेधूरण्याऽयकम् ।
प्रते तानि चृतामसिशिवामानस्यपत्नीनउद्धितातन्वेऽभव ॥६॥

हविर्धानमग्निशालंपत्नीनांसदनंसदः । सदो दवानामसि देविशाले ॥७॥

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा विचृतामसि ॥८॥

यस्त्वांशालेप्रतिगृह्णातियेन चासिमिता त्वम् ।
उभौमानस्यपत्नि तौजीवतां जरदष्टी ॥९॥

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढानद्धापरिष्कृता ।
यस्यास्ते विचृ तामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥१०॥

यस्त्वांशाले निमिमायसंजभार बनस्पतीन् ।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११॥

नमस्तस्मै नमोदात्रेशालापतये चक्रुण्मः ।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय चते नमः ॥१२॥

गोभ्यो अश्वेभ्योनमो यच्छालायांविजायते ।
विजावति प्रजावति वितेपाशांचृतामसि ॥१३॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान्पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वितेपाशांश्चृतामसि ॥१४॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः ॥
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥१५॥
ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥१६॥
तृणैरावृता पलदान्वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥१७॥
इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् ।
वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥१८॥
ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥१९॥
कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद्विश्वं प्रजायते ॥२०॥
या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥२१॥
प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥२२॥
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥२३॥
मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥२४॥
प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२५॥
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२६॥
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२७॥

उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहेऽभ्यः ॥२८॥
ध्रुवायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहेऽभ्यः ॥२९॥
ऊर्ध्वायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहेऽभ्यः ॥३०॥
दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहेऽभ्यः ॥३१॥

इति श्री कर्मजव्याधि निरोध ग्रन्थस्य
चतुर्थोऽध्याय ।



कर्मज आधिव्याधि निरोध

पञ्चम अध्याय

राजयक्ष्म-नाशन विधिः

कां ३ सू ११ में ८ ऋचायें हैं, जिनमें प्रथम ४ ऋग्वेद की ही हैं शेष ४ निम्न उन्हीं में प्रयुक्त हैं।

दीर्घायुष्य प्राप्ति विनियोगः

प्र विंशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥५॥
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् । शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥६॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरांच्छतम् ॥७॥
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा । यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद्बृहस्पतिः ॥८॥

कां० ४ सू० १३ ऋ० ७ शंतातिः । ऋषिः । चन्द्रमाः, विश्वेदेवाः । १ देवाः, २.३ वातः, ४ मरुतः, ६.७ हस्तः । देवते । अनुष्टुप् छन्दः । क्रतुमध्ये व्याधितस्ययजमानस्य भैषज्ये आयुष्कामाय वृहच्छान्तिप्राप्तयर्थे, जपे, होमे, अवसेचने, अवमार्जने, स्नाने, पाने, पुरोडाशादि–अभिमन्त्रणे-भक्षणे च विनियोगः ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः । उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद्रपः ॥२॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः । त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥
आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६॥
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७॥

इससे हाथों से रोगी को उपनयन तथा मेधाजनन में बाल एवं कुमारों का भी अङ्ग स्पर्श कर अभिमर्शन करें।

कां० ५ सू० ३० ऋ० १७, उन्मोचन ऋषिः। (आयुष्कामः) आयुष्यम्। देवते, अनुष्टुप् १ पथ्यापङ्क्तिः ९ भुरिक्, १२ चतुष्पदा विराट् जगती, १४ विराट् प्रस्तार पंक्तिः १७ त्र्यवसाना-षड्पदा जगती छन्दांसि। आयुष्काममाणवकस्य, बालस्य रुग्णस्य च ऋषिः हस्तेनाभिमर्शनार्थे, भैषज्ये, ग्रहो लिङ्गगण कार्ये च विनियोगः।

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः।
इहैवभवमानुगामापूर्वानिनुगाः प्रितनसुंबध्नामिते दृढम् ॥१॥
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वोयदरेणौ जनः।
उन्मोचना प्रमोचने उभे बाचा वदामि ते ॥२॥
यद्दुद्रेथ शेयिषे स्त्रियै पुंसे अचित्या।
उन्मोचन प्रमोचनो उभे वाचा वदामि ते ॥३॥
यदेनसो मातृकृताच्छेष्पेपितृकृताच्चयत्। उन्मोचनप्रमोचने उभेवाचावदामिते ॥४॥
यत तेमातायतत्तेपिता जामिभ्रांता चसजतः।
प्रत्यक् सेवस्वभेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५॥
इहैधिपुरुषसर्वेण मनसासह। दूतौ यमस्यमानुगाअधि जीवपुराइहि ॥६॥
अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयं नंपथः। आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोयनम् ॥७॥
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमित्वा।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८॥
अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मश्येनइवप्रापप्तद् वाचा साढ़ परस्तरान् ॥९॥
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नोयश्च जागृविः।
तौतेप्राणस्य गोप्तारौ दिवानक्तं च जागृताम् ॥१०॥
अयमग्निरुपसद्य इहसूर्य उदेतुते। उदेहिमृत्योगम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११॥
नमो यमाय नमो अस्तुमृत्यवे नमः पितृभ्यउत ये नयन्ति।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निपुरो दधेस्मा अरिष्टतातये ॥१२॥

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्यसं विदां तत्पद्भ्यांप्रतितिष्ठतु ।।१३।।
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं तृं ज मां समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नुगान्मा नुभूमिं गृहो भुवत् ।।१४।।
मा ते प्राणउप दसन्मो अपानोपिधायि ते ।
सूर्य स्त्वाधिपतिमृ त्योरुदायच्छतुरश्मिभिः ।।१५।।
इयमन्तर्वदतिजिह्वा बद्धमा पनिष्पदा ।
त्वयायक्ष्म निरवो चं शृतंरोपीश्चतक्मनः ।।१६।।
अयं लोकः प्रियतमो द वानामपराजितः । यस्मै त्वमिहमृत्यवेदिष्टःपुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वा नु ह्वयामसिमा पुरा जरसो मृथाः ।।१७।।

ऋ० १३,१४,१५ से पुनः प्राण, मन, दस इन्द्रियों, बल, जोव आदि का आह्वान, शरीर, वस्त्र, अस्थि, भस्म आदि में होता है। कां० ६ सू० ५३ ऋ० १,२,३ से पुनः शरीर के क्षतिग्रस्त, शक्ति, प्राण, बल, आत्मा आदि को पुनरागमन करें।

कां० ७ सू० १३ ऋ० ४ से यत्र तत्र भटका हुआ मन पुनः पूर्ववत स्वस्थरूप से मेधा इडा, सरस्वती युक्त स्थापित होता है। कां० १९ सू० ४० से पूर्ववत् ज्ञान आदि को जागृति, चैतन्यता प्रदान करें। (अनुभूत)।

कां० ७ सू० १० से समस्त ५ नष्ट पूर्व शक्ति, नष्टधन, हृत वस्तु जात की पुनः उपलब्धि होती है। कां० ३ सू० ११ ऋ० २,३,४,६ से पूर्ववत्-प्रपगत प्राण, आत्मा, जीव, बल, ओज, शक्ति, इन्द्रियों की स्थापना करें।

कां० ३ सू० ११ ऋ० ८ ब्रह्मा, भृग्वाङ्गिरांश्च-ऋषयः। इन्द्राग्नी, आयुष्यं यक्ष्म नाशनम्। देवते। त्रिष्टुप्। ४ शक्वरीगर्भा जगती, ५,६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिक् बृहतीगर्भा पथ्यापंक्तिः; ८ त्र्यवसाना षट्पदाः बृहतीगर्भा जगती छन्दांसि अं हसोन्मूलने; बालग्रह रोगोपशमने, निरन्तर स्त्रीसंग जनित यक्ष्म नाशने, क्रतुमध्ये व्याधित यजमानस्य भैषज्यार्थे, पुनः प्राण आदि स्थापने भैषज्ये, स्तवने, अवसेचने, मार्जने, आचमने उपस्थाने, होमे च विनियोगः।

गण्डमाला

निश्चय ही रोगों की उत्पत्ति मिथ्या आहार व्यवहार से होती है—यह क्रिया स्थूलकाय (पिण्डदेह) से सम्बन्धित है। इसकी औषधि, शल्य आदि सभी प्रकार की योग्यतम चिकित्साओं के उपरान्त भी व्याधि न टले तो उसे सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित कर्मज

(पापजन्य) व्याधि ही समझें। सूक्ष्मशरीर की सारी क्रियायें, मन अन्त:करण बुद्धि के द्वारा होती हैं। ये तीनों पापपुण्य-प्रेरणा आदि सभी सूक्ष्म शरीर को करते हैं। शुभाशुभ फल भी सूक्ष्मशरीर निश्चय ही भोगता है। परन्तु सूक्ष्म की व्यथा को दूर करने के सभी वाह्य (स्थूल के) उपचार व्यर्थ पड़ते हैं। सूक्ष्म की भैषज्य आध्यात्मिक (आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी) के अतिरिक्त अन्य कुछ हो ही नहीं सकती।

इन रोगों का मूल कारण पाप ही है। अ० वे० ६।९६ "मंत्र ३" में स्पष्ट है।

"यच्चक्षुषा मनसायच्चवाचोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः"

अर्थात् नेत्र, वाणी, मन आदि इन्द्रियों से जाग्रत और स्वप्नावस्था में किये गये जो भी पाप हैं, उनसे उत्पन्न रोगों से सोम "स्वधा" शक्ति द्वारा रक्षा करें। स्थूलदेह से स्वपन में पापादि क्रिया जड़वत होने से नहीं होती सूक्ष्म की ही क्रिया स्वप्न में होती है। कां० २ सू० १० मं० १ से ८ में क्षेत्रिय, नैर्ऋति-जामिशंस, द्रुह, वरुण पाश-यक्ष्म, दुति, अवद्य, ग्राही और अराति ये दस प्रकार के पापों से उत्पन्न रोगों की भैषज्य-सूक्ष्मशरीर की ही होने से, रोगों का कारण पाप है जो सूक्ष्मशरीर सम्बन्धी है। "यही इसकी भैषज्य वाचिक मानसिक ज्ञान, तप-आदि हो कही हैं। जो आगे विधिवत वर्णित हैं।

उत्पत्ति

गण्डमाला, अपस्मार, जलोदर, आन्त्रिक रोग (प्लूरसी) पक्षाघात (लकवा) आदि-आदि जो इन निम्न मंत्रों में निर्दिष्ट हैं ये सभी तथा शीर्ष के सभी रोगों का कारण आकाश से गिरने वाला विषैला जल है। जल के देवता वरुण के शाप से यह दूषित होता है। यह दूषित जल शरीर में जहाँ जहाँ भी गिरकर, चूकर संग्रह होता है सर्व प्रथम वहीं यह रोगरूप बन जाता है। शरीर में आकाश मस्तिष्क है। वहीं सर्व प्रथम यह उत्पन्न होकर आगे रक्त वाहिका नाड़ी और प्राण के सहारे पोल स्थानों में हड्डी के सहारे एकत्रित होता है। इससे निम्नांङ्कित के साथ ही नाभि प्रदेश की ग्रन्थि छाती (कुच) नितम्ब, हृदय, उदर के पास की पोली जगह, कुण्ड के दोनों कर्णों से सम्बन्धित नाड़ियों के समीप की हड्डी से चलकर गलधौंट, जिह्वा, मस्तिष्क, कपाल की आगे की पोल, मूलाधार चक्र की पोल विशेष प्रभावित होते हैं।

दूषित होने का कारण

इस मस्तिष्क जल के दूषित होने के मूलभूत कारण वरुण देव के शाप से वाह्य आघात, मानसिक, वौद्धिक, दुर्बलता, क्षीणता ही है। यह शाप किसी भी भयङ्कर पाप, देव के रुष्ट होने पर ही होता है।

रोग का प्रभाव

यह रोग सूक्ष्मशरीर को ही प्रभावित करता है, बाद में उससे स्थूल देह प्रभावित होता है। यदि इसका सर्वप्रथम स्थूल देह पर प्रभाव हुआ होता तो स्थूल देह की सारी क्रियायें अवाधगति से कभी भी नहीं चल सकती तत्काल बन्द हो जातीहै। परन्तु यह जब सूक्ष्म देह में पूर्ण विकसित हो जाता है तब स्थूल पर प्रभाव पड़ता है।

इसका कारण शरीर पर भी कोई प्रभाव नहीं होता क्योंकि वह आत्मा से सम्बन्धित, पर मन, बुद्धि, इन्द्रियों से परे है, जो न गलता, न सड़ता, न जलता, न मरता ही है।

सूक्ष्म का कोई उपचार वाह्य चिकित्सा में निर्दिष्ट नहीं, जो भी उपचार है स्थूल का ही है। इसीसे वाह्य चिकित्सा विवश है।

उपचार

निम्न सूक्तों में पूर्णतया दिया गया है जो शौनकीय शाखा से सम्बन्धित है तथापि इसी के कां ८।७ में औषधियों के पाप से ही बचाने की प्रार्थना है। "मंत्र ७ व १९" "**दुरितात् पारयामसि**" मंत्र ९ "**तीक्ष्ण शृङ्ग्यः दुरितं व्यृषन्तु**" मंत्र १३ "**सहस्रपर्ण्योमृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः**" कां० ६।१२४ के तीनों मंत्र कां० १ सू० १० के ८ मंत्र।

कां० ६ सू० ९६ के तीनों मंत्र २ "**मुञ्च तुमाशपथ्याइदथो वरुण्यादुत। अथो यमस्य पड्वीशाद्विश्वस्मा द्देवाकिल्विषात्॥**

मुझे दुर्वचन, वाणीजन्यपाप, वरुणदोष से उत्पन्न जल के रोग से जो यमपाशरूप असाध्य रोग हैं, उनसे सभी देवों के विषय में होने वाले पापों से रक्षा करें। कां० ४।१३ मंत्र ५,६,७ हस्त, वाणी, दृष्टि मात्र से ही उपचार का निर्देश किया है यह निश्चय ही विश्वास योग्य है।

कां० ९।८; कां ३।११ कां० २।३३ तथा निम्न काण्डों के रोग व उनमें दिये उपचार गए के अतिरिक्त कां० ६।१२७ मं० २ में वर्णित "चोपद्रु" जिसे सायणाचार्य जो ने ४ अङ्गुल का ढाक तथा अन्य कुछ ने चीड़ कहा है अथवा कां० ८ सू० ७ को भेषज अथवा कां० ८ सू० २ में वर्णित "पूतद्रु" भेषज एकाकी ही कोई भी वर्णित हैं। जिनकी सामर्थ्य १०१ मृत्युओं तथा नैर्ऋति आदि पाशों से ऋषिबल, देवबल, मंत्रबल से पूर्ण समर्थ कही है।

वेदोक्त भैषज्यः–(१) शंख (२) गृहगोधिका (३) लवणम् (४) गोमूत्र (५) दन्तमल (६) स्तुक (७) वाणपर्णी (दाभ)। (८) वीणातन्त्री खण्ड (९) वाद्यखण्ड (१०) शंखखण्ड (११) पृश्निपर्णी (१२) कालीऊन (१३) सूर्यकिरण स्नान व किरण तप्त जलपान (१४) स्वर्ण जल।

मूल पाठः–अथर्व संहिता कां० ६ सू० ८३ "अपचित। अ० वे० कां० ७ सू० ८० "आसुस्रसः" ऋग्वेद ३।८।१ "अञ्जन्ति त्वामध्वरे"। तै० सं० ६।२।३-१ इणुसमस्वुर्वत्त अग्निम् अनीकं सोम शल्यंम्"। अ० सं० ७।८१ "विद्यवैते" तथा अ० सं० ७।७८ "अपचितो लोहिनीनाम्"। तै० सं० २।३-५-२ "यज्जायाभ्योविन्दत्" तै० श्रु० २।३।५।२।

कौशिक सूत्र कं० ४ सूत्र ८ में इस गण्डमाला के पाँच भेद और उपचार–इस गण्डमाला के ५ भेद कहे हैं। (१) काली (२) श्वेत (३) चितकबरी (४) साधारण लाल तथा (५) अधिक लाल। (अ० वे० कां० ६ सू० ८३ ऋ० २)

इसकी जड़ धमनियों में होती है। इनमें फोड़ों वाली; गलने वाली और सड़ने वाली ये तीन भेद हैं। यह प्राणी के गण्डस्थान; वस्ति; स्थानों में भी होती है। इनमें से एक कुछ

लाल, मिश्रित श्वेत; दूसरी अत्यन्त श्वेत; तीसरी कृष्ण वर्ण की कही हैं। इनमें प्रथम दो लोहरी होती हैं। ये वात, पित्त, श्लेष्म दोषों से अनेक वर्ण की हैं। इनमें (१) असूति का (पूयस्राव); चिरपाका अवस्था की। (२) रामायणी—जिसमें से प्राण वायु का संचार होता है-वह नाड़ी, उसका प्रधान मार्ग-बहने का मार्ग, व्रणरूप अर्थात् एक स्थान से इस मार्ग से अन्य स्थानों में भी फैलने वाली। (३) ग्लो मूत्र स्थान से; मूत्र सेक से, गिरने वाली। (४) गलुन्त हाथ पैर आदि को सन्धियों में उत्पन्न। (५) गडूसी विनाशिनी; समस्त व्रणरूप हो जाने वाली होती है।

इनमें अ० कां० ६ सू० ८३ में वर्णित (अपचित) कां० ७ सू० ८० में वर्णित (आसुस्राप्स) हैं। इनमें प्रथम (अपचित) साधारण द्वितीय (दोषजन्य) तृतीय (असाध्य) पाप-शाप, कृत्या दैवी, आसुरी दोषों से उत्पन्न कही गई है।

(१) आसुस्रसः (७।८७-१) लगातार पूय आदि से बहने वाली। (२) व्यभिचारिणीस्त्री के दोष से उत्पन्न (३) गोप्य सन्धियों (४) गोप्य स्थानों में पीव, की भाँति बहने वाली इनमें प्रथम रसहीन होती है, पश्चात् बढ़कर पककर लार की भाँति विविध स्थानों से विविध प्रकार से फूट फूट कर बहने वाली; तथा गले के किसी भी भाग में होने वाली, मुख आदि पर होने वाली; विशेष कर गुप्त स्थानों में फैली रहती है अथवा उरू आदि की सन्धियों; कमर; आंत, पेडूवाली सभी क्षार वस्तुओं के बिना प्रयोग के ही बहती हैं।

अ० वे० कां० ७।८० (१) (कीकसा) अस्थियों में फैलने वाली (२) (तलीद्यम) अस्थियों के समीप मांस को पकड़ कर बैठने वाली या मांस को खाने वाली (३) (ककुदि) दुःस्साध्य राजयक्ष्मा, ग्रीवा आदि की शरीरगत सर्वधातु शोषक (४) (जायान्यं) निरन्तर स्त्री सम्भोग जनित। तैत्तरीय संहिता २।३-५।२। यह अहिंसक के शरीर को सुखाती है शरीरगत; समस्त धातु शोषण करती है। तैत्तरीय श्रुतिः (२।३-५-२) यज्जायाभ्यो विन्दत् तज्जायेन्यस्य"। इसके अतिरिक्त प्रायपूर्व पापजन्य; सर्प, गौ, सती, विप्रादि शापजन्य तथा विषजन्य होती है। अ० वे० कां० ७।७६-२ "गले, कन्धों और गुप्त स्थानों में होने वाली। अ० कां० ७।७६-४-हड्डी, तलवे, पीठ और स्त्री दोषजन्य। कौशिक (४।७)

उपचार

(१) शंख पीसकर श्वान की लार में मिला लेपें। (२) जोक या छिपकली चिपटायें। (३) सैंधें नमक को बुरकें (४) गोमूत्र से धोयें, सेकें (५) दांतों के मल को लेपें। (६) स्तुक दुस्साध्य को वाण की आकृति के वृक्ष (वाणपर्णी) अथवा दाभ की नोक से छेदें, काली ऊन तप्त जल में डालकर सेकें उसे ही लपेटें (७) तांत या शंखपीसकर बांधें। (८) मंत्र गृहसूत्रोक्त भैषज्य करें।

प्रमाणोपचार

इस रोग के ५ भेद हैं कां ६ सू० ८३ ऋ० २ के अनुसार—काली, श्वेत, चितकबरी साधारण लाल और अधिक लाल।

इसकी जड़ धमनियों में होती है—इनमें फोड़ों वाली, गलने वाली, सड़ने वाली इन भेदों की होती हैं। (अ० वे० ६, ८३-३)

(आसुस्रसः) अ० ७. ७६-१—गले में, कन्धों में, गुप्त स्थान में पूर्व पापजन्य. सती, विप्र-वरुण सर्पशापजन्य, विष जन्य होती हैं।

(७-७६-४) हड्डी, तलवे और पीठ की, स्त्री सङ्ग से होती है।

उपचार अ० वे० कौ० सू० (४-७)

।। अपचितः ।। (६-८३) ।। आसुस्रसः ।। (७-८०) इन दो सूक्तों से

(१) शंख को पीसकर, या शुनक की लार को अभिमन्त्रित कर लेप करें।

(२) जलूका (जोख), या गृहगोधिका (छिपकली) को इन्हीं तीन ऋचाओं से अभिमन्त्रित कर खून मोक्ष करने के लिये चिपटा दें।

(३) सैंधा नमक पीसे, अभिमन्त्रित कर गण्डमाला पर बुरकी दें।

ग्लौरितः प्रपतिष्यति सगलुन्तो नशिष्यति।

(४) ६.८३-३ को अर्ध ऋचा से गो मूत्र को अभिमन्त्रित कर गण्ड को सेकें, और उस पर पानी की भाँति मूत्र धारा छोड़ें।

(५) दाँतों के मैल को अभिन्त्रित कर लेप कर दें।

(६) "अपच्चिताम्" ७.७८ की प्रथम दो ऋचाओं से गण्डमाला (अपचित) गले से मूत्राशय पर्यन्त काँख आदि सन्धियों में आँतों में मूत्र व मूत्राशय व गुदा वाली लाल, तथा (कृष्णा माता) लोहित वर्ण से कृष्ण हुई रोगों की जननी दुःसाध्य ये सभी (मुनेर्देवस्य*) माननीय देव अथर्वा ऋषि की सर्व कारण भूत सामर्थ्य के, बल से, वाण की आकृति के वृक्ष, "वाणापर्णी अञ्जन्ति त्वाम् अध्वरेदेवयन्तः" (ऋ० वे० ३.८.१) में वर्णित—की जड़ (दाभ) के वाण से अथवा (तै० सं० ६-२.३.१) असुरपुर भेदन समर्थ रुद्रकेशर से "त इषुं समस्कुर्वत/अग्निम् अनीकं" सोमंशल्यं विष्णुं तेजनम्। तेब्रुवन् क इमाम् असिष्यतीति रुद्र "इत्यब्रुवन्" रुद्रो वै क्रूरः। सो अस्यतु" इति। इस उक्ति से पाप देवता से उत्पन्न गण्डमाला को रुद्र के उपरोक्त शर—रुद्र याग, अभिषेक आदि से प्रथम-अपचित (साधारण) द्वितीय (दोष जन्य) तृतीय (असाध्य) पाप-शाप, कृत्या, दैवी, आसुरी दोषों से उत्पन्न। सभी की चिकित्सा करें उपरोक्त धनुष केशर से गण्डमाला का भेद करे।

(उसकी चिकित्सा गर्म जल में काली ऊन डालकर अभिमन्त्रित कर पुनः जपकर ऊषाकाल में ही रोगी को छींटे दें, उसे धोयें—यह बाँस की नुकीली, या दाभ की नुकीली शर जैसी नोक से बींधे, और काली ऊन के गर्म जल से ही सेक करें। (कौ० ४.८)

"आसुस्रसः" अ० कां० ७.८० (लगातार पूय आदि से स्रवण वाली) व्यभिचारिणी स्त्री के दोष से उत्पन्न गोप्य सन्धियों; गोप्य स्थानों में पीव की भाँति बहने वाली यह प्रथम रसहीन होती है, बाद में बढ़कर-पककर लाव की भाँति विविध स्थानों से विविध प्रकार फूट

* मुनिदेव—अगस्त्य वृक्ष—सम्पादक

फूट बहने वाली तथा गले के किसी भी भाग वाली, मुखादि पर होने वाली विशेष कर गुप्त स्थानों में फैली रहती है, या ऊरू आदि की सन्धियों, कमर, आँत पेढ़ू वाली सभी क्षार वस्तुओं के बिना प्रयोग के भी बहने वाली मन्त्र सामर्थ्य से ही नष्ट होती हैं।

कौशिक सूत्र में गण्डमाला की चिकित्सा

यह प्राणी के गण्ड स्थान, वस्ति स्थान में भी होती है, इनमें से एक कुछ लाल मिश्रित श्वेत, दूसरी अत्यन्त श्वेत; तीसरी कृष्ण वर्ण की होती हैं। पहिली दो लोहरी होती हैं। ये बात पित्त-श्लेष्य दोषों से अनेक वर्णों की हो जाती हैं।

"**असूतिका**" कां ६ सू० ८३ ऋचा ३—(१) असूतिका (पूयस्राकचिर परिपाकावस्था की) (२) रामायणी—(जिसमें प्राण वायु का संचार हो वह नाड़ी उसका प्रधान मार्ग-बहने का मार्ग—व्रणरूप वाली एक स्थान से अन्य स्थानों में फैलने वाली) ग्लौ (मूत्र स्थान से, मूत्र सेक से, गिरने वाली) गलुन्त (हाथ पैर आदि की सन्धियों में उत्पन्न (गडू) की विनाशिनी) समस्त व्रणरूप हो जाने वाली ये सभी गण्डमालायें—मन्त्र, देव, मुनि के प्रभाव से उपरोक्त भाँति से नष्ट होकर शरीर को स्वस्थता प्राप्त होती है।

नोट :—सम्भवतः इन गण्डमालाओं के प्राचीन स्वरूप से अपरिचित आधुनिक जगत (पाश्चात्य) **कैन्सर** के नाम से पुकारता है, वे भी इससे प्रकाश लें। और लोक कल्याण में समर्थ विधि से प्राणियों के धन, प्राण की रक्षा करें। वेद आवाहन करता है।

कौशिक सूत्र कां० ३१।६

दुष्टगण्ड विरिष्टभैषज्य

अस्य कां ६।५३ सूक्तस्य बृहच्छुक्र ऋषिः। १ द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः अग्निः, वायुः, सविता; २ वैश्वानरः; ३ त्वष्टा देवते। त्रिष्टुप् १ जगतीछन्दांसि दुष्टगण्ड विरिष्ट भैषज्ये अभिमन्त्रणे-जपे-होमे विनियोगः।

इससे तेल अभिमन्त्रित कर व्याधि स्थान पर मलें, चुपड़ें। अथवा शनैः शनैः शुष्क गोमय से व्रण को घिसें—जब रुधिर दिखाई दे तब तेल या घी, उपरोक्त अभिमन्त्रित कर मलें-लगायें। इसीसे व्रण को अभिमन्त्रित पवित्र रज, साँप की बामी की रज से करें।

इसीसे प्राण इन्द्रियों को उनके नष्ट, गुण बल तथा शक्ति के साथ आह्वान अनुमन्त्रण करते हैं।

द्यौश्च म इदं पृथिवी चप्रचेतसौशुक्रौ बृहन्दक्षिणया पिपर्तु।
अनुस्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥१॥
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥२॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद्विरिष्टम् ॥३॥

जिस व्रण का मुख ही न दिखाई दे या उलटा अधोमुख का अज्ञात हो, उसको मानुष मूत्र, गोमूत्र अभिमन्त्रित कर सेक दें, उसीका फाया बाँधें। व्रण को अभिमन्त्रित करें। दन्त मल अभिमन्त्रित कर बाँधें-लगायें। कौ० ४।७(३१/११)
अस्य ६।५७ सूक्तस्य। शान्तातिः ऋषिः रुद्रः/देवता/१-२ अनुष्टुप् इपथ्या बृहती छन्दासि मुखहीन अधोमुखी दुष्ट व्रण भैषज्ये अनुमन्त्रणे विनियोगः।

इदमिद्वा उभेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम्। येनेषुमेकंते जनांशतशल्यामपब्रवत् ॥१॥

जालाषेणाभिषिञ्चत जालाषेणोपसिञ्चत। जालाषमुग्रंभेषजं तेन नोमृड जीवसे ॥२॥

शं च नोमयश्च नो मा च नः किंचनाममत्।

क्षमारपो विश्वं नो अस्तुभेषजंसर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३॥

जिस दुष्ट व्रण से खून हो न निकले, जलन पीड़ा हो पत्तों के रस या झाग को अभिमन्त्रित कर व्रण को धोयें बांधें। शुष्क गुच्छों के जो आम्रादि पर फूल आकर फल नहीं आते उसीमें नये कोंपल फूट आते हैं—अथवा पीपल की दाढ़ी उपरोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर बिना रक्त के विषैले व्रण से लेपें।

कौशिक सूक्त कां० ४।७।३१

जलोदर भैषज्य

पापगृहीत जलोदर ब्राह्मण शाप निवारण भैषज्य कर्म में सोमलता को शुष्कगोमय की अग्नि में रखकर धूप दें। दही शहद मिलाकर पिलायें। दूध मट्ठा मिलाकर पिलायें। दही-दूध-शहद मिलाकर पिलायें। सभी को इस सूक्त ६/९६ से अभिमन्त्रित कर लें।

अस्य ६/९६ सूक्तस्य भृग्वङ्गिराः—ऋषिः/वनस्पतिः ३ सोमः देवते अनुष्टुप् ३ त्रिपाद्विरान्नामगायत्री छन्दांसि-अहंसोन्मूल ने शाप पाप जनित अरिष्ट जलोदरादि भैषज्ये विनियोगः।

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।

बृहस्पति प्रसूतास्ता नोमुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३ दथोवरुण्या ऽदुत।

अथोयमस्य पड्वीशाद्विश्वस्माद्देवा किल्विषात् ॥२॥

यच्चक्षुषामनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत्स्व पन्तः।

सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥३॥

सर्व रोग हर योग

शावन्ता, कुनप्विना, वण्डेन, ज्वरेणापामार्गादिरोगेषु, ससर्गेषु सर्व दोषान्मुच्यते। कौ० ४६/४९

अस्य ७/६५ सूक्तस्य शुक्रः/ऋषिः/अपामार्ग वीरुत्/देवता/अनुष्टुप् दुरित विनाशने होमे विनियोगः

काने, गञ्जे, ऐचाताने, कोतनार वाले, दाँत पर दाँत वाले, अङ्गहीन, अधिक अङ्ग—कुनखी आदि-आदि समस्त दूषणों से उत्पन्न विघ्न की शान्ति हेतु अपामार्ग की समिधाओं से होम करें। इसीसे पूजा कर अपामार्ग को पुष्य नक्षत्र में लायें, उसका दूध स्वर्णतापी जल के साथ नित्य सेवन करने से रक्तविकार, विषजन्य दोष, प्लूरसी बुद्धि की मन्दता, स्मरण शक्ति की क्षीणता, कृत्या दोष, अभिचार जनित दोष, यातुधानादि से उत्पन्न दोष निवारण होते हैं।

इसी को जल में क्वाथ करें १/१६ भाग जल शेष रहे तब उसी में पीली सरसों का तेल छोड़ दें, पानी जल जाने पर तेल की ४।४ बूंदें कान में डालें तो वधिरपन, आदि शीर्षण्य रोग श्लेष्या रात्र्यन्धापन, नाक के रोग दूर हुए हैं। अनुभूत।

प्रतीचीनं फलोहि त्वमपामार्ग रुरोहिथ।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१॥
यद्दुष्कृतं यच्छमलं यद्वा चेरिम पापया।
त्वया तद्विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥२॥
श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत्सहासिम।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥३॥

इससे होम करें:—

सर्प, विच्छू, वर्र, गदहा, श्वान, स्यार आदि के काटे रोगी के इसका लेप करें—ज्यों-ज्यों विष से वह काला हो उसे लकड़ी से सूखते ही हटा दें। पुनः लेप करें। सभी विष को दूर करता है। विषैले फोड़ों की जलन भी दूर होती है।

अपस्मार; विस्मय, हृद्रोग, कामलक, रोहिणकादिरोग भैषज्य अस्य १/२२ सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः/सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च देवते अनुष्टुप छन्द उपर्युक्त कामलादि रोग निवारण भैषज्ये अभिमन्त्रणे विनियोगः। (कौ० २६/१६,१७)

अनुसूर्यमुदयतां हृद्योतो हरिमा चते।
गोरोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ॥१॥
परि त्वारोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥२॥
यारोहिणीर्देवत्या३ गावोयाउत रोहिणीः।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वापरि दध्मसि ॥३॥

कौशिक सूत्र कण्डिका ४१ सूत्र ८, ६; १४, १५ तथा कण्डिका ४२ में अथर्वा आङ्गिरस महर्षियों की तपश्चर्या के फलस्वरूप अथर्ववेद की ऋचाओं, सूक्तों के सूक्ष्म तत्वों के अनुभूत द्रव्य उपार्जन मार्ग में आने वाली वे बाधायें, जो घोर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, व्यक्तिगत या सामूहिक प्रयास करने पर भी, लाभ की अपेक्षा हानि की रहे, जिसे भाषा में सोया हुआ भाग्य कहा जाता है, उसके उठाने की विधि का नाम द्रव्योत्थापन है।

१. अर्थ की कामना वाले जब कोई उद्यम—द्रव्य, हाथी-घोड़ा, पशु, रत्न-धन-धान्यादि का व्यापार करें तब शुभ-दिन, तिथि, नक्षत्र, लग्न-गृह आदि शुभ बेला में अथर्ववेद के "अपांसूक्त" १।४;५;६,३३; "क्रमशः" "अम्वयो यन्ति"; "शंभुमयोभूः" हिरण्यवर्णाः; (३।१३) "यदद," (६।१६) पुनन्तुमा (६।२३) संस्रुषीसे मन्त्रों व वर्णों में निर्दिष्ट" मरुद्गण काश्मीर-आज्य आदि से होम करें, काशादि, विधु-वक, वेतस आदि को जलपात्र में डालकर अभिमन्त्रित करें, जल के बीच मुंह नीचे को करके ढाले, उन उपर्युक्त घास, दाभ आदि की टहनियों की पूजा कर अभिमन्त्रित कर जल में बहा दें। अपने शिर पर रक्खी शान्ति-औषधियों की पोटली तथा कल्पित घट के ऊपर (गोलादि) को भी अभिमन्त्रित कर जल में डाल दें। मनुष्य के केश पुरानी जूती को बांस के ऊपर बांध दें, घास आदि से युक्त कच्चे घड़े को अभिमन्त्रित कर जल से छींटे देकर तीन पाद के (रस्सियों के) छींके या तिपाई पर रखकर जल में डाल दें। इन सब अभिवर्षण कर्म में प्राण प्रतिष्ठा, पूजा, अभिमन्त्रित घट के जल से स्नान छींटे आदि करें। इसमें "अर्थ को उठाने के निमित्त संकल्प का विनियोग करें।

कौ. ५।५" (न० क० १७) "आदित्यां श्री तेजो धनायुष्कामस्य" इति आदित्यनाम्नी शान्ति—उपर्युक्त फल प्राप्ति हेतु करें। इसी सूक्त से वास्तु कर्म में "वास्तुभूमि" (१४×१४×१४ घन हाथ) खोदकर पूजा कर जल से पूर्ण करें। यहां छन्दोग्यउपनिषत्वात् सुख साधन भूतविविधान्नाद्युप भोग्य पदार्थ जनकत्वेन च सुख हेतुत्वम्। तथा "स्वात्मनो निरति शयानन्द ब्रह्मत्व साक्षात्कारायेत्यर्थ।"

२. दुकान के रूप में क्रय-विक्रय आदि के लाभान्वित होने के लिए "इन्द्रम् अहं वणिजम्" (३।१५) इस सूक्त से बिक्री या क्रय करने की यात्रा से पूर्व हथियार (वज्र) वस्त्र, तुला, बाट, गज आदि की सुपाड़ी, पुष्प, दूब, घोड़े, गौ, हाथी, रत्न आदि की पूजा प्रतिष्ठा अभिमन्त्रण कर उठायें, और इसके लिए इन्द्र की प्रार्थना व उपस्थान होम करें।

३. अतुल-अभीष्ट धन-धान्य कीर्ति-प्रतिष्ठा पद प्राप्ति के निमित्त "अयं ते योनिः" (३।२०) "आनोभर" (५।७) "धीती वा" (७।१) सूक्तों से अर्थ को उठाते हुए, अर्थोत्थापन के मार्ग में आने वाली प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष बाधाओं को दूर करने के लिए जप करें। तथा होम आदि करें। कौ० ५।५ उपर्युक्त वर्णित अर्थोत्थापन विघ्नशमनार्थ, सभी कर्म तथा होम, जप, के क्रम में "पुनन्तुमा के साथ" "हिमवतः" प्रस्रवन्ति" (६।२४) "वायोः पूतः पवित्रेण" (६।५१) विनियोग करें। यहां "शिवो मे सप्त ऋषीत् उपतिष्ठस्वमामेबाङ् नाभिम् अतिगा" इति तै० सं० (३,२,५,३) सप्त ऋषियों की आराधना करें, स्नान आचमन, प्रोक्षण होम आदि से पापों का प्रतारण कर पवित्र हो, भाग्योदय का अधिकार प्राप्त करें।

४. द्रव्य आदि के नष्ट होने में, चोरी जाने में, द्यूत आदि में हारे जाने में आदि-आदि प्रकार से द्रव्य हानि होने में, उस आये हुए अज्ञात विघ्न शान्ति "द्यौश्चमे" (६।५३) पुनर्मैत्विन्द्रियम् । (७।६६)

नं० १ से नं० ४ तक के समस्त अर्थोत्थापन विघ्न शमन कार्यों में उपर्युक्त सभी कर्मो के माध्यम में "शं च नो मयश्चन:" (६।५७।३) "अनड्वुद्रुचस्त्वं प्रथमम्" (६।५९) "मह्यम् आपा (६।६१); वैश्वानरो रश्मिभि:" (६।६२) का भी विनियोग करें ।

५. प्रवास-परदेश से द्रव्य प्राप्ति के लिए "भद्रादधि" (७।७।९) से होम करें, इसी का निरन्तर जप उपस्थान करें । बिक्री के लिए ले जाने वाले वस्त्रादि को इसी ऋचा (७।९) से पूजे अभिमन्त्रित कर उत्थापन करें और अभोष्ट दशा को ले जावे । इसीसे लाभ की कामना वाले वस्त्र आदि को अभिमन्त्रित कर लें ।

ग्रहयाग में—इसी "भद्रादधि" (७।९) "सवुन्ध्यात्" (४।१·५) "वृहस्पतिर्न:" (७।५३) वृहस्पति की पूजा-प्रार्थना होम करें । खोये हुए या पुरातन छिपे हुए, या गड़े हुए स्थान से अन्यत्र हो जाने वाले, चुराये गये धन-पशु आदि की पुन: प्राप्ति के लिए पुनरागमनार्थ "प्रपथेपथाम्" (७।१०) की चार ऋचाओं से दक्षिण (सीधे) हाथ पैर को धोकर पूजाकर उठाये । इन्हीं उपर्युक्त चार ऋचाओं से इक्कीस ढेरियों में शर्करा अभिमन्त्रित कर चौरास्ते पर रक्खें और फैलायें, चहुं ओर फेंकें । कौ० ७।३ ।

अध्यापन कार्य करने वालों के अर्थार्जन विघ्न शमनार्थ "ऋचं साम" (७।५७) से होम करें । कौ० ५।६ ।

तथा प्रस्थान काल में दक्षिण पैर को प्रथम विषम संख्या में आगे बढ़ायें और सांस को ऊपर की ओर खींचकर "ये ते पन्थान" (७।५८-२) का जप करे । असंख्य विनागिनी-शर्करा व घास इसी ऋचा से अभिमन्त्रित कर इन्द्र का ध्यान कर घर-क्षेत्र आदिकी ओर स्वस्त्ययनार्थ छिड़कें ।

७. किसी भी ज्ञात-अज्ञात, मृत या जीवित प्राणी की अप्राप्य सहसम्पत्ति, जिसे वह प्राप्त करने में विवश हो, या जिस पर प्रेत सर्प रूप से बैठ गया हो, या वह कृपण जो धन अनेकों अनर्थकारी निन्द्यकर्मों से उत्पन्न करता हो परन्तु देवकार्यों, धार्मिक निविदाओं सामाजिक कल्याण कार्यों में या स्वयं के उपभोग में न लाकर केवल मात्र संग्रहकर्ता ही हो उसकी सम्पत्ति के प्राप्ति हेतु—उपर्युक्त अप्राप्य लक्ष्मी, तथा लक्ष्मीप्राप्ति में आने वाली बाधाओं के शमनार्थ "शेरभक-शेरभ" (२।२४) समुद्र में जल सूक्तों से अभिमन्त्रित पूर्व कर्म के साथ पटले पर अग्नि स्थापित करें और उपर्युक्त कृपण के ही घर से (छल से)दूध-घी चावल ला उस पर खीर बनाकर होम करे और प्रसाद को अभिमन्त्रितकर सेवन करे । उसके यहाँ से जौ लेकर कूटे और सत्तू बनाये—लाल बकरी के दही व जल में घी मिलाकर होम करे, प्रसाद को अभिमन्त्रित कर खाये ।

इसी कर्म में इसी सूक्त से तिनकों में गांठ लगायें, और जल के पात्र में क्रमश: प्रत्येक ऋचा से उन्हें खोले— उस जल से शिर को छींटे दें, मुंह धोयें, आचामन स्नान करे । यदि

उपर्युक्त वस्तु न मिलें तो गौ का गोमय ले उसका रस निकालें छूंछे को सुखाकर उसकी अग्नि में ही खार बनावें २, ३ के कर्म करे, तथा रस में दूध-घी मिला अभिमन्त्रित कर पियें।

८. भाग्य के सो जाने पर मृतावस्था युक्त अर्थात् सब कुछ यत्न करने पर भी लाभ की अपेक्षा हानि होने में या अवरणीय आर्थिक दुर्दशा आ जाने में अथवा गड़े हुएधन की प्रेतत्व अवस्था हो जाने में उस पर सर्प रूप प्रेत के बैठ जाने में—घट के जल में पूर्वोक्त सुगन्धित चन्दन, रोली, पुष्प, और सर्वौषधियाँ डालें, और उसीमें उत्थापिनी ऋचा अर्थात् उत्थापन गण से जो अथर्ववेद कौशिकसूत्र की कण्डिका ४१।८ (कं० ८३।२०–२३;८४।१३, ८२,८४) कण्डिकाओं से सम्मत है—के अनुसार अ० वे० का० (३।२०) "अयं ते योने" (५।७) "आनोभर" (७।१) "धीती वाये" के साथ वर्णित विधि में ही (१८।३-८;६) "प्रततिष्ठप्रैहि" ये २; (१८।२-४८) "उदन्वतीद्यौ" से घट में सुगन्धित व शान्ति औषधियां डालें; तत्पश्चात् इन सभी उपर्युक्त ऋचाओं से तथा (१८।१-५ ;११;१८) ऋचाओं से अभिमन्त्रित करें। ऋचा (१८ १-६१) "इत् एत उदारुहन्" (१८।४-४४) "इदं पूर्वमपरं" (१८।३-५५) "अग्निष्टद्विश्वाव्र" से उत्थापन, आवाहन करें। इसके अतरिक्त उपर्युक्त (३।२०) "अयं ते योने" के अर्थात् नं० १ व २ व ३ की सभी क्रिया करें।

इन घटों में कामना भेद से धर्मार्थ यज्ञिय भस्में; धनार्थ मुक्तामणि श्रीकामी कमल पुष्प, कमलगट्ठे, कामार्थी गोरोचरन, यज्ञोपवीत श्रीफल, केशर, जावित्री भी डाली जानी विहित हैं। इस घट को पीले वस्त्र, रेशमी लालबस्त्र से अभिमन्त्रित करने में ढक दें। रोली, रक्त चन्दन से पूजा करें। पुष्प माला धारण करायें।

उत्थापन के उपरान्त, श्रीसूक्त "ॐ हिरण्य वर्णां" से न्यास करे और अन्य १५ ऋचाओं का भी जप तथा उनसे होम करे।

इनका अश्वत्थमूल, विल्वमूल, तुलसी के समीप नित्य २१ पाठ तथा तीनों सन्ध्याओं में उपस्थान का भी विधान है।

ये उपर्युक्त द्रव्योपार्जन, द्रव्यसंग्रह अतुल सम्पदा प्राप्ति के वेदोक्त मार्ग हैं।

अथ उत्थापनगणः। (३।२०-१) (५।७-१) (७।१-१)

रयिसम्बर्द्धनम्। (३।२०-१)

१-१० वसिष्ठः। १-२ अग्निः, ३ अर्यमा, भगः, वृहस्पतिः, देवीः, ४ सोमः, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः ब्रह्मा, वृहस्पतिः, ५ अग्निः, ६ इन्द्रवायु, ७ अर्यमा, वृहस्पतिः, इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती। सविता, वाजी; ८ विश्वाभुवनानि, ९ पञ्चप्रदिशः, १० वायुस्त्वष्टा। अनुष्टुप्, पथ्यापंक्तिः ६। ८ विराड् जगती।

अयं ते योनिर्ऋत्वियोयतो जातोअरोचथाः।
तंजानन्नग्न अरोहाधानोबर्धया रयिम्॥१

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ्नः सुमनाभव ।
प्र णोयच्छ विशांपतेधनदा असिनस्त्वम् ॥२
प्र णोयच्छत्वर्यमा प्रभगः प्रबृहस्पतिः ।
प्र देवीःप्रोत सूनृता रयिंदेवी दधातुमे ॥३
सोमं राजानमवसेऽग्निंगीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४
त्वं नो अग्नेः अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञंच वर्धय ।
त्वं नो देव दातवेरयिं दानाय चोदय ॥५
इन्द्रवायू उभाविह सहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्चनोभुवत् ॥६
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा चविश्वाभुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं चं नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८
दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथावलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९
गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आरुन्धांसर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०

अरातिनाशनम् । (५।७-१)

१-१० अथर्वा । वहुदैवत्यम्, १-३, ६-१० अरातयः, ४-५ सरस्वती । अनुष्टुप्, १ विराड्-गर्भा प्रस्तार पङ्क्तिः, ४ पथ्याबृहती, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

आनोभर मा परिष्ठा अराते मा नोरक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमोवीर्त्सीया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥१
यमराते पुरोधत्सेपुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मोमा वनिव्यथयीर्मम ॥२

प्रणो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं चकल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥३
सरस्वतीमनुमतिंभगं यन्तोहवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषंदेवानां देवहूतिषु ॥४॥
यं याचाम्यहंवाचासरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्यविन्दतुदत्तासोमेन बभ्रुणा ॥५॥
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभविन्द्राग्नीआ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रतिहर्यता ॥६॥
परोऽपे ह्यसमृध्दे वितेहेतिंनयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥७॥
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नयासचत जनम् ।
अरातेचित्तंवीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥८॥
या महतीमहोन्मोनाविश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यैनिर्ऋत्या अकरं नमः ॥९॥
हिरण्यवर्णासुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥१०॥

आत्मा । (कां ७।१)

१-२ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामा) । आत्मा त्रिष्टुप्, २ विराड्जगती ।

धीतिवाये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वायेऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥१॥
स वेदपुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् सभुवत्पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वर्१ः सइदं विश्वमभवत् स आभवत् ॥२॥

अपांभेषजम् । (१।४) देखें

अर्थोत्थापनगणः

पावमानम् । (६।६२) (पवित्रगण के साथ)

मेधाजननम् । (१।१) वर्चस्गण के साथ । (१३।१) वर्चस्गण के साथः ।

आदित्याः। (७। सू० ७ (८))

१ अथर्वा: । (ब्रह्मवर्चसकामः) अदितिः । आर्षी जगती ।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमवं देवानां बृहतामनर्मणाम् ।

तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान नमसा परोअस्ति कश्चन ॥१॥

अध्यापक विघ्नशमनम् । (अ० कां ७ । सू० ५४) (५६;५७-१)

(१-२) १ ब्रह्मा, २ भृगुः । १ ऋक्सामनी, २ इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते ।

एते सदसि राजतोयज्ञं देवेषु यच्छतः ॥१॥

ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम् ।

एषमातस्मान्माहिंसीद् वेदपृष्टः शचीपते ॥२॥

अमृतप्रदाता । (६।१)

१-३ अथर्वा । सविता । उष्णिक्, १ त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती;
२-३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् ।

दोषोगाय बृहद्गायद्युमद्धेहि । आथर्वणस्तुहि देवंसवितारम् ॥१॥

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौसूनुः । सत्यस्ययुवानमद्रोघवाचं सशेवम् ॥२॥

स घानो देवः सविता साविषदमृतानिभूरि । उभेसुष्टुती सुगातवे ॥३॥

सलिलगणाः (अर्थोत्थापनगणमध्ये) इति अर्थोत्थापनगणः (१।४;५) शान्ति जल विधान के साथ हैं । (६।३३), (६।१९) पवित्रगण में,

आपः । (३।१३)

१-७ भृगुः । वरुणः, सिन्धुः, आपः । २-३ इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ निचृत, ५ विराड् जगती; ६ निचृदनुष्टुप् । अर्थोत्थापने, अनावृष्टि निवारणे, जलाभिमन्त्रणे, सर्वार्थसिद्धये जपे होमे च विनियोगः ।

यददः संप्रयतीरहावनदताहते ।

तस्मादानद्यो३ नामस्थ ता वोनामानिसिन्धवः ॥१॥

यत् प्रेषितावरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।

तदाप्नोदिन्द्रोवोयतीस्तस्मादापोअनुष्ठन् ॥२॥

अपकामंस्यन्दमाना अवीवरतवो हिकंम् ।
इन्द्रोवः शक्तिभिर्देवीस्तस्मादवानामंवोहितम् ॥३॥
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत्स्यन्दमानायथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४॥
आपो भद्राधृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप‍इत्ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगमआमाप्राणेन सहवर्चसा गमेत् ॥५॥
आदित् पश्याम्युतवाशृणोम्यामाघोषोगच्छति वाङ् मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्यतर्हि हिरण्यवर्णा अतृपंयदा वः ॥६॥
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरी ।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामिवः ॥७॥

विश्वस्रष्टा । (६।६१) मंत्र परिशिष्ट में देखें मह्यां आपः

शत्रुनाशनम् । (२।२४)

ब्रह्मा । आयुष्यम् । पंक्तिः- १-२ पुर उष्णिक्, ३-४ पुरोदेवत्यापंक्तिः । (१-४ विराट्) ५८ पञ्च पदा पथ्यापंक्तिः । ५ भुरिक्, ६-७ निचृत, ५ चतुष्पदावृहती, ७-८ भुरिक् ।

शेरभक् शेरभपुनर्वो यन्तुयातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्यस्थ तमत्तयो वः प्राहैत् तमत्तस्वामांसान्यत ॥१॥
शेवृधकः शेवृधपुनर्वोयन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्यस्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वामा सान्यत्त ॥२॥
म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तुयातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्यस्थ तमत्त यो वः प्राहैत् सनत्तस्वा मांसान्यत्त ॥३॥
सर्पानुपसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्यस्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥
जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥

उप ब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥
अर्जुनिपुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७॥
मरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८॥

अर्थोत्थापन गणः ।

"विश्वस्रष्टा" कां ६ सूक्त ६१

अथर्वा ऋषिः । रुद्रः देवता । त्रिष्टुप्, २-३ भुरिक् छन्दांसि अर्थोत्थापने, जपे उपस्थाने, होमे विनियोगः ।

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥१॥
अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदाम्यहं परि वाचं विशश्च ॥२॥
अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदामि यो अग्निषोमावजुषे सखाया ॥३॥

इति द्रव्योपार्जनविघ्ननिवारणम् ।

दुःखनिवारण; संकट मोचन; विजय प्राप्ति

ग्रन्थ में "अथर्ववेदीयशरीर" में शरीर पांच प्रकार के दिये गये हैं। वहीं चार प्रकार की भेषज का भी उल्लेख है। निम्न दुःख; संकट प्राणी के सूक्ष्म प्राण तथा वासना देह से सम्बन्धित होने से मानवी चिकित्सा से नितान्त परे का ही विषय है जो निश्चय ही आथर्वणी आङ्गिरसी भेषजों के क्षेत्र में आता है। इसके अतिरिक्त इन दुःख संकटों के निवारण का चारा हो ही क्या सकता है।

संक्षिप्त दिग्दर्शन

अथर्ववेद कां० १६ सूक्त १ ऋचा १४ "निर्दुर्मण्य" में वर्णित व्याधि आधि का विस्पष्टीकरण इस प्रकार समझें।

अपमृत्यु: आकस्मिक दुर्घटना; बाल या युवाओं की मृत्युयें; विविध दुर्व्यसन कारावास अथवा परतन्त्रता; अधःपतन; देवालियापन; सभी प्रकार की विक्षप्ततायें दुर्दैवापतित अचिन्त्य, अकल्प्य विविध भयङ्कर व्यथायें, पुत्रादिधननाश प्रभृति बहुभांति कष्टप्रद व्याधियां स्वयं के पुरातन पाप या आनुवंशिक पाप, शाप, अभिचार अथवा घातक तन्त्र, मन्त्र, यन्त्रादि के प्रयोगों या स्वयं के याज्ञिक कर्मों में की गई ज्ञात-अज्ञात प्रमाद आदि से उत्पन्नाधि व्याधियाँ हैं। जिनका वैद्य डाक्टरों से लेशमात्र सम्बन्ध नहीं होता।

उपर्युक्त कां० १६ सू० १।३–४।। निर्दाहः तनूदूषिः मना–हा आत्म-दूषिः इदं तं अतिसृजामि।

मन, शरीर की जलन, शारीरिक मानसिक तथा आत्मा के पतन के सभी (प्रकार) के भाव। ये वैयक्तिक क्लेशों की जड़ हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अ० २ श्लोक ६२; ६३ में वर्णित विषयों के चिन्तन से आसक्ति; आसक्ति से कामना; कामना से क्रोध; क्रोध से मूढ़ता; मूढ़ता से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से सर्वनाश होता है।

इनका निराकरण :—अ० वे० "**शमः; तनूशुद्धिः; मनः शुद्धिः तथा आत्मशुद्धिः।** ये चार दोषों के निराकरण के चार साधन हैं, ये ही आध्यात्मिकोन्नति के भी हैं। (भ० गी० २।६४; ६५ देखें। इन आध्यात्मिक : आधिभौतिक तथा आधिदैविक संकटों के निवारण के लिये भी उपरोक्त (भ० गी० २।६४; ६५ के साधन ही हैं। इन्हीं दुःखों संकटों को दूर कर वाह्य तथा आन्तरिक शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा सभी प्रकार का पतन दासता, संकटों पर विजय प्राप्ति के लिये निम्न विधि जो शौनकीय शाखा से सम्बद्ध है वर्णित है।

अथर्ववेदीय किसी भी शान्ति में; किन्हीं भी शान्ति सूक्तों के साथ—सर्व प्रथम अ० वे० कां० १६ सूक्त १ की ऋचा "अतिस्टष्टो" १ से १३वीं पर्यन्त "शिवानग्नीनप्सुषदो" से एक कांस्य पात्र में जल भरें; उसका जल शान्ति कार्यों में उत्तर तथा अभिचार कर्मों में दक्षिण का ही लें जैसा पूर्व वर्णित है। उस जल को इन १३ मन्त्रों से छींटे, कुशा, अपामार्ग की कुची से दें। पुनः इन्हीं १३ ऋचाओं से सब ओर इसी जल को छिड़कें। जो भी जल इस कांस्य पात्र में कम हुआ है, उसे पूरा भरकर लें। उस जल को उपर्युक्त जल से छींटे देकर जल के मल को दूर करें। इस अभिमन्त्रित निर्मल जल से स्वयं कर्त्ता-यजमानादि आचमन करें, दोषी को छींटे (झाड़ा) दें, शिर में बालों को छींटे दें शिर धोये, स्नानादि कर शारीरिक मानसिक वौद्धिक मल दूर करें।

तदनन्तर उपर्युक्त वाह्य आभ्यन्तर शत्रु "मरणं व्यसनं" आदि सभी शत्रुओं को दमन कर; विजय के लिये "अभिचार नामक" कर्म विशेष करें।

अभिचार कर्म

कौशिक सूत्र ६।३-४ के अनुसार शान्ति औषधि तथा शान्तिय वृक्षों की टहनियों से युक्त; अभिमन्त्रित तथा उपर्युक्त १३ ऋचाओं से निर्मल जल से उपर्युक्त कुशा तथा अपा-

मार्ग की कूची (मुष्ठि) से अ० वे० कां० १६ (२) ऋचा (१—६) "निर्दु रमंण्य" से आत्मा को अभिमन्त्रित करे। कर्म के अन्त में अवभृथस्नान भी करे।

उपनयन कर्म में रोली, चन्दन, सुगन्धित, पावन अनुलेप को इन्हीं से अभिमन्त्रित कर अनुलोम में शरीर का अनुलेप करें। तदनन्तर इन्हीं ६ ऋचाओं से आत्मा को अवसेचन कर अभिमन्त्रित करें। इन्हीं ६ से चक्षु आदि ५ कर्मेन्द्रिय तथा ५ ज्ञानेन्द्रिय मन: अन्तःकरण, बुद्धि; वाणी, दांत, आदि सभी की विकलता के शमनार्थ सर्वोषधियां अभिमन्त्रित शरीर में अनुलोम में लेप करें तो विकलताशमन होकर इन्द्रियां दृढ़ तथा पुष्ट होती हैं।

दीर्घायु तथा नीरोगता प्रचुर धन-धान्य अभ्युदय के लिये अ० वे० कां० १३ सू० ३-४ "मूर्धाऽहं रयीणाम्" ये ६ ऋचा तथा कां० १७ सू० १ "विषासहिम्" से सूर्योपस्थान करे। यहां तथा कां० १६ सू०६ (३-४) "अगन्मस्व" तथा "वस्योभूयाय" इन दो तथा "विषासहिम्" १७।१ उपर्युक्त विधि से समस्त तन्त्रों में सूर्योपस्थान करे। कौ० ६।३ कामत है।

अभिचार विधान

सर्व प्रथम इस अभिचार में इसी कां १६ सू ५ "अजैष्मा" से प्रारम्भ कां १६ सू० ६ की ३/३ "अगन्मस्व" व (४) "वस्योभूयाय" को छोड़कर शेष चारों ही पर्याय सूक्तों से भङ्ग पाश कांसपाश, मुञ्जपाश; दर्भपाशो तथा स्वयं टूटकरगिरी हुई या ओलों से टूटकर गिरी हुई पीपल, करीर, खैर (कत्था) ऐरण्ड की लकड़ियों के बनेशर तथा मुञ्चशर, कांसशरों को अभिमन्त्रित करें। इन्हीं ४ पर्यायसूक्तों को पढ़ते हुए स्वयं कर्त्ता या यजमानादि यदि कोई अन्य हो या दोषी (रोगी) हो तो उसके पैर आदि अंगों को उपर्युक्त अभिमन्त्रित पाशों से पृथक २ बांधें और पृथक् २ ही इन ४ उपर्युक्त अवसानों को पढ़ें, जपे पुन: इन्हीं ४ अवसानों को पढ़कर (जपकर) उसी बन्धनक्रम से खोलते जावें। इन खुले हुए पाशों को पुन: अभिमंत्रित कर गाड़ दें। इन्हीं ४ अवसानों को जपते हुए उपर्युक्त अभिमन्त्रितशरों को गर्म कर इन्हीं से ताड़ित करें, पाशों में गर्म ही से छेद करें तब गाड़ें। इन्ही उपर्युक्त ४ अवसानों से साठीचावल रंगकर या लालचावल का भात बना दूध कच्चा मिलाकर सिन्दूर (प्रियङ्गु रुई-ईंगुर) डालकर अभिमन्त्रित कर शत्रु के प्रति चौरास्ता पर बलि (अभिचारार्थ मिट्टी के पात्र में रखे तब भेजें। इन्हीं ४ अवसानों से चौरास्त (चतुष्पाथ) से लीगई मिट्टी से वृषभ की प्रतिकृति बना प्राण प्रतिष्ठा पूजा करें इन्ही "अजैष्माद्यासना" आदि ४ से अभिमन्त्रित करें और इन्हीं ४ अवसानों को जपते हुए इस वृषम प्रतिकृति को शत्रु के घरों की ओर छोड़ें यह (कल्पना करें)। इन्हीं उपर्युक्त ४ अवसानों "अजैष्मा" १६।५ से ६ पर्यन्त को जपते हुए अनार की लेखनी से तेल (कटु) सिन्दूर की स्याही से (१६।६–३।२) में वर्णित इन्द्रियों के नामों को (पात्रों पाशों को गड्ढों में जहां गाड़ें) लिखें—

(१) (स्वः अगन्म) (२) (स्व: अगन्म) (३) (सूर्यस्य ज्योतिषा सं अगन्म:) (४) (वस्य: भूयाय) (५) (वसुमान भूयासं) (६) वसुमान्यज्ञ:) (७) (वसु वंशिषीय) (८) (मयिवसुधेहि) ये नाम लिखें। इन्हीं पर इन्द्रियों के नाम लिखें, नाक, कान, नेत्रादि सभी के नाम लिख खूटों से बाँधे इन अवसानों के जप (पाठ) के साथ उन खूटों आदि पर १२ रात्रि पर्यन्त उपर्युक्त कांस्यपात्र

का (कां १६।१) "अतिसृष्टों" की १३ ऋचाओं का निर्मल उद्वज्र का जल उपर्युक्त कुशमुष्ठि से छोड़ें। तदनन्तर अवभृथ स्नान करें।

स्नानान्त (१६।९) के २ व ३ दो अवसान तथा कां० १७।१ विषासहिम पूरे सूक्त से सूर्योपस्थान समस्त तन्त्रों में करें।

परन्तु उपस्थान को छोड़कर अन्य सभी कर्मों (तन्त्रों) में कां १६।९ की २ ऋचाओं अर्थात् २ व ३ "अगन्मस्वः" से प्रारम्भ २ को छोड़कर अन्य चार अवसानों की ऋचाओं से अन्य कर्म करें।

इस प्रकार उपर्युक्त सूक्ष्मादि शरीरों के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक अनुतापों, दुःखों, सङ्कटों का निवारण होता है तथा उपर्युक्त वाह्य; आभ्यन्तर शत्रुओं पर विजय होकर स्वस्थ शरीर; इन्द्रिय मन, अन्तःकरण से पूत आत्मा उपर्युक्त योग, यज्ञ कर्मों से अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में समर्थ होता है।

अस्य १६ षोड़शः काण्डस्य १ सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः प्रजापतिः देवता। १-३ द्विपदा-साम्नीबृहती २; १० याजुषी त्रिष्टुप् ४ आसुरी गायत्री ५,८ साम्नीपंक्ति (५ द्विपदा) ६ साम्नी अनुष्टुप् ७ निचृत् विराट् गायत्री ९ आसुरी पंक्तिः ११ साम्नी उष्णिक् १२:१३ आर्षी अनुष्टुप् छन्दांसि आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक दुख निवारणे, समस्तसंकट निवारणे वाह्याभ्यन्तरशत्रु दमने, शत्रु वलक्षये, अस्म दीय बल सम्बर्द्धने, विजये, सतत अभ्युदये, अभिचार कर्मणि, मार्जने, जल अनुमन्त्रणे जलमलापाकरणे अवसेचने, अवमार्जने, स्नाने, पाशादि अनुमन्त्रणे पाशादि (बन्धने मोचने च) शरादि अभिमन्त्रणे उपतापने, ताड़ने, वृषभादि अनुमन्त्रणे, अवसृजने अवभृथस्नाने, सूर्योपस्थानेप्रभृति के जपे उपस्थाने पाठे, यज्ञे च विनियोग। अन्य ८ सूक्तों के ऋषि, देवता छन्दों के उपरान्त यही विनियोग समझें और करें। (कौ० ६।१)

कां १६ सू० १

अतिसृष्टो अपां वृषभो ऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१॥

रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन् ॥२॥

म्रोको मनोहाखनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३॥

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४॥

तेन तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६॥

यो३ऽप्स्व१ग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥७॥

यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद्वो घोरं तदेतत् ॥८॥

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभिषिञ्चेत् ॥९॥

अरिप्रा आपो अपरिप्रमस्मत् ॥१०॥

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥११॥

शिवेनमा चक्षुषा पश्यतापः शिवयातन्वोपस्पृशत त्वचं मे ॥१२॥

शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आधत्त देवीः ॥१३॥

इनसे कांस्यपात्र में जल भरकर उपर्युक्त शान्ति कार्य करें।

कां १६ सू० २

अथर्वा ऋषि (वाक् देवता) १ आसुरी अनुष्टुप् २ आसुरी उष्णिक् ३ साम्नी उष्णिक् ४ त्रिपदा साम्नी वृहती ५ आर्ची अनुष्टुप् ६ निचृत्विराड गायत्री।

इनसे आत्मा का अनुमन्त्रण तथा अवभृथ स्नानादि (उपर्युक्त) कर्म करें।

निर्दुरर्मण्यऽऊर्जा मधुमती वाक् ॥१॥

मधुमतीस्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥२॥

उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥३॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रंश्लोकंश्रूयासम् ॥४॥

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च माहासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तुदैवाय प्रस्तराय ॥६॥

इन ६ से इन्द्रियों की विकलता निवारणार्थ अनुलेप करें उससे वे हृष्ट पुष्ट होती हैं उपनयन में भी अनुलोम, अनुलेप करें।

कां १६ सू० ३

ब्रह्माऋषि। आदित्यः देवता। १ आसुरी गायत्री २.३ आर्ची अनुष्टुप् ४ प्राजापत्य त्रिष्टुप् ५ साम्नी उष्णिक् ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्। दीर्घायुष्ये; नैरुज्यार्थे; प्रचुरधनधान्य सतत अभ्युदयार्थे सूर्योपस्थाने विनियोगः

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥१॥

रुजश्चमा वेनश्च माहासिष्टांमूर्धाचमा विधर्मा चमा हासिष्टाम् ॥२॥

उर्वश्चमा चमसश्चमा हासिष्टांधर्ता च मा धरुणश्चमा हासिष्टाम् ॥३॥

विमोकश्चमार्द्रपविश्चमा हासिष्टामार्द्रदानुश्चमामातरिश्वा चमा हासिष्टाम् ॥४॥

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥५॥

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूति समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥६॥

उपर्युक्त विनियोग के साथ कां १७।१ पूरासूक्त तथा कां १६।९ की ऋचा २।३ "आगन्मस्व" वस्योभूयाय भी उपस्थान में विहित हैं। ये सभी तन्त्रों समस्त शान्ति विधियों के लिये निर्दिष्ट हैं।

कां १६।४

ब्रह्माऋषिः आदित्यः देवता। १-३ साम्नी अनुष्टुप् २ साम्नी उष्णिक् ४ त्रिपदा अनुष्टुप् ५ आसुरी गायत्री ६ आर्ची उष्णिक् ७ त्रिपदा विराड् गर्भानुष्टुप्। छन्दासि आधिदैविक; आधिभौतिक; आध्यात्मिक क्लेश, विविध संकट एवं कामक्रोध, लोभ-मोह मद, मत्सर, ईर्षा, राग, द्वेषादि आन्तरिक एवं वाह्यविघ्न शत्रु निवारणे उपस्थाने विनियोग।

अभ्युदये सूर्योपस्थाने विनियोगः

नाभिरह रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥१॥

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥२॥

मा मां प्राणोहासीन्मो अपानोऽवहाय परागात् ॥३॥

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद्यमो

मनुष्येऽभ्यः सरस्वतीपार्थिवेभ्यः ॥४॥

प्राणापानौ मामा हासिष्टं मा जने प्रमेषि ॥५॥

स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्चसर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥६॥

शक्वरीस्थपशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौमे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

इन से उपर्युक्त १६।३ तथा १६।१-२ के लिये उपस्थान करें।

कां १६।५

यमः ऋषिः दुःष्वप्ननाशनम देवता। प्र० १-६ विराड् गायत्री प्र० ५ भुरिक् ६ प्र० स्वराड् १ द्वि० ६ प्राजापत्यगायत्री १ तृतीय द्विपदा साम्नी बृहती। छन्दासि मृत्युसूचक, भय प्राणान्त क्लेशजनक दुःष्वप्न, निवारणे उपस्थाने विनियोग।

उपर्युक्त जल से शरीर, समस्त इन्द्रियों को अवमार्जित (छीटें देकर) कर उपस्थान करें।

विद्मते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽऽसियमस्य करणः ॥१॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि ॥३॥
विद्मते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसिमृत्युरसितं त्वा० ॥४॥
विद्मते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तको० । तं त्वा० ॥५॥
विद्मते स्वप्न जनित्रं निभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तको० । तं त्वा० ॥६॥
विद्मते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तको० । तं त्वा० ॥७॥
विद्मते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तको० । तं त्वा० ॥८॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥९॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि ॥१०॥

कां १६।६

यमः ऋषिः । दुष्वप्ननाशनं, उषा देवते । १-४ प्राजापत्य अनुष्टुप् ५ साम्नोपंक्ति, ६ निचृत आर्ची बृहती, ७ द्विपदा साम्नी बृहती, ८ आसुरी जगती, ९ आसुरी बृहती, १० आर्ची उष्णिक्, ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री वा आर्ची अनुष्टुप् छन्दांसि-मृत्यु, आनुसङ्गिक दुर्घटना, प्राणान्तभय, दुःख-संकट निवारणे आधिदैविक; आधिभौतिक; आध्यात्मिक, अशुद्दर्शनोत्पन्न, अपशकुन जनित दुःख-क्लेश निवारणे दीर्घायुष्ये नैरूज्ये, अभ्युदये विजयार्थ-उपस्थाने, अभिचारकर्मणि च विनियोगः

इन ४ अवसानों से पूर्वोल्लिखित विधि से कर्म करें ।

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमा नागसो वयम् ॥१॥
उषो यस्माद्दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥२॥
द्विषते तत्परा वह शपते तत्परा वह ॥३॥
यं द्विष्मो यच्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद्गमयामः ॥४॥

उषा देवी वाचा सं विदाना वाग्देव्यु१ षसा सं विदाना ॥५॥
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥६॥
ते ३ ऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान्दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७॥
कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥८॥
जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्ने दुष्वप्न्यम् ॥९॥
अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०॥
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद्विथुरो न साधुः ॥११॥

कां १६।७

यम ऋषिः। दुःष्वप्ननाशनं उषा देवते। १ पंक्तिः, २ साम्नी अनुष्टुप्, ३ आसुरी उष्णिक्, ४ प्राजापत्या गायत्री, ५ आर्ची उष्णिक्, ६,९,११ साम्नी बृहती, ७ याजुषी गायत्री ८ प्राजापत्य बृहती, १० साम्नी गायत्री, १२ भुरिक प्राजापत्य अनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् छन्दांसि उपर्युक्त कर्मणि उपस्थाने (अभिचारि के) विनियोग :

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥१॥
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥२॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥३॥
एवानेवाव सा गरत् ॥४॥
योऽ३ स्मान्द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५॥
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद्भजाम ॥६॥
सुयामंश्चाक्षुष ॥७॥
इदमहमामुष्यायणे३ ऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥८॥
यददो अदो अभ्यगच्छन्यद्दोषा यत्पूर्वां रात्रिम् ॥९॥
यज्जाग्रद्यत्सुप्तो यद्दिवा यन्नक्तम् ॥१०॥
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥११॥
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२॥
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु ॥१३॥

१-२७ यमः ऋषिः । दुष्वप्ननाशनम् देवता । प्र० १-२७ एक प० यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप् । द्वि० १।२७ त्रिपदा० निचृद्गायत्रीः; तृ० १-२७ प्राजा० गायत्री; च० १-२७ त्रिप० प्राजा० त्रिष्टुप्; तृ० २-४,६,१७,१६,२४, आसुरी जगती; तृ० ५-७-८ १०,११,१३; १८ आसुरी त्रिष्टुप्; तृ० ६, १२-१४-१६-२०-२३-२७ आसुरी पंक्तिः; तृ० २५-२६ आसुरी बृहती छन्दांसि उपर्युक्त दुःख निवारणे संकट मोचन, विजयार्थं उपस्थापने, अवमार्जने, अवभृथस्नाने अभिचारिके च विनियोग :

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वऽरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४।१
जितम्०।०। स निर्ऋत्याः पाशान्मामोचि ।० ॥५।२
जितम्०।०। सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ॥६।३
जितम्०।०। स निर्भूत्याः पाशान्मामोचि ।० ॥७।४
जितम्०।०। स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ॥८।५
जितम्०।०। स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ।० ॥९।६
जितम्०।०। स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ।० ॥१०।७
जितम्०।०। स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ।० ॥११।८
जितम्०।०। स ऋषीणां पाशान्मा मोचि ।० ॥१२।९
जितम्०।०। स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि ।० ॥१३।१०
जितम्०।०। सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि ।० ॥१४।११
जितम्०।०। स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि ।० ॥१५।१२
जितम्०।०। सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि ।० ॥१६।१३
जितम्०।०। स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि ।० ॥१७।१४
जितम्०।०। स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि ।० ॥१८।१५

जितम्०।०। स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि ।० ॥१९।१६

जितम्०।०। स ऋतूनां पाशान्मा मोचि ।० ॥२०।१७

जितम्०।०। स आर्तवानां पाशान्मा मोचि ।० ॥२१।१८

जितम्९।०। स मासानां पाशान्मा मोचि ।० ॥२२।१९

जितम्०।०। सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।० ॥२३।२०

जितम्०।०। सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ।० ॥२४।२१

जितम्०।०। सोऽऽह्नोः संयतोः पाशान्मा ।० ॥२५।२२

जितम्०।०। स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ।० ॥२६।२३

जितम्०।०। स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।० ॥२७।२४

जितम्०।०। स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।० ॥२८।२५

जितम्०।०। स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।० ॥२९।२६

जितमस्मा कमुद्भिन्न मस्मा कमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वऽरस्माकं
यज्ञो३ स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मृत्योः पड्वीं शात्पा शान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्ट यामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३०।३३।२७

मंत्र ५-२ से २९।२६ पर्यन्त में सभी में १-२ तथा ४ पूर्ववत् ही उच्चारण करें। केवल तीसरे में ही उपर्युक्त वर्णित ऋचा का प्रयोग किया जायगा। क्रिया पूर्ववत् होगी।

कां १६।९

यमः ऋषिः। प्रजापतिः, मन्त्रोक्ता० ३,४ सूर्यः देवते। १ आर्ची अनुष्टुप्, २ आर्ची उष्णिक्, ३ साम्नी पंक्तिः; ४ परोष्णिक छन्दांसि प्रथमा तथा द्वितीयायाः ऋचायाः पूर्वोक्त अभिचारिके कर्मणि तथा च तृतीय चतुर्थ—

अगन्मस्व१ः वस्योभूयाय ॥

इत्येतयो सूर्योपस्थाने अवभृथस्नाने च विनियोगः।

जितमस्माकमुद्भिन्नम स्माकमभ्यऽष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१॥

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा माधात्सुकृतस्य लोके ॥२॥

अगन्म स्वः स्वऽरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥३॥

वस्योभूयाय वसुमान्यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान्भूयासं वसुमयि धेहि ॥४॥

तदनन्तर "विषासहिं" (१७।१) तथा उदस्यकेतवः (१३।२) एवं "मूर्धाऽहं" (१६।३-४) इन सभी तन्त्रों से सभी शान्ति कर्मों में उपस्थान करने से समस्त दुःख, क्लेश, संकट निवृत्ति होकर प्रत्येक परिस्थिति में पूर्णशान्ति, समृद्धि, अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

मणिबन्धन

कर्मज व्याधियों–तथा समस्त आधियों–ईतिभीति, अङ्कदोष जनितारिष्टों से संरक्षण में समर्थ, भैषज्यकर्म, "जोपूर्वोल्लिखित है" के सन्दर्भ में पृथक् २ तत्तद्गणकर्मों के अन्तर्गत कर्मों में मणि बन्धन के उल्लेख आ चुके हैं तथापि मणिधारण के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है।

अथर्व वेद शौनकीय शाखा सम्मत समस्त मणियां केवल रत्न की ही नहीं होती– अपितु वनस्पति से निर्मित; वनस्पति के रसों के पुट से सम्पुटित-भेषज का महत्वपूर्ण सशास्त्र विषय है, अन्धविश्वास नहीं।

अथर्ववेदीय कतिपय मणियाँ

१ जङ्गिड़, २ शंखमणि, ३ प्रतिसरमणि, ४ अञ्जनमणि, ५ मणिबन्धय, ६ हरिणमणि, ७ दर्भमणि, ८ औदुम्बरमणि, ९ शतवरोमणि, १० अस्तृतमणि, ११ त्रिसन्ध्यामणि (दुपहरिया) पिशाच नाशन में १२ वरणमणि-विल्व, १३ स्राक्त-तिलकमणि, १४ अभीवर्तमणि, १५ यवमणि, १६ अर्कमणि, १७ खदिरमणि, १८ फालमणि, १९ लोममणि, २० पाठामूल, २१ आयमगन (पलाश), २२ तलाश-(पलाश)।

१. तलाश (पलाश) मणि

अ० कां ६।१५-३ "उत्तमो अस्योषधीनाम्" कौ० अ० ३।१९ सू २६ दारिलमत "तलाशा बल्ली" (पलाश) अम्बुके (आम्बु) केचित् अन्य-तलाशा सोमस्यानयो विकल्प। (ताड़वृक्ष)

अथर्व संहिता के भाष्यकार–सायणाचार्य के मत से बृहत पलाश है पुष्टिकामी बृहत पलाशमणि को पूर्वोक्त विधि से उपरोक्त सूक्त से अभिमन्त्रित कर बाधें।

वृक्षों से उत्पन्न द्रव्य–गौंद (लाक्षा लाख) को मणितुल्य धारण करें। इसी का सेवन करें। गर्भधारणकाल में पुंसवन में पलाश रसग्राह्य है वन्ध्या आदि दोष निवारण में (वृहत्पलाश) जो नैपाल में मिलता है इसके पत्ते का प्रयोग कहा है। ब्रह्मचारी को पलाश दण्ड धारण का उल्लेख्य होने से-पलाश का सर्वस्व कल्याण प्रद हैं।

१-३ उद्दालकः। वनस्पतिः। अनुष्टुप्। तलाशमणि धारणे विनियोगः

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः।

उपस्तिरस्तु सोऽ३स्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥२॥
यथासोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः ।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥३॥

२. यवमणि (इन्द्र जौ)

कां ६ सू० १४२ ऋ १ "उच्छ्रयस्व" कौ० अ० ३ कं० १६ सूत्र २७ में यवमणि (काण्डमणि) अर्थात् यववल्ली के टुकड़े के छिद्र में लोममणि अर्थात् इसी के निर्मित धागे को पुरोकर पूर्ववत अभिमन्त्रित कर धारण करें। इसको घी में मिला बोते समय कुड़ी में दवायें तो अन्न का फुटाव तथा उत्पादन बढ़े; राशी में रक्खे तो अक्षय अन्न हो। यव-त्रिदोषनाशन बल-वीर्य वर्द्धक वैदिक सात्विक ऋषि प्रिय अन्न है।

जो समस्त बुद्धि विकार–जाड्यता आदि को शान्त करने वाला है आधुनिक वैज्ञानिकों ने (वार्ली) के पानी को अशक्त रोगी के लिये उपयुक्त माना है। यव बुस (भूषा) से तथा जल क्षेत्रीय परम्परागत व्याधियों के शमनार्थ विहित है। सभी यज्ञों में ग्राह्य है यवमणि सर्वार्थ कल्याणप्रद है–यव से इन्द्र जौ की बनी मणि लें।

१-३ विश्वामित्रः । वायुः । अनुष्टुप् । यवमणिधारणे अनुमन्त्रणे विनियोगः

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥१॥
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि ।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥२॥
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३॥

३. गोदाममणि

अ० कां० ७ सू १६ "तां सवितः सत्यसवां" कौ० सू० अ० ३ कं० २४ सूत्र ७ तथा कौ० ३।७ में वर्णित गोदाम-मणि–एक बार की ब्याई गौ पुष्टि कहलाती है उसकी रस्सी (दाम) की मणि बना, मणियों के विधानानुसार ही उपरोक्त सूक्त "तां सवितः" से अभिमन्त्रित कर पुष्टिकामी बाँधे।

इसके प्रयोग से बुद्धि की जाड्यता, विभ्रम आदि दूर होते हैं। बुद्धि शान्त होती है किसी भी गम्भीरतर विषय की मूल तक सरलता से शीघ्रता से पहुँचती है।

यहाँ उल्लेखनीय*—

१ भृगुः सविता । त्रिष्टुप् । गोदाममणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

तां स॑वितः स॒त्यस॑वां सुचि॒त्रामाहं वृ॑णे सुम॒तिं वि॒श्ववा॑राम् ।
याम॑स्य॒ कण्वो॒ अदु॑हत्प्रपी॑नां स॒हस्र॑धारां महि॒षो भगा॑य ॥१॥

४. फालमणि (खदिरमणि)

अ० कां १० सू ६ ऋ-६ व ७ कौ० सू अ० ३ कं० १९ सू २३-२५ खदिरमणि (फालमणि) अर्थात् कत्था भाषा के वृक्ष निर्मितमणि पूर्वोक्त विधि से ही धारण की जाती है।

इसमणि के निर्माण विषय में पर्याप्त अन्वेषण सापेक्ष्य ही है—

१) खदिर के टुकड़ों को पानी में डालें साथ ही स्वर्ण भी डालें उबालें पश्चात् प्रगाढ़ होनेपर छानकर घी डालकर पकायें-उसमें मधु-अन्न मिलायें-उसे सेवन करें।

२) मणि को धारण करें। सर्वरोग भैषज्य है। समस्त इन्द्रियों की शिथिलता दूरकर स्फूर्ति-नव-यौवन-बल-वीर्य ओज-वर्च बढ़ाने वाली है। इसके धारण से अन्न-पय-घृत-मधु आदि भोग्य पदार्थों के भण्डार अक्षय हो जाते हैं। अतिथियों की सेवा व आगमन का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। गौ आदि पशुवृद्धि, गौ आदि पशुपुष्टि, कृषिवृद्धि, कृषिपुष्टि, उद्यम-लाभ, उद्योगवृद्धि, वाणिज्यलाभ, देशान्तरभ्रमणलाभ, प्रजा-पुत्र-पौत्र परम्परा की अविकल वृद्धि करने वाली है। दिव्य दृष्टि करने वाली है।

उपर्युक्त सूक्त से अभिमन्त्रित कर, होम कर धारण करें यदि इन सभी मणियों या ब्रह्मवेदोक्त-मंत्र, ऋषि, देव बल का चमत्कार की जिज्ञासा हो तो इन्हे धारण कर नित्य इन सूक्तों से इनका उपस्थान करें।

१-८ अथर्वा। सोमः। १ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्, २-३, ५-७ अनुष्टुप् ४ त्रिष्टुप् ८ विराडुरो-बृहती। खदिरमणि फालमणि अनुमन्त्रणे, अवधरणे च विनियोगः

आयम॑गन्पर्णम॒णिर्ब॒ली बले॑न प्रमृ॒णन्त्स॒पत्ना॑न् ।
ओजो॑ दे॒वानां॒ पय॒ ओष॑धीनां॒ वर्च॑सा मा जिन्वत्व॒ प्रया॑वन् ॥१॥

टिप्पणी—*श्रद्धेय पंडित श्री गंगाराम आत्मज श्री पं० बालकृष्ण गोस्वामी (वर्तमान ग्राम-पोस्ट सेई) वत्सवन-(बृजमण्डल) जिला मथुरा-प्रथमबार की गौ के प्रथमबार के दुग्ध को गर्म करते थे उसका बृजभाषा में कीला बन जाता है। (कीला या खीस) अर्थात् दूध फटकर पानी अलग दूध जमा सा अलग हो जाता है वे रात्रि में अन्धापन (रतौंध) तथा बुद्धि दोषों के रोगियों को अभिमन्त्रित कर खिलाते तथा पिलाते थे। उससे बुद्धि सम्बन्धी विकारों के रोगी-नेत्रों के रोगियों को लाभ भी प्रायः हो जाता था। पुष्टिकर्म के नाते इसपर विचार प्रार्थनीय है।

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद्रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥२॥
यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥३॥
सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥
आ मारुक्षत्पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५॥
ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान् ॥६॥
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान् ॥७॥
पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥८॥

५. वरणमणि (विल्व)

अ० वे० कां १० सू ३ "अयं मे वरणोमणिः" कौ० सू० अ० २ कं० १० सू २ में वर्णित वरणशब्द का अर्थ कौ० अ० १ कं० ८ सू० १५ में निर्दिष्ट वरण का अर्थ भाष्यकार दारिल-(वरण-विल्वौप्रसिद्धौ) करते हैं। वरणवृक्ष प्राचीन शारदापीठ ग्राम टिक्कड़ के पहाड़ पर भगवती रागना देवी के मन्दिर पर खड़े हैं।

यह मणि मेधाजनन में; पुष्टि कर्म में, गले में बाँधने का निर्देश है। कौ० अ० ३ कं० १९ सूत्र २२ में भी ऐसा ही माना है।

एक मुखी रुद्राक्ष तथा विल्व की मणिका अर्थात् माला का बीज जैसा बनाकर शीशा-लोह-स्वर्ण के तारों में १०१ बार मढ़कर (लपेटकर) बीच के छिद्र को सोने से मढ़कर-पूर्वोक्तविधि से धारण करें।

१-३५ वृहस्पतिः। फालमणिः, वनस्पतिः, ३ आपः। अनुष्टुप्; १ : ४ : २१ गायत्री; ५ षटपदा जगती; ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी; ७-१० व्यवसाना अष्टपदा शक्वरी ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ३५ पञ्चपदा त्र्यनुष्टुप्गर्भा जगती।

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः। अपि वृश्चाम्योजसा ॥१॥

वर्म मह्यमयंमणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेनसह वर्चसा ॥२॥
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥३॥
हिरण्य स्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महोदधत् । गृहेवसतु नोऽतिथिः ॥४॥
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेय
श्चिकित्सतुभूयोभूयः श्वः श्वोदेवेभ्योमणिरेत्य ॥५॥
यम बध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वंद्विषतोजहि ॥६॥
यम बध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याऽय कम् ।
सो अस्मै बलमिद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥७॥
यम बध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चतमहे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेनत्वं द्विषतोजहि ॥८॥
यम बध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतोजहि ॥९॥
यम बध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ॥
सो अस्मै श्रियमिद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०॥
यम बध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥११॥

यम वध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तेने मां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः ।
सभिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१२॥

यम वध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणि माशवे ।
तं विभ्रत् सवितामणिं तेने दमजयत् स्वऽः ।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१३॥

यम वध्नाद् बृहस्पति वाताय मणि माशवे ।
तमापो विभ्रतीम णिं सदा धावन्त्यक्षिताः
स आभ्योऽमृत मिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१४॥

यम वध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं राजा वरुणोमणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।
सो अस्मै सत्यमिद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१५॥

यम वध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं देवाताविभ्रतोमणिं सर्वाल्लोकान् युधाजयन् ।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१६॥

यम वध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तमिमं देवतामणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् ।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१७॥

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमवध्नत ।
सं वत्सरस्तं वध्वा सर्वं भूतं विरक्षति ॥१८॥

अन्तर्देशा अवध्नत प्रदिशस्तमवध्नत ।
प्रजापति सृष्टो मणि द्विषतो मेऽधरां अकः ॥१९॥

अथर्वाणो अवध्नताथर्वणा अवध्नत ।
तै मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२०॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत सभूतं व्यऽकल्पयत् ।
तेनत्वं द्विषतो जहि ॥२१॥

यम वंध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसें न सह वर्चसा ॥२२॥

यम वंध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सुहगोभिरजाविभिरन्नेन प्रजयासुह ॥२३॥

यम वंध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सुहव्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥२४॥

यम वंध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेनमणिः सह ॥२५॥

यम वंध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेनश्रियासुह ॥२६॥

यम वंध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्याऽसह ॥२७॥

यम वंध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत्सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८॥

तमिमं देवता मणिमह्यं ददतुपुष्टये ।
अभिभुंक्षत्र वर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥२९॥

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामिमे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ॥३०॥

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते
स मायमधिरोहतुमणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥३१॥

यं देवाः पितरो मनुष्याऽ उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्यायमूर्धतः ॥३२॥
यथा बीजं मुर्वरां यां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं विरोहतु ॥३३॥
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम्
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥३४॥
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्तसमिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥३५॥

फल—सपत्न, द्वेषी तथा शत्रुओं को दमन करने वाली, बल-वीर्य वर्द्धक, चोर, आततार्ई, वधिकों का संहारकर्त्री-असुरादिकृत अभिचार, माया को नष्ट करने वाली विश्वभेषज है। कृत्या विनाशक, शाप तथा जन्मान्तरीय पापों से रक्षा करने वाली-यक्ष्मघ्नी; दुस्वप्न जनितारिष्ट निवारिणी, नैर्ऋतिदोष शमन करने वाली, अपमृत्यु, अपशकुन निवारिणी; जिस स्त्री को रजही; न हो उस दोष को दूर करने वाली, द्विपाद, चतुष्पाद, सरीसृपादि के भय निवारण में समर्थ कीर्ति-भूति यश, तेज, ओज प्रदायक है। विशेष मन्त्र में ही घोषणा की गई है। इसको उपर्युक्त विधि से धारण करें।

६. अभीवर्तमणि

अ० वे० कां १ सू० २९ "अभोवर्तेनमणिना" कौ० अ० २ कं० १६ सूत्र २८ "अभीवर्तेनेति-रथनेमि मणिमयः सीसलोहरजत ताम्रवेष्टितं हेम नाभि वासितं बध्द्वा सूत्रोक्तं बर्हिषि कृत्वा संपातवन्तं प्रत्यृचंभृष्टी रभोवर्तोतमाभ्यांमाचृतति। इसमें भाष्यकार दारिल का मत है कि "रथचक्रस्य वाह्यपुष्ठिस्तदवयय-पुष्टि ३-मण्याकारं कृत्वा-एतैः अयः तन्मणिं वेष्टयित्वा–नाभिमणिद्वारं सुवर्ण द्वारं कृत्वा

स्पष्ट है युद्ध में काम आने वाले रथ की नेमि (वाह्यपुष्टि के भाग तीन को मणि के आकार का बना लें, सीस-लोह, रजत, ताम्र से युक्त तारों या पत्र से उसे ढकें, बीच के द्वार को स्वर्ण से ढकें। प्राण प्रतिष्ठा कर (कौ० सू० अ० १ कं० ७ पूत्र १९) के अनुसार त्रयोदशी से प्रारम्भ तीन रात्रिपर्यन्त गोदधि और मधु मिलाकर उसीमें रहने दें-नित्य "अभीवर्तेन-मणिना" (१।२९) की ऋचा ५-६) से अभिमन्त्रित करते रहें। तीन रात्रि के उपरान्त निकालें पूरे सूक्त से अभिमन्त्रित करें। धूप आदि दे, पुनः ऋचा १।२९ की ५ "उदसौ सूर्यो" (६) "सपत्नक्षयणं" को जपते हुए धारण करें-दधि मधु को खा लें। मणियों के अभिमन्त्रण में त्रयोदशी से ३ रात्रि का तथा मधुप्राशन का कर्म सर्वत्र ही समझें-केवल तत्तदमणि के सूक्तों से अभिमन्त्रण में ही भेद रहेगा।

इस मणि को विश्वविजयेच्छु, विश्वाधिपत्यकामी-राजा या सेनाध्यक्ष धारण करें। निश्चित आश्चर्यप्रद सफलता प्रदायक है। त्रिवट दर्भ की रस्सी को मणि के छिद्र में पुरो कर बांधें।

जिस राष्ट्र से शत्रु ने निकाल दिया हो, वह राजा अ० वे० (३।३-१) तथा (३।४-१) से भी उपरोक्त मणि का अभिमन्त्रण करें। तथा निकाले हुए क्षेत्र से जौ, धान, जल, दर्भादि युक्त अभिमन्त्रित कर पुरोडाश से स्थाली पाक होम इन्हीं दो सूक्तों से करे, पुरोडाश भक्षण कर शयन करे।

१-६ वसिष्ठः। ब्रह्मणस्पतिः, अभीवर्तमणिः। अनुष्टुप्। अभीवर्तमणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥

७. अञ्जनमणि

अथर्व कां० ४।६ "एहि जीवं त्रायमाणं" (७।३१) "स्वाक्तंमे द्यावा" (१६।४५) "ऋणादृणमिव" तथा १६।४४ "आयुषोऽसि" में वर्णित अञ्जनमणि कौशिक (७।५) न० क० १६ तथा अथर्व १६।६६/७० "जीवास्थ" शुद्धानःआपः" (१२।१-३०) में अञ्जनमणि की गरिमा का उल्लेख है। यह यक्ष्मनाशन प्रकरण में दिया जा चुका है। तदपि **मणिबन्धन** की विशेषता से उल्लेख्य है। हरिणशृङ्गमणि के समस्त कार्यों; तथा नैर्ऋति दोष निवारणार्थं, दीर्घायुष्य विसर्पकरोग (कैन्सरादि) जानु के नीचे के भाग के (डोरूरोग) समस्त उलटे विनामुख के फोड़े,

नेत्र विकार, चर्मरोगों में, स्नान में, मिथ्यावाद जनित या किसी के दिये पत्र या सन्देश को न देने से उत्पन्न अरिष्ट निवारण में, गजविनाश निराकरणार्थ "ऐरावती नाम्नी" महाशान्ति में होता है। यह गौ, अश्व, पुरुष सभी की रक्षा करती है। देवों के प्रति प्रण करके उसे पूरा न करने से उत्पन्न भय निवारक, असन्मन्त्रोच्चारणादि जनित, दुष्वप्नादि निवारण करने वाली यह मणि है।

यह एक घास (बूटी) है, जो हिमालय तथा द्वावा (गंगा जमुना) के क्षेत्र में प्राय: होती हैं। कृषक जनों को प्राय: ज्ञान है। यह अग्निवर्द्धक, अग्निदाह शान्त करने वाली, प्राण, अपान, आयु, वर्च, तेज ओज, स्वस्त्ययन की जननी है।

८. हरिणमणि

अ० वे० का० ३ सू० ७ में वर्णित हरिणशृङ्गमणि तथा कस्तूरी में कोई भी या दोनों ही विषूची तथा समस्त क्षेत्रिय व्याधि-मातृ-पितृ परम्परागत व्याधियों के शमनार्थ अभिमन्त्रित कर धारण करें। जल में घिसकर जल को अभिमन्त्रित कर पिलायें, निमोनिया में लेपें। कच्चे मृगचर्म में गर्म कील से छेद करें उससे स्पर्श गर्म कील को जल में बुझायें। उस जल से उषाकाल में कौए बोलने से पूर्व रोगी को छींटे दें। यह मूल शान्ति में भी विहित कर्म है। तिल की मंजीर तथा यवों के बूसे से उस पानी को गर्म करें।

ये 'कौमारी" नाम की शान्ति में सभी न० क० (१७-१९) में विहित हैं। क्षेत्रिय व्याधि-यक्ष्म, कुष्ठ, श्वांस, मृगी, गर्भस्रावादि, मृताऽपत्यत्व, वन्ध्यात्व आदि निवारण में हैं। ऋग्वेद संहिता (१।२३-२०)

"अप्सु मे सोमोऽब्रवीद् अन्तर्विश्वानिभेषजा:" में भी निर्दिष्ट हैं। चरक, सुश्रुत, वाहड़, आयुर्वेद में इसका औषधि-भस्म आदि का पृथक् वर्णन है। हमारा सङ्कल्प "भैषज्य" से है। भैषज्य विषय मन्त्र बल साध्य है। अत: विषयान्तर में कुछ भी कहना अनुपयुक्त है। यहाँ मणि-वन्धन मात्र से लाभ दृष्टिगोचर हुए हैं।

१-७ भृग्वङ्गिरा:। १-३ हरिण:, ४ तारके, ५ आप:, ६-७ यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, ६ भुरिक्। हरिणमणि अनुमन्त्रणे; अवधारणे विनियोग:

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१॥

अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत्।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३॥

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४॥

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५॥

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६॥

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत्सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७॥

६. जङ्गिडमणि

अथर्ववेद कां २।४ "दीर्घायुत्वाय" "जङ्गिडोऽसि" (१६।३४) "इन्द्रस्यनाम" (१६।३५) में वर्णित जङ्गिड का नाम कौशिकसूत्र में दारिल भाष्यकार ने अर्जुन स्वीकार किया है। यह कृत्यादोष, समस्त अभिचार जनित व्याधि; समस्त दैवी, आसुरी, यातुधानी, मानवीयमाया शाप,क्रूरदृष्टि, आक्रोश, क्षेत्रियदोष, नैऋतिदोष, क्रत्यादोष (कच्चा मास खाने वाले, खूनपीजाने वाले-पिशाच-राक्षस, कीटाणु तथा चाण्डाल अग्नि) जनित दोष, महाव्याधि—राजयक्ष्मादि, वातव्याधि, छूतजन्यः सर्वप्रकार के पीड़ाकारक रोग, उत्पात, अङ्कदोषजन्यारिष्ट; विशेष हिंसक रोग (कैन्सर) गण्डमाला, कण्ठमाला, उल्टे फोड़े, गलने वाले, सदा बहने वाले फोड़े, नसवार, बल क्षयकारक रोग; निरन्तर बहने वाले रोग; विशेष कीटाणुजनित या विषकीटाणुजनित-व्रणादि, लता द्रुम, स्पर्शजनित रोग निवारण में समर्थ होने से इसका औषधिवत (आयुर्वेदोक्त) प्रयोग किया जाता है। परन्तु भेषज कर्म में इसकी मणि ही अभिमन्त्रित कर बाँधी जाती है। मणि के शरीर से स्पर्श मात्र से लाभ होता है। कौशिक सूत्र (५।६) के मत से "सन्" (पटसन, फुलसन, जूट) बनस्पति के धागे में—बनस्पतियों के रस के पृथक् २ पुट (भावनायें) देकर तैयार कर बाँधें। इस त्रयोदशी से ३ रात्रि पर्यन्त रसों में बिठायें। पश्चात् सभी मणियों पर यह लागू होता है। पश्चात् पूजा, प्राण-प्रतिष्ठा कर होम कर, इन मणियों को धारण करें। नित्य धूप आदि देना लाभप्रद हुआ है। ये चौपाये, दोपाये, नाखूनों वाले, सींग वाले, दाँत वाले, निगलने वाले, बिषैले बाण अस्त्र-शस्त्र, आयुधजन्य अरिष्टों से रक्षा में समर्थ, दीर्घायुप्रद तथा जप, होम, स्वाध्याय में निर्विघ्नता लानेवाली, मन-बुद्धि को स्थिर बनाने वाली है। ब्रह्म हत्यादिदोष निवारणार्थ, बन्ध्यादिदोष निवारण में इसके अर्जुन के पत्तों का आसन तथा पोटली भी बनाई जाती है। यह देवों का अमोघअस्त्र भूमि तल में छिपा था जिसे अङ्गिराजी ने प्रत्यक्ष किया। अमित-अमोघवीर्यवती होने से देवराज को वृत्रासुरादि के दमनकालिक युद्ध में विजयार्थ दिया। इससे समस्त विषैले कीटाणु, स्थावर, जङ्गमविष भी शमन होते हैं। ऋषियों ने

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४॥

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५॥

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६॥

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत्सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७॥

९. जङ्गिडमणि

अथर्ववेद कां २।४ "दीर्घायुत्वाय" "जङ्गिडोऽसि" (१९।३४) "इन्द्रस्यनाम" (१९।३५) में वर्णित जङ्गिड का नाम कौशिकसूत्र में दारिल भाष्यकार ने अर्जुन स्वीकार किया है। यह कृत्यादोष, समस्त अभिचार जनित व्याधि; समस्त दैवी, आसुरी, यातुधानी, मानवीयमाया शाप, क्रूरदृष्टि, आक्रोश, क्षेत्रियदोष, नैऋतिदोष, कृत्यादोष (कच्चा मास खाने वाले, खूनपीजाने वाले-पिशाच-राक्षस, कीटाणु तथा चाण्डाल अग्नि) जनित दोष, महाव्याधि—राजयक्ष्मादि, वातव्याधि, छूतजन्यः सर्वप्रकार के पीड़ाकारक रोग, उत्पात, ग्रहदोषजन्यारिष्ट; विशेष हिंसक रोग (कैन्सर) गण्डमाला, कण्ठमाला, उल्टे फोड़े, गलने वाले, सदा बहने वाले फोड़े, नसवार, बल क्षयकारक रोग; निरन्तर बहने वाले रोग; विशेष कीटाणुजनित या विषकीटाणुजनित-व्रणादि, लता द्रुम, स्पर्शजनित रोग निवारण में समर्थ होने से इसका औषधिवत (आयुर्वेदोक्त) प्रयोग किया जाता है। परन्तु भेषज कर्म में इसकी मणि ही अभिमन्त्रित कर बाँधी जाती है। मणि के शरीर से स्पर्श मात्र से लाभ होता है। कौशिक सूत्र (५।६) के मत से "सन्" (पटसन, फुलसन, जूट) बनस्पति के धागे में—बनस्पतियों के रस के पृथक् २ पुट (भावनायें) देकर तैयार कर बाँधें। इस त्रयोदशी से ३ रात्रि पर्यन्त रसों में बिठायें। पश्चात् सभी मणियों पर यह लागू होता है। पश्चात् पूजा, प्राण-प्रतिष्ठा कर होम कर, इन मणियों को धारण करें। नित्य धूप आदि देना लाभप्रद हुआ है। ये चौपाये, दोपाये, नाखूनों वाले, सींग वाले, दाँत वाले, निगलने वाले, बिषैले बाण अस्त्र-शस्त्र, आयुधजन्य अरिष्टों से रक्षा में समर्थ, दीर्घायुप्रद तथा जप, होम, स्वाध्याय में निर्विघ्नता लानेवाली, मन-बुद्धि को स्थिर बनाने वाली है। ब्रह्म हत्यादिदोष निवारणार्थ, बन्ध्यादिदोष निवारण में इसके अर्जुन के पत्तों का आसन तथा पोटली भी बनाई जाती है। यह देवों का अमोघअस्त्र भूमि तल में छिपा था जिसे अङ्गिराजी ने प्रत्यक्ष किया। अमित-अमोघवीर्यवती होने से देवराज को वृत्रासुरादि के दमनकालिक युद्ध में विजयार्थ दिया। इससे समस्त विषैले कीटाणु, स्थावर, जङ्गमविष भी शमन होते हैं। ऋषियों ने

इसका नाम "जङ्गिड" रखा। देवताओं ने धनपाल कुवेर को दिया। यह दिन, रात्रि, संध्या महारात्रि में समस्त लोक-लोकान्तरों में भूत-भविष्य-वर्तमान में रक्षा करती है।

यह "विश्वभेषज" के नाम से ऋषियों ने प्रकाशित की है। आन्त्रिक रोगोपशमन में भी यह सफल सिद्ध हुई है (प्लुरसिरोग) कृषिजन्य, बनस्पतिजन्य, रसों के पुट—सभी पृथक् २ दिये जाने से इसके गुणों में भी तीव्रगति आ जाती है।

१०. शतवारो मणि

अ० वे० कां० १९ सू० ३६ से ३८ ये ३-सन्ततिप्रद, बलप्रद, वीर्यस्तम्भनकर, गर्भ-पुष्टिकर, बहुदुग्धप्रद, ओज, वर्चवर्द्धक, कुलक्षयदोष निवारक हैं। "सन्तति नामशान्ति" नक्षत्रकल्प तथा शान्तिकल्पोक्त विधि से इन्हीं से की जाती है। शतावर को दुग्ध के साथ सेवन करें अभिमन्त्रित कर भुजा में भी धारण करने पर भी वही फल देती है।

इसके अग्रभाग से राक्षसादिभय, जड़ से यातुधानादि तथा मध्य से यक्ष्मादि, त्वचा के रोग, दाद, खाज,; उलटे फोड़े, कान, नाक, नेत्र कर्णपुटी तथा जंघा के अन्तर्वर्ति (रोगों के) गुदा के भगन्दर आदि ववासीर आदि रोग, अपस्मार, मृगी (हिस्ट्रिया) आदि व्याधि निवारण होते हैं। सौन्दर्य वर्द्धक है।

भयङ्करशब्द कारक यक्ष्म को शमन करने वाली है, गन्धर्व, अप्सरादि, कच्चेमांस खाने वाले, कीटाणुओं को नष्ट करने में समर्थ है राजयक्ष्मादि में अश्वत्थमूल की जठा, कुष्ठ, गुग्गुल, शतावर का मध्य तथा छाल को; तीनो सन्ध्याओं में; इन तीनों सूक्तों से अभिमन्त्रित कर धूप दें। यक्ष्मादि के कीटाणु नष्ट होते हैं; पशु आदि के कीट; बच्चों के पेट के कीट, (चनूना आदि) अनिष्ठ अरिष्ट परिहार होता है। जलदोष-कफजन्य समस्त दोष तथा जोर से भयङ्कर शब्द करने वाले रोगों तथा कुष्ठ रोग को; विविध कीटाणुओं को; नष्ट करती है। शरीर की चर्बी को कम करके पतला पुष्ट बनाती है।

सूक्तों के अर्थों से स्पष्ट हो रहा है, संशय का स्थान ही निश्शेष है। यह ऋषिबल, देवबल तथा मन्त्रबल का चमत्कार प्रायः अनुभूत है। यह भेषज है। शतावर के गुण-चरक, सुश्रुत आदि में ओषधि प्रयोगों में भरे पड़े हैं।

१-६ ब्रह्मा। शतवारः। अनुष्टुप्। शतवारमणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

श॒तवा॑रो अनीनश॒द्यक्ष्मा॒न्रक्षां॑सि॒ तेज॑सा।
आ॒रोह॒न्वर्च॑सा स॒ह म॒णिर्दु॑र्णाम॒चात॑नः ॥१॥
शृ॒ङ्गाभ्यां॒ रक्षो॑ नुदते॒ मूले॑न यातुधा॒न्यः।
मध्ये॑न॒ यक्ष्मं॑ बाधते॒ नैनं॑ पा॒प्माति॑ तत्रति ॥२॥
ये यक्ष्मा॑सो अर्भ॒का म॒हान्तो॒ ये च॑ श॒ब्दिनः॑।
सर्वा॑न्दुर्णाम॒हा म॒णिः श॒तवा॑रो अनीनशत् ॥३॥

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।
दुर्णाम्नः सर्वान्हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५॥

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वतीनां शतवारेण वारये ॥६॥

१-४ अथर्वा । अग्निः । त्रिष्टुप्; २ आस्तारपंक्तिः; ३ त्रिपदा महाबृहती ४ पुरोष्णिक् ।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन्भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद्यानि च वीर्याऽणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१॥

वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याऽय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४॥

१-३ अथर्वा । गुलगुलः । अनुष्टुप्; २ चतुष्पदा उष्णिक्; ३ एकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप् । गुल्गुलुमणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥१॥

विष्वञ्चस्तस्माद्यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।
यद्गुल्गुलु सैन्धवं यद्वाप्यासि समद्रियम् ॥२॥

उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥३॥

११. औदुम्बरमणि

अथर्व कां० १९ सू० ३१ "औदुम्बरमणि" इस सूक्त से धन क्षय हो जाने पर धन प्राप्ति हेतु "कौवेरी" शान्ति करें। (न० क० १९)

इससे पशु वृद्धि, पशु पुष्टि, दुग्ध, घृत वृद्धि; पुत्र, धन, सुन्दरता, स्वास्थ्य वृद्धि, लावण्यता, पुष्टि; गौ, अश्व, महिषी, हस्ती तथा वाहनों की प्राप्ति होती है। वास्तु शान्ति में रक्षोहण कर्म में इसी की मेख अभिमन्त्रित कर दश दिशाओं में गाड़ने का प्राविधान-समस्त आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, विघ्न, चोर, दस्यु, व्याघ्र, असुर, पिशाच आदि भय निवारण में समर्थ मानकर ही किया गया है। पुत्रेष्टि यज्ञ में इसी की समिधा, स्रुवा, स्रुची का विधान हैं, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन में भी इसी के फलों का प्रयोग होता है। गर्भपुष्टि गर्भस्थवाल की सौन्दर्यता, पुष्टगात्र, पुष्ट बुद्धि के निमित्त प्राविधान है। यह ऋतुधर्म विपर्यय ऋतुदोष निवारण, रक्तस्राव में भी प्रयोग होता है। पीली बोतल में गंगाजल भरें, मुंह खोलकर पीली ऊर्ण से ढांकें। सूर्य किरणों में रखें, उसमें से १ तोला मात्रा का जल लें तथा स्वर्ण तप्त जल में से १ तोला जल मिलायें, इसगूलर के फलों के चूर्ण के ऊपर पीयें, तो रजोदोष (प्रदर आदि) दूर हो। गूलर के दूध को बताशे में रखकर सेवन करने से प्रमेह-प्रदर-स्वप्न दोषादि बाधा दूर हो, ये फल समिधा आदि शान्ति, पुष्टि कार्यों में उत्तर पूर्व (वृक्ष की) ही लें, रक्षातन्त्र में मेख; दक्षिण पश्चिम दिशा की (वृक्ष की) लें।

(तै० ब्रा० ३।७।४,५); (आश्व० गृ० सू० २।३); (तै० सं० २।१।१-६) इसके फलों को (काले उड़द व तिल, काले धान (साठी) के चावल-जौ कांगनी, इन्द्र जौ) में मिला खिचड़ी में रस (गो दुग्ध या गो दधि गो घृत में-ज्येष्ठी मधु) मिला अभिमन्त्रित कर खिलायें। इनसे मूत्र कृच्छ्र, बहुमूत्र, मधुमेह, आदि की व्याधियाँ दूर होती हैं। यह शत्रु बलक्षयकारक; स्वबल वीर्य, वर्च, तेज, यश, धन-धान्य, मेधा, बुद्धि, वक्तृत्व वर्द्धक है। जठराग्नि दीप्तकर-क्षुधा-वर्द्धक भी है। इसी सूक्त की ऋचा ६।१० में वर्णित यह औदुम्बरमणि-मूंगा, मोती, हीरा, पन्ना आदि रत्नमणि में सार्वभौम है, उन सब को बढ़ाने वाली है औक्ष तथा वृष्य भी है। नपुंसकता या बन्ध्यात्व निवारक भी है।

वृहदारण्यक उपनिषद् के चतुर्थ तथा पञ्चम ब्राह्मणों में वर्णित श्रीमन्थ तथा पुत्रमन्थ कर्मों में इसका मौलिक प्राविधान साक्षी है। इसी का दण्ड भी वैश्य ब्रह्मचारी को धारण कराया जाता है। इसी की समिधा, इसी के पात्रों चमस तथा रई, स्रुवा, स्रुची, इसी के फलों के मन्थ से होम का विनियोग करें। मन्थ अभिमन्त्रित कर पुत्रादि कामोभक्षण करें। मणिवद्धारण करें।

सूक्त आगे देखें। यह आतें उतर आने, चर्बी बढ़ जाने में भी सेवनीय सिद्ध हुई है।

१-४ सविता (पुष्टिकामः)। औदुम्बरमणिः। अनुष्टुप्; ५, १२ त्रिष्टुप्; ६ विराट् प्रस्तार पंक्तिः; ११, १३ पञ्चपदा शक्वरी; १४ विराडास्तार पंक्तिः औदुम्बरमणि अनुमन्त्रणे विनियोग

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥१॥
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥२॥

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३॥

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णे३ऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४॥

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यऽम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५॥

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥६॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥७॥

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥८॥

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥९॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यऽम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत्सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥११॥

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥१२॥

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि
यच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥१३॥

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४॥

१२. दर्भमणि

काण्ड १९ सूक्त २८; २९; ३० तथा ३२; ३३ ये पाँच एवं अथर्व वेद काण्ड २ सूक्त २७ "नेच्छत्रु" ये ६ सूक्त यमभय, तथा एकशत मृत्युभय निवारण में समर्थ हैं। शान्तिकल्पोक्त "याम्यी" शान्ति में इनका विनियोग विहित है। पाठामूल तथा दर्भमणि से होम करने तथा मणिरूप में धारण करने का प्राविधान है।

"इमं बध्नामि" (१९।२८); "निक्षदर्भ" (१९।२९) "यत्तेदर्भ" (१९।३०) ये तीनों ही बल, ऐश्वर्य, सम्पदा; उत्तम वृष्टि कारक; पशु बाहुल्य प्रचुर धन-धान्य; कीर्ति हेतु; परकुचक्रागमन से सुरक्षा, शत्रुदमन कार्यों में "ऐन्द्री" महाशान्ति में विनियोग विहित है। इनके साथ "अभीवर्तन" (१।२९) का भी विनियोग कहा है। इन सभी के लिये दर्भमणि धारण का प्राविधान है।

"शतकाण्डो दुच्यवन" (१९।३२); "सहस्रार्घः शतकाण्ड" (१९।३३) तथा "मेच्छत्रु" (२।२७) अर्थात ये सातों (न० क० १९-१८) के द्वारा उपरोक्त सभी तथा निम्नकार्यों में भी (याम्यी) शान्ति में विनियोजनीय है।

ये पिशाच, यातुधान, राक्षस, ब्रह्मग्रह, कृत्या, असुर, यमदूत; वाह्य आभ्यन्तर, "आधिदैविक; आधिभौतिक, आध्यात्मिक" शत्रुबलक्षय में शाप पाप प्रतारण में राजसूय यज्ञ तुल्य सर्वश्रेष्ठ हैं। यह माधुर्ययुक्त पययुक्त बल, वीर्यवर्द्धक (ऋषभ-औक्ष) पवित्र बनाने वाली हैं दर्भ आसन; दर्भ को पवित्री; दर्भ मुष्टिधारण का निर्विवाद अभिप्राय यह उपरोक्त के साथ जप, उपस्थान, यज्ञ आदि के उत्पन्न पावन कीटाणु उत्तम विचार आदि उनमें समाहित हो जाते हैं, नष्ट नहीं हो पाते, उपरोक्त समस्त विघ्नों का वलक्षीण होकर, इन उत्तम सञ्चित कीटाणुओं के माध्यम से मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का निग्रह होने लगता है। इसी कारण ऊर्ण, रेशम, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म निर्मित आसनों तथा लोममणि धारण का भी यही फल होने से धर्मशास्त्रों में इन्है उपयुक्त कहा है। इन पाठामूल तथा दर्भ का घृत के साथ होम विधान है। मृतक श्राद्ध या जघन्य ब्रह्म हत्यादि पाप निवारण में इन्हीं के आसन पर बैठकर; इनको धारण कर महाव्याहृति जप गायत्री जप तथा दर्भ का पानी (तप्तकर) कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत ऋग्विधान में दिया है।

एक अनुभूत इन्ही का चमत्कार उल्लेखनीय तथा पुनः पुनः परीक्षणीय भी है। मृतक के दाह से अवशिष्ट समिधा (लकड़ी कोयला) को "ऐतुप्राण; ऐतुजीव" ऋचा जो तृतीय अध्याय में "नान्दीश्राद्ध" में वैतान सूत्र विधि में वर्णित है। से अभिमन्त्रित करें। कुशा (दर्भ) आसनों के नीचे (श्राद्धीय भोक्ताओं के) पवित्र भूमि में रखकर भोक्ता को विठायें, सङ्कल्पान्त में ही मृत आत्मा (सूक्ष्मलिङ्ग) की तात्कालिक शारीरिक स्थिति अर्थात् उसके फोड़े, रुधिर,

कुष्ठ आदि जैसा भी था उसी के पूर्णतया उन लोगों को श्राद्धीय भोजन से कव्य पृथक् २ वस्तु से पृथक् पत्तल से ग्रहण करता दृष्टिगोचर होगा।

ऐसे दर्शनों के उपरान्त से; विद्वान श्राद्धीय भोजन का परित्याग कर चुके हैं। मंत्रों सूक्तों का क्रम आगे। पाठामूल के अतिरिक्त पाठा के ७ पत्तों व दर्भों की बनीमाला अभिमन्त्रित कर धारण करके वाद विवाद में प्रवेश करना विजयप्रद होता है।

१-६ ५ ब्रह्मा। दर्भमणिः। अनुष्टुप्। दर्भमणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

यत्ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नां जहि वीर्यैः। ॥१॥

शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२॥

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम्।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि। ॥३॥

सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४॥

यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५॥

१-१० भृगुः (आयुष्कामः)। दर्भः। अनुष्टुप्; ८ पुरस्ताद्बृहती; ६ त्रिष्टुप्; १० जगती।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥१॥

नास्य केशान्प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२॥

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥३॥

तिस्रो दिवो अत्यतृणत्तिस्र इमाः पृथिवीरुत।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणाद्मि वचांसि ॥४॥

त्वम॑सि सह॑मानो॒ऽहम॑स्मि॒ सह॑स्वान् ।
उ॒भौ सह॑स्वन्तौ भू॒त्वा स॒पत्ना॑न्त्सहिषीवहि ॥५॥

सह॑स्व नो अ॒भिमा॑तिं॒ सह॑स्व पृतनाय॒तः ।
सह॑स्व॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्दः॑ सु॒हार्दो॑ मे ब॒हून्कृ॑धि ॥६॥

द॒र्भेण॑ दे॒वजा॑तेन दि॒वि ष्टम्भे॑न॒ शश्व॒दित् ।
तेना॒हं शश्व॑तो॒ जनाँ॒ अस॑नं॒ सन॑वानि च ॥७॥

प्रि॒यं मा॑ दर्भ कृणु ब्रह्मराज॒न्या᳡भ्यां शू॒द्राय॒ चार्या॑य च ।
यस्मै॑ च का॒मया॑महे॒ सर्व॑स्मै च वि॒पश्य॑ते ॥८॥

यो जाय॑मानः पृथि॒वीमदृं॑हद्यो अस्त॑भ्नाद॒न्तरि॑क्षं॒ दिवं॑ च ।
यं बिभ्र॑तं न॒नु पा॒प्मा वि॑वेद॒ स नो॒ऽयं द॒र्भो वरु॑णो दि॒वा कः॑ ॥९॥

स॒प॒त्न॒हा श॒तका॑ण्डः॒ सह॑स्वा॒नोष॑धीनां प्रथ॒मः सं ब॑भूव ।
स नो॒ऽयं द॒र्भः परि॑ पातु वि॒श्वत॒स्तेन॑ साक्षीय॒ पृत॑नाः पृतन्य॒तः ॥१०॥

१-५ भगुः । दर्भः । १ जगती; २, ५ त्रिष्टुप्; ३ आर्षी पंक्तिः; ४ आस्तार पंक्तिः ।

स॒ह॒स्रा॒र्घः श॒तका॑ण्डः॒ पय॑स्वा॒नपा॒मग्निर्वी॒रुधां॑ राज॒सूय॑म् ।
स नो॒ऽयं द॒र्भः परि॑ पातु वि॒श्वतो॑ दे॒वो म॒णिरायु॑षा॒ सं सृ॑जाति नः ॥१॥

घृ॒तादुल्लु॑प्तो॒मधु॑मा॒न्पय॑स्वान्भू॒मिदृं॑होऽच्युतश्च्यावयि॒ष्णुः ।
नु॒दन्त्स॒ पत्ना॒नध॑रांश्च कृ॒ण्वन्दर्भा रो॑ह मह॒तामि॑न्द्रि॒येण॑ ॥२॥

त्वं भू॒मिमत्ये॒ष्योज॑सा॒ त्वं वेद्यां॑ सीदसि॒ चारु॑रध्व॒रे ।
त्वां प॒वित्र॒मृष॑योऽभरन्त॒ त्वं पु॑नीहि दु॒रि॒तान्य॒स्मत् ॥३॥

ती॒क्ष्णो राजा॑ विषास॒ही र॑क्षो॒हा वि॒श्व च॑र्षणिः ।
ओजो॑ दे॒वानां॒ बल॑मु॒ग्रमे॒तत्तं ते॑ बध्नामि ज॒रसे॑ स्व॒स्तये॑ ॥४॥

द॒र्भेण॒ त्वं कृ॑णवद्वी॒र्या᳡णि द॒र्भं बिभ्र॑दा॒त्मना॒ मा व्य॑थिष्ठाः ।
अ॒ति॒ष्ठाया॒ वर्च॒साधान्या॒न्त्सूर्य॑ इ॒वा भा॑हि प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ॥५॥

१-७ कपिञ्जलः । १-५ वनस्पतिः, ६ रुद्रः, ७ इन्द्रः । अनुष्टुप् । पाटामणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥१॥

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥२॥

इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥३॥

पाटामिन्द्रो व्याऽश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥४॥

तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥५॥

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥६॥

तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥७॥

ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः) । दर्भमणिः, मंत्रोक्ताश्च । अनुष्टुप्

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥

द्विषतस्तापयन्हृदः शत्रूणां तापयन्मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभिन्त्संतापयन् ॥२॥

घर्म इवाभितपन्दर्भ द्विषतो नितपन्मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुजं बलम् ॥३॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥

वृश्च दर्भ सपत्नान्मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान्दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥

कृन्त दर्भ सपत्नान्मे कृन्त मे पृतनायतः
कृन्त मे सर्वान्दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८॥

पिंश दर्भ सपत्नान्मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान्दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥

विध्य दर्भ सपत्नान्मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान्दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१०॥

ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

निक्ष दर्भ सपत्नान्मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान्दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१॥

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२॥

रुन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३॥

मृण दर्भ सपत्नान्मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान्दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥

१-७ कपिञ्जलः । १-५ वनस्पतिः, ६ रुद्रः, ७ इन्द्रः । अनुष्टुप् । पाटामणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥१॥

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥२॥

इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥३॥

पाटामिन्द्रो व्याऽश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥४॥

तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥५॥

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥६॥

तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥७॥

ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः) । दर्भमणिः, मंत्रोक्ताश्च । अनुष्टुप्

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥

द्विषतस्तापयन्हृदः शत्रूणां तापयन्मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभिन्त्संतापयन् ॥२॥

घर्म इवाभितपन्दर्भ द्विषतो नितपन्मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुजं बलम् ॥३॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥

वृश्च दर्भ सपत्नान्मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान्दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥

कृन्त दर्भ सपत्नान्मे कृन्त मे पृतनायतः
कृन्त मे सर्वान्दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८॥

पिंश दर्भ सपत्नान्मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान्दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥

विध्य दर्भ सपत्नान्मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान्दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१०॥

ब्रह्मा: । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

निक्ष दर्भ सपत्नान्मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान्दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१॥

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२॥

रुन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३॥

मृण दर्भ सपत्नान्मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान्दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥

मन्थं दर्भ सपत्नान्मे मन्थं मे पृतनायतः ।
मन्थं मे सर्वान्दुर्हार्दो मन्थं मे द्विषतो मणे ॥५॥

पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान्मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान्दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥६॥

ओषं दर्भ सपत्नान्मे ओषं मे पृतनायतः ।
ओषं मे सर्वान्दुर्हार्द ओषं मे द्विषतो मणे ॥७॥

दह दर्भ सपत्नान्मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान्दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥

जहि दर्भ सपत्नान्मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान्दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥

विघ्नशमनार्थ मणिधारण

विविध विघ्न; विस्कन्ध विघ्न, स्पर्द्धा, सर्प, श्रृङ्गि (सींगवाले) दाढ़वाले पशुओं से उत्पन्न विघ्न, विविधशस्त्र के प्रयोगों से रक्षा, युद्ध में शत्रुद्वारा प्रयुक्त विविध माया, मायाजाल युक्त युद्ध विघ्न, इन्द्रजाल विघ्न, तथा युद्ध के अन्य अज्ञात, अचिन्त्य विघ्नों के निवारणार्थ-शत्रु के आक्रमण को विफल करने हेतु, शत्रु को भगाने हेतु निम्न सूक्त से अभिमन्त्रित कर, "अरलू" से बनी मणि अरलू का दण्ड, वेणु दण्ड, चित्रित दण्ड, ध्वज दण्ड, चिह्नयुक्त दण्ड, लकुटादि दण्ड तथा युद्ध में उपयुक्त आयुध, कवचादि को अभिमन्त्रित कर पिशङ्गवर्ण के सूत्र में बाँधकर या उनके ऊपर पिशङ्गवर्ण का सूत्र या वस्त्र लपेट कर धारण करें। कौ० ४३-१

अस्य काण्ड ३ सूक्त ९ "कर्शफस्य" वामदेवः- ऋषिः। द्यावा पृथिवी, देवाः-देवते- अनुष्टुप् ४ चतुष्पदा निचृद् बृहती, ६ भुरिक। छन्दांसि-समस्त विघ्न, मायाजालादि निवारणार्थे, भीतिनिवारणे मणि, आयुध, दण्डादि अभिमन्त्रणे, आयुधादि धारणे विनियोग:

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ॥१॥

अश्रेष्माणो अधारयन्तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥२॥

पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं बध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥
येना श्रवस्य वृश्चरथद्वा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिवदूषणो बन्धुरा काबवस्य[†] च ॥४॥
दुष्ट्यै हि त्वां भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवोरथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ॥५॥
एकं शतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥६॥

आयमगन्पर्णमणि (पलाशमणि)

अ० वे० कां ३ सू० ५ "आयमगन्पर्णमणि" कौ० अ० ३ कं० १९ सू० २२ तथा कं० (८ सू० १९) में भाष्यकार दारिलमत से (आयमगन्-पलाश) पलाशपत्रमणि तथा पलाश काष्ठमणि दोनों ही हैं । इसकी विधि वरण (विल्व मणि) के तुल्य ही है ।

उसके गुणों के अतिरिक्त इसकी विलक्षणता निम्न है धन-धान्य, स्वस्त्ययन, दीर्घायुष्य कुचक्रदमन, चौर, दस्यु वधिक, आततायि विनाशक, धीवान, रथादि के निर्माण में विशेष चातुर्यता-राजपुरुषों, ग्राम्यजनों को मुग्ध तथा वशीकरने वाली है । मेधाजनन, पुष्टि कार्यों में गले में ही धारण करें ।

अन्य सब पूर्व मणियों की भाँति ही है ।

अभिमन्त्रण उपरोक्त अथर्व सूक्त से करें ।

यह कलाकारों तथा शिल्प विशेषज्ञों एवं लोक निर्माण कर्मी जनों को एक विशेष बल विवेक, बुद्धिप्रद है ।

प्रतिसरमणि (सिलुत्ककुः)

अ० कां ८।५ "अयं प्रतिसरोमणिः" कौ० ८।१९ तथा अ० ३ कां १९ सू २२ में भाष्यकार

[†] टिप्पणी : अर्जुन (अर्जुन) वरण (वरना) की छालों से तप्त जल तथा इनसे निर्मित मणि धारण पूर्वोलिखित जासौंदो (गुड़हल) लालकी, परागकेशरघी में तल कर १/१ प्रातः सायं ७ दिन देने से रक्तस्राव; रक्तप्रदर तथा श्वेत गुड़हल की परागकेशर २१ दिन मात्रा १/१ प्रातः सायंघी में तलकर देने से श्वेत प्रदर तथा मधुमेहदूर हुऐ हैं । भेषजमें सूक्तों से अभिमन्त्रण करना अनिवार्य है ।

दारिल (अयं प्रतिसरः इति सिलुटकक:) अर्थ किया है। परन्तु राजनिघण्टु में "पीनमणि" (पुष्पराग:) तिलकवृक्ष निर्मितोमणि-प्रतिसरणसाधनः तिलक वृक्ष निर्मित मणि लें।

अन्यधारणादि विधि वरण (विल्व) मणि के तुल्य ही है अभिमन्त्रण में उपरोक्त सूक्त का प्रयोग अनिवार्य है।

फल—

वरणमणि यह टिक्कड़ में रागना पीठ में काश्मीर में मिलते हैं। (विल्व) पलाशमणियों के सभी गुण तथा निम्नविशेष हैं। शौर्यप्रद है, शूरवीर धारण करें तो जल-थल-नभ की दुर्घटनायें, उत्पात तथा संग्राम में प्रयुक्त दिव्यायुध अस्त्र-शस्त्रादि से पूर्ण रक्षा करने में समर्थ है। वृत्रासुर वध से पूर्व, इन्द्रने भी धारण किया था।

प्रतिवर्तमणि-स्त्रक्त्यमणि ([illegible]) के साथ धारण करें तो सारा पृथिवी के समस्त विघ्न; तथा आङ्गिरसी; आसुरी; यास्वयं की प्रयुक्त या अन्य से प्रयुक्त कृत्यादूषणों को शमन करने वाली है इसके प्रभाव से व्याघ्र-सिंह, रिक्ष, अप्सरा, गन्धर्व सभी दूर भागते हैं यह प्रजा-धन-धान्य, पशु-प्रतिष्ठा, कीर्ति, वाहनप्रद है।

१ स्त्राक्त्य (तिलकमणि) २ विल्वमणि; ३ पलाशमणि तथा ४ खदिरमणि इन चारों को इसके साथ १०१ बार शीशा-लोहा तथा स्वर्ण सूत्र में डककर पूर्वोक्त विधि से प्रयोक्ता से ३ रात्रि दधि मधु में बिठाकर इन सभी सूक्तों से निरन्तर अभिमन्त्रित करें। चौथे दिन पूजा प्राणप्रतिष्ठा, स्थालीपाक होम इन्हीं सूक्तों से करें- पुरोडाश तथा दधि मधु को प्राशन करें। संयुक्त इन (पाँचों) मणियों को धारण करने वालों के प्रभाव से देव ऋषि भी कृपा स्वयं करते हैं। उन भाग्यवानों के लिये अन्य कुछ भी दुर्लभ नहीं। यह स्वयं मन्त्रों में ही विस्पष्ट है प्रमाण अन्यत्र न देखें। यहाँ विशद वर्णन है।

स्त्राक्त्य (तिलक) मणि

तिलकमणि तथा कवच का उल्लेख इसी का ८ सूक्त ५ तथा ७ व ८ में है दोनों का प्रभाव पूर्णतया विस्पष्ट है। ये बिना औषधि सेवन के ही मणि या कवच रूप में धारण करने मात्र से आश्चर्य में डालने वाली है—

प्रतिसरोमणि (अभयगण) (अ० वे० का० ८ सू० ५ म० १८-१६

शुक्र ऋषिः। कृत्यादूषणं, मंत्रोक्तदेवताः। अनुष्टुप्, १-६ उपरिष्टा बृहती: २ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३ चतुष्पदा भुरिक् जगती: ५ भुरिक्संस्तारपंक्तिः; ७-८ ककुम्मती ६ पुरस्कृति-जगती; १० त्रिष्टुप्; ११ पथ्यापङ्क्तिः; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, १५ पुरस्ताद् बृहती; १६ जगतीगर्भा त्रिष्टुप्; विराड्गर्भा प्रस्तार पङ्क्तिः; २१ विराट् त्रिष्टुप्; २२ त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्वरी। १८ अनुष्टुप्।

अ॒यं प्र॑ति॒स॒रो म॒णिर्वी॒रो वी॒राय॑ बध्यते।
वी॒र्य॒वान्त्सपत्न॒हा शूर॑वीरः परि॒पाण॑ः सुम॒ङ्गलः ॥१॥

अयंमणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजीसहमानउग्रः ।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२॥
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेने नासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद्द्यावापृथिवीउभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥३॥
अयंस्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशीसो अस्मान् पातु सर्वतः ॥४॥
तदग्निराहतदुसोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरं जन्तु ॥५॥
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरं जन्तु ॥६॥
येस्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्यवि कृत्या बाधते वशी ॥७॥
स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना विमृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता याउंचान्येभिराभृताः
उभयीस्ताः परायन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥९॥
अस्मैमणिं वर्म बध्नन्तुदेवा इन्द्रो विष्णुः सवितारुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१०॥ [१२]
उत्तमो अस्योषधीनाम नड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११॥
स इद् व्याघ्रोभवत्यथो सिंहोअथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनोयो बिभर्तीमं मणिम् ॥१२॥
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशोविराजतियो बिभर्तीमं मणिम् ॥१३॥

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४॥
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५॥
अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६॥
असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रा सपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नातिविध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वंऽत्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥१९॥
आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०॥
अस्मिन्निन्द्रो निदधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् ॥२१॥
स्वस्तिदा विशांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२॥ [१३] १२२

"प्रपथे पथाम्" (७।१०) इन चार ऋचाओं से नष्ट धन की प्राप्ति हेतुः उस नष्ट धन की आकांक्षा वाले को प्रदानार्थ सीधे हाथ को आगे पसारें, गृहीताभी पुनः धोकर मुट्ठीबन्द कर उठालें। नये धन की प्राप्ति तथा नष्ट धन की पुनः प्राप्ति के लिये २१ बार शर्करा अभिमन्त्रित करें चौरास्ता पर रक्खें और कुछ चारों ओर बिखेर दें। इससे प्राणियों के लिये शुभाशुभ कर्मों के द्रष्टा साक्षी हो लोक परलोक के आने-जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। और अभीष्ट साधन प्राप्ति होती है। लौकिक पुत्र-पौत्र धनादि सम्बन्ध भी विच्छेद नहीं होता।

अभयगण स्वस्तिदा पूसा (७। [६ (१०)]

उपरिबभ्रवः । पूषा । त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदा आर्षीगायत्री, ४ अनुष्टुप् ।

प्रपथेपथामंजनिष्ट पूषाप्रपथेद्दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभिप्रियतमे सधस्थे आचपरा च चरति प्रजानन् ॥१॥

पूषेमा आशा अनु वेदसर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुरएतुप्र जानन् ॥२॥

पूषन्तव व्रते वयं नरिष्येमकदा चन । स्तोतारस्तइह स्मसि ॥३॥

परिपूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नोनष्टमाज्र तुसंनष्टेनगमेमहि ॥४॥

दीर्घायु: प्राप्ति । (८।१-१०-५)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शंतपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्रमेष्ठाः ॥५॥

मैतंपन्थामनुगा भीम एषयेनपूर्व नेयथतं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्रपत्थाभयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१०॥

"अवव्याधि-भेषज" ग्रन्थ में विधिवत वर्णन पढ़ें ।

कां १९ सू १५ अथर्वा ऋषिः । १-४ इन्द्रः । मन्त्रोक्ताः देवते । त्रिष्टुप् । १ पथ्या बृहती २-५ जगती ३ पथ्या पङ्क्ति छन्दांसि । अप्रतिरथसंज्ञकसूक्तोक्तेषु-अभयगणोक्त कार्येषु विनियोगः

सू० १९ । ९ से लेकर सूक्त कां १९ के २० तक की अप्रतिरथ संज्ञा है, इनसे अभयगण कार्यों के साथ राजा को निवास गृह में लेजाकर परिक्रमा क्रम से अंगुष्ठ से गृह में चारोंओर शर्करा व सरसों फेंककर रक्षाकर्म के उपरान्त स्वयं और राजा का भी प्रवेश करें । धूम्रकेतु दर्शन आदि उत्पातों की शान्ति में होम करें । इनसे दी गई आहुति तीक्ष्णतर प्रहार करती हैं ।

यतइन्द्र भयामहे ततोनो अभयं कृधि ।
मघवंछग्धितव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषोवि मृधो जहि ॥१॥

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनुराध्यास्म द्विपदाचतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुपगुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो विनाशयः ॥२॥

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहापरस्फानोवरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः समध्यतः सपश्चात्सपुरस्तान्नो अस्तु ॥३॥

उरुं नौलोकमनु नेषिविद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपक्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४॥

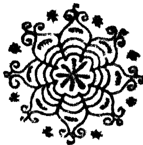
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥५॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मममित्रं भवन्तु ॥६॥

कां १९ सू १४ अथर्वा ऋषिः । द्यावापृथिवी देवता । त्रिष्टुप् छन्द उपरोक्त कर्मेषु विनियोग:

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवेमे द्यावा पृथिवी अभूताम् ।
असपत्ना प्रदिशो मे भवन्तु नवै त्वा द्विष्मो अभयं नो नस्तु ॥१॥

इति कर्मज आधि-व्याधि निरोधोनामक
पञ्चमोऽध्यायः ।



परिशिष्ट

[सम्पादक द्वारा]

वेद और उनकी रहस्यमयी शक्ति

अथर्ववेद मुख्यतया शान्ति-पुष्टि कर्मों से संबधित है। यह वेद ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद से एक दम भिन्न नहीं है। ऋग्वेद आदि में भी शान्ति, पुष्टि कर्म आदि विषय हैं किन्तु अथर्ववेद मे अधिक विस्तार से मिलते हैं। चारों वेदों को पढ़ने के बाद यह भली भाँति विश्वास हो जाता है कि अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए जो स्तुतियाँ की जाती हैं, जो यज्ञ, अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि किए जाते हैं, उनके अन्तराल में कोई रहस्यमयी शक्ति अवश्य निहित है। देवता भी उस शक्ति की सहायता की अपेक्षा रखते हैं। ऋग्वेद में ऋषि विश्वामित्र कहते हैं कि– 'अपनी स्तुतियों से वह आदि शक्ति भारत की जनता की रक्षा करे'। उस आदि शक्ति की उपासना के अतिरिक्त एक और निम्न कोटि की उपासना का धर्म और यातु को महती शक्ति मानकर अथर्ववेद में उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद में दानवों को भी अपने अनुकूल बनाने के लिए उपासना पद्धति मिलती है। जिस प्रकार दानवों से भय प्रकट किया गया है, उसी प्रकार रुद्र वरुण सदृश देवताओं से भी इसलिए भय प्रकट किया गया है कि ये देवता भी क्रुद्ध होने पर दानवों की भाँति क्षति पहुँचाने में समर्थ हैं।

वेदो में 'यातु' भी उपासना का एक आधार है। यह तीसरे प्रकार की उपासना अथर्व वेद में प्रायः धर्म के साथ संयुक्त मिलती है। धर्म और यातु के विषय एकही सूक्त में कहीं-कहीं एक ही मंत्र में सम्पृक्त मिलते हैं। (अथर्व० १-६,३-११, ४-४०, १६-३४, ४४-इत्यादि)।

यातु कर्म

कर्मज व्याधियों को दूर करने में यातु प्रयोग बहुत लाभदायक और अमोघ सिद्ध हुए हैं। अथर्ववेद यातु और धर्म को एक साथ सम्पृक्त कर यातु कर्म प्रयोग और धार्मिक अनुष्ठानों को प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य विद्वान् तथा अधिकतर भारतीय विद्वान् 'यातु' का अर्थ इन्द्रजाल, जादू, टोटका, टोना लगाते हैं, किन्तु गम्भीरता से विचार किया जाए तो पार्थिव पदार्थों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले अथर्व वेदीय प्रयोग 'यातु' कहलाते हैं और

ध्यानयोग भक्तियोग एवं ज्ञानयोग द्वारा किए जाने वाले प्रयत्न 'धर्म' कहलाते हैं। धर्म अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए यातु कर्म किया जाता है और मोक्ष प्राप्ति के लिए 'धर्म'।

कर्मज व्याधि विनाश के लिए शान्ति-पुष्टि कर्म

भूतावेश तथा व्याधियों और मानसिक रोग ये कर्मज व्याधियां हैं इनसे मनुष्य जीवन के कार्य व्यापार में असफल दरिद्री अभागा बन कर हताश और निराश हो जाता है। इस प्रकार की कर्मज व्याधियों को दूर कर सुख सौभाग्य संबर्द्धन के लिए अथर्व वेद में मणि, मंत्र, औषधि, तंत्र का विधान बताया गया है। रक्षा काण्ड(गण्डा, ताबीज) मणि बन्धन कहलाता है। अथर्व वेदीय मंत्रों द्वारा अभिषेक, मार्जन तत्व शुद्धि आदि प्रयोग मंत्र विधान के अन्तर्गत हैं। मंत्र सिद्ध औषधियों का प्रयोग औपधोपचार के अन्तर्गत है और विविध प्रकार के टोटका तंत्र विधान के अन्तर्गत आते हैं। भूतावेश और रोगों में कोई अन्तर नहीं मानागया है। भूतावेश भी एक प्रकार का रोग है। व्याधियों की चिकित्सा के लिए भी वही प्रयोग व्यवहार में लाए जाते हैं जो भूतावेश में लाए जाते हैं।

रोगों की चिकित्सा के लिए मुख्यतया निम्नांकित अथर्ववेदीय मंत्रों का प्रयोग किया जाता है—

लक्म—ज्वर नाश के लिए (१,२५; ५-४; ६-२०; ७-११; १६-३६)

जलोदर रोग के लिए (१-१०; ६-२४; ७-८३)

आस्राव दूर करने के लिए (१-२; २-३; ६-४४)

क्षेत्रिय रोग दूर करने के लिए (२-८, १०; ३-७)

विषका प्रभाव दूर करने के लिए (५-१३,१६;६-१२;७-५६,८८)

कृमि रोग दूर करने के लिए (२-३१,३२;५-२३)

उन्माद रोग दूर करने के लिए (६-१११)

व्रण दूर करने के लिए (४-१३;५-५)

टूटी हुई हड्डियाँ जोड़ने के लिए (४-१२;५-५)

कहीं कहीं सभी प्रकार की व्याधियों को दूर करने के लिए जल और वनस्पतियों के प्रयोग बताए गए हैं (६-२५,६-६१,६-६५) तथा १६-४४) इन मंत्रों में वरण वृक्ष और पीपल के वृक्ष तथा यव और जल के आचमन, मार्जन आदि का उल्लेख है। इन औषधियों का प्रयोग देवताओं के आवाहन और स्तवन पूर्वक किए जाने का विधान है।

दीर्घायु प्राप्त करने के लिए, स्वस्थ, नीरोग रहने के लिए अथर्ववेद में जो मंत्र पाए जाते हैं उनमें से अधिकांश के प्रयोग चूडाकर्म, गोदान, उपनयन आदि विभिन्न पवित्र संस्कारों के लिए भी किए जाते हैं। किन्तु ऐसे अनेक मंत्र हैं जो आयु, कीर्ति, वर्चस्व, श्री और पशुवृद्धि के लिए ही प्रयुक्त हुआ करते हैं। इस प्रकार के मंत्र अथर्व वेद (२-२८;३-११;४-६-१०;५-३०;७-५३;८-१;१६-२६) में हैं। इन मंत्रों का प्रधान देवता अग्नि है जो आयु स्वरूप है।

आरोग्यलाभ तथा अपमृत्यु निवारण के लिए अथर्ववेद में रक्षा सूत्रों का बड़ा महत्त्व है। ये रक्षा सूत्र सोने के तारों रेशमी धागों के बनाए जाते हैं। रक्षा सूत्र के अन्तर्गत तावीज भी आते हैं, जिन्हें मणि कहा गया है। ये मणियां वनस्पतियों की जड़ों, पत्तियों को भरकर सिद्धि की जाती हैं। मोती अथवा उसके सीप के भी मणि धारण करने का विधान है—दाक्षायण: सुवर्णस्य रक्षासूत्रं शतानीकं प्रत्यबध्नात्—दाक्षायण ने शतानीक को सुवर्ण सूत्र बांधा (१-३५) अञ्जनमणेः प्रयोगः (४-६; १६-४४-४५), मौक्तिकस्य शुक्तेश्च सम्प्रयोगः (४-१०) इत्यादि अनेक प्रयोग मिलते हैं।

दैत्यों, भूत-प्रेतों, राक्षसों और शत्रुओं के शमन के लिए किए जाने वाले प्रयोग अभिचार कर्म या कृत्या प्रतिहार कर्म कहे जाते हैं। अभिचार कर्म अथवा कृत्या प्रतिहार कर्म के उद्देश्यों का यदि वर्गीकरण किया जाए तो सभी प्रयोजनों का समाहार निम्नांकित पांच वर्गों में समविष्ट हो जाता है—

१. प्रेत, दैत्य बाधा निवारण।

२. राजकर्म।

३. शत्रुओं के प्रति।

४. स्त्री प्राप्ति।

५. उच्च पद प्राप्ति।

अथर्ववेद के अभिचार मंत्रों द्वारा शत्रुओं, प्रेतों के संहार के लिए देवताओं का आह्वान किया जाता है (२-१४, ३-६; ५-७-८-२८-२६; ६-२-३-४; ७-११०)। इन अभिचार कर्मों में प्रयुक्त किए जाने वाले गण्डा, तावीज पहनते ही तत्काल फल देते हैं। वनस्पतियों द्वारा निर्मित मणियों (तावीजों) का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। ४, १७-१६ में अपामार्ग का। ६.१५ में पलाश का। १०,३ में, वारणवृक्ष का. १०,६ में खदिर का। १६, २८-३० दर्भों का देखना चाहिए।

स्त्रियों को सम्मोहित करने का मंत्र विधान स्त्रीकर्माणि में बताया गया है। स्त्रियों के विवाह से पूर्व का, विवाह काल का, विवाह हो जाने के बाद का और स्त्रियों के जीवन भर का जो विशद वर्णन अथर्ववेद में है, उस प्रकार का वर्णन अन्य वेदों में दुर्लभ है।

इस प्रकार के प्रयोग दो प्रकार के होते हैं। एक तो विवाह से या गर्भ धारण अथवा सुख-प्रसव से सम्बन्धित हैं और दूसरा प्रयोग स्त्रियों के वश में करने, सौतों को मारने तथा प्रिय एवं प्रेयसी में आसक्ति पैदा करने से सम्बन्धित है। इस प्रसंग में ऐसे भी विधान हैं जिनके द्वारा पुरुषों को नपुंसक बना दिया जाए और स्त्रियों को वन्ध्या बना दिया जाए (६-१३८, ७-६० तथा १-१४)।

विवाह, गर्भधारण आदि प्रयोजनों के लिए ३-२३, ६-११-१७-८१; २, १४, ३,१८, ७, ३५, ११३, ११४ तथा १-३४; २-३०; ३-२५; ६-८, ६, ८६, १०२, १२६; १३०-१३२, १३६; ७-३८ अथर्ववेदीय मंत्रों को देखना चाहिए।

सौमनस्य—सहचितत्त्व, हार्दिकता, लोकप्रियता, लोकप्रतिष्ठा आदि पारिवारिक, सामाजिक सफलता प्राप्त करने के लिए अथर्व वेद के सौमनस्य सूक्त मंत्र बहुत ही अमोघ सिद्धि हैं। इनमें से पारिवारिक एकता और सौहृर्द बनाए रखने के लिए अथर्व वेद (३-३०) क्रोध शमन के लिए तथा दुर्भाव एवं कलह दूर करने के लिए (६-४२-४३, ६४, ७३, ७४; ७, ५२) सभा में अपना प्रभाव, वर्चस्व कायम करने के लिए (७-१२) शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करने के लिए (२-२७), किसी की भी इच्छा को अपने अनुकूल बनाने के लिए (६-६४), में प्रयुक्त मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए।

राज्य-शासन—प्रशासन से सम्बद्ध क्रिया विधियों को अथर्ववेद में राजकर्माणि, कहा गया है। राजकर्म के अन्तर्गत राजा का अभिषेक, राजा या राष्ट्रपति का निर्वासित राजा को पुनः सत्तारूढ़ कराना, अन्यान्य राष्ट्राध्यक्षों, शासनाध्यक्षों पर अपना प्रभाव जमाना, शासन सत्ता को सुदृढ़ बनाना विषय मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त ओज और प्रभाव, यश और विजय प्राप्त करने के विषय भी राज्यकर्म के अन्तर्गत आते हैं। इन प्रयोजनों के लिए निम्नांकित अथर्ववेदीय मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए।

राज्याभिषेक के लिए—	४-८
राष्ट्रपति निर्वाचन के लिए—	३-४
पदच्युत राष्ट्राध्यक्ष को सत्तारूढ़ कराने के लिए—	३-३
दूसरे राष्ट्राध्यक्षों पर प्रभाव जमाने के लिए—	४-२२
शासन सत्ता को सुदृढ़ रखने के लिए—	३-५
ओज और प्रभाव स्थापित करने के लिए—	६-३८
यश प्राप्त करने के लिए—	६-३९

संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए—१-१९; ३-१, ३-२, ५-२०-२१, ६-९७ ९९, ८८; ११, ९, १०।

ऐश्वर्य प्राप्ति, सन्ततिलाभ, पशु प्राप्ति, गृह निर्माण, क्षेत्र प्राप्ति, व्यापार वृद्धि, सर्पभय निवारण, बाधाओं, विपत्ति के निवारण के लिए क्रम से अथर्ववेद के १-१३, ३-१२, १३-१५, १६, १७, २४, ४, ३, ३८; ६-५५, ५९, ६२, १०६, १२८, ७, ९, ५०, १०, ४ सूक्तों और मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए।

जिन पुराकृत अपराधों से कर्मज व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, विपत्तियाँ और दरिद्रता घेरे रहती है। हर प्रयास असफल होते हैं। शरीर व्याधि ग्रस्त रहता है मिथ्या कलंक लगता है, दुःस्वप्न होते हैं, चिन्ता, शोक, भय व्याप्त रहते हैं, उन सबके निवारण के लिए प्रायश्चित विधान अथर्व वेद (६-११४, ४५, ११५, २६, २७, २९, ११२, ४६; ७-११५) के सूक्तों और मंत्रों में है।

उपर्युक्त सभी विधान शान्ति पुष्टि कर्म के अन्तर्गत आते हैं।

कर्मज व्याधियों के निवारणार्थ कतिपय प्रयोग

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक पं० केशवदेव जी शास्त्री ने कर्मज व्याधियों को दूर करने के लिए अनेकानेक अथर्ववेदीय मंत्रों के द्वारा जो विधि विधान प्रस्तुत किया है, वह वैदिक एवं तान्त्रिक कर्मकाण्ड प्रधान है। इन प्रयोगों को सर्वसाधारण व्यक्ति स्वमेव उपयोग में ला नहीं सकते। उन्हें किसी तान्त्रिक कर्मकाण्डी पुरोहित की आवश्यकता पड़ेगी और ऐसे पुरोहित को जो वेद मन्त्रों के उच्चारण और उनके स्वर-संयम में दक्ष हो।

वस्तुत: वैदिक मन्त्र स्वत: सिद्ध हैं। यह ब्रह्मवाणी है। इन्हें पौराणिक, तांत्रिक मंत्रों की भांति सिद्ध कर जगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अथर्ववेद के मन्त्रों के प्रयोग और उपयोग की विधि शौनकीय शाखा और कौशिक सूत्र में विस्तार से मिलती है। उनका अनुशीलन कर तथा स्वानुभूत कुछ अमोघ प्रयोग यहाँ दिए जा रहे हैं—

समृद्धि की प्राप्ति

पशु—अन्न, पय-प्रजा-धन-धान्य की वृद्धि, समृद्धि तथा यश और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए उदुम्बर (गूलर) की जड़ रवि-पुष्य योग में लाकर सोने की तावीज में भर कर गंगा जल से उसका संस्कार करें। फिर नीचे लिखे अथर्ववेदीय मन्त्रों से आम की लकड़ी की अग्नि में अष्टांग हवन सामग्री से आहुति दे।

आहुति मन्त्र

ॐ पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्धि गृहमेधो गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः
सर्ववीरं नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम्॥

१०८ आहुतियाँ देने के बाद लाल रंग के रेशमी धागे में पिरोयी हुई उदुम्बर मणि (तावीज) को हवन के धुएँ से धूपित कर ऊपर लिखे गए आहुति मन्त्रों को पढ़ते हुए तावीज को दाहिनी भुजा में बांधना चाहिए।

अष्टांग हवन सामग्री

सफेद चन्दन का बुरादा, काले तिल, शुद्ध घी, शक्कर, अगर, तगर, कपूर, शुद्ध केशर, नागर मोथा, पंच मेवा, जौ, चावल।

पारिवारिक सौहार्द सुख-शान्ति प्राप्ति के लिए

जिस परिवार का विघटन हो गया है। कलह, विद्वेष व्याप्त हो गया हो, शत्रुता के घात, प्रतिघात परस्पर किए जाते हों। उस परिवार में सुख, सौहार्द, एकता उत्पन्न कराने के लिए श्रावणी पूर्णिमा से लेकर आषाढ़ी पूर्णिमा तक एक वर्ष पर्यन्त स्वयं गृहपति नीचे

लिखे मन्त्रों से १०८ बार हवन नित्य अष्टांग हवन सामग्री से करे अथवा पुरोहित द्वारा अपने घर पर कराए।

मंत्र

स हृदयं सौमनस्यमविद्वेषं कृणोमिवः।
अन्यो अन्यमभि हर्यतवत्सं जातमिवाघ्न्या॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचम् वदतु शान्तिवाम्॥

यदि पारिवारिक विद्वेष पुराना या कई पीढ़ियों का न हो अथवा भरा पूरा परिवार परस्पर विद्वेष से विघटित होने जा रहा हो। परस्पर अविश्वास बढ़ रहा हो तो केवल ४१ दिन तक उपर्युक्त मंत्रों से हवन करने मात्र से परिवार सुख, सौहार्द सम्पन्न बन जाता है।

और यदि किसी व्यक्ति विशेष के क्रोध से परिवार बिगड़ता हो अथवा और किसी और के क्रोध को शान्त करने से अपना हित साधन होता हो तो २१ दिन तक नीचे लिखे मन्त्रों से अष्टांग हवन सामग्री से हवन करने से क्रोध का अपसारण होकर परस्पर सौहार्द, मित्रता, आत्मीयता का भाव बढ़ता है।

मंत्र

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै॥
अवस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः।
अभितिष्ठामि ते मन्युं पाष्र्ण्या प्रपदेन च।
यथा वशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि॥

रोगोपशमन विनाशन्

कैंसर, कारबंकल, नासूर, भगन्दर जैसे असाध्य रोगों को दूर करने तथा शत्रु को दमन करने के लिए अथर्ववेद के रण सूक्त के मन्त्र अमोघ सिद्ध हैं।

रोग शमन करना हो तो रोगी के जिस अंग में रोग या घाव हो उस अंग पर मूंज की रस्सी बांध दीजिए फिर अपामार्ग (चिड़चिड़ा) की जड़ रोगी के शरीर में स्पर्श करते हुए नीचे लिखे सूक्त मन्त्रों को पढ़ता जाए। २१ दिन तक प्रतिदिन यही क्रिया की जाए। अपामार्ग का अभिसंस्पर्शन समाप्त होने के बाद रोगी को काली तुलसी की ३६ पत्तियाँ एक सेर गाय के दही में मथकर नित्य पिला देना चाहिए।

रोगशामक मंत्र

ॐ विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ।।
ज्याके परिणोनमाश्मानं तन्वं कृधि ।
वीड्डुर्वरीयो ऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ।।
वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् ।
शरुमस्मद्यावयदि द्यु मिन्द्र
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ।।

यदि कोई व्यक्ति ज्वरातिसार अथवा मूत्रातिसार रोग से पीड़ित हो तो उसकी कमर में मूंज बाँध कर गंगा जी की रेणुका अथवा बाँबी की मिट्टी घोलकर उपर्युक्त मंत्रों से अभिमंत्रित कर पिला दिया जाए और रोगी के पेट, पेड़ू में घी मल दिया जाए। रोग मुक्त हो जाएगा।

गलित कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ निवारण मंत्र

यदि कोई व्यक्ति कुष्ठ रोग से पीड़ित हो तो उसे प्रारम्भ में सात दिन तक पञ्चगव्य पान कराया जाए। गोमूत्र और गोमय शरीर भर में मल कर स्नान कराया जाए। सात दिन बाद प्रति दिन सायंकाल रोगी को अमर बेल को पैरों द्वारा तब तक कुचलाया जाए जब तक इस से पैर भीग न जाएँ। पञ्चगव्य पान कराते समय तथा पैरों से अमर बेल कुचलते समय नीचे लिखे मंत्रों से चिड़चिड़ा की जड़ जल में डुबो कर रोगी का मार्जन करे—

मंत्र

ॐ नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ।।
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ।।
असितं ते प्रलय नमास्थानमसितं तव ।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ।
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेत मनीनशम् ।।

६४ दिन तक यह प्रयोग लगातार करने से हर प्रकार के कुष्ठ रोग दूर हो जाते हैं।

क्षेत्रिय (आनुवंशिक) रोग दूरीकरण

पीढ़ी दर पीढ़ी से पीछे लगे हुए रोगों को दूर करने के लिए अथर्ववेद में बहुत ही साध्य और सफल प्रयोग बनाए गए है। काले रंग के हिरन की सींग लाकर उसके नीचे के हिस्से से थोड़ी सींग काट कर ताँबे की ताबीज में भर कर काले रेशमी धागे से ताबीज में पिरो लेना चाहिए। इस के बाद नीचे लिखे मंत्र से २१ बार हवन के धुएँ से ताबीज को और हिरन की सींग को धूपित कर ताबीज को दाहनी भुजा में बाँध लिया जाए। इसके बाद ६४ दिन तक जिन मंत्रों से हवन किया जाए उन्हीं मंत्रों को पढ़ते हुए हिरन की सींग रोगी के शरीर में स्पर्श कराया जाए। निम्नांकित मंत्रों से हवन तथा संस्पर्शन किया जाए।

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत्॥
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत्।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि।
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः॥
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि।
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमं॥
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्॥
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत्॥
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपास्मत्सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु॥

आयु, वर्चस्व, पराक्रम वृद्धि

दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए, आत्म बल प्राप्त करने के लिए, संकल्प शक्ति बढ़ाने के लिए, पराक्रम और वर्चस्व वृद्धि के लिए हिरण्य मणि धारण करना अत्यन्त उपयोगी है। अथर्ववेद में इस मणि की प्रशंसा में ऋषि कहते हैं कि जो व्यक्ति हिरण्यमणि धारण करता है, उसे राक्षस और पिशाच परास्त नहीं कर सकते। हिरण्य मणि धारण करने वाला व्यक्ति जल का तेज ज्योति, ओज, बल तथा वनस्पतियों का वीर्य प्राप्त करता है। इस हिरण्यमणि को सर्व प्रथम दक्षने शतानीक को बाँधा था।

यह हिरण्यमणि वस्तुतः मणि है, ताबीज या गंडा नहीं है। सोने की अंगूठी में हिरण्यमणि जड़वा कर धारण करनी चाहिए। हिरण्यमणि की पहचान कनकलहसुनिया

से की गई है। यह लहसुनिया सोने की भाँति चमचमाती हुई रहती है और इस में आदि से अन्त तक दो सफेद रेखाएँ खिची रहती हैं, जो हिलती, चलती सी जान पड़ती हैं। लहसुनिया को सूत्रमणि कहा जाता है। कनकलहसुनिया बहुत तेजस्वी मणि होती है। उसे पहनाने से पहले निम्नांकित मंत्र पढ़ कर दूध से अभिषिक्त करना चाहिए। फिर हर ऋतु के प्रारम्भ में दूध से अभिषिक्त करते रहना चाहिए। इसके धारण करने से सभी कर्मजदोष दूर होते हैं।

मन्त्र

यदा बन्धन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते वध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः महन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः॥
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम्॥
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः॥

प्रतीकात्मक प्रयोग

अथर्व वेद में प्रतीकात्मक प्रयोगों की बहुलता है। ऐसे प्रयोग सरल, साध्य होते हैं और कर्मज दोष दूर हो जाते है। जैसे

१. जिस शमी वृक्ष पर पीपल उगा हुआ हो। उस वृक्ष के नीचे जाकर स्त्री और पुरुष अपनी मनो कामना व्यक्त करते हुए वृक्ष का स्पर्श करते हुए यह संकल्प करें कि गर्भाधान होने तथा पुंसवन के उपरान्त जब पुत्र होगा तो मुण्डन संस्कार यहीं आप की छाया के नीचे करेंगे। ऐसा करने से बन्ध्या भी पुत्रवती होती है।

२. पलाश (ढाक) के पाँच कोमल पत्ते स्त्री के दूध में पीस कर जो स्त्री मासिक धर्म के चौथे दिन स्नान करके खाती है, वह वन्ध्या होने पर भी पुत्रवती हो जाती है।

३. कार्तिक पूर्णिमा के दिन अपामार्ग (चिचड़ा) के बीज चार आना भर लेकर रगड़ कर साफ कर लिया जाए फिर उन्हें गाय के पाव भर दूध में औटा कर खीर बना लें। रात भर ओस में रख दिया जाए। प्रातः सूर्योदय से पूर्व खाने में दमा रोग दूर हो जाता है।

४. अशोक वृक्ष की ३ कोमल पत्तियाँ प्रातः काल चबाने से चिन्ता और शोक दूर हो जाते हैं। अशोक वृक्ष की जड़ पास में रखने से धन की प्राप्ति होती है। अशोक के फूल पीस कर शहद के साथ चाटने से सभी प्रकार के दुःख दूर हो जाते हैं।

५. मधुला=ज्येष्ठा मधु—मुलहठी घिस कर नित्य चाटने से उदर विकार दूर हो जाता है।

६. जिस स्त्री को बार बार गर्भपात हो जाता हो वह गर्भवती होने पर पलाश (ढाक) के सात कोमल पत्ते प्रतिमास के क्रम से गाय के दूध के साथ सेवन करे तो गर्भ नहीं गिरेगा। क्रम इस प्रकार है—पहले मास ७ पत्ते, दूसरे मास ६ पत्ते, तीसरे मास ५ पत्ते चौथे मास ४ पत्ते इसी क्रम से हर महीना एक एक पत्ता घटाना चाहिए।

७. चर्म रोग दूर करने के लिए पीली सरसों के कुछ दाने सुबह स्नान करके बासी मुँह पानी के साथ २१ दिन तक सेवन करने से चर्म विकार दूर हो जाता है।

८. शनिवार के दिन पीपल के वृक्ष को स्पर्श कर एक सहस्त्र "ॐ ह्रौं जूसः" इस संजीवन मंत्र का जप करने से सभी आधि-व्याधियां शान्त हो जाती हैं।

९. स्नान के बाद सूर्य की ओर मुंह कर के नित्य एक सहस्त्र संजीवन मंत्र का जप करने से रोग दूर हो जाते हैं।

१०. संजीवन मंत्र से दूर्वा की एक हजार आहुतियां देने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

११. बरगद की लकड़ियों से संजीवन मंत्र से एक सहस्त्र घी की आहुति देने से समृद्धि लाभ होता है।

संकल्प शक्ति द्वारा रोग निवारण

अथर्ववेद क्षय, कुष्ठ, अर्श आदि वंशपरम्परागत होने वाले संक्रामक रोगों को क्षेत्रिय रोग कह कर इन्हें बहुत भयंकर बताया है। अधिकतर प्रयोगों में दैव बल का सहारा लेकर औषधोपचार अथर्ववेद में मिलता है। दैव बल पर आधारित प्रयोगों पर हवन आदि करना आवश्यक है किन्तु अनेक उपचार केवल संकल्प शक्ति पर ही आधारित हैं। असाध्य से असाध्य रोग को दूर करने का संकल्प ऋषि अपनी वाणी द्वारा व्यक्त करता है, वही वाणी मंत्र बन गई।

(१) असाध्य क्षेत्रिय रोग से ग्रस्त रोगी के समक्ष हरिणश्रृंग लेकर ऋषि बैठ जाता है और पूरे आत्म विश्वास के साथ रोगी से वह कहता है—

'नातिदूरस्यो य एकश्छदिरिव प्रकाशमानो भवति
तेनाऽहं तवाङ्गेभ्यः क्षेत्रियं अपसरयामि।'

इतना कह कर ऋषि ताम्रपात्र में जल लेकर जल से रोगी को रोग मुक्त करने की प्रार्थना करने के बाद संकल्प शक्ति प्रधान मंत्र शक्ति का प्रदर्शन निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए जल को अभिमंत्रित करते हुए कहता है—

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपात् सर्वां दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु॥

यह मंत्र पढ़कर हरिणशृंग को जल में डुबा कर उस जल को पिला देता है। और हरिणशृंग की ताबीज बाँध देना है। मात्र इतनी ही क्रिया से रोगी धीरे धीरे स्वस्थ होने लगता है और निरोग हो जाता है।

(२) दमा, काम, श्वास रोग से मुक्ति पाने के लिए अथर्ववेद के ऋषि न देवता का सहारा लेते हैं और न औषधिका। वह अपनी संकल्प शक्ति से ही कास रोग को दूर करते हैं। ऋषि दमा रोग मे कहते है—

जैसे मन के विचार तीव्र वेग से उड़ा करते हैं। जैसे धनुष से छुटा हुआ वाण तीव्र वेग से भागता है और जैसे सूर्य की किरणें तीव्रवेग से उड़ती हैं उसी प्रकार हे दमा रोग तू शीघ्र ही उड़न छू हो जा। इस रोगी को मुक्ति दे।

मन्त्र है—

यथा ममो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत मगसोऽनु प्रवाय्यम् ॥१॥
यथा बाणः सुशंसितः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पतत्पृथिव्या अनु संवतम् ॥२॥
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३॥

[मनोबल द्वारा कास रोग दूर करने का यह अमोघ प्रयोग स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ने अनेक रोगियों पर प्रयुक्त कर दीर्घ कालीन कास रोग से उन्हें मुक्ति दिलाई है। यदि रोगी उपर्युक्त मंत्रों को पढ़ने में स्वयं समर्थ हो तो प्रातः सायं एकाग्र मन से इन मंत्रों को पढ़ते हुए भावना करे कि कास रोग भाग रहा है कदाचित् स्वयं न पढ़ सके तो किसी विशेषज्ञ द्वारा ४१ दिन तक यह प्रयोग करना चाहिए।]

(३) अथर्ववेद के नवें काण्ड का आठवाँ सूक्त हर प्रकार के मस्तिष्क विकार, कर्ण शूल, चक्षुशूल, ग्रीवारोग, हृदय रोग, उदर रोग, गुदा रोग, ज्वर, यक्ष्मा आदि को दूर करने में अमोघ सिद्ध है। इस सूक्त में २६ मंत्र हैं। अपामार्ग की जड़ या कुशा से शरीर को जल मे अभिषिक्त करते हुए इन मन्त्रों को पढ़ना चाहिए। बहुत ही लाभदायक प्रयोग है। रोगी में मनोबल बढ़ाने वाला यह प्रयोग है।

अद्भुत, अनहोनी घटनाओं, विपत्तियों का निवारण

अथर्व वेदीय शौनकीय शाखा में अनहोनी घटनाओं, विपत्तियों, विघ्नों अशुभ लक्षणों अपशकुनों, ईति-भीति, भय-विभीषिकाओं का परिचय देते हुए उनको शान्ति के उपाय, पुष्टि कर्म विधान बताए गऐ हैं। "भवव्याधि भैषज ग्रन्थ देखें।"

ऐसे आथर्वणिक कर्म विधानों को तथा अथर्ववेद के विषय के रूप में शान्ति पुष्टि अभिचार की सत्ता को मीमांसकों ने भी मान्यता दी है (द्र० कुमारिलकृत शान्ति पुष्टि० इत्यादि श्लोक, अथर्ववेद भाष्य भूमिका पृष्ठ १२३)

अथर्ववेद विद् विद्वान् द्वारा ग्रह शान्ति करने का उल्लेख श्री मद्भागवत (१०।५३।१२) में मिलता है और मार्कण्डेय पुराण (१०२।२) में अभिचार शान्ति कर्म युक्त अथर्ववेद का उल्लेख है। पुराणों में कुछ विशिष्ट और असंभव अभीष्टों की पूर्ति के लिए आथर्वण मन्त्रों के प्रयोगों को मान्यता दी गई है। जैसे जब कोई व्यक्ति एकदम सन्तानोत्पत्ति से निराश हो जाए, सारे प्रयत्न असफल हो जाएँ तब उसे आथर्वण मंत्रों का प्रयोग* — अनुष्ठान करना चाहिए निश्चय ही सन्तान लाभ होता है (देवी० ६।२।३३)। आथर्वण मंत्रों से शक्ति स्तम्भन (नागर० १७०।१-२), आथर्वण मंत्र जन्य 'शोषणी' विद्या, में से अगस्त्य "कर्तृक" समुद्रपान (नागर० ६०।२-३ तथा पातञ्जल योग भाष्य ४।१०) शत्रुक्षय में आथर्वण मंत्र का सामर्थ्य (नागर० ३७।३७) अथर्ववेदीय प्रत्यङ्गिरस मंत्र का शान्ति करत्व (हरिवंश १।३।६५ की नीलकंठी टीका) अथर्ववेदीय मंत्र से राजावेन की हत्या (प्रभास क्षेत्र० ३३६।८६), आथर्वण मंत्र से दीक्षा (पुरुषोत्तम० २८।१७) इत्यादि आथर्वणिक कार्य सिद्ध होने केप्रमाण मिलते हैं। गोपथ ब्राह्मण (१।३।४) अथर्ववेद को भैषज्यवेद मानता है। अथर्ववेद में अनेक सूक्त हैं जो दैहिक, दैविक, भौतिक रोगों को दूर करते हैं। स्थापत्य का मूल अथर्ववेद में है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र (२।११।२९।११-१२) स्पष्ट बताया गया है। स्त्री और शूद्रों में निहित विद्या अथर्व-वेद का शेष है। तात्पर्य यह है कि जितने मजदूर वर्ग के जितने शिल्पी, कर्मकार हैं और यंत्र, मंत्र, टोना, टोटका करने वाली स्त्रियाँ हैं, वे सब अथर्ववेदीय शेष विद्या की विशेषज्ञ हैं। आज भी मूर्तिकारों वास्तुकारों, शिल्पकारों की पूजा कार्यारंभ के पूर्व की जाती है और शाबर मंत्रों में शूद्र स्त्री लोन चमारिन की दुहाई रहती है।

नेपाल के राजगुरु स्व० पण्डित हेमराज शर्मा ने काश्यप संहिता के उपोद्घात (पृ० ९-१२) अथर्व वेदीय रोगो पचार का विवेचन बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ में अधिकतर हवन, शान्ति, पुष्टि कर्मों के विवेचन के साथ जप का भी विधान दिया गया है। अथर्व-मंत्रों के जप के प्रभाव का दिग्दर्शन या विधान बहुत ही लाभ-कारी और अभीष्ट सिद्ध करने वाला है। सायणकृत अथर्ववेद भाष्य भूमिका में स्कन्द पुराण के कमलालय खण्ड का एक वचन उद्धृत किया गया है (पृ०१२२), जिसमें बताया गया है कि 'श्रद्धापूर्वक अथर्व मंत्र का जप करने से मंत्र के अर्थ के अनुकूल फल मिलता है। अथर्ववेद के मंत्र जप के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अथर्व वेदीय मंत्रों के जप करने की परंपरा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। काठक संहिता के ब्राह्मण मे ऋगादि मंत्र जन्य शंसनादि के साथ अथर्व मन्त्र जन्य जप क्रिया का ही निर्देश मिलता है (४०।७)। चारों वेदों में अथर्ववेद के मंत्रों को विशेषज्ञों ने बहुत ऊँचे स्तर पर रखा है। अथर्ववेद ही एक ऐसा वेद है जिसके मंत्रों के प्रयोग और उपयोग किसी वैदिक यज्ञ के आश्रय के बिना स्वतंत्र रूप

* पुत्रेष्ठिकर्म "भवव्याधि भैषज्य" ग्रन्थ में देखें।

से किए जा सकते हैं। अथर्ववेद की यह मौलिकता ही इस की प्रमुख विशेषता है, इसीलिए यह सर्वसाधारण के लिए स्त्री—शूद्र के लिए वरण करने योग्य है।

अथर्ववेद में कतिपय व्याधियों के निदान और उन व्याधियों की चिकित्सा का बहुत ही वैज्ञानिक विवेचन है। चिकित्सा में उपयोगी रोगों के कारण, सम्प्राप्ति और लक्षण आदि को अथर्ववेद ने रोग निदान की संज्ञा दी है। शारीरिक रोगों में ज्वर, मानसिक रोगों में उन्माद और आगन्तुक—बाह्य रोगों में आघात, क्षत को प्रधानता दी गई है।

अथर्ववेद के विविध मंत्रों में रोगों के सामान्य कारण का उल्लेख करते हुए ज्वर रोग का उत्पत्ति प्रदेश, ज्वर के वात, पित्त आदि कारण, ऋतु-ज्वर (मौसमी बुखार) शोक, मोह आदि से उत्पन्न ज्वर, ज्वर की सम्प्राप्ति, ज्वर के लक्षण, आदि निदान रूप मे प्रस्तुत किए गए हैं। ज्वर का निदान अथर्ववेदीय आठ मंत्रों द्वारा किया गया है और आठ प्रकार के ज्वर रोगों का विवरण दिया गया है। और इस रोग को महाव्याधि कहकर बताया गया है कि, ज्वर पुराना होजाने से जीर्ण ज्वर कहलाता है और जीर्ण ज्वर सब धातुओं का क्षय कर देता है। क्षय होने पर वह राजयक्ष्मा कहलाता है। अतएव अथर्ववेद ने इस मूल रोग महा रोग, महा व्याधि ज्वर के उत्पत्ति स्थान, कारण, संबध सम्प्राप्ति और लक्षणों पर विस्तृत विवरण दिया है।

अथर्ववेद में मानसिक रोगों में उन्माद और दुःस्वप्न* (निद्रानाश) को प्रधान मानकर उन्माद रोगों का कारण बताते हुए कहा है कि-'जब मनुष्य विद्वानों, संतों, सदाचार संपन्न व्यक्तियों का सत्संग त्याग देता है और असंगत, अपमान, अपकार निन्दा करने लगता है तथा सात्विक वृत्तियों का उल्लंघन करता है, इन्द्रियलोलुप बनकर भोग विलास में रत रहता है तब वह उन्माद रोग से ग्रस्त होता है।

दूसरा कारण यह बताया है कि जब आदमी दुर्जनों का चाटुकार बनकर उनके अधीन बन जाता है, पापा चरण करता है, तामस भावों में रत रहता है, शोक चिन्ता, मोह से ग्रस्त होता है, विश्राम का अवसर नहीं पाता है। दुष्प्रवृत्तियों में मन की शक्ति का व्यय करता है और मन के स्रोतों तथा सूक्ष्म तन्तुओं के निरन्तर विपरीत कम्पित होते रहने से मस्तिष्क में क्षोभ, तन्तु विच्छेद, शिथिलता और जड़ता आ जाती है तो मनुष्य उन्मादी बन जाता है।

अथर्ववेद (१६।१।१,४-७) दुःस्वप्न को पाप वासना, काम वेग, चिन्ता, दरिद्रता, सम्पत्ति नाशका और पराज्य का पुत्र मानता है। दुःस्वप्न रोग से मन व्याकुल रहता है, मस्तक शूल, भ्रम, मूर्च्छा आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

आघातिक रोगों के कारण और लक्षण बतलाते हुए अथर्ववेद (४।१२।७) कहता है कि शर आघात से शरीर के अंग कट जाने से, पत्थर की चोट या रगड़ से घाव दबाव आ जाने से आघातिक रोग उत्पन्न होते हैं। रोगों का निदान बतलाने के बाद अथर्ववेद आयुर्वेदीय

---

* राजयक्ष्मा तथा दुःस्वप्ननिवारण "भवव्याधिभेषज" ग्रन्थ में देखें।

चिकित्सा का भी विधान बतलाता है। औषधि आदि उपायों द्वारा व्याधियों को दूर करने का नाम आयुर्वेदिक चिकित्सा है। जिसके उपाय भेद से निम्नांकित भेद के बताए गए हैं—

१- आश्वासन चिकित्सा—इसके द्वारा रोगी को सर्व प्रथम आरोग्य होने का आश्वासन दिया जाता है।

२-उपचार चिकित्सा—रोगी के पास कैसे परिचारक रहें। उससे किस प्रकार की बातें करें और कैसा आचार-व्यवहार करें। इस उपचार में चार बातें कही गई हैं प्रथम रोगी के उपचार में उनके आत्मीयजन, स्नेही, शुभ चिन्तक रहें। द्वितीय वर्तमान संबंधियों में रोगी के हृदय में प्रेम पैदा करना और मरे हुए संबंधिया का स्मरण न करने देना। तृतीय रोगी की औषधि को उस के माता पिता भाई- बहन तैयार करें। अन्तिम चौथी बात वेद मंत्र कहता है कि **'प्रत्यक् सेवस्व* भेषजम्'*** औषधि तथा भेषज को आत्मभाव से अपना कर सेवन करना चाहिए।

३-सूर्य किरण चिकित्सा*—सूर्य मनुष्य का जीवन दाता है। सूर्य किरणें व्याधियों को दूर करने में सहायक होती हैं। रोगों के विष को वह शरीर से खींच लेती हैं। अथर्ववेद (१।२२) में सूर्य किरण चिकित्सा का विशद विधान है।

४-जल चिकित्सा—प्राकृतिक पदार्थों में जल को महौषधि माना गया है। जल रोग दूर करने वाला और जीवनी शक्ति देने वाला अमृत है। कदाचित् इसीलिए वैदिक निघण्टु (१।१२) में जल का नाम अमृत दिया गया है

अमृतमुदक नाम

अथर्ववेद (१।४।४) भी जल को अमृत कहता है

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्

तथा—सोमोऽब्रवीदन्त विश्वानि भेषजा (१।६।२)

एवं—आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम (१।६।३)

और—ज्योक च सूर्यं दृशे (वही)

इन वैदिक प्रमाणों से प्रतीत होता है कि जल नित्य आहार की वस्तु होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा का एक परम उपाय है। वृष्टि का जल, झरनों का जल, नदी प्रवाह का जल और कूप का जल भेषज जल है। इन जलों में भेषज धर्म रहता है जो विविध रोगों को दूर करता है।

टिप्पणी : * तन्त्र, मंत्र, यज्ञ, उपस्थान, मार्जन स्नान, अभिमर्शना तथा

** मणि बन्धनादि से युक्त उपचार "भेषज" तथा मात्र जड़ी, बूटी शल्यादि युक्त उपचार "औषधि" कहलाता है।

*** राजयक्ष्मादि प्रकरण "भवव्याधि भेषज" ग्रन्थ में देखें।

५-अग्नि-वायु-हवन चिकित्सा—अग्नि भेषज रूप है। यह शीत की औषधि है—अग्नि हिमस्य भेषजम् (यजुर्वे २३।१०) रोगी के शीत रोग हटाने के लिए अग्नि का उपयोग करना चाहिए। आग से सेंकना, भभका देना, रुग्ण अंगों को गरम रखना अग्नि चिकित्सा है। अथर्ववेद अग्नि द्वारा चिकित्सा का विधान बताते हुए कहता है—

अग्निष्कृणोतु भेषजम्—६।१०६।३

तथा अग्नि में हवन करना भी अग्नि चिकित्सा है। अग्नि में होम करना, अग्नि और वायु की संयुक्त चिकित्सा तथा होम चिकित्सा है। हवन चिकित्सा का विशद विधान अथर्ववेद के काण्ड १९ सूक्त ३८ में है। अथर्वयज्ञप्रधान होने से ही ब्रह्म वेद कहलाता है

६-शल्य चिकित्सा—अथर्ववेद में तीन प्रकार के उपचारों से शल्य चिकित्सा का विधान है। प्रथम औषधियों दूसरे प्राकृतिक पदार्थ, तीसरे शल्य क्रिया (चीड़-फाड़) शल्य चिकित्सा का पूर्ण विधान अथर्ववेद के काण्ड ४ सूक्त १२ में है।

७ विष चिकित्सा—शरीर में किन्हीं कारणों से प्रविष्ट विष तथा विष प्रभावों को र करने, नष्ट करने का नाम विष चिकित्सा है। स्थावरजंगम और कृत्रिम भेद से विष तीन कार के माने गए है। स्थावर और जंगम विष* स्वाभाविक होते हैं, किन्तु कृत्रिम विष नाया जाता है। वस्तुओं के संयोग से बनता है।"

स्थावर विष के दो भेद हैं—एक वनस्पतिज दूसरा खनिज वनस्पतिज विष वनस्पतियों ल, कन्द, सारछाल, दूध, गोंद, पत्ते, फल, फूल में होता है और खनिज विष भूमिया पर्वत ोदने से निकलने वाली संखिया, हरि ताल आदि के रूप में होता है। अथर्ववेद के अनेक क्तों में स्थावर और जंगम विषों के दूर करने के उपाय और औषधियां बड़े विस्तार से ताई गई हैं।

७ कृत्रिम विष चिकित्सा—शरीर के अंगों में कृमियों का प्रवेशन हो। खान-पान आदि । वस्तुओं में कृमियों का सम्पर्क न हो। इन सब कृमि दोषों को दूर करने के उपाय का नाम मि चिकित्सा है। अथर्ववेद के काण्ड ५ सूक्त २३ में कृमि-चिकित्सा** का विधान बताया ा है।

९-केश रोग चिकित्सा—अथर्ववेद में शिर से लेकर पैरों तक सभी रोगों की चिकित्सा ाई गई है। शिर के बालों के नाना विध रोगों को दूर करने के उपाय अथर्ववेद के काण्ड सूक्त १३६ में वर्णित हैं।

१० शिरो रोग चिकित्सा***—शिरदर्द, फोड़ा, फुन्सी, शिर की ग्रंथि, गूंगापन आदि तने भी ये शिर के रोग होते हैं उनका उपचार अथर्व (५।४) में मिलता है। इस रोग को ममर्शन, मार्जन, मणि बंधन और पर्ण मणि द्वारा भी दूर किया जाता है।

प्पणी : * सब व्याधि भैषज्य का विष निराकरण प्रकरन देखें

** कृमि विनाशन प्रकरण देखें

*** उक्त ग्रन्थ का "राजयक्ष्म विनाशन" खण्ड देखें

मानसिक रोग चिकित्सा—समस्त मानसिक रोगों को मन्त्र विद्या और आयुर्वेदीय औषधियों से दूर करने के उपाय अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त ४३,६६ में वर्णित है।

१२-भूतोन्माद रोग चिकित्सा—बाह्य सूक्ष्म प्राणियों, कृमियों के आक्रमण से जो उन्माद पैदा होता है, उसे भूतोन्माद या भूत ग्रह कहते हैं। अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त १११ में भूतोन्माद चिकित्सा का उत्तम विधान चतुर्थ अध्याय में है।

१३-अपस्मार चिकित्सा – अपस्मार (हिस्टीरिया) रोग की चिकित्सा अथर्ववेद में दश वृक्ष अर्थात् दश मूल के स्वरस, क्वाथ, रस क्रिया, घृत, अर्क, अरिष्ट, चूर्ण और वटी आदि के द्वारा बतलाई गई है।

१४-नेत्र रोग चिकित्सा—नेत्रों में धुंधलापन, रतौंधी, जलन, पीड़ा, जाले, फूला, भाड़ा, मोतिया बिन्दु, ग्लुकोमा आदि जितने भी रोग होते हैं उनको दूर करने के उपाय अथर्ववेद में कई स्थलों पर लिखे गए हैं। वहाँ जल चिकित्सा, आंजन मणि, तथा जंगिड़ मणि के प्रयोग, कुष्ठ औषधि और कमल पुष्प के द्वारा नेत्र रोगों की चिकित्सा करने का विधान है। दृष्टि शक्ति की वृद्धि के लिए अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त २० में अच्छा उपचार विधान दिया गया है।

१५-कास रोग चिकित्सा—कास (खांसी) रोग की तीन स्थितियां होती हैं—

१-श्वास रोग के साथ २ राज्यक्ष्मा रोग के साथ। ३ स्वतन्त्र रूप। सूखी, गीली, कुकुर खांसी, काली खांसी आदि अनेक भेद खांसी के बताए गए हैं : गीली खांसी की चिकित्सा अथर्ववेद काण्ड १।१२।३ में सूखी खांसी की चिकित्सा काण्ड ६ सूक्त १०५ में। सूखी खांसी समुद्र फेन से दूर होती है और गीली खांसी के लिए मन का संकल्प, रेहू मिट्टी और समुद्र फेन महौषधि है। जंगल या पर्वत में रहने से गीली खांसी दूर हो जाती है।

कुकुर खांसी के संबंध में बताया गया है कि खांसते समय बहुत कष्ट होता है। जहाँ पर कफ जमा हुआ होता है, वहाँ ज्यादा कष्ट होता है उस स्थान पर मन को एकाग्र करना चाहिए। मन एकाग्र हो जाए और कष्ट का वह स्थान मन की पकड़ में आ जाए तो मन में उस जमे हुए कफ को ढीला करने उसे ढकेलकर बाहर करने का संकल्प करना चाहिए। वस्तुतः मन शरीर के अन्दर की विद्युत शक्ति है; वह जमे हुए कफ को, शोथ को पिघला कर, ढीला करके बाहर निकाल देता है।

१६-अपची गण्डमाला चिकित्सा—गले में जो गल गण्ड हो जाते हैं उसे गण्डमाला कहते हैं। गले के चारों ओर गांठे पड़ जाती हैं। इस रोग की चिकित्सा की विधि अथर्ववेद के कई स्थलों में मिलती है। अथर्ववेद के काण्ड ७ सूक्त ७४ मंत्र ७८ में इस रोग के स्वरूप और उस के भीषणता का वर्णन किया गया है जिसका तात्पर्य है—लाल रंग वाली, (लोहिनीनां) बुरी तरह से संचित न पकने वाली गांठों (अपचितास) कृष्ण रंग वाली—दूषित रुधिर नाड़ी उत्पन्न करने वाली (कृष्ण माता) हैं। मैं मुनि देव (अगस्त्य वृक्ष) की जड़ से या पलाश की जड़ से उन सब गांठों को बींधता (विध्यामि) हूं—दबाता हूं। इस सूक्त में अपची गण्ड-

माला की चिकित्सा अगस्त्यवृक्ष की जड़ तथा हस्ति कर्ण पलाश के द्वारा करने का विधान है। साथ ही उसके स्वरस का पान तथा उससे अपची (न पकने वाली) गाँठों को धोना चाहिए।

संक्षेप में इतना ही बताना पर्याप्त है कि अथर्ववेदीय चिकित्सा स्थान में उपर्युक्त रोगों के अलावा हृदयरोग, श्वास रोग, उरः क्षत रोग, अग्नि मान्द्य रोग, आर्श (बवासीर) रोग, मूत्ररोग की चिकित्सा, वाजीकरण योग, कामिनी करण योग, योनि कृमि चिकित्सा, गर्भ-ह्रास चिकित्सा, गर्भभक्षक कृमि चिकित्सा, अपमार्जनीय रोग चिकित्सा, किलास कुष्ठ रोग चिकित्सा, क्षत रोग चिकित्सा, विदग्धि रोग चिकित्सा, विसर्प रोग चिकित्सा, वात व्याधि रोग चिकित्सा हलीमक (पाण्डु) रोग चिकित्सा क्षेत्रिय रोग चिकित्सा, रसायन चिकित्सा और पशु चिकित्सा का विशद विधान है।

सर्व रोग शान्त्यर्थ आथर्वणोक्त तंत्र

कोई भी कर्मज, मानसिक, आधिदैविक, आधिभौतिक रोग हो उसके निवारण के लिए आथर्वणोक्त मत्र तथा तंत्र अमोघ सिद्ध हुआ है। यह अनुभव सिद्ध तंत्र इस प्रकार है—

१- किसी भी रोग से ग्रस्त रोगी को रोग से छुटकारा पाने के लिए—

अच्युताय नमः अनन्ताय नमः गोविन्दाय नमः

इस नाम त्रय का जप करना चाहिए।

२- इन्हीं तीनों नामों से अभिमन्त्रित कर गंगा-जल और तुलसी का पान प्रातःकाल करना चाहिए।

३- रविवार और अष्टमी के दिन रोगी को इन्हीं तीनों नाम-मंत्रों का उच्चारण करते हुए शिर से स्नान करा देना चाहिए।

४- घी, गिलोय (गुडूची), काले तिल और दूर्वा से अच्युताय नमः अनन्ताय नमः गोविन्दाय नमः मन्त्र द्वारा ११०० आहुतियाँ रोगी के पास देने से असाध्य, महारोग दूर होजाते हैं।

५- बेल के वृक्ष को अथवा पीपल के वृक्ष को स्पर्श कर इन तीन नाम मन्त्रों का १००० जप नित्य ११ दिन करने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

६- मृगी, मूर्च्छा, ग्रहदोष, प्रेतबाधा दूर करने के लिए इन तीन नाम मन्त्रों द्वारा दूर्वा से १ लाख हवन करने से शान्ति होती है।

७- अच्युत, अनन्त, गोविन्द इन तीन नामों का नित्य जप करने से कोई रोग नहीं होता है, और सभी कामनाएँ पूरी होती हैं।

अथ आथर्वणोक्त सर्व ज्वर शान्ति विधानः

विनियोग : अस्य मन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः कालिका देवता ज्वरस्य सद्यः शान्त्यर्थे विनियोगः।

मूल मन्त्रः

ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्ट नाशिनि स्वाहा

इस मन्त्र का दस हज़ार जप करने और आम के पत्तों से हवन करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त हो जाते हैं। मृत्युभय नहीं रहता है।

नक्षत्रदोष ज्वर निदान

१- यदि किसी को धनिष्ठा नक्षत्र में ज्वर चढ़े तो दस दिन तक ज्वर रहता है।

२- शतभिषा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर छह दिन या दस दिन रहता है।

३- पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र का ज्वर मृत्यु कारक होता है।

४- उत्तराभाद्रपदा का ज्वर चोदह दिन तक रहता है।

५- रेवतीनक्षत्र का ज्वर पाँच-छह दिन तक रहता है।

६- अश्विनी नक्षत्र का ज्वर छह दिन रहता है।

७- भरणी नक्षत्र में आया हुआ ज्वर पाँचवें दिन में मार डालता है।

८- कृत्तिका नक्षत्र का ज्वर एक सप्ताह रहता है। अथवा २१ दिन तक रहता है।

९- रोहिणी नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक रहता है।

१०- मृगशिरा नक्षत्र का ज्वर नौ दिन तक रहता है।

११- आर्द्रा नक्षत्र का ज्वर पाँच दिन में मारडालता है। अथवा ४५ दिन में मारता है।

१२- पुनर्वसु नक्षत्र का ज्वर तेरह दिन तक अथवा २७ दिन तक रहता है।

१३- पुष्य नक्षत्र का ज्वर तीन दिन में अधिक से अधिक सात दिन में उतर जाता है।

१४- अश्लेषा नक्षत्र का ज्वर बहुत दिन तक रहने के बाद मार डालता है।

१५- मघा नक्षत्र का ज्वर बारह दिन में मारता है। १२ दिन में न मरा तो बच जाता है।

१६- पूर्वाफाल्गुनी का ज्वर मृत्युदायक होता है।

१७- उत्तराफाल्गुनी का ज्वर आठ या नौ दिन तक रहता है।

१८- हस्त नक्षत्र का ज्वर सात या आठ दिन में उतर जाता है। यदि नहीं उतरा तो चित्रा नक्षत्र के लगते ही उतर जाता है।

१९- स्वाती नक्षत्र का ज्वर दस दिन अथवा ४५ दिन तक रहता है।

२०- विशाखा नक्षत्र का ज्वर २१ दिन के अन्दर मारता है।

२१- अनुराधा नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक रहता है। इसके बाद रहा तो असाध्य समझना चाहिए।

२२- ज्येष्ठा का ज्वर यदि पाँच दिन तक नहीं मारता है तो १२ दिन में ठीक हो जाता है।

२३- मूल नक्षत्र का ज्वर यदि दस दिन तक बना रहगया तो फिर उसके बाद उसके ाए कोई चिकित्सा करनी नही होती है।

२४- पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का ज्वर नौ दिन तक रहता है। इससे अधिक दिन रहगया तो साध्य समझना चाहिए।

२५- उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का ज्वर एक महीने तक कष्ट देता है। इस अवधि में नहीं गया तो ६ मास तक कष्ट देता रहता है।

२६- श्रवण नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक पीड़ित रखता है।

ज्वर या अन्य बीमारी की दवा करने से पूर्व यदि नक्षत्र-दोषों को समझ लिया जाए ौर दवा के साथ ही नक्षत्र-दोष की शान्ति करा दी जाए तो रोगी शीघ्र आरोग्य हो जाता है।

ज्वर शान्त्यर्थ विधान

१- कृत्तिका नक्षत्र के रोग को दूर करने के लिए दही से अग्निमूर्द्धा० मन्त्र पढ़कर १०८ ाहुतियाँ देनी चाहिए।

२- रोहिणी नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए सर्वबीजमयी आहुति हिरण्यगर्भः० इस न्त्र से १०८ बार देनी चाहिए।

३- आर्द्रा नक्षत्र-दोष शान्ति के लिए शहद से १०८ आहुति ॐ इमारुद्राय तपसे कपर्दि ० मन्त्र पढ़कर करना चाहिए।

४- पुनर्वसु नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए ॐ महीमूषु० मन्त्र पढ़कर चावल की १०८ ाहुति देनी चाहिए।

५- पुष्य नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए घी और खीर मिलाकर ॐ बृहस्पते अति० इ मन्त्र पढ़कर १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

६- अश्लेषा नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए सर्वौषधि से ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० यह मन्त्र ढ़कर १०८ आहुति देनी चाहिए।

७- मघा नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ इदं पितृभ्यो मोऽस्तवद्य० मन्त्र पढ़कर शालिधान का हवन १०८ बार करना चाहिए।

८- पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ प्रातर्जितम्० यह मन्त्र पढ़कर कङ्कु ा हवन १०८ बार करना चाहिए।

९- उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ पुरो यमस्य० मन्त्र को पढ़कर घी े आहुति देनी चाहिए।

१०- हस्त नक्षत्र-दोष निवारण के लिए तत्सवितुर्वरेण्यं० मन्त्र से दही की आहुति नी चाहिए।

११- चित्रा नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ द्यावापृथिवी वरुणस्य० मन्त्र द्वारा मधु ौर खीर की आहुति देनी चाहिए।

१२- स्वाती नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः० मन्त्र द्वारा घी, तिल की आहुति देनी चाहिए।

१३- विशाखा नक्षत्र का दोष निवारण के लिए ॐ इन्द्राग्नी आगतं सुतं मन्त्र से नये चावल के भात से आहुति देनी चाहिए।

१४- अनुराधा नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए ॐ महीभूपाम्० मन्त्र द्वारा लहसुन की आहुति देनी चाहिए।

१५- ज्येष्ठा नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ फल्गुनामो० मन्त्र से करिहारी की आहुति देनी चाहिए।

१६- मूल नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ अयं ते योनि ऋत्वियोर्मन्त्र से अनन्त मूल की आहुति देनी चाहिए।

१७-पूर्वाषाढ़ नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ इदमापः प्रवहताघप० मंत्र से शालि-धान की आहुति देनी चाहिए।

१८-उत्तराषाढ़ा नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ विश्वेभ्यो मारुत० मंत्र से असगंध की आहुती देनी चाहिए।

१९-श्रवण नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ इदं विष्णु विचक्रमे० मंत्र से लाल पुष्प की आहुति देनी चाहिए।

२०- घनिष्ठा नक्षत्र की शान्ति के लिए ॐ वायुरग्निर्वसुः श्रवाः!० मंत्र से बरगद की बरौंत की आहुति देनी चाहिए।

२१- शतभिषा नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मण० मंत्र से कमल-पुष्प से आहुति देनी चाहिए।

२२- पूर्वाभाद्रपदा की दोष शान्ति के लिए ॐ उत्तराहिर्ब्रघ्नः० मंत्र से शालि चावल के भात से आहुति देनी चाहिए।

२३- उत्तराभाद्रपद नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए ॐ अहिरिव भोगैः० मंत्र से शालि चावल के भात से आहुति देनी चाहिए।

२४- रेवती नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ शस्तो तारश्च इहष्ठासि० मंत्र से फल और अक्षत से आहुति देनी चाहिए।

२५- अश्विनी नक्षत्र दोष-निवारण के लिए ॐ उभा पिवत मश्विनोभा नः० मंत्र से दुधारू वृक्ष की लकड़ी से आहुति देनी चाहिए।

२६- भरणी नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ मासंयमः० मंत्र से चावल से आहुति देनी चाहिए।

सभी प्रकार के ज्वरों का हरण-मंत्र

ॐ ह्रीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर शृणु शृण हम हम गर्ज एर्ज एकाहिकं द्वयाहिकं त्र्याहिकं चातुराहिकं साप्ताहिकं, मासिकं अर्द्धमासिकं, बार्षिक द्विवार्षिकं, मौहूर्तिकं, नैमिषिक

ाट घट भट भट हुं फट् अमुकस्य (रोगी का नाम) ज्वरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां ाच्छ गच्छ स्वाहा। इस मंत्र को पढ़ते हुए कुश से झाड़ देने पर ज्वर नष्ट होता है।

अथर्ववेद में एक महत्वपूर्ण विषय कृत्या का प्रयोग और उसके निवारण की विधि । प्रस्तुत ग्रन्थ में कृत्या द्वारा अपचारण के विभिन्न विधान सन्निहित हैं। कृत्या एक प्रकार ा यातु कर्म है, जिसका प्रयोग मारण, उच्चाटन और विद्वेषण जैसे निकृष्ट प्रयोजनों के लए किया जाता है। लिथुयानी भाषा का 'केरास' (Keras) शब्द तथा नेत्रों द्वारा सम्मो- हन करने का अथर्ववाची 'केरेति' (Kereti) शब्द कृत्या के समानार्थी हैं। प्राचीन स्लावो रयन भाषा के यातु वाचक 'कारु' (Caru) शब्द से भी कृत्या शब्द का साम्य मिलता है।

अथर्ववेद (१०-१-१) में कृत्या का जो स्वरूप बताया गया है उसके अनुसार हाथों से नाई गई कृति विशेष है। कृत्या एक प्रकार का पुतला है जो प्रयोजन के अनुसार विभिन्न स्तुओं से बनती है। उसके शिर, पांव, कान आदि सभी अवयव बनाए जाते हैं। उस तले को यातु कर्म करने वाला अभिमन्त्रित कर प्रयोजन के अनुसार कुश में या खेत में, या मशान भूमि अथवा घर की अग्नि में छोड़ देता है—

यांते बर्हिषियां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥
(अ० वे० सं० १०,११,१,१८)

अथर्ववेद के पञ्चम काण्ड के ३१ वें सूक्त में कृत्या की स्थापना और उसका निक्षेप मट्टी के कच्चे बर्तन में, साथ मिले जुले अनाजों के बीच, कच्चे मांस में, मनुष्य में चल पदार्थों , सभा मण्डपों, जुएँ पासों में, बाण में, दुन्दुभी में, कुएँ में, मनुष्यों की हड्डी में और चिता ी अग्नि में किया जाता है।

वस्तुत: कृत्या एक शक्तिशाली प्रयोग है और शक्ति सम्पन्न यातुकर्म करने वाले व्यक्ति ारा यह प्रयुक्त होता है। कृत्य की प्रयोग करने वाले व्यक्ति को ऋग्वेद और अथर्ववेद में ातुधान' कहा गया है। इस दुष्प्रयोग को प्रयुक्त होने से पहले काट देने के अथवा प्रयुक्त ाने पर उस के निवारण के उपाय अथर्ववेद में बताए गए हैं (अथर्व० २।११।२) ५।१८।८ ।५।१४, १०।१।६)। अथर्व संहिता तथा अन्य वेदों में वनस्पत्तियों की जड़ द्वारा भी त्या का प्रयोग बताया गया है।

इयं वीरुन्मधु जाता मधुना त्वां खनामसि। अथर्व० १-३३ इसके अतिरिक्त अथर्व संहिता २-७-५;४-९-६) में दुर्हृदय होकर किसी वस्तु या व्यक्ति को देखना भी कृत्या कहा गया है।

इस ग्रंथ की विशेषता

ग्रंथ लेखक श्री केशव देव जी ने कर्मज व्याधियों के निरोध के सन्दर्भ में अथर्ववेदीय पाक ्र का सविस्तार व्यावहारिक वर्णन किया है। जो भी आथर्वण कर्म होते हैं वे सब पाक ्र इस नाम से जाने जाते हैं। आथर्वण कर्म दो प्रकार के होते हैं १- आज्यतन्त्र, २- पाकतंत्र ाज्यतन्त्र में घी की आहुति प्रधान होती है। और पाकतंत्र में चरु, पुरोडाश, १४ पूरी आदि ्वान पदार्थ होते हैं।

अथर्ववेद में शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक—तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं। इन तीनों प्रकार के कर्मों का वर्णन कर्मज व्याधि निरोध प्रसंग में लेख करने इस ग्रन्थ में सविधि प्रस्तुत किया है। पौष्टिक कर्म के अन्तर्गत मेघाजनन, चित्रकर्म, अलक्ष्मी कर्म, कृषि-कर्म इत्यादि हैं और शान्ति कर्म के अन्तर्गत सभी प्रकार की व्याधियों के उपशमन के लिए भैषज्य कर्म और ग्रह शान्ति कर्म, यज्ञादि कर्म हैं तथा अद्भुत प्रभावों को दूर करने के लिए शान्ति कर्मों का उल्लेख हैं। कौशिक सूत्र के तेरहवें अध्याय में अद्भुत कर्मों के जो स्वरूप और उनकी शान्ति के लिए जो उपाय बताए गए हैं, उन सब को लेखक ने इस ग्रन्थ में निबद्ध किया है। इसी प्रकार छठे अध्याय में जिन अभिचार कर्मों का निरूपण किया गया है, उन्हें भी लेखक ने इस ग्रन्थ में समाहित किया है।

अथर्ववेद में मंत्र, यंत्र और तंत्र का विशेष उल्लेख मिलता है। पं० केशवदेव जी ने अपने ग्रंथ में कर्मज व्याधियों के प्रसंग में मंत्र, यंत्र, और तंत्र तीनों का उचित प्रयोग किया है। यंत्र शब्द अथर्ववेद में मणि शब्द से जाना जाता है ये यंत्र, मणि (तावीज) सोना, चांदी, लोहा से बनते हैं। उनमें वनस्पतियों के मूल, पुष्प अथवा, पत्र प्रयोजन के अनुसार भरकर मंत्र द्वारा अभिमंत्रित कर रोगी को पहनाये जाने का निर्देश है। यद्यपि तंत्र शास्त्रों की भांति अंकों रेखाओं से युक्त यंत्रों का स्वरूप अथर्ववेद में नहीं है, किन्तु इसमे इनकार नहीं किया जा सकता रेखाओं, अंको के योग से करने वाले यंत्रों का बीज रूप अथर्ववेद में है। अथर्ववेद में सूर्य को जहां गन्धर्व शब्द से अभिहित किया गया है और सूर्य रश्मियों को अप्सरा कहा गया है। तन्त्र शास्त्रों में वही बिन्दु रूप से प्रणवरूप से उल्लिखित हैं। रश्मियां ही रेखाएँ और मातृकाएँ हैं। इसलिए श्री केशवदेवजी ने प्रसंगात् यंत्र, तंत्र आदि रेखाओं, अंकों को उद्धृत किया है तो उन्हें आथर्वणिक ही समझना चाहिए।

अथर्ववेद राष्ट्र और राष्ट्र की जनता के लिए बहुत कल्याणकारी वेद है। अथर्ववेद के एकादश काण्ड के चतुर्थ सूक्त में प्राण विद्या अथवा प्रणायाम विद्या की बहुत महिमा गायी गयी है। यदि कोई व्यक्ति केवल प्राणविद्या की ही साधना करे तो उसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की सहज प्राप्ति हो सकती है।

दसवें काण्ड में आथर्वणी प्राण साधना को सिद्धि सहित बताया गया है—

मुर्द्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिकादूर्ध्वः प्रेरयत् पवमानोऽधिशीर्षतः॥
तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजांददुः॥

—अ० वे० १०।२।२६।२७–२६

सारांश यह कि अथर्वा ने मूर्द्धा को हृदय से संलग्न कर अपने प्राणों को शिर और मस्तिक से ऊपर प्रेषित किया। यह अथर्वण शिर देवताओं का कोश है अमृत से ढके हुए इस ब्रह्माधिष्ठान को जो साधना से जानता है, वह सिद्धि प्राप्त करता है। —देवदत्त शास्त्री

कर्मज भैषज्य सामिग्री

स्नान ग्रह दोष निवारणार्थ—लजवन्ती, छुई मुई, कूट, । खील, कांगनी, जो अपामार्ग सरसों, देवदारु, हल्दी सर्वौषधि, लोध, तीर्थों के जल, गोश्रृङ्गोदक, कुशो दक, तीर्थरज, यज्ञीयभस्म । वल्मीकरज जंगली सूकर की खोदी मिट्टी,

पञ्चगव्य—गौ के गोमय,गोमूत्र, गोघृत, गो दुग्ध, गोदधि, कुशोदक
दीपक—दीपक, कैची शलाका, ऊपर ढकने का छेदों का मिट्टी का ठीकरा

वेदी—उत्तम स्थान की मिट्टी कुशा, प्रणीता पात्र, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली चरुस्थाली, कुश समिधा, स्रुव, स्रुची, चावल, पूर्णपात्र, पूर्ण आहुति को गोला कन्द, गोमय, रज्जु, बालू, अग्नि के २ कांस्य कटोरे,

तर्पण—तिल जौ, चावल, दुग्ध, परात, पानी

बलिदान—उर्द की दाल, उर्द के बड़े तेल के, दही, भात, हल्दी, रोली, सिन्दूर, कज्जल, दीप, ढाक के पत्ते, बांस की टोकरी, गुड़, कच्चा दूध, पताका, छायादान, काँसे की कटोरी, घी,

मण्डप—८ बांस, वस्त्र, आम्रकी मालायें, स्तम्भ केले के, ४ चौकी बड़ी, १ पटरा मय सफेद वस्त्र, दाल मसूर, चना, चावल, काले उर्द, हरी मूंग, गुलाल ५ रंग के अलग, अलग प्रकाश सामिग्री, कत्था, पीपल की गूलर,वृक्ष की मेखें । नोग्रा

अवभृथ स्नान—सुगन्धित तेल, इत्र, माला, तिलक, श्वेत वस्त्र, सौभाग्य द्रव्य
रक्षार्थ—ताम्रे का कटोरा, जौ, दूब, कुशा, सरसो पीली, गोमय, दधि धागा,

पुण्याहवाचन—चन्दन, चावल पुष्प, आसन, पान, सुपाड़ी, फल, यज्ञोप,वीत, माला, गोमुखी, कमण्डलु, धोती, दुपट्टा, अगोछा, खड़ाऊं

नान्दीश्राद्ध—पत्तल, तिल, जौ, चावल, कुशा, वस्त्र, कच्चा दूध मुनक्का, माला फूल, आंवले, अदरख, मखाने, आसन, शान्ति कार्यों में मूजका छींका मिट्टी का घट ।

पूजा सामिग्री

स्वर्णादि की मूर्ति या यन्त्र, आसन कमल पुष्प, दूब, तिल, दाभ जौ, चावल, श्वेतचन्दनमूठ्ठा, रक्तचन्दनमूठ्ठा कमलगट्टा, दही, दूध, घी, शहद इत्र, बूरा, गुलाल, अबीर, हल्दी देवता के वस्त्र, धोती, दुपट्टा, यज्ञोपवीत सिन्दूर, तुलसी, बेलपत्र, माला, छत्र, चरणपादुका, आभूषण, अगरबत्ती, चन्दन धूप, भैसागूगल, धूपपात्र, रुई दियासलाई, भोग, फल, पान, सुपाड़ी, लोग, दक्षिणा

वरुण कलश

वेदी को मिट्टी, बालू, जौ, आम, वट, पीपल, पिलखुन, गूलर की टहनियां कलावा दूब, दाभ, यज्ञभस्म, मुन्हा, गोरोचन, वस्त्र, कटेरी, मोरपंखी, खरैटी, धतूरा कूठ जटामांसी, वच, चम्पक, गज,

घोड़ा गाय, के नीचे की मिट्टी वामी, तीर्थों की मिट्टी, गोबर, सुपारी, पुंगीफल, गोला, कपास ... । मिली महंदी, लौंग, इलायची, शान्ति कार्यों में मध्यान्ह तक उत्तर या पूर्व में । अभिचार में मध्यान्होत्तरकी, दक्षिण पश्चिम दिशा करें ।

होम सामिग्री

तिल, जौ, चावल, इन्द्र जौ, आरक्षबीना नागर मोथा, पांचो मेवा, बुरादा चन्दन, गोला हवन सामिग्री पुरोडाश द्रव्य जो जिस कामना में ग्राह्य हो मैनफल, जायफल, चीनी, घी

सिद्धपीठोंकीरजैं, शाल्मली, कांटेदार शमी (छोंकर) भृंगामलक अपामार्ग, श्वेतदूर्वा गर्भिका, ढाकपत्र, पुष्प, वासा (पीयावासा) वामी की रज, इन्द्र जौ, प्रियङ्गु, कमुनी,

क्षेत्रीयरोग नाशक यक्ष्मानाशक होमद्रव्य

१०८ आमपल्लव कोमल, पीपल, बट, पिलखुन, गूलर की कोंपलें, मण्डूकपर्णी मधुक, इन्द्रायण की जड़, अश्वगन्ध, विधारा, शालपर्णी, मकोय, अडूसा गुलाब के पुष्प (देशी) ब्रह्मदंडी, शतावरी, तगर, अगर, रास्ना, वंशलोचन, जायफल मैनफल, क्षीरकाकोली, पाकरी, गर्वतीर ... , ... बादाम गिरी, मुनक्का, लौंग, हरड़ें बड़ी गुठली सहित, आंवला, त्रिफला, गिलोय, पुनर्नवा, ... चीड़का बुरादा, श्वेत चन्दन का बुरादा, अपामार्ग, ... समभाग चार भाग ... , कुष्ठ । आधा मासा केशर, शहद, कपूर । १० भाग खांड

समिधा

ढाक, पीपल, गूलर, समिधा कल्पित मण्डपों दो के लिये चटाई या टाट

पुरोडाशः—दूध, भात, खीर । (पशु:)—धान, जौ, तिल, चावल, करम्भ पूरी, घी, समिधा प्रादेशमात्र ५ ।

वास्तुशान्ति में विशेष

६ पत्थर के टुकड़े, लम्बा बास- पीला रेशमी झंडा, लाल स्वस्तिक युक्त, ८ कील सरसों पीली झोंगा, शक्कर, दूव दोंना, दाभ, अष्ट धातु, सुपाड़ी, कमलगट्टा सकोरे

उदुबग्न-त्रिसन्धियज्ञ

१/४ किलो पानी योग्य २ कांस्य पात्र, कुशा; स्वयं टूटी पीपल की १ शाखा माल, छुरे, पींस, रेशमी वस्त्र, यज्ञोपवीत, रेशमी मेखला, सूखी मेवा दक्षिणा अन्न

"शत्रुदमन"

ऐरण्ड की समिधा, शरपते: पुरानी मूंज की रस्सी और रस्सी, भैंस के बाल मल, बाल, गृद्ध के घौंसलों की, छोंकर, करीर की समिधा, जंगली सूखा गोबर, दक्षिणाग्नि, अनेक मिश्रित पशुओं के मल नीले; लाल लम्बे २/२ धागे या वस्त्र की पट्टी ।

आभार

अथर्ववेद की शौनकीयशाखा पर आधारित प्रस्तुत ग्रन्थ "अथर्ववेदीय कर्मजव्याधि-निरोध" के अनुसन्धान ,प्रयोग,सम्पादन, प्रकाशन, मुद्रण प्रभृति में जिन दिव्य, महाविभूतियों ने प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, प्रेरणात्मक, सक्रिय, विविध भाँति से रचनात्मक सहयोग प्रदान किया है, उनका आभार मैं किन भाँति व्यक्त करूँ—यह समझ में नहीं आता। यदि इनका सहयोग न मिला होता तो जिस रूप में यह ग्रन्थ प्रकाशित होकर जन-साधारण के समक्ष आ रहा है वैसा न हुआ होता। इन महानुभावों के सहयोग से मेरे जीवन की एक साध पूरी हुई है और मुझे पूर्ण आशा है कि भविष्य में भी इनका अमूल्य सहयोग-संबल इस अकिंचन को प्राप्त होता रहेगा। मैं इन सबका हृदय से आभारी हूँ—

१. अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर बदरिकाश्रम ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी।

२. अनन्तकोटि श्री विभूषित, परमवीतरागी, विद्यावारिध श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (करपात्री जी) महाराज

३. वीतराग मुनी श्री आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराज

४. योग साम्राज्ञी माता श्री मालतीदेवीजी बाल, सेक्टर ३।६३५, रामकृष्णापुरम् नयी दिल्ली-२२

५. अनन्त श्री दुर्गाचरणानुरागी सन्त बाबा नागपाल, दुर्गाश्रम, छतरपुर, नयी दिल्ली-२४

६. निस्पृह वेद ब्रह्मचारी श्री सत्यदेवजी, बस्ती (उ० प्र०)

७. श्री युत एन० जे० हजारिका, संसदीय सचिव, भू० पू० प्रधान मंत्री, भारत।

८. माननीय श्री भक्तदर्शन जी, भू० पू० शिक्षा मन्त्री, भारत, नयी दिल्ली

९. माननीय श्री विश्वनाथदास जी, भू० पू० मुख्य मंत्री, उड़ीसा

१०. माननीय श्री उमाशङ्कर जी दीक्षित, गृहमन्त्री, भारत, नयी दिल्ली

११. माननीय श्री जगनप्रसाद जी रावत, भू. पू. मंत्री (उ. प्र.) आगरा

१२. श्री युत रामकरण शर्मा जी, विशेषाधिकारी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान शिक्षा मन्त्रालय, नयी दिल्ली

१३. श्रीयुत सी. आर. स्वामीनाथन जी, शिक्षाधिकारी शिक्षा मन्त्रालय, नयी दिल्ली

१४. श्रीयुत विश्वमोहनजी, सहायक, शि. रा. सं., शि. मं. नयी दिल्ली

१५. श्री डा. के. डी. भारद्वाज, सी ४/२७, सफदरजंग इन्क्लेव, नयी दिल्ली

१६. श्रीयुत शिवकुमार जी शास्त्री, संसद सदस्य, अलीगढ़

१७. श्रीयुत डा. सरदार सिंह, अस्थि विशेषज्ञ, सफदरजंग अस्पताल, नयी दिल्ली

१८. श्री आचार्य श्यामलाल जी, प्रधानाचार्य, संस्कृत विद्यालय, ७ मटकाफ, रोड, नयी दिल्ली

१९. श्री अवधेश नारायण जी चौबे, सहायक न्याय अधिकारी, भारत सरकार

२०. श्रीयुत बी. फड़के, सचिव, उपराष्ट्रपति जी, भारत

२१. श्रीयुत अर्जुनदास जी जोशी, वैयक्तिक सचिव, उपराष्ट्रपति जी, भारत

२२. ऋषिकल्प श्रीयुत देवदत्त जी शास्त्री, ८४, नया बैरहना, इलाहाबाद, (उ. प्र.)

२३. श्रीयुत डा. श्यामसिंह, कूचालालमन, दरियागञ्ज, दिल्ली

२४. श्रीयुत कुं. महेन्द्र सिंह, श्री सूबेदार सिंह, वैद्य श्री रामेश्वर दत्त जी, राजकीय प्रेस, मिण्टो रोड, नयी दिल्ली

२५. श्री के. सक्सैना, सूचना तथा प्रसारण अधिकारी, ४ साहू जैन कार्यालय, टाइम्स हाउस, नयी दिल्ली

२६. श्रीयुत हितशरण शर्मा जी, राधाप्रेस, कैलाश नगर, दिल्ली-३१

२७. श्री ओंकारप्रसाद जी ,, ,, ,,

२८. श्रीयुत कल्याणदत्त जी पारिख, व्यवस्थापक, मारवाडी पुस्तकालय, चांदनी चौक, दिल्ली

२९. श्रीयुत गिरिराज शरण जी टण्डन, न्याय अधिकारी, भारत, नयी दिल्ली

३०. डा० श्री चन्द्रभान पाण्डेय, नेशनल, म्यूजियम, नयी दिल्ली

३१. श्री डा० ब्रह्मदत्त जी, आचार्य, राष्ट्रीय पुरातत्व संग्रहालय, जनपथ, नयी दिल्ली

३२. श्रीयुत बलराम भसीन, डिफैन्स कालोनी, नयी दिल्ली

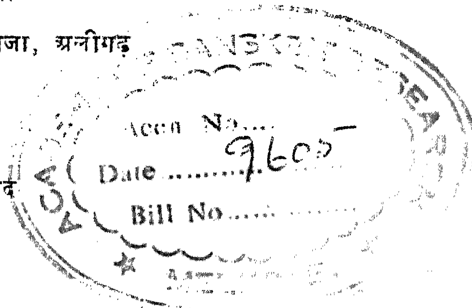
३३. श्री यशोदानन्दन लाल पचौरी (परिवार) मामू भानजा, अलीगढ़

३४. श्री पी. एल. मिश्रा, अध्यक्ष जि. कां. क., मथुरा

३५. दुर्गाश्रम (परिकर) छतरपुर, नयी दिल्ली ३०

३६. श्री हर्षकुमार अग्रवाल, अम्बिका मिल, गाजियाबाद

३७. श्री पं० रामदत्त संकटहरण परिकर, राया, मथुरा



—केशवदेव शास्त्री